महाकवि कालिदास विरचितम्

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाकवि कालिदासप्रणीतम्

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

(तत्त्वबोधिनी टीका सहितम्)

व्याख्याकार

डॉ० शिवशंकर गुप्त

रीडर, संस्कृत विभाग

तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर

सम्बद्ध

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

KĀLIDĀSA'S
ABHIJÑĀNASHĀKUNTALAM
[*Category* : Sanskrit Literature (Drama)]

Edited by
Dr. Shivshankar Gupta

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक या इसके किसी भी अंश की फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता, इसे संक्षिप्त, परिवर्द्धित कर प्रकाशित करना या फिल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

ISBN : 978-81-7124-947-3

अष्टम् संस्करण : 2019 ई०
[8th Edition : 2019]

Publisher
VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN
Post Box No. 1149, Vishalakshi Building,
Chowk, Varanasi - 221001
[U.P. INDIA]

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
पोस्ट बॉक्स नं० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी-221 001
[उत्तर प्रदेश, भारत]

Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
E-mail : vvpbooks@gmail.com • sales@vvpbooks.com
Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राक्कथन

वर्तमान ग्रन्थ की अनेक प्रतियों में केवल शब्दार्थ मात्र है, परन्तु इस ग्रन्थ में अन्वय, भाषानुवाद, संस्कृत व्याख्या, व्याकरण, समास, कोश, व्युत्पत्ति, गुण, रीति, रस, अलंकार, छन्द एवं नाट्यशास्त्रीय सौन्दर्य (रस, ध्वनि) आदि का भी समावेश है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में कालिदास का परिचय, समय, पात्र-परिचय आदि दिया गया है एवं परिशिष्ट में नाट्यशास्त्रीय टिप्पणियाँ, अलंकार, छन्द, कालिदास की सूक्तियाँ, नाटक में प्रयुक्त प्राकृत भाषा का व्याकरण नियम आदि उपयोगी सामग्रियाँ दी गई हैं।

इस ग्रन्थ में विख्यात टीकाकार राघव भट्ट, शारदा तनय राम, गदकर आदि के मत हैं एवं पाश्चात्य टीकाकार काले महोदय का भी मत है। ग्रन्थ के महत्त्ववर्धन के लिए अंग्रेजी टीका भी दी गई है। अनेक प्रतियों में श्लोक अशुद्ध लिखे हैं, अत: पाठक की सुविधा के लिए निर्णय सागर प्रेस तथा काले के अनुसार पाठ-भेद भी दिये गये हैं।

इस प्रकार ग्रन्थ को हर प्रकार से सर्वाङ्गीण परिपूर्ण करने का भरसक प्रयास हुआ है।

'शाकुन्तल' ग्रन्थ देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों के बी०ए०, एम०ए०, शास्त्रीय, आचार्य तथा प्रतियोगी परीक्षाओं के पाठयक्रम में निर्धारित है। अत: इसकी एक शुद्ध, विशद एवं समीचीन टीका की महती अपेक्षा है।

विश्व साहित्य के कवियों में महाकवि कालिदास का स्थान मूर्धन्य है। वे रससिद्ध, कवीश्वर, कविकुल चूड़ामणि, स्वनाम धन्य सरस्वती के वरद पुत्र एवं भारती के अमर कलाकार थे। वे भारतीय संस्कृति के महान् उन्नायक, मानव मूल्यों के सम्पोषक तथा सामाजिक हितों के परिपालक थे। वे अद्भुत शब्द शिल्पी एवं रस व्यञ्जना के कुशल पण्डित थे। भारतीय सांस्कृतिक गरिमा ने इतनी ऊँचाई तक उठाया कि इस महाकवि ने अपने सफल कवित्व-शक्ति के बल पर भारत को विश्व के मानचित्र पर लाकर खड़ा कर दिया है।

इनमें अद्भुत कवित्व-शक्ति, रचना कौशल, प्रकृति का प्रकृष्ट प्रेम, काव्यात्मक शब्द शक्ति, रस, व्यञ्जना एवं भौतिक उद्भावना शक्ति थी।

महाकवि ने अपनी अनुपम साहित्यिक रचना कौशल के बल पर भारतीय सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण्ण रक्खा है। इनकी रचनाओं में वर्णित नैतिक आचरण एवं सदाचार के नियम आज भी सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं एवं मानवीय गृहस्थ जीवन में व्यवहृत करने योग्य है। उन्होंने वैदिक काल से लेकर अपने युग तक जिन शाश्वत विचारों और भावों को अपने ग्रन्थों में चित्रित किया है वे समाज में सदैव जीवित रहेंगे। उन्होंने जीवन की सभी अनुभूतियों को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है।

लेखक का यह एक प्रयास मात्र है, जिस परमेश शक्ति ने मुझे यह कार्य करने की प्रेरणा दी, मैं उसको कोटिश: नमन करता हूँ।

अन्त में मैं विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी के अधिपति श्री पुरुषोत्तमदास मोदी के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके बहुमूल्य परामर्श एवं सहयोग से मेरा यह कार्य सम्भव हो सका।

डॉ० शिवशंकर गुप्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका

१. भारतीय परम्परा में रूपक की उत्पत्ति ७

२. महाकवि कालिदास ८-३८

(क) कालिदास का जीवन वृत्त ८

(ख) कालिदास की जन्मभूमि एवं निवासस्थान ९

(ग) कालिदास का व्यक्तित्व १०

(घ) कालिदास का समय ११

(ङ) कालिदास द्वारा रचित ग्रन्थ १४

(च) महाभारत में शकुन्तला की कथा १५

(छ) पद्मपुराण में शकुन्तला कथा १६

(ज) मूलकथा में परिवर्तन १७

(झ) शाकुन्तल की कथावस्तु का स्रोत १९

(ञ) कालिदास की नाट्य-कला १९

(त) शाकुन्तल नाटक का चतुर्थ अङ्क २२

(थ) चतुर्थ अङ्क की विशेषताएँ २३

(द) कालिदास की शैली २७

(ध) मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण २९

(१) दुष्यन्त २९

(२) शकुन्तला ३२

(३) कण्व ३५

(४) अनसूया एवं प्रियंवदा ३६

(५) शार्ङ्गरव और शारद्वत ३७

(६) विदूषक ३८

३. नाटकीय पात्र-परिचय ३९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४. अभिज्ञान शाकुन्तलम् १-२५८

१. प्रथमोऽङ्कः १
२. द्वितीयोऽङ्कः ४८
३. तृतीयोऽङ्कः ७६
४. चतुर्थोऽङ्कः १०३
५. पञ्चमोऽङ्कः १३८
६. षष्ठोऽङ्कः १७४
७. सप्तमोऽङ्कः २२१

५. परिशिष्ट २५९-२८०

१. वर्णानुसार श्लोकानुक्रमणिका २५९
२. नाट्य-शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द २६२
३. छन्दः—परिचय २६७
४. (क) शाकुन्तल में सुभाषित संग्रह २७१
(ख) सुभाषित श्लोक २७३
५. महाकवि कालिदास विषयक प्रशस्तियाँ २७५
६. शाकुन्तल में प्रयुक्त प्राकृत भाषा एवं व्याकरण नियम २७७
७. शाकुन्तल से साम्य वाले कालिदास के अन्य श्लोक २८०

✦

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका

भारतीय परम्परा में रूपक की उत्पत्ति

भारतीय नाट्य परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है—भरत मुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र'। यह श्लोकबद्ध विशाल ग्रन्थ है। इसमें कुल ३६ अध्याय हैं। इसका समय २०० ई० पू० है। इससे ज्ञात होता है कि ई० पू० तृतीय शताब्दी में भारतीय नाट्यकला अपनी उन्नत अवस्था पर थी। बौद्ध, जैन ग्रन्थों एवं वात्स्यायन के कामसूत्र में भी नाटकों का उल्लेख मिलता है।

भारतीय संस्कृत नाटककारों में महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटक हैं। नाट्यशास्त्र (Dramaturgy) के तत्त्वों का वर्णन धनञ्जय कृत 'दशरूपक' एवं विश्वनाथ कृत 'साहित्य दर्पण' में मिलता है

धनञ्जय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व[१] होते हैं—वस्तु, नेता, और रस। कथावस्तु के दो भेद हैं—(१) आधिकारिक, (२) प्रासंगिक। अधिकार का अर्थ है—फल, अधिकारी का अर्थ है—नायक। उससे सम्बद्ध कथानक आधिकारिक है जैसे रामायण में राम की कथा। २-प्रासंगिक जो गौणरूप से हो, जैसे रामायण में सुग्रीव[२] या शबरी की कथा।

प्रासंगिक कथा के दो भेद हैं—(१) पताका, (२) प्रकरी। (१) पताका—उस कथा को कहते हैं जो नाटक में दूर तक चलती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है। यह मुख्य नायक का साथी होता है। जैसे—रामायण में सुग्रीव की कथा। (२) प्रकरी—छोटे-छोटे प्रसंगों या कथानकों को प्रकरी कहते हैं, जैसे—रामायण में शबरी आदि की कथा।[३]

सम्पूर्ण कथा को तीन भागों में विभाजित करते हैं—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर आश्रित हो, जैसे—शाकुन्तल की कथा महाभारत एवं पद्मपुराण पर आश्रित है। (२) उत्पाद्य—यह कथा कवि द्वारा कल्पित होती है, जैसे—शूद्रक का मृच्छकटिक, भवभूति का मालतीमाधव। (३) मिश्र—इसमें मुख्य अंश इतिहास पर आश्रित होता है और अधिक अंश कल्पित होता है।[४]

संस्कृत में दैवी परम्परा से नाटकों की उत्पत्ति बताई जाती है। भरतमुनि के अनुसार सत्ययुग एवं त्रेतायुग में विशेष आनन्द की आवश्यकता का अनुभव करके सभी देवगणों ने ब्रह्मा जी के पास जाकर उनसे एक ऐसी वस्तु की रचना करने की प्रार्थना की जो आँख एवं कान दोनों को आनन्द प्रदान करे एवं सभी वर्ग को आनन्द दे सके। ब्रह्मा जी ने देवताओं पर अनुग्रह करके ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर 'नाट्य वेद' नामक पंचम वेद की रचना की[५]।

---

१. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः दशरूपक, सा० द०—६/४२, १/११
२. द० रू० १/१२, सा० द० ६/४२, ४३
३. द० रू० १/१३, सा० द० ६/६७,६८
४. द० रू० १/१५,१६
५. नाट्यशास्त्र १/१६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा को प्रेक्षागृह (Stadium) बनाने की आज्ञा दी। ब्रह्माजी ने भरत मुनि को अभिनय का संकेत दिया।[1] इस नई सृष्टि में विष्णु ने अभिनय के चार प्रकार बताये—आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक।

अभिनय के लिए अप्सराओं की उत्पत्ति हुई। परन्तु अभिनय कला देवों के लिए असम्भव जानकर मनुष्य लोक के लिए उपयुक्त मानी गई। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का उल्लेख पाँचवें वेद के रूप में संस्कृत महाकाव्यों में है।

महाकवि कालिदास

संस्कृत कवि-कुल-चूड़ामणि, रस सिद्ध, कवीश्वर, संस्कृत भारती के अमर कलाकार, महाकवि कालिदास का नाम संस्कृत साहित्य में मूर्धन्य है। संस्कृत काव्य साहित्य में उनकी तुलना शेक्सपियर से की जाती है। उनके वैदुष्य की प्रशंसा करते हुए संस्कृत के पण्डितों ने कहा है— "काव्येषु माघः कवि कालिदासः ॥"

वे अद्‌भुत शब्द शिल्पी एवं व्यञ्जना व्यापार के कुशल पण्डित हैं, वे कविता-कामिनी के मधुर विलास हैं। उनकी कविता की सहजता, सरलता एवं मधुरता से प्रभावित आचार्य उद्‌भट कहते हैं कि 'माहिषं दधि, सशर्करं पयः कालिदास कविता नवं वयः.......स्वर्गशेष मुपभुञ्जते जनाः।' अर्थात् शर्करायुक्त दुग्ध एवं कालिदास की कविता आदि स्वर्ग से शेष बची वस्तुओं का लोग उपभोग करते हैं।

(क) कालिदास का जीवन वृत्त

यह अत्यन्त खेदजनक बात है कि ऐसे विश्ववन्द्य महाकवि के जीवन के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है। किंवदन्ती के आधार पर यह कहा जाता है कि कालिदास पूर्व के समय में महान् मूर्ख थे। उसका विवाह राजा शारदानन्द की पुत्री विद्योत्तमा से हुआ था। वह विद्वत्ता एवं सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति थी। उसने प्रतिज्ञा की थी जो उसे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा, वह उसी के साथ विवाह करेगी। पण्डितों ने इसके साथ ईर्ष्यावश इसका विवाह उन्हीं से कराया। पण्डितों ने ऐसे मूर्ख को देखा जो जिस डाल पर बैठा है उसी को काट रहा है। उस मूर्ख व्यक्ति को लाकर पण्डितों ने विद्योत्तमा से उसका शास्त्रार्थ कराया। विद्योत्तमा ने एक अँगुली उठाकर संकेत किया कि ईश्वर एक है, परन्तु मूर्ख ने यह समझा कि हमारी एक आँख फोड़ने का संकेत कर रही है। अतः उस मूर्ख ने दो अँगुली उठा कर संकेत किया कि मैं तुम्हारी दोनों आँखें फोड़ दूँगा। (पण्डितों ने इसका अर्थ समझाया कि तत्त्व दो हैं—ईश्वर एवं जीव) अन्ततः उस मूर्ख के साथ विद्योत्तमा को विवाह करना पड़ा। परन्तु सुहागरात के दिन किसी ऊँट के दिखाई देने पर विद्योत्तमा के द्वारा पूछे जाने पर मूर्ख ने कहा यह 'उट' है। विद्योत्तमा ने उस मूर्ख की मूर्खता से क्रुद्ध होकर उसे घर से बाहर निकाल दिया। पत्नी से तिरस्कृत होकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ और किसी काली के मन्दिर में आत्महत्या के लिए समुद्यत हो गया।

---

१. द्रष्टव्य—हॉपकिन्स 'दि ग्रेट एपिक्स ऑफ इण्डिया' पृ० ६/१०/३३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस पर कालीजी ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। मूर्ख कालिदास ने विद्या-सिद्धि का वरदान माँगा। काली जी ने कहा—'एवमस्तु'

इसके अनन्तर कालिदास विद्या की सिद्धि करके, उद्भट विद्वान् बनकर जब घर लौटे तो घर का द्वार बन्द पाकर उन्होंने अपनी पत्नी विद्योत्तमा को संस्कृत में आवाज लगाई—'अनावृतं कपाटं द्वारं देहि' (द्वार खोलो)। विद्योत्तमा ने पूछा—अस्ति कश्चित् वागविशेषः ? (क्या कुछ विशिष्ट बात है ?) कालिदास ने अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिए 'अस्ति' पद से कुमार सम्भव ग्रन्थ की रचना की—'अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतारत्मा', 'कश्चित्' पद से 'मेघदूत' जैसे गीति काव्य की रचना की—'कश्चित्कान्ता विरह गुरुणा'—से जो काव्य प्रारम्भ होता है एवं 'वाक्' पद से 'रघुवंश' नामक महाकाव्य की रचना की, जो 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'—से प्रारम्भ होता है। परन्तु विचार करने पर यह किंवदन्ती असत्य प्रतीत होती हैं क्योंकि (१) एक विदुषी बिना जाने बूझे किसी मूर्ख से विवाह कर ले, यह बात विश्वास के योग्य नहीं है, (२) पण्डितजन राजा के भय से कन्या का विवाह किसी मूर्ख से कैसे करा पायेंगे, (३) यदि कालिदास काली की कृपा से विद्वत्ता पाते तो अपने ग्रन्थों में काली के प्रति कृतज्ञता अवश्य ज्ञापित करते। (४) ऐसा प्रतीत होता है कि काली के किसी भक्त ने ऐसी कल्पना की है। (५) 'अस्ति कश्चित् वागविशेषः' प्रश्न के उत्तर में अभिज्ञान शाकुन्तलं नाटक को क्यों नहीं सम्मिलित किया गया ?

दूसरी किंवदन्ती के अनुसार लङ्का के राजा कुमारदास (लगभग ५०० ई०) ने एक वेश्या की गृहभित्ति पर एक समस्या प्रधान श्लोक लिखवाया और श्लोक की पूर्ति वाले विद्वान को प्रभूत स्वर्ण देने की घोषणा की। समस्या इस प्रकार थी—'कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न न दृश्यते। बाले, तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्॥'

ऐसा कहा जाता है कि रसिक महाकवि ने ही इसकी पूर्ति की, परन्तु स्वर्ण लोभ में आकर वेश्या ने कालिदास की हत्या करा दी। जब कुमारदास को वेश्या द्वारा कालिदास वध ज्ञात हुआ तो दुखी होकर वह चिता में जलकर भष्म हो गया। परन्तु साक्ष्यों के अभाव में यह किंवदन्ती भी अविश्वनीय है। यह केवल आनुमानिक एवं काल्पनिक लगती है।

(ख) कालिदास की जन्मभूमि एवं निवासस्थान

महाकवि कालिदास किस गाँव या प्रान्त के निवासी थे, यह किसी साक्ष्य के अभाव में कहना कठिन है। विभिन्न विद्वान् उन्हें भिन्न स्थानों में प्रादुर्भूत मानते हैं।

(१) बंगाली विद्वान् उन्हें मुर्शिदाबाद में 'गड्डासिंगरू' नामक ग्राम में उत्पन्न मानते हैं। बंगाली विद्वानों का तर्क है—चूँकि कालिदास काली के उपासक थे और बंगाल काली की उपासना का केन्द्र है। अतः उनका जन्म स्थान बङ्गाल होना चाहिए। अधिकांश लोग इस मत से सहमत नहीं।

(२) प्रो० लक्षीधर कल्ला ने कालिदास को काश्मीर का निवासी सिद्ध किया है क्योंकि उन्होंने हिमालय या उसके आस-पास के दृश्यों का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है। अतः वे काश्मीरी थे। परन्तु कल्हण की 'राजतरंगिणी' में काश्मीरी कवियों में कालिदास का नाम उल्लिखित नहीं है। अतः वे काश्मीरी नहीं, क्योंकि कालिदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी हिमालय का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

CC-0, Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) कुछ के अनुसार कालिदास विदर्भ प्रदेश के निवासी थे। क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में विदर्भ के प्रति विशेष प्रेम दिखाया है। परन्तु यह कथन असत्य है। कालिदास का विदर्भ-वर्णन सामान्य ही है, न कि विशिष्ट।

(४) प्रो० हरप्रसाद शास्त्री के विचार से कालिदास का जन्म-स्थान विदिशा है क्योंकि उन्होंने विदिशा के समीपस्थ वनों, नदियों एवं प्रदेशों का मेघदूत में वर्णन किया है। यह मत मान्य नहीं क्योंकि विदिशा का वर्णन केवल तीन श्लोकों में है।

(५) दरभङ्गा जिले में 'उच्चैठ' नामक ग्राम के पास भगवती दुर्गा की मूर्ति तथा एक टीला है, मैथिल विद्वान् इसी को कालिदास की जन्मभूमि मानते हैं।

(६) उक्त सभी स्थानों की तुलना में कालिदास ने मध्य प्रदेश में स्थित उज्जयिनी का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। इस नगरी के प्रति महाकवि का अत्यन्त लगाव था। इन्होंने अपने गीतिकाव्य 'मेघदूत' में उज्जयिनी नगरी का अतिशय उत्कृष्ट वर्णन किया है।

'श्री विशालां-विशालाम्',—मेघदूत० १/३१

'सौधोत्संग प्रणयविभुखो आएम भूरुयिला'—मेघदूत० १/२८

इस वर्णन से स्पष्ट है कि कालिदास को उक्त नगरी से अतिशय प्रेम था एवं उनके जीवन का अधिक समय यहीं व्यतीत हुआ। अतः यह पूर्ण सम्भव है कि कालिदास का जन्म उज्जयिनी में ही हुआ था।

(ग) कालिदास का व्यक्तित्व

महामहोपाध्याय वी० वी० मिराशी ने कालिदास को ब्राह्मण बताया है। उनके ग्रन्थों के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि वे जन्म से ब्राह्मण थे। वे शिव के भक्त थे। अपने ग्रन्थों में उन्होंने शिव के प्रति आस्था एवं भक्ति प्रदर्शित की है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के नान्दी श्लोक में शिव-स्तुति है[१]। रघुवंश के आदि श्लोक में शिव-पार्वती की वन्दना है[२], कुमारसम्भव तो शिवपुत्र कार्तिकेय के जन्म से सम्बद्ध है, मेघदूत में अनेक स्थान पर शिव का उल्लेख है।[३]

शृंगार रस तो उनके काव्यों की आत्मा है, उन्होंने अनेक जगह स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन किया है। वे कामुकता एवं विलासिता को ही जीवन का उद्देश्य मानते हैं।[४]

उन्होंने वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों. उपनिषदों, दर्शनों, रामायण, महाभारत, पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, नीति शास्त्र, संगीत शास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण, छन्दशास्त्र, ज्योतिष आदि विषयों का गम्भीर अनुशीलन किया था और अपने ग्रन्थों में इनसे उद्धरण भी दिये हैं। उन्होंने पट चित्र, फलक चित्र एवं भित्ति चित्रों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने लौकिक आचारों एवं व्यवहारों से अपनी अभिज्ञता प्रकट की है। अपने ग्रन्थों में उन्होंने आध्यात्मिक एवं अतिभौतिक दोनों पक्षों को महत्त्व दिया है। अतएव श्रेय एवं प्रेय दोनों के प्रति उनका समान पक्षपात है।

---

१. प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः— १,१
२. जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ—रघु०
३. मे० दू० १/७, १/३७, ३८, ४०, ६२, ६४
४. मे० दू० १/३६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काव्य प्रतिभा तो उनकी असाधारण कोटि की है। यही कारण है कि वे भारत के शेक्सपियर कहे जाते हैं एवं कवियों में यदि कोई है तो वह कालिदास ही हैं।[१]

(घ) कालिदास का समय

भारतीय परम्पराओं के अनुसार प्राचीन विद्वानों ने अपने विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा। अतः उनके समय का निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है। केवल अनुमान एवं जनश्रुतियों के आधार पर उनके समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किये गये, उन्हें निर्णायक नहीं माना जा सकता। कालिदास के समय के विषय में निम्न चार मत प्रमुख हैं

१. छठी शताब्दी का मत
२. गुप्तकालीन मत
३. ई० पू० द्वितीय शताब्दी का मत
४. ई० पू० प्रथम शताब्दी का मत

(१) ईसा की छठीं शताब्दी—फर्गुसन महोदय का विचार है कि उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने ५४४ ई० में शकों को पराजित कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् चलाया और अपने नाम के साथ परमेश्वर, राजाधिराज आदि शब्द जोड़े। हर्ष विक्रमादित्य ने इस सम्वत् को प्राचीन बनाने के लिए उसे ६० वर्ष पहले चलाकर उसका प्रारम्भ अपने समय से ६०० वर्ष पूर्व रक्खा अर्थात् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व। इस मत की पुष्टि में भारतीय विद्वान् यह तर्क देते हैं कि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में यवन, शक एवं हूण आदि जातियों का उल्लेख किया है। हूणों ने ५०० में भारत पर आक्रमण किया, अतः कालिदास की स्थिति इसके पश्चात् होनी चाहिए। इस तरह महाकवि की स्थिति ईसा की छठीं शताब्दी है।[२]

ज्योतिष के प्रकाण्ड आचार्य वाराहमिहिर की कृति 'वृहत्संहिता' तथा कालिदास कृत रघुवंश में प्राप्त ज्योतिष सम्बन्धी विवरण में अत्यधिक साम्य है—जैसे (१) भूमि की छाया के कारण चन्द्र ग्रहण होना, (२) चन्द्रमा का सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित होना। वाराह मिहिर एवं कालिदास एक ही राजा विक्रमादित्य की सभा के रत्न थे इस परम्परा पर विश्वास करने से कालिदास का समय छठी शताब्दी सिद्ध होता है। 'मेघदूत' में वर्णित दिङ्नाग-बौद्ध कवि (मेघदूत—१/१४) का उल्लेख होने से कालिदास का समय छठी शताब्दी है। दिङ्नाग चौथी शती के अन्त में थे। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया है कि कालिदास भारवि के अनन्तर षष्ठशतक[३] में थे।

इस मत में आपत्ति—(१) हर्ष ने अपने सम्वत् को ४५५ वर्ष पूर्व चलाया, इसका कोई प्रमाण नहीं है। (२) ५४४ वर्ष से पूर्व मालवा सम्वत् तथा वि० सम्वत् ४३० का उल्लेख है। अतः पूर्वोक्त विद्वान् का मत निराधार है। (३) कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शक, यवन, हूण जातियों का वर्णन रघु के दिग्विजय के प्रसंग में किया है, न कि विदेशी आक्रामक। अतः शकादि के आक्रमण से पूर्व उसका वर्णन न्यायसंगत है।

---

१. काव्येषु माघः कवि कालिदासः, पुरा कवीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठिकांधिष्ठित कालिदासः। अद्यापि तत्तुल्यकवे रभावात् अनामिका सार्थवती बभूव।
२. Journal of Royal Asiatic Society, 1902, p. 545—Dr. Haraley.
३. Magazine of Bihar., Orrisa Society, Chapt. II, pp. 31-44

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) गुप्तकालीन मत—डॉ० कीथ महोदय का विचार है कि कालिदास गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३७५-४१३) के समय के कवि थे[१] इन्हीं चन्द्रगुप्त ने शकों को भारत से बाहर भगाकर 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की और पहले से चले आ रहे मालवा सम्वत् को 'विक्रम सम्वत्' के नाम से चलाया। इस मत के समर्थकों के निम्न तर्क हैं—

१. कालिदास ने 'कुमारसम्भव' महाकाव्य की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त को ध्यान में रखकर की थी।

२. कालिदास ने 'गुपू' धातु का बार-बार प्रयोग किया जो गुप्तवंश को संकेत करता है।

३. कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित भारत की समृद्धि गुप्तवंश की समृद्धि से साम्य रखती है।

४. रघुवंश में वर्णित 'अश्वमेधयज्ञ' समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ से समानता रखता है। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि कालिदास गुप्तकाल में या विशेषतः चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में रहे होंगे।

उक्त मत में आपत्ति—(१) चन्द्रगुप्त ने दूसरे के नाम से चलाये सम्वत् को क्यों अपनाया? (२) कुमारसम्भव में प्रयुक्त 'कुमार' शब्द पुत्र के अर्थ में है अतः उससे कुमार गुप्त की ओर संकेत करना उचित नहीं। (३) किसी गुप्त सम्राट् का नाम विक्रमादित्य नहीं था; वह उनकी उपाधि मात्र थी। अतः यह मत भी निराधार है।

(१) डॉ० कीथ कहते हैं—"It is therefore most probable to that he (Kalidas) flourish cuder Chandra Gupta II of Ujjaayini who ruled up to AD. (413) with the style of Vikramaditya"[2]

डॉ० दास गुप्त भी इसी मत के समर्थक हैं।

(२) "It is not unnatural to associate him (Kalidas) with Chandragupta II (380-413 AD) Who has the style of Vikramaditya and whose times were those of prosperily and power."[3]

(३) डॉ० वासुदेव विष्णुमिराशी के अनुसार कालिदास चौथी या पाँचवीं शताब्दी के आस-पास रहे होंगे।[४]

(३) द्वितीय शताब्दी का मत—मालविकाग्निमित्र वर्णित भरतवाक्य के आधार पर डॉ० सी० कुन्दन राजा का मत है कि इसका सम्बन्ध शुंग वंशीय राजा अग्निमित्र से है। इसी आधार पर उन्होंने अनुमान लगाया कि महाकवि कालिदास अग्निमित्र के राजकवि रहे होंगे।

आपत्ति—इस मत को भी सम्मान नहीं मिला।

(४) ई० पू० प्रथम शताब्दी—कालिदास की स्थिति के बारे में यह मत सर्वाधिक मान्य है। इसके पक्ष में निम्न तथ्य विद्वानों ने प्रस्तुत किये हैं।

१. मालविकाग्निमित्र में की गई चर्चाओं से ज्ञात है कि कालिदास को शुंग काल की परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान था। अतः वे अग्निमित्र (शुंगवंशीय राजा) से लगभग एक शताब्दी के भीतर रहे होंगे।

---

१. धन्वन्तरिक्षपणकाभार सिंह शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः। वाराहमिहिरो नृपतेः सभायां रक्तानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य॥

२. Keith, Sanskrit Dramma, pp. 1470.

३. Dasgupta—History of Sanskrit lit.

४. Dr. V. V. Mirashi—Kalidas, p. 48

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. कालिदास तथा अश्वघोष की कृतियों में पर्याप्त साम्य है। इस आधार पर कुछ लोग अश्वघोष को कालिदास के पहले मानते हैं। परन्तु भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन से सिद्ध होता है कि अश्वघोष कालिदास के परवर्ती हैं एवं उन पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव है। अश्वघोष कनिष्क के समकालीन हैं। कनिष्क ने १३५ वि० सं० से शालि सम्वत् चलाया। अतः कालिदास इसके पहले के हैं।

३. भीटा (प्रयाग) नामक स्थान की खुदाई से एक विशाल मृण्मय पदक मिला है जिस पर अभिज्ञा० शाकु० के प्रथम अङ्क का दृश्य है। परीक्षण से यह शुंग काल का माना गया है। अतः कालिदास का समय ई० पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

४. कालिदास प्रणीत विक्रमोर्वशीय नाटक में विक्रमादित्य एवं उनके पिता महेन्द्रादित्य का उल्लेख है।[१] इससे ज्ञात है कि कालिदास विक्रमादित्य के राजकवि रहे। विक्रमादित्य का सभय ई० पू० प्रथम शताब्दी है। ऐसा सम्भव है कि विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठने के पश्चात् इस नाट्क का अभिनय हुआ था।

५. ईसा की प्रथम शताब्दी में गुणाढ्य की वृहत्कथा के समान कथा सरित्सागर में महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य का वर्णन है। वहाँ यह वर्णित है कि भगवान् शिव का एक गण उनकी आज्ञा से म्लेच्छों को नष्ट करने एवं वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ था। इसी ने विक्रम सम्वत् चलाया। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इससे यह सिद्ध है कि इसी विक्रम सम्वत् को चलाने के लिए कालिदास विक्रमादित्य के सभा कवि के रूप में विद्यमान थे।

६. सातवाहन वंशी राजा हाल (प्रथम शताब्दी) द्वारा प्रणीत 'गाथा सप्तशती' में विक्रमादित्य से सम्बन्धित अनेक कथाएँ हैं।

७. विक्रमादित्य परमारवंशीय होने के साथ सूर्यवंशीय भी थे ?

८. उज्जयिनी में महाकाल मन्दिर के निर्माणकर्ता विक्रमादित्य शैव थे, तथा कालिदास भी शैव थे।

९. कालिदास के काव्यों में परवर्ती कवियों की अपेक्षा अपाणिनीय प्रयोगों का प्राचुर्य है। अतः यह सिद्ध है कि कालिदास इन कवियों से पहले रहे।[२]

आधुनिक अन्वेषण से पुरातत्त्ववेत्ता डॉ० वी० एस० वाकनकर ने 'बताया है कि जहाँ प्राचीन उज्जैन नगर बसा था, ऐसे 'गढकालिका' स्थान में एक अनगढ़ मुहर (सील) प्राप्त हुई है जो ई० पू० प्रथम शताब्दी की है। इससे सम्राट् विक्रमादित्य का वास्तविक समय प्रमाणित होता है। इस मुद्रा पर ब्राह्मी लिपि में स्वस्तिक चिह्न के साथ ई० पू० प्रथम शताब्दी का समय अंकित है। इसके साथ ही उज्जैन के राजा कृष्ट का नाम लिखा है जिस नाम को महाराज विक्रमादित्य ने क्षत्रियों पर विजय के उपलक्ष्य में धारण किया था। इस के साथ ही एक बड़े पदक पर सिंह के दाँत गिनते शकुन्तला पुत्र भरत की मूर्ति अंकित है। इस पदक का समय ईसा की प्रथम शताब्दी है।

---

१. दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेना विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् तथा अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः।

२. देखिए—दैनिक जागरण, कानपुर, वर्ष २६, अङ्क २८६८, जुलाई १९७६ का नगर-संस्करण।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस पदक के आधार पर कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी तथा ईसा की प्रथम शताब्दी के मध्य सिद्ध होता है। इस मत के समर्थकों में—प्रो० जी० जी० झाला, सरविलियम जोन्स, डॉ० पीटर्सन आदि हैं। प्रो० शिवाम्ब शेखर, रायबहादुर चिन्तामणि, प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय भी इसी मत को मानते हैं।

(ङ) कालिदास द्वारा रचित ग्रन्थ

अधिकांश विद्वान् निम्न रचनाओं को कालिदास कृत मानते हैं—गीतिकाव्य—(१) ऋतुसंहार, (२) मेघदूत। महाकाव्य—(३) कुमारसम्भव, (४) रघुवंश। नाटक—(५) मालविकाग्निमित्र, (६) विक्रमोर्वशीय, (७) अभिज्ञानशाकुन्तल।

(१) ऋतुसंहार—इसमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त—इन छह ऋतुओं का सरस स्वाभाविक एवं ललित वर्णन है। यह विप्रलम्भ शृंगार प्रधान रचना है। कुछ के अनुसार इसमें कालिदास जैसी रमणीय शैली नहीं है। अत: यह कालिदास की रचना नहीं हो सकती। परन्तु अधिकांश लोग इसे कालिदास कृत मानते हैं। इसमें ६ सर्गों में कुल १४४ श्लोक हैं।

(२) मेघदूत—यह संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट रीति काव्यों में प्रधान है। इसके पूर्व एवं उत्तर दो भाग हैं।

(३) कुमारसम्भव—यह १७ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें हिमालय का स्वरूप, तारकासुर का उपद्रव, देवों की प्रेरणा से काम का शिव के पास जाना, शिव विवाह होना, शिव द्वारा काम को भस्म करना, कार्तिकेय का जन्म एवं सेनापति के रूप में तारकासुर वध आदि इस ग्रन्थ के प्रमुख वर्ण्य विषय हैं।

(४) रघुवंश—यह सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। (क इह रघुकारे न रमते)। इसमें कुल १९ सर्ग हैं। इसमें सूर्यवंशीय राजाओं का प्रभावपूर्ण वर्णन है। १-९ सर्गों तक दिलीप, अज, रघु, एवं दशरथ का वर्णन है। १०-१५ सर्गों में राम, १६-१९ में राम के वंशजों का वर्णन है।

(५) मालविकाग्निमित्र—इसमें कुल ५ अङ्क हैं। अग्निमित्र नायक एवं मालविका नायिका है—दोनों के प्रणय का चित्रण इसमें है। इसमें अग्निमित्र की सहधर्मचारिणी महारानी 'धारिणी' मालविका नाम की परिचारिका को राजा की दृष्टि से छिपाती है कि राजा कहीं उसके अनिन्द्य सौन्दर्य पर मुग्ध न हो जाये। परन्तु जब गणदास की मालविका संगीत परीक्षा देने आती है तो राजा अग्निमित्र और उसमें प्रेम हो जाता है परन्तु महारानी दोनों के मिलन को विफल करती है। अन्त में मालविका जब विदर्भ के राजा माधवसेन की पुत्री रूप में विदित होती है, तो महारानी धारिणी अग्निमित्र महाराज का विवाह मालविका से सम्पन्न कराती है।

(६) विक्रमोर्वशीय—पाँच अङ्कों के इस नाटक में राजा पुरुरवा एवं अप्सरा उर्वशी की प्रणय कथा का वर्णन है। पुरुरवा कैभी नामक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करते हैं। उस समय दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं। भरत मुनि के शाप से उर्वशी मृत्युलोक में कुछ समय तक पुरुरवा के पास रहती है। परन्तु विद्याधर कुमारी के प्रति पुरुरवा के निहारने के कारण क्रुद्ध होकर उर्वशी कार्तिकेय के वन में जाने पर लता रूप में परिणत हो जाती है क्योंकि कार्तिकेय ने आदेश दिया था कि जो स्त्री मेरे वन में प्रवेश करेगी, वह लता बन जायेगी। बाद में संगमनीय मणि के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रभाव से उर्वशी पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त करती है। उर्वशी पुत्र को जन्म देकर च्यवन ऋषि के आश्रम में उसे छिपा देती है, क्योंकि उर्वशी मृत्युलोक में तभी तक रहती, जब तक पुरुरवा पुत्र को न देख ले। अकस्मात् यह रहस्य खुल जाता है। परन्तु उर्वशी एवं पुरुरवा के दुःखी होने पर इन्द्र उर्वशी को जन्म भर के लिए पुरुरवा के पास रहने की अनुमति प्रदान करते हैं।

(७) अभिज्ञानशाकुन्तल—यह नाटक संस्कृत साहित्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व साहित्य का समुज्ज्वल रत्न है। प्रस्तुत नाटक ७ अङ्कों का है। इसमें चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त एवं मेनका नामक अप्सरा की पुत्री 'शकुन्तला' दोनों की प्रणय-कथा है। यह शकुन्तला अप्सरा मेनका तथा ऋषि विश्वामित्र दोनों के संयोग से उत्पन्न होती है तथा कण्व ऋषि के आश्रम में रहती है। जब दुष्यन्त आखेट के लिए जाते हैं, तो वे कण्व-आश्रम में शकुन्तला को देखकर प्रथम दर्शन में ही उस पर आसक्त हो जाते हैं। वे दोनों प्रणय-सूत्र में बँधकर गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। शकुन्तला भविष्य में 'माता' बनने के योग्य होती है। दुष्यन्त अपने नाम से अङ्कित अँगूठी शकुन्तला को देते हैं और कहते हैं कि इस अँगूठी में जितने अक्षर है, उतने ही दिनों में कोई व्यक्ति आकर तुमको मेरे पास ले जायेगा। परन्तु दुष्यन्त विषयक चिन्तन में निमग्न होने के कारण शकुन्तला, अतिथि रूप में उपस्थित दुर्वासा ऋषि को जान न सकी। इस पर क्रुद्ध दुर्वासा ने शकुन्तला को अभिशाप दिया—तू जिसका चिन्तन कर रही है, वह तुम्हें भूल जायेगा। शकुन्तला की दोनों सखियों अनसूया एवं प्रियवंदा के अधिक अनुनय करने पर दुर्वासा ने कहा— दुष्यन्त द्वारा प्रदत्त अँगूठी दिखाने पर वह उसे पहचान लेगा और इस तरह मेरा अभिशाप दूर होगा।

जब शकुन्तला को काश्यप ऋषि गर्भवती जानते हैं तो वे उसे दुष्यन्त के पास भेजते हैं। उस समय दुष्यन्त शकुन्तला को पहचानने से इनकार करता है। इस पर शकुन्तला अधीर हो उठती है। क्योंकि मार्ग में आते समय सोमतीर्थ के जल में शकुन्तला की अंगुली से दुष्यन्त की अँगूठी गिर चुकी है अतः पहचान के लिए उसके पास कुछ नहीं रहता। दुष्यन्त द्वारा अपमानित हुई शकुन्तला को उसकी माता मेनका उठा ले जाती है। जब धीवरों के माध्यम से खोई अँगूठी राजा दुष्यन्त को मिलती है तो उस पर अंकित अपना नाम देखकर राजा को सारी घटनायें याद आ जाती हैं और वह अत्यन्त विह्वल हो जाता है। जब इन्द्र की सहायता करते दुष्यन्त लौटते हैं तो मार्ग में अपनी पत्नी शकुन्तला एवं पुत्र दोनों से उनका समागम होता है।

कालिदास की इन प्रसिद्ध ७ रचनाओं के अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थ हैं जो कालिदास कृत नहीं हैं जैसे—(१) कालिस्रोत, (२) गङ्गाष्टक, (३) ज्योतिर्विदाभरण, (४) राक्षस काव्य, (५) श्रुतबोध। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के नाम से प्रभावित होकर कुछ अन्य कवियों ने भी अपना नाम 'कालिदास' रख लिया हो। राजशेखर (१० वी शती) ने ३ कालिदासों का संकेत किया है[१]।

(च) महाभारत में शकुन्तला की कथा

एक बार राजा दुष्यन्त शिकार करते हुए कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचते हैं। वह अपनी सेना को आश्रम के बाहर रोककर अकेले ही ऋषि के दर्शनार्थ जाते हैं। उस समय ऋषि फल लाने

१. एको न जीयते.........................कालिदासत्रयी किमु॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के लिए वन में गये थे। राजा का स्वागत ऋषि की धर्म पुत्री शकुन्तला ने किया। राजा उसे देखकर आसक्त हो जाते हैं। राजा के द्वारा जन्म-विवरण पूछने पर वह अपने को मेनका तथा विश्वामित्र से उत्पन्न हुआ बताती है। क्षत्रिय कन्या ज्ञात हो जाने पर राजा उससे विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। शकुन्तला ने इस शर्त के साथ विवाह को स्वीकार किया कि मेरा पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। राजा के मान लेने पर दोनों का गान्धर्व विवाह होता है।

कुछ समय बाद वह उसे बुलाने का वचन देकर अपनी राजधानी लौटता है। मार्ग में जब राजा को भय होता है कि बिना ऋषि की अनुमति लिए मैंने शकुन्तला से गान्धर्व विवाह किया अत: ऋषि क्रुद्ध होकर मुझे अभिशाप देंगे, तब वह शकुन्तला को लाने के लिए सेना नहीं भेजता।

जब ऋषि (कण्व) वापस आये, तो अपने तपोबल से सारी घटना जानकर वे इस विवाह के लिए स्वीकृति देते हैं। और शकुन्तला को आशीर्वचन कहते हैं कि तेरा पुत्र महात्मा, बलशाली एवं सम्राट होगा। तदनन्तर शकुन्तला को पुत्र उत्पन्न होता है और वह छः वर्ष की आयु में ही 'महाबली' बन जाता है। ऋषि उसका नाम 'सर्वदमन' रखते हैं। जब ऋषि शकुन्तला को तपस्वियों के साथ राजा के पास भेजते हैं तो वह स्मरण शक्तिविहीन होकर यह कहता है कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता। यह पुत्र मेरा नहीं है। शकुन्तला सत्य और धर्म का आश्रय लेकर राजा को समझाने की चेष्टा करती है, परन्तु कुछ नहीं सुनता। जब शकुन्तला निराश होकर वापस जाने लगती है तो उसी समय आकाशवाणी होती है कि "शकुन्तला का कथन सत्य है वह तुम्हारी भार्या है एवं यह बालक तुम्हारा पुत्र है।" तू इसकी रक्षा कर। इसका नाम 'भरत' होगा।

बाद में पुरोहितों एवं मंत्रियों के परामर्श से वह शकुन्तला और सर्वदमन को स्वीकार कर लेता है। राजा ने कहा कि मुझे पूर्व का सारा वृत्तान्त स्मरण था, परन्तु मैंने शकुन्तला की शुद्धि के लिए ऐसा किया था, अन्यथा प्रजा जन को शकुन्तला के आचरण पर सन्देह होता।

(छ) पद्मपुराण में शकुन्तला कथा

पुरुवंशी राजा दुष्यन्त का मृगया के लिए प्रस्थान करना, आश्रम में मृग को मारने के लिए उद्यत होना, कण्व के शिष्यों का उसे रोकना, राजा का आखेट व्यापार से विराम, जल पिपासा के हेतु राजा का आश्रम में प्रवेश, शकुन्तला एवं उसकी सखियों का आश्रम वृक्षों को सींचना, राजा के पूछने पर प्रियंवदा द्वारा शकुन्तला की उत्पत्ति बताना, राजा द्वारा गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव और शकुन्तला का इस प्रस्ताव को इस शर्त के साथ मानना कि मेरा पुत्र राजा बनेगा। राजा द्वारा शकुन्तला को स्वीकृति देकर अपनी स्मृति चिह्न अँगूठी भेंट करना। कण्व ऋषि वापस आने पर तपोबल से सारी घटना जानकर विवाह की अनुमति देते हैं। चिन्तामग्न शकुन्तला को दुर्वासा का यह शाप मिलना कि दुष्यन्त तुम्हें भूल जायेगा। बाद में जब शकुन्तला को ऋषि शार्ङ्गरव, शारद्वत, गौतमी प्रियंवदा के साथ दुष्यन्त के पास भेजते हैं तो रास्ते में नदी पार करते समय दुष्यन्त द्वारा दी गयी अँगूठी प्रियंवदा के हाथ से फिसलकर नदी में गिर जाती है। शकुन्तला जब दुष्यन्त के पास जाती है तो राजा दुर्वासा के शाप के कारण उसे नहीं पहचान पाता। शकुन्तला इस पर करुण क्रन्दन करती है। धीवर को अँगूठी मिलना, पुलिस वालों का उसे पीटना और राजा के पास लाना, राजा को अँगूठी मिलना, दुर्वासा शाप की समाप्ति होने पर राजा का अति दु:खित होना, समुद्र में नौका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टूटने पर धनवृद्धि वैश्य की मृत्यु होना और उसकी सम्पत्ति उसकी धर्मपत्नी को सौंपना, राजा को यह शोक होना कि सन्तान न होने से मेरी भी यही दशा होगी। इन्द्र के सेनापति मातलि के साथ जब राजा राक्षस वध के लिए जाते हैं, तो स्वर्ग से लौटते समय मारीच के आश्रम में राजा का पुत्र दर्शन करना और मारीच का यह बताना कि यह तुम्हारा ही पुत्र है, इसका नाम 'सर्वदमन' है, आगे चलकर इसका नाम भरत होगा। दुर्वासा के अभिशाप के कारण तुम शकुन्तला को नहीं पहचान पाये थे। पुनः दुष्यन्त का शकुन्तला के साथ अपनी राजधानी लौटना।

(ज) मूलकथा में परिवर्तन

महाकवि कालिदास ने अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर महाभारत की नीरस कथावस्तु को सरस, रोचक और नाटकोयोगी बनाने के लिए उसमें अधिक परिवर्तन किये, जो इस प्रकार हैं—

(१) कथा का आरम्भ—(क) महाभारत में सेनापति के साथ राजा आश्रम में जाता है, परन्तु कालिदास के नाटक में राजा दुष्यन्त अकेला आश्रम में प्रवेश करता है, (ख) आश्रम मृग का पीछा करना , तपस्वियों के रोके जाने पर राजा का रुकना, तपस्वियों का आशीर्वाद देना कि तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा और आश्रम में जाने के लिए निमन्त्रित करना। महाभारत की मूलकथा में ऐसा कुछ नहीं है। (ग) राजा द्वारा शकुन्तला, उसकी सखियों अनसूया, प्रियंवदा को वृक्ष सेचन करते समय देखना, वृक्ष की ओट में छिप कर उनकी बातें सुनना, शकुन्तला पर आसक्त होना, भ्रमर का शकुन्तला को तंग करना, शकुन्तला द्वारा रक्षा की याचना करना, राजा का प्रकट होकर उसे बचाना। मूल कथा में राजा सीधे आश्रम में जाता है, उसकी आवाज सुनकर शकुन्तला का बाहर आना और राजा का स्वागत करना। (घ) कण्व ऋषि सोमतीर्थ की यात्रा करने गये हैं, यात्रा का उद्देश्य है शकुन्तला का दुर्भाग्य शान्त करना। मूल कथा में ऋषि फल लाने के लिए वन में गये हैं। मूल कथा में यह आपत्तिजनक अंश है। इतने अल्प समय में शकुन्तला का राजा से विवाह, गर्भधान आदि सभी कार्य सम्भव नहीं हैं। परन्तु सोमतीर्थ की यात्रा के दीर्घ समय में राजा के सभी कार्य स्वाभाविक लगते हैं।

(ङ) पीछे छूटी सेना का आगमन और आश्रम में विघ्न करना। राजा का उसे रोकने के लिए जाना। मूल कथा में सेना का आश्रम के बाहर अधिक समय तक रहना अनुचित है। इस प्रकार महाकवि के 'शाकुन्तल' नाटक का प्रारम्भ अत्यन्त स्वाभाविक है।

(२) गान्धर्व-विवाह—इसमें कालिदास ने कई परिवर्तन किये। (क) शकुन्तला के जन्म सम्बन्धी बातों का उत्तर अनसूया एवं प्रियंवदा देती हैं। मूल कथा में शकुन्तला स्वयं इन बातों का उत्तर देती है। इससे उसका निर्लज्ज चरित्र झलकता है। कालिदास की वाणी में वह 'मुग्धा तपस्वी कन्या' है, वह लज्जाशील, मितभाषी तथा मनोहर है। (ख) प्रथम अङ्क में दोनों के प्रेम का वर्णन है, तृतीय अङ्क में स्वाभाविक गान्धर्व विवाह। मूलकथा में राजा तुरन्त विवाह का प्रस्ताव करता है और ऋषि के आने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहता। कालिदास ने शकुन्तला के विवाह का निर्णय ऋषि पर छोड़ा है। शकुन्तला की बिगड़ी अवस्था दिखाकर गान्धर्व विवाह कराया है। (ग) विवाह में महाकवि ने कोई शर्त नहीं रक्खी। परन्तु मूल कथा में पुत्र को 'युवराज' पद देने की शर्त है। किसी शर्त पर विवाह होना कथा की सुन्दरता को नष्ट करती

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। अतः महाकवि अपने नाटक में इसे हटा देता है। (घ) राजा जाने से पूर्व स्मृत्ति चिह्न के रूप में अपनी अँगूठी देता है। मूल कथा में अँगूठी का प्रसंग नहीं है। इस प्रसंग में राजा का शकुन्तला को अँगूठी देना महाकवि की नवीन देन है।

(३) द्वितीय अङ्क—पूरा द्वितीय अङ्क कालिदास की मौलिक रचना है। विदूषक को शकुन्तला से प्रेम की सूचना देना, तपस्वियों की प्रार्थना कि आश्रम में रुक कर यज्ञ की रक्षा करें, राजा का आश्रम में रुकना, विदूषक का शकुन्तला को बिना देखे प्रस्थान करना।

(४) चतुर्थ अङ्क—इस अङ्क में ये मुख्य परिवर्तन हैं। (क) दुर्वासा का आगमन और शकुन्तला को शाप देना। इससे राजा का उदात्त चरित्र धूमिल नहीं हो पाता। मूल कथा में अभिशाप की कथा नहीं है। कवि की अभिशाप विषयक कथावस्तु अत्यन्त स्वाभाविक है। (ख) कण्व ऋषि के आने पर यह ज्ञात होते ही कि शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व-विवाह हुआ है और वह गर्भिणी है, तो कण्व उसे अविलम्ब राजा के पास भेजते हैं। परन्तु मूल कथा में जब पुत्र छह वर्ष का होता है तब उसे दुष्यन्त के पास भेजते हैं और अधिक समय कन्या का पिता के घर में रहना अनुचित है। इसमें यह दोष है कि पुत्र पैदा होने के छह वर्ष तक ऋषि को ध्यान नहीं आया कि कन्या का पिता के घर रुकने में लोकोपवाद होगा। (ग) शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला को बुलाने के लिए किसी को नहीं भेजता। मूलकथा में दुष्यन्त, ऋषि के भय से शकुन्तला को बुलाने के लिए किसी को नहीं भेजता। (घ) शकुन्तला के साथ शार्ङ्गरव, शारद्वत एवं गौतमी जाते हैं, शकुन्तला को अस्वीकार किए जाने की सारी घटना उनके सामने होती है। मूलकथा में गौतमी नहीं रहती, केवल शिष्य शकुन्तला के साथ रहता है और पहुँचाकर तुरन्त लौट पड़ता है जिससे राजा एवं शकुन्तला की बात उसके समक्ष नहीं प्रस्तुत होती।

(५) पञ्चम अङ्क—इसमें मुख्य परिवर्तन निम्न है—(क) राजा दुष्यन्त दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को पहचान नहीं पाता। अतएव हंसपदिका के उलाहने को ठीक नहीं मानता। कालिदास ने यहाँ राजा का बहुत उदात्त चरित्र अंकित किया है मूलकथा में राजा विवाह की सब बात स्मरण होने पर भी शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता। आकाशवाणी होने पर ही वह शकुन्तला को स्वीकार करता है। मूलकथा में राजा का चरित्र बहुत दूषित है। (ख) शार्ङ्गरव का राजा को दोषी बताना, शकुन्तला का अपने को सत्य बताना, अँगूठी दिखाने का प्रसंग, अँगूठी का नदी में गिरना, शार्ङ्गरव का शकुन्तला को डाँटना, पुरोहित का शकुन्तला को अपने घर रखने का प्रस्ताव, रोती शकुन्तला को मेनका द्वारा आकाश में उड़ा ले जाना—ये समस्त बातें मूल कथा में नहीं हैं।

(६) षष्ठ एवं सप्तम अङ्क—ये दोनों अङ्क कालिदास की मौलिक रचना हैं। इसका कुछ भी अंश मूलकथा में नहीं है। दोनों अङ्कों की मुख्य घटनाएँ इस प्रकार हैं—धीवर को अँगूठी मिलना, धीवर से राजा को अँगूठी प्राप्त होना, अँगूठी मिलने पर शाप-निवृत्ति, राजा का दुःखी होना, शकुन्तला के चित्र से मनोविनोद, नौका टूटने से धनमित्र व्यापारी की मृत्यु का समाचार, सन्तानहीन राजा का चिन्ताग्रस्त होना, मातलि के आगमन पर राजा का इन्द्रलोक जाकर राक्षस वध करना, इन्द्रलोक से लौटने पर राजा को पुत्र-दर्शन और शकुन्तला से मिलन, मारीच ऋषि द्वारा विदित होना कि शकुन्तला-परित्याग का कारण था दुर्वासा का शाप।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(झ) शाकुन्तल की कथावस्तु का स्रोत

शकुन्तला की कथा महाभारत के आदिपर्व (अध्याय ६७ से ७४ तक) के लगभग तीन सौ श्लोकों में शाकुन्तलोपाख्यान में वर्णित है।

पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड में भी शाकुन्तलोपाख्यान आया है। इसकी कथा भाषा आदि की दृष्टि से शाकुन्तल के कथानक से अधिक सादृश्य रखती है। इसलिए डॉ० विन्टरनिट्स यह मानते हैं कि कालिदास ने अपनी कथावस्तु पद्मपुराण से ली है। क्योंकि शाकुन्तल में कई शब्दों का प्रयोग पद्मपुराण का ही है आकार देखने से वह 'रूपान्तर मात्र' प्रतीत होता है।

महाभारत में शाकुन्तल के कुछ पात्र वर्णित नहीं है जबकि वे पद्मपुराण में विद्यमान हैं। अतः शाकुन्तल की कथा पर आधारित होने से एवं कालिदास की शैली से प्रभावित होने के कारण अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का आधार पद्मपुराण में वर्णित शकुन्तला का आख्यान नहीं माना जा सकता। इस नाटक का मूल स्रोत महाभारत में वर्णित 'शाकुन्तलोपाख्यान' ही है।

(ञ) कालिदास की नाट्य-कला

कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते हैं, उनके मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, और अभिज्ञानशाकुन्तल—इन ३ नाटकों में से शाकुन्तल में ही उनकी नाटकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम निरूपण है—जैसा कि कहा है—'कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञान शाकुन्तलम्'। कालिदास के नाटकों में निम्न विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—घटना-संयोजन में सौष्ठव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णनों में स्वाभाविकता, रचना-कौशल, वर्णनों में अन्य घटनाओं की संकेतात्मता, चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता, पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग, कविता और रस-परिपाक। कालिदास के नाटक अभिनय के लिए पूर्णतः उपयुक्त हैं जबकि संस्कृत के अधिकांश नाटक ऐसे नहीं हैं।

(१) घटनाओं की सुसम्बद्धता—कालिदास ने अपने नाटकों में घटनाओं का संयोजन इस प्रकार किया है कि उनमें पूर्ण स्वाभाविकता आ गई है। नाटकों में प्रत्येक घटना सार्थक है जिससे कथानक के विकास में उसका पूर्ण योगदान रहता है। नाटक की गति स्वाभाविक एवं अविच्छिन्न है। जैसे भ्रमर-पीड़ित शकुन्तला की रक्षा के लिए दुष्यन्त का प्रवेश, दुष्यन्त को देखकर शकुन्तला का उस पर आसक्त होना, क्षत्रिय कन्या समझ कर राजा का उससे विवाह का निश्चय करना, गान्धर्व विवाह, दुर्वासा के शाप से शकुन्तला का तिरस्कार, मारीच ऋषि के आश्रम में शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलन।

(२) घटनाओं की सार्थकता—शाकुन्तल नाटक की सभी घटनाएँ सार्थक एवं सोद्देश्य हैं। जैसे प्रथम अङ्क में तपस्वियों का आर्शीवाद देना और अङ्क ७ में चक्रवर्ती पुत्र मिलना। ऋषि के सोमतीर्थ जाने से शकुन्तला की विपत्ति दूर होना और पति मिलन होना। दुर्वासा के शाप से शकुन्तला को भूलना, अँगूठी खोने से अङ्क ५ में पहचान में कठिनाई होना आदि।

(३) वर्णनों में स्वाभाविकता—कालिदास के प्रत्येक वर्णन स्वाभाविक हैं। वे आँखों के सामने मूर्तरूप में चित्रित किये जाते हैं। जैसे अङ्क १ में मृग दौड़ने का वर्णन, रथ का तेजी से चलना, मृगया के गुणों का वर्णन (२/५), अङ्क ४ में शकुन्तला का लता, मृग शावक,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पिता काश्यप तथा सखियों से विदा लेना, अङ्क ५ में शकुन्तला का तिरस्कृत होना एवं राजा दुष्यन्त का शोकाकुल होना आदि।

(४) वर्णनों की कुशलता—यह महाकवि की कुशलता है कि उन्होंने महाभारत के नीरस और साधारण कथानक को लेकर उसे सरस और मनोरम रूप दिया है।

(५) घटनाओं में ध्वन्यात्मकता—कालिदास की घटनाओं में 'व्यंजना' का मुख्य स्थान है। वर्णन एवं घटनाएँ भावी घटनाओं का संकेत करती हैं। जैसे सूत्रधार का यह कथन—'दिवसाः परिणाम रमणीयाः' (१/३), इस बात का सूचक है कि नाटक का अन्त सुखदायी होगा। नटी का यह कथन—'ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः' (१/४), इस बात का सूचक है कि भ्रमर सदृश राजा शकुन्तला से प्रेम करेगा। प्रभात वर्णन में 'यात्येकतोऽस्ति शिखरं पतिरोषधीनां' (४/२), संकेत करता है कि सुख-दुःख का क्रम अनिवार्य है। अतः शकुन्तला पर विपत्ति आना और दूर हो जाना है।

(६) चरित्र चित्रण में वैयक्तिकता—कालिदास के पात्रों में विशिष्ट व्यक्तित्व है। शाकुन्तल के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि होते हैं। पात्रों का सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक चित्रण अच्छे प्रकार से है। राजा दुष्यन्त धीरोदात्त प्रकृति का नायक है। वह सदैव अपने कर्तव्य का पालन करता है। शाप के कारण ही वह शकुन्तला का त्याग करता है और उसकी स्मृति आने पर उसे स्वीकार करता है। कण्व सज्जन है। मारीच वीतराग हैं, दुर्वासा अत्यन्त क्रोधी हैं। शकुन्तला लज्जाशील, मितभाषी, सरलहृदया है। अनसूया शान्त, गम्भीर, विवेकशील परन्तु प्रियंवदा हास्यप्रिय एवं वाक्चतुर है।

(७) पात्रों के अनुकूल भाषा प्रयोग—कालिदास का प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। कण्व शकुन्तला से कहते हैं—'सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता'। विदूषक सदैव खाने की बात करता है—किं मोदकखादिकायाम्—(अभि० २/१९) वह डरपोक है, शकुन्तला दर्शन का कौतूहल उसे अवश्य है। परन्तु राक्षसों की बात सुनकर वह भयभीत हो जाता है— 'इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन विन्दुरपि नावशेषितः' (अङ्क २)।

(८) शृंगार रस का चित्रण—शाकुन्तल में शृंगार रस का प्राधान्य है। इसमें संयोग शृंगार अङ्गी रस एवं विप्रलम्भ गौण रस है। प्रथमतः ३ अङ्कों में शृंगार का पूर्वराग प्रधानतः वर्णित है। वल्कलधारिणी शकुन्तला के नैसर्गिक सौन्दर्य पर मुग्ध राजा कहता है—''सरसिज मनुविद्धं शैवलेनापिरम्यं किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥'' (शाकु०, १/२०) गान्धर्वविवाह के बाद राजा शकुन्तला का पैर दबाने को प्रस्तुत होता है—

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवाताम्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथा सुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥

शकुन्तला के परित्याग की घटना का स्मरण करके दुष्यन्त अत्यन्त गम्भीर हो जाता है और कहता है कि मेरे द्वारा परित्याग किये जाने पर वह अपने सम्बन्धियों के पीछे जाने लगी और शार्ङ्गरव के द्वारा डाँटे जाने पर रुक गई और उस अवस्था में उसने अश्रुपूर्ण दृष्टि से मुझ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्रूर को देखा था। वह घटना राजा को अत्यन्त दुःखद है—'इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता।' (शा० ६/९)

(९) अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति का समन्वय—जो घटना मानव मन में घटित होती है, वही बाह्य प्रकृति में भी होती है। अतः अङ्क ४ में पति के वियोग में शकुन्तला की अवस्था दयनीय है, इधर चन्द्रमा के वियोग में कुमुदिनी भी शोकाकुल है—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे,
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय शोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्र सुदुःसहानि ॥ (शाकु०, ४/३)

शकुन्तला की विदाई पर आश्रम के व्यक्ति खिन्न हैं, वृक्ष, वनदेवता भी रेशमी वस्त्र, अलक्तक तथा आभूषण देकर शकुन्तला के प्रति अपना घनिष्ट प्रेम प्रकट करते हैं—'क्षौमं केनचिदिन्दु पाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं।' (शा०, ४/४)

(१०) कालिदास का प्रकृति-प्रेम—कालिदास का प्रकृति के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध है। वे प्रकृति को सजीव और मानवीय भावों से ओत-प्रोत मानते हैं। उनकी प्रकृति दुःख-सुख का अनुभव करके मनुष्य के साथ दुःखी या सुखी होती है। शकुन्तला वृक्षों को अपना भाई तथा लताओं को अपनी बहिन समझकर उनकी सेवा में संलग्न होती है। वह कहती है—'अस्ति मे सोदर स्नेहोऽप्येतेषु' (शा०, १/४८) राजा दुष्यन्त मृगों की आँखों में शकुन्तला की आँखों की झाँकी देखता है, जिससे वह उन पर बाण नहीं चलाता—

'न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो, धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।' (शा० २/३)

शकुन्तला के वियोग में मृगियों ने घास खाना छोड़ा है, मोरों ने नाचना बन्द किया है एवं लताएँ पीले पत्तों रूपी आँसू गिरा रही है।

उद्गलितदर्भक वलाः मृग्यः परित्यक्तनर्तनामयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा, मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥ (शा०, ४/१२)

कण्व के शिष्य द्वारा प्रातः काल का वर्णन निम्न प्रकार है—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां,
आविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य प्रगपाद व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥

डॉ० मैकडानल कालिदास की नाटकीय शैली की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"This is the act (iv) which contains the most obvious beauties for here the poet displays to the full the richness of his fancy, his abundant sympathy with nature and profound knowledge of the human heart."

प्रो० जी० सी झाला का अभिमत है कि शाकुन्तल के कथानक में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति के बिना तो शकुन्तला का अस्तित्व ही असम्भव होगा। "Nature in the Shankuntala is not more background, it has enterd into the warp & wood of the drama...... for without nature Shakuntala would be impossible."

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(११) सौन्दर्य एवं प्रेम का निरूपण—कालिदास की दृष्टि में सौन्दर्य बाह्य स्थानों पर निर्भर नहीं होता। बल्कि सुन्दर वस्तुएँ सभी अवस्थाओं में सुन्दर होती हैं—

अहो, सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्व माकृतिविशेषाणाम् (शा० ७/७२)

शकुन्तला की नैसर्गिक सुन्दरता वल्कल-धारण करने पर भी है—

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। (शा० १/२०)

जहाँ सुन्दर आकृति है, वही सभी उत्तम गुण रहते हैं। अत: अनसूया कहती है—कि दुष्यन्त शकुन्तला को भूल नहीं सकते।

न तादृशा आकृति विशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति (शा० ४/१४)

कालिदास के अनुसार स्त्री केवल उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि वह गृहिणी, सचिव और सखी भी है—

'गृहिणी सचिव: मित्र: प्रिय:
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' (रघु० ८/६७)

(१२) अलौकिक तत्त्वों का निरूपण—शाकुन्तल में कथानक से सम्बन्धित अलौकिक तत्त्व ये हैं—

१. अङ्क ४ में कण्व को आकाशवाणी से शकुन्तला के गान्धर्व विवाह और उसके गर्भवती होने का ज्ञान।
२. अङ्क ४ में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वृक्ष तथा वन देवता भी शकुन्तला से सहानभूति रखते हुए अलक्तक तथा आभूषण देकर उसके प्रति अपना घनिष्ट प्रेम सूचित करते हैं। मानव एवं प्रकृति का यह भावात्मक प्रगाढ़ सम्बन्ध विश्व साहित्य में दुर्लभ है।

श्री द्विजेन्द्र लाल राम के शब्दों में—''घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना के कोमलत्व में, मानव चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता एवं लालित्य में अभिज्ञानशाकुन्तल श्रेष्ठ है।''

(त) शाकुन्तल नाटक का चतुर्थ अङ्क

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में विद्वानों ने चतुर्थ अङ्क को सर्वश्रेष्ठ माना है। क्योंकि यही सम्पूर्ण नाटक का केन्द्र बिन्दु है। कालिदास की सभी रचनाओं में 'अभिज्ञान' श्रेष्ठ है—''कालिदासस्य सर्वस्व अभिज्ञानशाकुन्तलम्। तयाऽपि चतुर्थोऽङ्को यत्र याति शकुन्तला॥''

सम्पूर्ण काव्य रचना में नाटक श्रेष्ठ[1] है, क्योंकि यह दृश्य एवं श्रव्य दोनों होता है। इसमें नेत्र एवं श्रोत्र दोनों आनन्दित एवं आप्लावित होते हैं। इसके अतिरिक्त नाटक में विभिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों का एक साथ ही मनोरञ्जन होता है,अन्य काव्य अंगों में ऐसा नहीं है अत: यह संस्कृत साहित्य में अधिक रमणीय होता है[2]।

नाटकों में भी शाकुन्तल नाटक और उसमें भी उसका चतुर्थ अङ्क श्रेष्ठ है, क्योंकि शकुन्तला के पति गृह गमन के अवसर पर मानव तथा प्रकृति सभी सहानुभूति से भर जाते हैं।

---

१. ''काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला। तथापि चतुर्थोऽङ्क, तत्र श्लोक चतुष्टयम्॥''
२. नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वनौकस होने पर भी काश्यप का हृदय शकुन्तला को विदा करते समय करुणा से आप्लावित हो जाता है। उनका नेत्र आँसुओं से पूर्ण होता है एवं कण्ठ रुँध जाता है। वे विकल दिखाई पड़ते हैं[१]।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से, रस-परिपाक की दृष्टि से, कारुणिक भावों तथा सुन्दर उपदेशामृत की दृष्टि से अभिज्ञान-शाकुन्तल के सम्पूर्ण भाग में चतुर्थ अङ्क सर्वाधिक प्रमुख है। अतएव विद्वानों ने 'तयाऽपि चतुर्थोऽङ्कः' कहकर अनेकशः उसकी प्रशंसा की है।

(थ) चतुर्थ अङ्क की विशेषताएँ

(१) स्नेह, सद्भावना एवं आत्मीयता की अभिव्यक्ति—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार सम्पूर्ण चतुर्थ अङ्क स्नेह, सद्भावना और आत्मीयता की तलस्पर्शी अनुभूति कराता है। जब शकुन्तला पतिगृह को भेजी जाती है तो वह दूसरे की हो गई है। उस पर चारों ओर से मांगलिक आशीर्वादों की वर्षा होती है। उससे केवल आश्रमवासी जनों की उदार सहृदयता पर आलोक नहीं पड़ता, अपितु शकुन्तला के सरल, निस्पृह एवं निष्कपट आचरण की परोक्ष अनुभूति भी विद्यमान होती है।

तपस्वियों के आशीर्वाद में सच्चाई, तन्मयता एवं आनन्द विह्वलता का भाव है "जाते, भर्तृबहुमान सूचकं महादेवी शब्दं लभस्व। वत्से। वीर प्रसविनी भव। वत्से! भतुर्बहुमता भव। सखि। सुखमञ्जनं ते भवतु।"

शाकुन्तल के समस्त श्लोकों में जिन श्लोकों ने महाकवि को अमर बनाया है, वे चतुर्थअङ्क के ४ श्लोक हैं। ये सभी ४ श्लोक अपने भाव, कल्पना-वैभव, कवित्व शक्ति और अर्थोदात्तता के कारण प्रसिद्ध हैं।

प्रथम श्लोक—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भितवाष्प वृत्ति कलुषश्चिन्ता जडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम ताव दीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः,
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेष दुःखैर्नवैः ॥ —४/६

विशेषता—वात्सल्यपूर्ण हृदय से युक्त एक वनवासी ऋषि, धर्मपिता को अपनी कन्या की विदाई के अवसर पर होने वाली जिस अनुभूति का चित्रण महाकवि कालिदास ने अपनी अमर लेखनी से किया है वह काव्य के क्षेत्र में दुर्लभ है। इसे श्लोक से पिता का अपनी पुत्री के प्रति प्रेम सूचित होता है।

यहाँ पिता का तापस जीवन मर्मांतक व्यथा से अंकित हो गया है और उनका विराग भाव प्रायः समाप्त हो चुका है। वे सांसारिक गृहस्थ जैसे दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा उदाहरण सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अप्रतिम एवं दुर्लभ है।

द्वितीय श्लोक—

शुश्रूषस्व गुरून कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ —४/१८

---

१. अभि० शा०—४/६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ ऋषि कण्व शकुन्तला को उपदेश देते हैं कि तुम अपने गुरुजनों की सेवा करना, सपत्नियों से सखी भाव रखना, पति से विरक्त होने पर कटु वचन न बोलना, सेवकों पर उदार वृत्ति रखना, ऐश्वर्य का अभिमान न रखना। ऐसी स्त्रियाँ ही गृहस्वामिनी होती हैं, विपरीत आचरण वाली कुल कलङ्किनी।

विशेषता—भारतीय संस्कृति के अनुकूल एक आदर्श पिता अपनी पुत्री की विदा-बेला पर आदर्श उपदेश दे रहा है। आश्रम पालिता, पितृ प्रेम लालिता बेटी को पिता भोग-विलास, शासन सम्बन्धी कूटनीति की शिक्षा न देकर व्यावहारिक शुद्ध शिष्टाचार सिखा रहा है। त्यागमयी वृत्ति सिखाना तपोनिष्ठ महर्षि पिता के लिए सर्वथा शोभनीय है।

तृतीय श्लोक—

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः,
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्य प्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ —४/१७

कण्व ऋषि कहते हैं कि हे दुष्यन्त, हमारा और आपका कुल उत्तम है। आपका और शकुन्तला का प्रेम स्वतः सिद्ध है। आप शकुन्तला को ससम्मान आदर पूर्वक देखना। कन्यापक्ष वाले हम लोगों को इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहिए।

विशेषता—इस श्लोक में कण्व ऋषि अपने सन्देश में दुष्यन्त का ध्यान तपस्वियों की साधना, स्वयं के उच्च कुल, साथ ही शकुन्तला के निर्व्याज प्रेम की ओर भी आकृष्ट करते हैं। कुलीन पिता अपनी पुत्री के सम्मानित जीवन की ही माँग करता है। इससे महर्षि कण्व की विपुल उदारता एवं पिता की पुत्री के प्रति अनुकूल कल्याण की भावना विदित होती है।

चतुर्थ श्लोक—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या ।
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ॥
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः ।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

जो आश्रमवृक्षों को बिना सींचे स्वयं जल नहीं पीती थी, आभूषण प्रिय होने पर भी तुम्हारे (वृक्षों के) स्नेह से जो पत्ती तक नहीं तोड़ती थी, वही शकुन्तला अब अपने पति-गृह को जा रही है, तुम्हें उसे जाने की अनुमति देनी चाहिए।

विशेषता—यहाँ महाकवि ने मानव-हृदय और प्रकृति में सामञ्जस्य स्थापित किया है। उनकी प्रकृति जड़ न होकर मानव जैसी अनुभूतिशालिनी है, मानव-जीवन से उसका तादात्म्य है। यही भाव यहाँ अभिव्यक्त होता है।

कुछ लोगों के अनुसार 'भूत्वा चिराय चतुस्त मही सप्तनी० या अभिजनवतोः भर्तुः श्लाध्ये स्थिा गृहिणी पदे' शाकु० ४/२०,१९ इन दोनों में से कोई एक श्लोक (चौथा) है।

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी,
दौष्यन्तिम प्रतिरथं तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पित कुटुम्ब भरेण सार्धं,
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कण्व ऋषि कहते हैं कि समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी सपत्नी बनाकर, अपने महारथी पुत्र (भरत) को सिंहासन पर बैठाकर और उस पुत्र को अपने कुटुम्ब का भार सौंप कर तुम अपने पति के साथ इस शान्त आश्रम में पुनः प्रवेश करोगी।

चतुर्थ अङ्क की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

(१) भारतीय संस्कृति का समर्थक—कालिदास ने शकुन्तला के माध्यम से पतिव्रता स्त्री को पति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका साधु उपदेश दिया है और पतियों को अपनी पत्नियों का समादर अवश्य करना चाहिए। दुष्यन्त का कण्व आश्रम में सम्मान होता है, क्योंकि अतिथि-सम्मान का भारतीय संस्कृति में प्रमुख स्थान है। दुष्यन्त का गान्धर्व विवाह और शकुन्तला का गर्भ धारण कण्व ने आकाशवाणी से जान लिया है—

'अवेहि तनयां ब्रह्मन् अग्नि गर्भां शमीमिव'

(२) अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति का समन्वय—शाकुन्तल के अङ्क ४ में महाकवि ने बताया है कि पति वियोग में शकुन्तला वैसे ही दुःखी है, जैसे चन्द्रमा के वियोग में कुमुदिनी—

''अन्तर्हितो शशिनि सैव कुमुद्वती मे,
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय शोभा।''

(३) करुणा भाव का मार्मिक उदाहरण—इसमें कण्व (काश्यप) के, शकुन्तला की विदाई के विचार से द्रवित एवं करुणा भाव को प्राप्त हुए हृदय की मार्मिक व्यथा है। इसमें करुणा भाव का सर्वोत्तम प्रवाह होने से यह पद्य चारों पद्यों में सर्वोत्तम है। इसमें बाह्य प्रकृति से मानव की अन्तः प्रकृति का गूढ़ सम्बन्ध व्यक्त किया गया है—

''पातुं न प्रथमं व्यवस्यति······सर्वैरनुज्ञायताम्''

शकुन्तला यद्यपि अलंकारप्रिय है, तथापि फूल पत्तों से उसे इतना सहज लगाव एवं स्नेह है कि वह उनसे एक पत्ता भी तोड़ना नहीं चाहती।

(४) पुत्री को पिता का उपदेश—कण्व शकुन्तला से कहते हैं, पुत्री, बड़ों की सेवा करना, पति के अनुकूल रहना, सदैव उन पर मधुर वाणी से अमृत बरसाना, भूलकर भी पति को कटु वचन न कहना, अपनी सौतों के साथ सगी बहिन का व्यवहार करना। बेटी, भूलकर भी ऐश्वर्य का अभिमान न करना।

ऋषि कण्व की यह सीख सुनकर रोती हुई शकुन्तला कण्व से लिपट जाती है और विलाप करती है—

कथमिदानीं तातस्यांकात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव जीवितं धारयिष्यामि॥ —(शा० पंक्ति ११५)

(५) महर्षि कण्व का उत्तर एवं आशीर्वाद—महर्षि कण्व गद्गद कण्ठ से इन प्रश्नों का उत्तर इस आशीर्वाद के रूप में देते हैं—

भूत्वा चिराय चतुरन्त महीसपत्नी.... शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥

बहुत काल तक समुद्र वलय वेष्टित पृथ्वी की सपत्नी बनकर, जिसका कोई प्रतिस्पर्द्धी नहीं, ऐसे अपने लड़के को सिंहासन पर बैठाकर और उस पर अपने कुटुम्ब का भार सौंपकर तू अपने पति के साथ इस आश्रम में पुनः आओगी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कण्व ऋषि कहते हैं कि कन्या पराया धन है अतः उसको पतिगृह भेज कर आज मेरी अन्तरात्मा वैसे ही स्वस्थ, शान्त हो गई है जैसे कोई व्यक्ति किसी की धरोहर लौटाकर हल्का चित्त वाला होता है। यह भारतीय संस्कृति के अनुकूल एक सद्गृहस्थ की भावना का प्रतिफलन है—

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामाद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामः प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ (शाकु० ४/२२)

(६) अत्यंत कारुणिक वातावरण—चतुर्थ अङ्क में बड़ा ही करुण वातावरण है। काश्यप उसे (शकुन्तला को) गृहस्थ जीवन का उपदेश देते हैं। गौतमी के पुनः याद दिलाने पर कि विदाई का समय हो रहा है, शकुन्तला अन्तिम बार पिता कण्व के गले से लगकर रहती है—

तपश्चरण पीडितं तातशरीरम्। तन्माऽतिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व ॥

शकुन्तला का पितृ-स्नेह और काश्यप का वात्सल्य दोनों के संगम से वातावरण अत्यन्त कारुणिक हो जाता है। अन्त में जब शकुन्तला आश्रम से बाहर जाती है तो आश्रम का मृग उसके पैर थाम लेता है, वह पीछे मुड़कर देखती है। उसका रोते हुए अपनी प्रिय लताओं से भेंटना बड़ा कारुणिक है। वह उन्हें सहलाती है एवं उनसे करुण वार्ता करती है।

(७) प्रकृति का पात्र के रूप में चित्रण—चतुर्थ अङ्क में प्रकृति स्वयं पात्र के रूप में चित्रित है। शकुन्तला के श्रृंगार के लिए आभूषण देती है और उसकी विदाई से दुःखी है। शकुन्तला को उससे अगाध प्रेम था। उसकी विदाई पर वृक्ष रो पड़े, वन देवताओं ने आशीर्वाद दिया, हरिणियों ने दर्भ खाना एवं मोरों ने नाचना बन्द कर दिया। वनस्पतियाँ आँसू बहा रही हैं। गर्भिणी मृग वधू एवं उसका पुत्र शकुन्तला का आँचल थाम लेते हैं। (शा० ४/५)

''उद्गलित दर्भ कवला ……मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥'' (वही-४/१२)

(८) विरोधाभास-समन्वय एवं सामञ्जस्य का एकीकरण—देवदत्त शास्त्री के अनुसार मिलन एवं वियोग की कथा—इन दो ध्रुवों के बीच चौथा अङ्क विरोधाभास की सृष्टि में समन्वय, सामञ्जस्य प्रस्तुत करता है। गान्धर्व विवाह करके दुष्यन्त चला जाता है। शकुन्तला उसकी याद में खो जाती है। उसकी सखियाँ इस चिन्ता में घुलती हैं कि दुष्यन्त ने कह कर भी अभी तक शकुन्तला को बुलाया नहीं। कण्व की अनुपस्थिति में शकुन्तला ने मुक्त प्रेम व्यापार या गान्धर्व विवाह किया। ऋषि के आ जाने पर वह लज्जित एवं कम्पित होती है। कण्व को आश्रम-मर्यादा नष्ट होने की चिन्ता नहीं, बल्कि सुपात्र वर मिलने का हर्ष है। उनकी दृष्टि में गान्धर्व विवाह उचित रहा है।

(९) गूढ संकेतों का बाहुल्य—इस चौथे अङ्क में अनेक गूढ संकेत हैं। बेचारी शकुन्तला दुर्वासा के शाप वाली घटना से अपरिचित है। 'सखि' यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञान मन्थरो……नाम धेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय।

वह सखियों के संकेत को सुनकर अनजान में ही काँप उठती है।

''हला, पश्य नलिनी पत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यत्यातुरा चक्रवाक्या रटति दुष्करमहं करोमीति।'' —(अङ्क ४, पंक्ति १०२)

(१०) कवि के कौशल का परिचय—श्री देवदत्त शास्त्री के अनुसार चौथे अङ्क में शकुन्तला के चरित्र को उभारने, उसे उदात्त बनाने में कवि कालिदास ने कौशल का परिचय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिया है। तपोवन के पशु-पक्षियों से शकुन्तला का आत्मीय सम्बन्ध जोड़कर कवि ने उसे साक्षात् निसर्ग कन्या बनाने का सफल प्रयास किया है। प्राकृतिक वातावरण में पली शकुन्तला के जीवन, कर्म और स्वभाव में एक चमत्कार पैदा कर कवि ने नाटक को प्राणवान बनाने की चेष्टा की है। इस चौथे अङ्क में मानव स्वभाव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निदर्शन मिलता है।

चौथे अङ्क का मूल्यांकन—सामाजिक, सांस्कृतिक और लोक व्यवहार की दृष्टि से अभिज्ञान० का चौथा अङ्क सर्वाधिक प्रशस्त एवं कमनीय है। यह अङ्क भौतिक और आध्यात्मिक जीवन की सभी विषमताओं को हटाकर संतुलन और सामञ्जस्य उपस्थित करता है।

कला और जीवन का अद्भुत समन्वय इस चतुर्थ अङ्क की सबसे बड़ी विशेषता है।

(द) कालिदास की शैली

कालिदास की शैली सरल, सरस एवं परिष्कृत है। उनकी कल्पना में उन्मुक्त उड़ान, विचारों की गम्भीरता, जीवन का प्रगाढ़ अनुभव, भाषा में लोच, कविता में मनोज्ञता आदि विशेष हैं। उनमें क्लिष्टता या समास-संकुलता आदि दोष नहीं हैं। वे वैदर्भी रीति के कवि हैं—''वैदर्भी रीति सन्दर्भे कालिदासा विशिष्यते''। वैदर्भी रीति उसे कहते हैं जिसमें मधुर शब्द एवं ललित रचना हो।

(१) मधुर गुण—कालिदास में माधुर्य गुण है। उनके अनुसार शकुन्तला जैसी सुकुमारी बाला से जल का घड़ा उठाया जाना असम्भव है। वह इस प्रकार के सुकुमार सौन्दर्य पर दया करता है।

इदं किलाव्याज मनोहरं वपुस्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पल पत्रधारया शमीलतां क्षेत्तुमृषिव्यवस्यति[१] ॥

अनाघ्रातं पुष्पं[२]— ।

(२) पात्रानुकूल भाषा—वे पात्रों के लिए शिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं। कण्व शकुन्तला-विवाह का समर्थन करते हैं—

''दिष्ट्या धूमाकुलित दृष्टेरपि यजमानस्य पावकमुख एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्य परिदत्ता विद्येवा शोचनीया संवृत्ता।''

(३) संक्षिप्त एवं ध्वन्यात्मक भाषा—कालिदास किसी वस्तु का विस्तृत वर्णन करके सूक्ष्म रूप में केवल उसकी व्यञ्जना करते हैं। इस व्यञ्जना को केवल सहृदय जन ही समझ पाते हैं।

(i) राजा अपनी प्रेयसी शकुन्तला को देखकर अपना हर्षातिरेक केवल एक वाक्य में प्रकट करता है—

''अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्'' —(शा० ३/२)

(ii) शकुन्तला काम संतप्त अपने भाव को एक श्लोक में पूरा करती है—

''निर्घृण, तपति बलीयस्त्वयि वृत्त मनोरथाया अङ्गानि'' —(शा० ३/१३)

---

१. अभि० १/१८
२. अभि० २/१०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(४) वर्णन कुशलता—कालिदास विषयों के वर्णन में पटु हैं। वे प्रत्येक वस्तु का सजीव वर्णन करते हैं। वृक्षों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, नदी, तालाब आदि दृश्यों का इतना जीवन्त एवं सुन्दर वर्णन करते हैं, जैसे दृश्य आँखों के सामने नाच रहा हो।

दुष्यन्त द्वारा पीछा किए गये मृग का वर्णन बड़ा स्वाभाविक एवं मनोरम है—

ग्रीवा भङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्त दृष्टिः ।
पश्चादर्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकामम् ॥

सूर्योदय एवं चन्द्रास्त (प्रातःकाल का वर्णन) मनुष्य के जीवन में होने वाले उत्थान-पतन का द्योतक है—

''यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।'' —(शा० ४/२)

(५) अलङ्कारों का प्रयोग—कालिदास ने शाकुन्तल गें प्रायः सभी अलङ्कारों का प्रयोग किया है। जो सहज रूप से वर्णित है एवं श्रम साध्य (Laboured style) नहीं है। उनका अलंकार प्रयोग रस भाव में मनोरमता लाकर रस-परिपाक में सहायक बनता है। उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, तुल्ययोगिता, विभावना, व्यतिरेक, विरोधाभास, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का उन्होंने प्रयोग किया है।

उपमा का प्रयोग—कालिदास की उपमाएँ अत्यन्त सुन्दर होती हैं,उनमें रम्यता, यथार्थता, औचित्य, विविधता, और सर्वाङ्ग सुन्दरता आदि गुण मिलते हैं। कुछ अत्यन्त रोचक प्रयोग इस प्रकार हैं—

अधर किसलयरागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुमिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् ॥ (शा० १/२१)

शकुन्तला के सौन्दर्य पर आसक्त राजा का सुन्दर वर्णन किया गया है। उसके मन की तुलना ध्वज-वस्त्र से की गई है।

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥ (शा० १/३४)

ऋषियों के बीच शकुन्तला जीर्ण पत्तों के बीच किसलय तुल्य दिखाई देती है—

मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् (शा० ५/१३)

ऋषि मारीच ने राजा, शकुन्तला और पुत्र भरत की तुलना क्रमशः विधि, श्रद्धा और वित्त से की है—

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम् ॥ (शा० ७/२९)

(६) छन्दों का प्रयोग—कालिदास ने शाकुन्तलम् में कुल २४ छन्दों का प्रयोग किया है। मुख्य छन्द ये हैं—आर्या, वसन्ततिलका, अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता।

कालिदास के नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने भाव के अनुसार छन्दों का प्रयोग किया है। कोमल भावों में मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, गम्भीर भावों में स्रग्धरा शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(७) पात्रानुकूल भाषा—उच्चकोटि के लोग संस्कृत बोलते हैं। स्त्रियाँ तथा निम्न श्रेणी के पात्र प्राकृत बोलते हैं। गद्य के लिए शौरसेनी तथा पद्य के लिए महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया है।

(८) अपाणिनीय शब्दों का प्रयोग—शाकुन्तल में कुछ ऐसे प्रयोग हैं, जो पाणिनि व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं, क्योंकि उस समय तक पाणिनीय व्याकरण पूर्णतः बद्धमूल नहीं था। जैसे—कुसुमावचयं ४/१ में अवचाय की जगह 'अवचय' शब्द-प्रयोग, विश्रामं लभताम्—शा० २/६ में 'विश्रम' की जगह विश्राम शब्द-प्रयोग, नाति भिन्ने राजनि (२/६४) में अनति भिन्ने की जगह नाति भिन्ने शब्द-प्रयोग।

अतः स्पष्ट है कि कालिदास में सर्वतोमुखी प्रतिभा विद्यमान है। उनमें असाधारण कवित्व-शक्ति का उन्मेष वर्तमान है। उनकी शैली में प्राञ्जलता, मनोरमता, अकृत्रिमता, संकेतात्मकता, ध्वन्यात्मकता, आदर्शरूपता एवं संगीतात्मकता का सुन्दर समन्वय है।

(ध) मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण

(१) दुष्यन्त

(क) धीरोदात्त प्रकृति—शाकुन्तल नाटक के नायक महाराज दुष्यन्त हैं। शास्त्रीय दृष्टि से वे धीरोदात्त प्रकृति के नायक है। वे महाबली, अति गम्भीर, क्षमावान, अविकत्थन (अपनी प्रशंसा करने वाला) स्थिर प्रकृति, अहंकार रहित और दृढ़ निश्चयी हैं।

महासत्त्वोऽति गम्भीरः क्षमावान विकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाऽहंकारो धीरोदात्तो दृढ व्रतः कथितः ॥ (साहित्य दर्पण)

पुरुवंशीय महाराज दुष्यन्त में ये समस्त गुण एकसाथ विद्यमान हैं।

(ख) महासत्त्वः—वे महापराक्रमी राजा हैं। क्षत्रिय कुल की मर्यादा के अनुसार वे शारीरिक एवं आध्यात्मिक बल से युक्त हैं। वे स्वयं कहते हैं कि समुद्र पर्यन्त पृथिवी मेरी पत्नी है—'समुद्ररसना चोर्वी'। इनके इस गुण से कोई व्यक्ति निरङ्कुश नहीं रहता। कवि स्वयं इनके महासत्त्व गुण की प्रशंसा करता है—

''मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्'' (१/६)

वैखानस दुष्यन्त से आश्रम में चलने का अनुरोध करता है कि महाराज आप आश्रम में चलकर स्वयं अपना प्रताप देखें। दुष्टों को मारना और सज्जनों को बचाना उनका सहज स्वभाव है। वे अपनी धनुष की टंकार से विघ्न रूपी राक्षसों को दूर भगा देते हैं—

हुंकारेणैव धनुषः सहि विघ्नानपोहति। (अभि० ३/१)

(ग) अतिगम्भीर—दुष्यन्त का व्यक्तित्व समुद्र के समान अति गम्भीर है। कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश करने पर जब वे शकुन्तला के रूप-सौन्दर्य को देखते हैं, तब उस पर आकृष्ट होने पर भी वे अपने विवेक को नहीं खोते। वे कहते हैं कि यह कन्या इसलिए ग्राह्य है क्योंकि इसको ग्रहण करने के लिए मेरा मन स्वतः प्रवृत्त हो रहा है—

असंशयं क्षत्र परिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः ॥ (अभि० १/२२)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वे शकुन्तला के विषय में निश्‍चित होने पर उसे स्पर्शयोग्य रत्न समझते हैं—

आशङ्कसे यदग्निं स्पर्शक्षमं रत्नम्

इसी तरह माता द्वारा भेजा गया सन्देश दूत से सुनकर वह विदूषक को राजधानी भेजकर स्वयं तत्परता के साथ आश्रम की रक्षा करते हैं। अतः उनका व्यक्तित्व गम्भीर, संयमी एवं विचारवान है—

''भव हृदय साभिलाषं सन्देह निर्णयोजातः ....स्पर्शक्षमं रत्नम्''

(अभि० १/२७)

(घ) चरित्रवान् नायक—किसी कामुक व्यक्ति की तरह दुष्यन्त शकुन्तला के सौन्दर्य पर बिना समझे आकृष्ट नहीं होता, बल्कि एक सच्चरित्र व्यक्ति की भाँति प्रियंवदा एवं अनसूया के वार्तालाप के अनुसार शकुन्तला को स्पर्श योग्य रत्न समझता है। भविष्य में वह शकुन्तला को अपनी रानी के रूप में स्वीकृत करने का वचन भी देता है। जैसा कि वे कहते हैं—

परिग्रह बहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥ (अभि० ३/१७)

(ङ) दृढ़व्रत—दुष्यन्त हर परिस्थिति में अपने वचनों का पालन करता है। शारद्वत, गौतमी आदि के द्वारा अप्रिय वचन कहने पर भी वह शकुन्तला को स्वीकार न करने पर दृढ़ है। परन्तु जब उसे शकुन्तला को दी गई अँगूठी दिखाई देती है तो वह अपनी पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण कर शकुन्तला को स्वीकार कर लेता है।

(२) वात्सल्य भाव—शाकुन्तल के ७वें अङ्क में दुष्यन्त का वात्सल्य पूर्ण चरित्र एक पिता के रूप में दिखाई देता है। जब वह मारीच के आश्रम में दर्शन की अभिलाषा से नीचे उतरते हैं, तो एक बालक की निर्भीकता को देखकर जो शावक को शेरनी का दूध नहीं पीने दे रहा है, वे कहते हैं—'अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेव।' बाद में यह विदित होने पर कि इसकी माता शकुन्तला है, वे आनन्दित होते हैं।

(३) उत्तम शासक—दुष्यन्त उत्तमकोटि के न्यायप्रिय एवं उदार शासक हैं। वे दुष्टों को दण्डित एवं साधुजनों को पुरस्कृत करने में कुशल हैं—

प्रजाः प्रजा स्वा इव तन्त्रयित्वा ।
निषेवते श्रान्तमना विविक्तम् ॥ (अभि० ५/५)

पाँचवें अङ्क में वैतालिक राजा की प्रशंसा करते हुए कहता है कि महाराज, आप उस वृक्ष के समान हैं, जो स्वयं धूप सहकर भी पथिकों को शीतल छाया प्रदान करता है—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः,
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवं विधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं,
शमयति परितापं, छायया संश्रितानाम्॥

दूसरे वैतालिक के अनुसार महाराज दुष्यन्त का कर्तव्य कुपथगामियों को नियंत्रित करना, विवादों को शान्त करना, प्रजा की रक्षा करना तथा परिजनों में सम्पत्तियों का समान विभाजन करना आदि है। ये सारे गुण एक उत्तम शासक के हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नियमयसि कुमार्ग प्रस्थितानामात्तदण्डः, प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तुनाम त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥
(अभि० २/१४)

सन्तानहीन धनमित्र नामक सेठ की सम्पत्ति राजकोष में रखने की अनुमति देकर वह राज्य में घोषणा करता है कि मेरे राज्य में कोई व्यक्ति अपने को अलग न समझे। जैसा कि कहा है—

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥

आश्रम में वह राक्षसों को भगाकर यज्ञ की रक्षा के द्वारा एवं स्वर्ग में दानवों को मारकर, अपने कर्तव्यपरायणता का परिचय देता है। वह अपने मंत्री आर्य विशुन को आदेश देता है कि आवश्यक विवरण उसके पास भेजें।

(४) मधुरभाषी एवं उदार— प्रियंवदा उसके मधुर भाषण की प्रशंसा करती है। उसके विचार उत्तम एवं संतुलित हैं। वह एक उत्तम कोटि का पति एवं उच्च कोटि का प्रेमी है। तृतीय अङ्क में शकुन्तला की अवस्था को देखकर वह उससे पाणिग्रहण करने और उसकी रक्षा करने का वचन देता है। वह तरुणी शकुन्तला को धूप में जाने से रोकता है और उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है।

किं शीतलैः क्लम विनोदिभिरार्द्र वातान्, संचारयामि नलिनीदल तालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते, संवाहयामि चरणावुतपद्मताम्रौ ॥
(अभि० ३/१८)

दुष्यन्त का हृदय अत्यन्त उदार है। वह तपस्वी के कहने पर आश्रम मृग पर बाण नहीं छोड़ता एवं विनीतवेष में आश्रम में प्रवेश करता है। आश्रम यज्ञ की रक्षा के लिए वह ऋषियों की प्रार्थना सादर स्वीकार कर लेता है।

(५) मातृभक्त एवं आज्ञाकारी पुत्र—दूसरे अङ्क में वह माता की आज्ञा मानकर विदूषक को माता के पास भेजता है। वह कला-प्रेमी एवं गुणग्राही है। पाँचवे अङ्क में सानुमती के संगीत को सुनकर वह मन्त्रमुग्ध हो जाता है। वह एक कुशल चित्रकार है। वह शकुन्तला के अपूर्ण चित्र को पूर्ण कर देता है। वह युद्ध कला में भी पारंगत है।

(६) लोकोत्तर आदर्श चरित्र—दुष्यन्त का हृदय अत्यन्त नम्र, निर्मल एवं विनम्रता तथा कोमलता की मूर्ति है। छठें अङ्क में वह अपनी प्रिया के वियोग में दग्ध हो रहा है तथा उसके प्रति किये गये निष्ठुर व्यवहार को सोचकर वह पश्चाताप की विषम ज्वाला से संतप्त है। ७वें अङ्क में वह इन्द्र की सहायता करता है और राक्षसों पर विजय प्राप्त करता है। उसकी परदुःखकातरता एवं पश्चात्ताप की भावना उसके लोकोत्तर रमणीय चरित्र को प्रभावित करती है।

(७) आदर्श प्रेमी—अपने यहाँ अनेक रानियों के रहने पर भी वह शकुन्तला को ही जीवन की पूर्णता प्रदान करता है, और दाम्पत्य जीवन की कामना करता है। वह महाभारत की तरह कामुक दुष्यन्त नहीं है अपितु एक आदर्श तथा सुसंस्कृत प्रेमी व्यक्ति है। पर स्त्रीदर्शन को वह पाप मानता है— 'अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्'।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१) डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार—"कालिदास ने उसका (दुष्यन्त का) जैसा भव्य चित्र खींचा है, अंकित किया है, वह आंग्ल नृत्यों के चित्रों से यहाँ तक कि शेक्सपियर द्वारा चित्रित हेनरी पंचम के चित्र से भी अधिक श्रेष्ठ एवं उदात्त है।"

(२) के० यस० रामास्वामी अय्यर के अनुसार—"शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त का प्रेम वासना प्रेरित ही नहीं है, जैसा भीतर से काव्यात्मक होते हुए भी विषयानन्द से ओत-प्रोत है।"

(३) डॉ० वी० वी० मिराशी के अनुसार—"कालिदास के सभी नायकों में दुष्यन्त श्रेष्ठ हैं। वह आकृति से भव्य, मन से कोमल हैं, गम्भीराकृति एवं मधुर सम्भाषण से वह दूसरों के मन को एकदम आकृष्ट कर लेता है—पराक्रमी, विनयशील, धार्मिक, प्रेमी और कर्त्तव्य तत्पर ऐसे धीरोदात्त नायक का चित्र खींच कर हमारे सामने उन्होंने एक आदर्श पुरुष लाकर खड़ा कर दिया है।"

(२) शकुन्तला

(१) परिचय—अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की नायिका शकुन्तला है। वह ऋषि विश्वामित्र और मेनका अप्सरा की औरस पुत्री है। उसका पालन-पोषण महर्षि कण्व के आश्रम में हुआ था। वह कण्व ऋषि को श्वासों के समान प्रिय थी।

(२) अलौकिक सौन्दर्य—वह महर्षि विश्वामित्र से तेज और मेनका से अतिशय लावण्य प्राप्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। उसमें यौवन और ललित भाव दोनों का एक साथ समन्वय देखकर राजा दुष्यन्त वृक्षकुञ्जों की ओर से इसे देखकर अकस्मात् कहते हैं—अहो, मधुरमासां दर्शनम्—शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुः—(अभि० १/१७)

यह कोई स्वर्गीय रचना है, क्योंकि कान्ति से देदीप्यमान तेज (विद्युत) भूतल से उत्पन्न नहीं होता है।

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ।
न प्रभातरलं ज्योति रुदेति वसुधातलात् ॥ (अभि० १/२६)

दुष्यन्त शकुन्तला की तुलना एक विकसित लता से करते हुए कहते हैं—"शकुन्तला के अधर किसलय के समान लाल हैं, इसकी भुजाएँ वृक्ष की कोमल शाखाओं की भाँति हैं, इसका यौवन पुष्प की भाँति आकर्षक है।"

अधरः किसलयरागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥ (अभि० १/२१)

महाराज दुष्यन्त शकुन्तला के अनुपम सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि, "शकुन्तला बिना सूँघा पुष्प है, नखों से बिना छिदा किसलय है, जिसका स्वाद न लिया गया ऐसा मकरन्द है एवं अखण्ड पुण्यों का फल है। इस प्रकार शकुन्तला में अनुपभुक्त कौमार्य, अछूता सौन्दर्य है, असीम आकर्षण एवं पवित्र लावण्य का मञ्जुल विन्यास विद्यमान है।"

कालिदास के शब्दों में वह अपरा सृष्टिरत्न है। जैसा कि वह कहते हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनाघ्रातं पुष्पं, किसलय मलूनं कररुहै, रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादित रसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं॥ (अभि० २/१०)

प्रस्तुत श्लोक में महाराज दुष्यन्त शकुन्तला के अप्रतिम स्वाभाविक लावण्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—"यह शकुन्तला वल्कल वस्त्र से आवृत होकर भी अधिक सुन्दर लग रही है, जैसे कमल सेवार से, चन्द्रमा कलंक से, सुन्दर प्रतीत होता है। अत: सुन्दर आकृतियों के लिए प्रत्येक वस्तु शोभावर्धक होती है।"

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥
(अभि० १/२०)

(१) प्रकृतिप्रिया शकुन्तला—प्रकृति पुत्री शकुन्तला का जन्म, लालन-पालन एवं संवर्धन प्रकृति की सुरम्य छाया में ही हुआ था। अत: प्राकृतिक उपादानों से परिपालित होकर उसमें प्राकृतिक तत्त्वों का सन्निवेश होना अनिवार्य था। इसलिए महाकवि कालिदास नायिका के शरीर के अवयवों का सादृश्य प्राकृतिक अवयवों के साथ करते हैं—

अधरः किसलयरागः कोमल विटपानुकारिणौबाहू॥ (अभि० १/२१)

वह वृक्षों को सिञ्चित करने के अनन्तर स्वयं जल पीती थी, अपने शरीर-प्रसाधन के लिए कभी एक पत्ती नहीं तोड़ती थी।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषुया ।
नादत्ते प्रिय मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ॥ (अभि० ४/९)

उसका आश्रम के वृक्षों, पशु-पक्षियों के प्रति सहोदर जैसा सहज स्नेह था। वह कहती है—

न केवलं तात नियोग एव अस्ति मे सहोदरास्नेहोप्येतेषु।

लताएँ शकुन्तला के वियोग में दु:खी होकर पत्र रूपी आँसू गिरा रही हैं, हरिणियाँ अर्द्धचर्वित दर्भ ग्रास वमन कर रही हैं एवं मयूर नर्तन कार्य से विरत हो रहे हैं।

जिस मृग शावक को शकुन्तला ने नीवार की मुट्ठी खिलाकर बड़ा किया था, वह प्रेम से उसके रास्ते को नहीं छोड़ रहा है

सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते। (अभि०)

(२) सती साध्वी नारी—शकुन्तला एक सती साध्वी नारी है। वह विवाह के पश्चात् सदैव पति के चिन्तन में मग्न रहती है। उसे दुर्वासा ऋषि के आगमन का भी ज्ञान नहीं रहता। राजा के द्वारा परित्यक्त होकर भी वह स्वयं को दोष देती है। वह राजा को अपराधी नहीं बताती—

नूनं मे सुखमप्रतिबन्धकम्।

वह वियुक्ता विरहिणी नायिका के वेष में सदैव अपने पति के चिन्तन में लीन रहती है। उसे अपने मण्डन का ध्यान नहीं। वह तपस्विनी की भाँति अपने चारित्र्य की रक्षा में संलग्न होती है—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**वसने परिधूसरे वसाना, नियमक्षाममुखी, धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्ध शीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥** (अभि० ७/२१)

(३) अन्तर्मन की सहजता—कालिदास ने शकुन्तला के अन्तर्मन का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। वह दुष्यन्त के प्रथम दर्शन से मुग्ध हो जाती है, परन्तु अपनी इस अनुभूति को वह व्यक्त नहीं करती। उसके अन्तःकरण में प्रेम की शीलयुक्त अनुभूति का चित्रण इस प्रकार हुआ है।

उसके पैर में दर्भाग्र चुभ जाता है, वह कुछ कदम चलकर रुक जाती है और अपने वस्त्रों को शाखाओं में उलझने पर सुलझाने के बहाने वह दुष्यन्त की तरफ देखती है—

**दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे,
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानी गत्वा।
आसीद् विबृतवदना च विमोचयन्ती,
शाखासु वल्कलमसक्त मपि द्रुमाणाम् ॥** (अभि० २/१२)

वह अप्रगल्भ या लज्जाशील नायिका है—

निसर्गादेवाप्रगल्भिस्तपसि कलाजनः ।

अर्थात् अभिज्ञा० नाटक के तृतीय अङ्क से शकुन्तला के लज्जापूर्ण आचरण एवं संकोचशीलता से उसका मुग्धा होना प्रकट होता है।

(४) स्वाभिमानिनी प्रेमिका—शकुन्तला एक स्वाभिमानिनी नायिका है। तृतीय अङ्क में जब प्रियंवदा और अनसूया उसकी काम-पीड़ा की अभिवृद्धि लक्ष्य करके मनोरथ सम्पादन हेतु दुष्यन्त को पत्र लिखने की प्रेरणा देती हैं उस समय वह इस शंका से पत्र नहीं लिखती कि कहीं ऐसा न हो कि दुष्यन्त उसके प्रेम को तिरस्कृत कर दे। तब सखियाँ आश्वासन देंती हुई कहती हैं—

अमि आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शरीर निर्वापयित्रीं शारदी ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति ॥

यहाँ महाकवि ने स्वाभिमानिनी नायिका शकुन्तला को शारदीय ज्योत्स्ना कहकर उसके अन्तःकरण में शीतलता पैदा करने वाले रूप-यौवन को प्रशंसित किया है।

डॉ० शान्तिभूषण द्विवेदी के अनुसार—''शकुन्तला का चरित्र-चित्रण पूर्णतः स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है। दुर्वासा-शाप के बिना भी अँगूठी खो सकती थी। घटना-वैचित्र्य के कारण ही शकुन्तला का व्यक्तित्व अपूर्व बन गया है।''

प्रो० जी०सी० झाला के अनुसार—''Shakuntala has inherited her mother's heavenly beauty of form. Apart from this she is literally a child of nature in her simplicity love of trees, of creepers and deer and her artless manners.''

पाश्चात्य जर्मन विद्वान् गेटे के अनुसार—''शकुन्तला में आरम्भिक तरुण सौन्दर्य ने मंगलमय परम परिणति में सफलता लाभ करके मर्त्यलोक को स्वर्गलोक के साथ सम्मिलित कर दिया है।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) कण्व

(१) तपस्वी—अभिज्ञान० में कण्व ऋषि आश्रम के कुलपति हैं। उनका दूसरा नाम काश्यप है। वे एक नैतिक ब्रह्मचारी, अन्तर्यामी तथा अत्यन्त प्रभावशाली महर्षि हैं। इनके तपस्या के प्रभाव से इन्हें आकाशवाणी ने सूचित किया कि आपकी कन्या शकुन्तला ने दुष्यंत के साथ गन्धर्व विवाह किया है और गर्भवती है—

अवेहि तनयां ब्रह्मन् अग्निगर्भां शमीमिव **(अभि० ४/४)**

यह इनकी तप-शक्ति का प्रभाव था कि राक्षस इनके आश्रम में प्रवेश नहीं कर सकता था।

(२) भविष्यवक्ता—कण्व शकुन्तला के भविष्यकाल में गृहस्थ जीवन की भविष्यवाणी कर रहे हैं कि ''वह सम्पूर्ण पृथिवी की सपत्नी बन कर रहेगी, दुष्यन्त के अद्वितीय महारथी पुत्र को पैदा करेगी, पति द्वारा पुत्र को राज्यभार सौंप देने पर उसके साथ शान्त आश्रम में प्रवेश करेगी''। ये सारी बातें शकुन्तला के भावी जीवन में सत्य घटित हुईं।

उन्होंने शकुन्तला को चक्रवर्ती पुत्र की माता के रूप में भी भविष्य ज्ञान कर लिया था।

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुः बहुमता भव ।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि ॥

(३) सहृदयता—महर्षि कण्व का हृदय अतीव संवेदना पूर्ण था, जबकि शकुन्तला उनकी औरस पुत्री नहीं थी। शकुन्तला के प्रति उनका सहज स्नेह सभी गृहस्थों के लिए अनुकरणीय है।

पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः ।

जब शकुन्तला उनसे कहती है कि मेरी विरह-व्यथा से आप इतने पीड़ित न हों तब कण्व ऋषि कहते हैं कि हे पुत्री, तुम्हारे ऊपर शोक होने पर मुझे कैसे शान्ति मिलेगी ? जैसे कुटी द्वार पर उगे धान्य को कोई बलि दे रहा हो, तब तपस्वी कैसे शान्त रहेगा ?

(४) लौकिकज्ञ—कण्व ऋषि लौकिक व्यवहारों से भलीभाँति परिचित थे। वे कहते हैं—''वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्'' जो उपदेश शकुन्तला को उन्होंने दिए हैं, वे सदैव पालनीय हैं एवं सर्वथा अक्षुण्ण रखने योग्य हैं—'शुश्रूषश्स्व गुरुन्'। उन्होंने राजा दुष्यन्त को जो सन्देश दिया है, वह भी उनके लोक-व्यवहार ज्ञान का परिचायक है।

अस्मान साधु विचिन्त्य **(अभि० ४/१७)**

वे शकुन्तला के साथ अनसूया एवं प्रियंवदा को साथ नहीं भेजते क्योंकि वे कुमारी युवतियों को विवाहिता के साथ भेजना अनुचित मानते हैं।

कण्व ऋषि मानव स्वभाव से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते हैं कि अन्य कार्यों में व्यस्त रहने पर व्यक्ति अपने दुःख को भूल जाता है। अतः वे शकुन्तला से कहते हैं कि राजा के यहाँ जाने पर वहाँ के कार्यों में मग्न होकर तुम दुःख को विस्मृत हो जाओगी।

अभिजनवतोः भर्तुः **(अभि० ४/१४)**

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वे कन्या को धरोहर मानते हैं। उसे वे उपेक्षणीय नहीं समझते अतः कन्या का पालन बहुत सावधानी से गृहस्थ को करना चाहिए। यही कारण है कि शकुन्तला को दुष्यन्त (पति) के घर भेजकर सुख एवं हार्दिक संतोष का अनुभव करते हैं—

अर्थोहि कन्या परकीय एव, तामद्य सम्प्रेष्य परिगृहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥

(४) अनसूया एवं प्रियंवदा

अनसूया एवं प्रियंवदा दोनों ही शाकुन्तल नाटक की नायिका हैं। ये दोनों ही शकुन्तला की प्रिय सखियाँ हैं। इन दोनों में अनसूया आयु में सबसे बड़ी है। दोनों के चरित्र में समानताएँ एवं विषमताएँ दोनों हैं।

समानताएँ

(१) सुन्दर रूप एवं समान आयु—अनसूया एवं प्रियंवदा दोनों का अत्यन्त सुन्दर रूप है। इसलिए दुष्यन्त इन्हें देखकर अकस्मात् कहता है—'अहो मधुरमासां दर्शनम्'। ये दोनों ही वल्कल वस्त्र धारण करती हैं, समान अवस्था वाली एवं तपस्वी कन्याएँ हैं।

(२) तपोवनवासिनी—ये दोनों कन्याएँ तपोवन की पावन एवं सुरम्य धरा पर निवास करती हैं। इनमें स्त्रीजन सुलभ लावण्य, लज्जा एवं शिष्टता विद्यमान है। ये वार्तालाप में भी पटु हैं।

(३) सामान्य ज्ञान से परिचित—तपोवन में निवास करने पर भी ये लौकिक जीवन के सामान्य ज्ञान से परिचित हैं। शकुन्तला के ज्वर-ग्रस्त होने पर ये चन्दन, उशीनर, कमल नाल एवं कमल पत्र आदि से उसका उपचार करती हैं।

(४) काम शास्त्र से परिचय—ये कामशास्त्र के परिज्ञान से परिचित हैं। यहीं कारण है कि जब शकुन्तला काम ज्वर से ग्रस्त होती हैं तो ये दोनों सखियाँ उसकी कामावस्था का अनुमान कर लेती हैं।

(५) अतिथि परायणता—अतिथि सत्कार के भारतीय आदर्श एवं परम्परा से ये पूर्ण अवगत हैं। अतः दुष्यन्त के कण्व आश्रम में पहुँचने पर ये दोनों सखियाँ उनका स्वागत एवं सम्मान करती हैं।

(६) आदर्श सखियाँ—इन दोनों में सत्य एवं निःस्वार्थ प्रेम था। दोनों ही शकुन्तला के साथ 'बहिन' जैसा व्यवहार करती हैं। इनके जीवन का लक्ष्य केवल शकुन्तला का हित-साधन करना था। यही कारण है कि जब दुर्वासा शकुन्तला को भीषण शाप देते हैं, तो दोनों ही भयभीत होकर, अनुनय-विनय से महर्षि का शाप निवृत्त कराती हैं।

(७) दोनों के समान गुण—ये दोनों सखियाँ शिष्ट, विनीत, मधुरभाषिणी एवं वाक्-पटु हैं। ये दोनों ही कार्यदक्ष एवं बुद्धिमती कन्याएँ हैं।

दोनों कन्याओं में कुछ वैषम्य भी हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१) अनसूया—असूया (दूसरे से ईर्ष्या करना) से रहित है, जबकि प्रियंवदा—मधुर एवं प्रिय भाषण करती है। अनसूया स्वभाव से गम्भीर एवं अधिक प्रौढ़ है, परन्तु प्रियंवदा प्रिय एवं हास्यपूर्वक वार्तालाप करती है। राजा के आश्रम में आने पर अनसूया आगे बढ़ राजा से बात करती है। प्रियंवदा द्वारा शकुन्तला से विवाह की बात करने पर जब शकुन्तला चिढ़ती है तो वह उसका मनोविनोद करती है कि तुम्हें अभी हमारे हिस्से में दो घड़े जल डालना शेष है।

(२) अनसूया विचारशील एवं मित भाषण करती है। परन्तु प्रियंवदा वाक्-चतुर है एवं अधिक बोलती है। तृतीय अङ्क में यह राजा दुष्यन्त से अधिक बात करती है।

(३) अनसूया सशङ्क वृत्ति की है। वह किसी बात पर जल्दी विश्वास नहीं करती। नाटक के चौथे अङ्क में उसे शंका है कि राजा शकुन्तला को स्मरण करेगा या नहीं[1]। परन्तु प्रियंवदा यह विश्वास कर लेती है कि राजा उसे अवश्य स्मरण करेगा।

(४) अनसूया भविष्य के सुख की चिन्ता करती है, परन्तु प्रियंवदा वर्तमान काल को महत्त्व देती है। वह दुष्यन्त एवं शकुन्तला के मिलने से ही प्रसन्न है।

(५) अनसूया परिपक्व बुद्धि वाली होने से जल्दी घबड़ाती नहीं, परन्तु प्रियंवदा शीघ्र घबड़ा जाती है। अनसूया दुर्वासा के शाप को सुनकर बिना घबड़ाए प्रियंवदा को दुर्वासा को मनाने के लिए भेजती है।

(६) अनसूया अधिक व्यावहारिक है, परन्तु प्रियंवदा भावुक है। अनसूया कहती है कि कण्व ऋषि शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह सुनकर उसका समर्थन करेंगे।

(५) शार्ङ्गरव और शारद्वत

ये दोनों कण्व ऋषि के शिष्य हैं। कण्व ऋषि इनके लिए आदरसूचक शब्द 'मिश्र' लगाते हैं—'आदिश्यन्तां शार्ङ्गरव मिश्राः' इन दोनों में शार्ङ्गरव अधिक आयु का है क्योंकि कण्व ऋषि को उस पर अधिक विश्वास है। अतः राजा का सन्देश वे उसी के माध्यम से देते हैं। वह शकुन्तला का प्रमुख अंगरक्षक एवं नेता है। शारद्वत शार्ङ्गरव से आयु में छोटा है। ये दोनों लोकाचार से अवगत हैं, जैसा कि शार्ङ्गरव कहना है—'ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते'[2]। ये दोनों आश्रमीय जीवन से प्रेम करते हैं। इन दोनों के चरित्र में निम्न वैषम्य हैं।

(१) शार्ङ्गरव तपस्वी जीवन को श्रेष्ठ मानता है एवं नगरीय जीवन से घृणा करता है। वह राजा के महल को 'आग की लपटों से जलता घर' मानता है।[3] वह दार्शनिक विचार का जान पड़ता है, सांसारिक लोगों के प्रति उसे दया आती है।

(२) शार्ङ्गरव बोलने में संकोच नहीं करता। वह अवसर आने पर स्पष्ट बोल देता है। जैसे शकुन्तला की अभिविदा-बेला पर विलम्ब होने पर वह महर्षि कण्व से कहता है—'भगवन्! दूरमधिरुढः सविता, त्वरतामत्र भवती।' इस प्रकार शार्ङ्गरव का चरित्र बहुभाषी, क्रोधी, असहिष्णु, एवं अशान्त प्रकृति का ज्ञात होता है।

---

१. अङ्क ४, वा० ३
२. शा०, अङ्क ४, वा० ९९
३. शा०, जनाकीर्णमन्ये... ५।१०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) शारद्वत मितभाषी, अक्रोधी, सहिष्णु एवं शान्त प्रकृति का है। वह अनावश्यक नहीं बोलता और न तो क्रोध करता है। किसी बात का संक्षिप्त एवं उचित उत्तर देता है। जब राजा और शार्ङ्गरव का विवाद उग्ररूप लेता है तब वही शान्त करता है। वह कहता है— 'शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्' (अङ्क ५, वा० ६७), वह राजा दुष्यन्त से कहता है कि शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है, चाहे इसे रक्खो या छोड़ो, हम लोग जा रहे हैं—

तदेषा भवतः कान्ता, त्यज वैनां गृहाण वा (अङ्क ५, वा० २६)

(४) शार्ङ्गरव लोक व्यवहार में पटु नहीं है, परन्तु शारद्वत व्यवहार-चतुर है। उसी के कारण राजा दुष्यन्त का विवाद शान्त होता है।

इन दोनों में शारद्वत का चरित्र अधिक प्रभावशाली है।

(६) विदूषक

नाट्य शास्त्र के अनुसार जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष और बोली आदि के द्वारा लोगों को हँसाता है, कलह में प्रेम करता है और अपने हास्य के कार्य को ठीक समझता है, उसे विदूषक कहते हैं। कुसुम, बसन्त आदि उसके नाम होते हैं—

कुसुम बसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलह रति विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

(क) हास्य रस का पात्र—अभिज्ञानशाकुन्तल में 'विदूषक' का नाम माधव्य है। वह हास्य रस का पात्र है एवं ब्राह्मण जाति का है। नाटक में विदूषक हास-परिहास के लिए होता है। शाकुन्तल में उसका उपयोग कथानक के विकास में पर्याप्त सहायक है। वह हमेशा खाने पीने की बातें करता है और स्वभाव से पेटू है। द्वितीय अङ्क में विश्राम करने के बाद जब राजा उससे कहते हैं कि क्या आप मेरे एक कार्य में सहयोग करेंगे, तो वह तुरन्त कह पड़ता है— 'किं मोदक खाकायाम्' (क्या लड्डू खाने के काम में)। नाटक में वह राजा का मित्र होता है, और राजा से खुलकर हँसी-मजाक करता है।

(ख) भीरु स्वभाव—वह भयभीत स्वभाव का है। राक्षसों की बात सुनकर डर जाता है—'साम्प्रतं राक्षस वृत्तान्तेन सपरिवाधम्'। जब राजा एक साथ दो कार्यों (असुरों का विनाश एवं माता के यज्ञ में जाना) के धर्म-संकट में फँस जाता है तो वह कहता है कि आप त्रिशङ्कु के समान बीच में लटके रहिए। वह कहता है—'भो त्रिशङ्कुरिव अन्तरा तिष्ठ'।

(ग) सरल स्वभाव—विदूषक अत्यन्त सरल एवं सीधे स्वभाव का व्यक्ति है। जब राजा शकुन्तला विषयक प्रणय-व्यापार को 'परिहास विजल्पन' कहता है, तो वह उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेता है। शकुन्तला-परित्याग के समय वह राजा के पास नहीं रहता बल्कि पहले ही हंसपदिका को समझाने के लिए गया होता है। अन्यथा वह दुष्यन्त को शकुन्तला-प्रणय का स्मरण अवश्य दिलाता। देखने में वह अत्यन्त साधारण व्यक्ति लगता है। वह अनेक स्थान पर राजा को सान्त्वना देता है, उचित परामर्श देता है और उसका मनोरञ्जन करता रहता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नाटकीय पात्र-परिचय

(क) पुरुष-पात्र

(नाम)	(परिचय)
१. सूत्रधार	नाटक का प्रारम्भकर्ता प्रधान नट।
२. दुष्यन्त	हस्तिनापुर का राजा, नाटक का नायक।
३. सूत	दुष्यन्त का सारथि।
४. सेनापति (भद्रसेन)	राजा का सेनापति।
५. विदूषक (माधव्य)	राजा का मित्र।
६. कण्व (काश्यप)	शकुन्तला के धर्म-पिता और उसके पालक।
७. मारीच (कश्यप)	एक महर्षि (प्रजापति)।
८. भरत (सर्वदमन)	दुष्यन्त का पुत्र।
९. सोमरात	दुष्यन्त का पुरोहित।
१०. मातलि	इन्द्र का सारथि।
११. वैखानस, शार्ङ्गरव	कण्व के शिष्य।
१२. शारद्वत, गौतम, हारीत	,, ,,
१३. रैवतक (दौवारिक)	राजा का भृत्य।
१४. करभक	,, ,,
१५. कञ्चुकी (वातायन)	,, ,,
१६. वैतालिक	राजा की स्तुति करने वाला, या भाट।
१७. श्याल	राजा का साला, नगर-कोतवाल
१८. धीवर	मछली पकड़ने वाला
१९. सूचक, जानुक	दो पुलिस वाले, आरक्षी
२०. गालव	ऋषि मारीच का शिष्य

(ख) स्त्री-पात्र

२१. नटी	सूत्रधार की पत्नी।
२२. शकुन्तला	नाटक की नायिका, कण्व की धमपुत्री।
२३. अनसूया	शकुन्तला की सखी।
२४. प्रियंवदा	शकुन्तला की सखी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२५. गौतमी	कण्व के आश्रम की अध्यक्षा, वृद्धा तापसी।
२६. अदिति (दाक्षायणी)	मारीच ऋषि की पत्नी।
२७. सानुमती	मेनका की सखी अप्सरा।
२८. चतुरिका २९. परभृतिका ३०. मधुकरिका	राजा दुष्यन्त की सेविकाएँ।
३१. वेत्रवती (प्रतिहारी)	द्वारपालिका।
३२. यवनी	राजा की सेविका।
३३. तापसी (सुव्रता)	मारीच आश्रम की तपस्विनी।

(ग) अन्य-पात्र

(जिनके नाम नाटक में उल्लिखित हैं)

३४. मधवा (इन्द्र)	देवताओं के राजा, दुष्यन्त के मित्र।
३५. जयन्त	इन्द्र का पुत्र।
३६. कौशिक (विश्वामित्र)	शकुन्तला के जन्मदाता।
३७. मेनका	एक अप्सरा, शकुन्तला की माता।
३८. दुर्वासा	एक ऋषि, शकुन्तला को अभिशाप देने वाले।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाकविकालिदासप्रणीतम्

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

प्रथमोऽङ्कः

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥१॥

अन्वय—या स्त्रष्टुः आद्या सृष्टिः, या विधिहुतं हविः वहति, या च होत्री, ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता, यां सर्वबीजप्रकृतिः रिति आहुः, यया प्राणिनः प्राणवन्तः, ताभिः प्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः ईशः वः अवतु॥ १॥

हिन्दी—जो विधाता की पहली रचना अर्थात् जल है, जो विधिपूर्वक हवन की गई हवि को ग्रहण करती है (देवों के पास पहुँचाती है) जो दोनों कालों का विधान करती है, 'जो शब्द गुण वाले आकाश को व्याप्त' करके स्थित है, जिसको समस्त बीजों का कारण कहते हैं, जिस (वायु रूपी मूर्ति से) से सभी प्राणी जीवित रहते हैं, उन प्रत्यक्ष आठ मूर्तियों से युक्त शिव आप लोगों (सभासदों) की रक्षा करें।

संस्कृत व्याख्या—या जलरूप तनुः स्त्रष्टुः वेधसः ब्रह्मणः आद्या प्रथमा सृष्टिः सर्गः या अग्निमयी तनुः विधिहुतं हवनीहुतं हविः हव्यं वहति, देवान् प्रापयति, या च होत्री—हवनकर्त्री, यजमानरूपां, ये द्वे कालं विधत्तः कुरुतः, श्रुतिविषयगुणा—शब्द गुणा या आकाश रूप तनुः, विश्वं—जगत्, व्याप्य—सम्वंध्य, स्थिता—विद्यमाना, यां पृथिवीरूपां मूर्ति—सर्वबीज प्रकृतिः सर्वद्यावादि कारणं इति बुधाः आहुः, ब्रुवन्ति, यया वायुरूप मूर्त्या प्राणिनः जीवधारिणः प्राणवन्तः जीवनवन्तः ताभिः प्रत्यक्षाभिः, स्पष्ट प्रत्यक्षमूर्तेः अष्टाभिः अष्टसंख्याकाभिः, तनुभिः मूर्तिभिः प्रपन्न समन्वितः ईशः शिवः वः युष्मान्, सभाजनान्, अवतु—रक्षतु।

टिप्पणी—या स्त्रष्टुः आद्या सृष्टिः—जो सृष्टि में विधाता की पहली रचना अर्थात् जल है—अप एव ससजादौ—म० स्मृ० आपो वै इदमग्न सलिलमासीत्—शतपथं ब्राह्मण। उत्पत्ति की वैज्ञानिक प्रक्रिया—तैत्तिरीयो० उप० में वर्णित है— तस्मात् वा एतस्मात् आत्मनः आकाशः आकाशात् वायुः वायोरग्निः अग्नेरायः......। **या विधिहुतं हविः वहति**—जो विधि पूर्वक हवन किये गये पदार्थ (आज्य, यवादि) को देवों अर्थात् अग्नि तक पहुँचाती है 'जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु'—श्रुतिः। वेदोक्तेन विधानेन मयि यद् हूयते हविः। देवाः पितरश्चैव तेन तृप्ताः भवन्ति वै॥—(*महा० आदि पर्व*) **या च होत्री**—हवन करने वाला अर्थात् यजमान पृथ्वी पर यज्ञानुष्ठान में शिव का अंश होता है। **ये द्वे कालं विधत्तः**—प्रातः सायं-दोनों कालों को निर्धारित करने वाली दो मूर्तियाँ अर्थात् सूर्य-चन्द्र को धारण करती हैं (ऐसी शिव की अष्ट मूर्तियाँ)। **श्रुति विषय गुणाः**—शब्द गुण जिसका विषय (आधार) है, अर्थात् ऐसे आकाश को व्याप्त करके जो स्थित है। **शब्द गुणकमाकाशम्**—तर्क संग्रह, 'स भूमि विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम्' (*ऋग्वेद*) 'अथात्मनः शब्दगुणं' गुणज्ञः पदं विमानेन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विगाहमान:—रघुवंश। **सर्वबीज प्रकृतिः**—जो समस्त बीजों का कारण है अर्थात् पृथिवी। 'इयं हि भूमिः' भूतानां शाश्वतीं यो निरुच्यते। (*म० स्मृ० ९/३७*) **प्राणिनः प्राणवन्तः**—जिससे समस्त जीव प्राणयुक्त है अर्थात् ये प्राणवायु प्राणियों को जीवित करते हैं, 'प्राणोऽपानः समानो दान व्यसौ च' वायवः-अमरकोश, वेदान्त-सार। **प्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः**—आकाश, वायु की मूर्तियाँ प्रत्यक्ष नहीं, अपितु अनुमित होती है, ये दोनों केवल शब्द एवं स्पर्श गुण से प्रत्यक्ष होते हैं, ऐसे भगवान शिव की ८ मूर्तियाँ हैं—सूर्य, जल, पृथ्वी, वह्नि, वायु, आकाश, ब्राह्मण, सोम (चन्द्र)।

(क) सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मणः सोमः इत्येतास्तनवः स्मृता॥ —(*विष्णुपुराण*)। (ख) अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः कुम्भोदेरं नाम विकुम्भिमित्रम् —(*रघुवंश*)। (ग) अवनि पवन गगन दहन तपन किरण यजमान मयीमूर्तिरष्टावपि ध्यायन्तीम् —(*हर्षचरितम्*)। **प्रपन्तः ईशः वः अवतु**—इन ८ मूर्तियों से युक्त भगवान् शिव आप की रक्षा करें। यहाँ शंकर का स्मरण करने से 'पत्रावली' नामक नान्दी है। नान्दी का महत्त्व है कि 'रङ्ग विघ्नोपशान्त्यर्थं—नान्दीमादौ प्रयोजयेत्।'

विशेष— या स्रष्टुः आद्या सृष्टिः—यह पद शकुन्तला का सूचक है। **या हविः वहति**—शकुन्तला-गर्भ की सूचना है। **या होत्री**—अनुसूया एवं प्रियंवदा—दो सखियों का सूचक है। **सर्वबीज प्रकृतिः**—भरत-उत्पत्ति, अदिति—काश्यप सूचित हैं। **प्राणिनः प्राणवन्तः**—नाटक का सुखान्त होना सूचित है।

साहित्यिक प्रमाण—कालिदास ने यहाँ बौद्ध धर्म का ह्रास एवं ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय सूचित किया है। देववाद का विरोध करने के कारण उन्होंने शिव की अष्टमूर्ति की कल्पना की। इस तरह कालिदास ने अपने सभी नाटकों में शिव की विशद स्तुति की है।

अलंकार—(१)प्राणिनः प्राणवन्तः—में पुनरुक्तवदाभास अलंकार है यहाँ प्राणिनः का अर्थ चेतन तथा प्राणवन्तः का अर्थ जीव विरहता है, अतः पुनरुक्ति दोष नहीं। (२) या स्रष्टु-सृष्टि, वहति विधिहुतं—में छेक तथा वृत्यनुप्रास अलंकार है। (३) 'या' पद स्त्रीलिंग होने से नायिकाओं से युक्त नामक का व्यवहार रूप आशय प्रकट होने से 'समासोक्ति' अलंकार।

रस—यहाँ शृंगार रस व्यंजित है।

गुण—प्रसाद गुण।

सन्धि—यहाँ नाटक की 'निर्वहण' सन्धि वर्णित है।

छन्द—प्रमग्नैर्मागां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रग्धरा कीर्ति तेयम्, कुल २१ वर्ण, ७-७ वर्णों पर यति (विराम) और मगण, रगण, भगण, नगण और ३ यगण होते हैं। ७ गणों से नाटक के ७ अंक सूचित हैं।

रीति—वैदर्भी रीति—कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं। जो दोषों से असंयुक्त, समस्त गुणों से गुम्फित, वीणा के समान सुखद वर्णों से युक्त हो, वही वैदर्भी रीति है।

अस्पृष्टादोष मात्राभिः समग्रगुण-गुम्फिता। पिपञ्ची स्वर सौभाग्या वैदर्भी रीतिरिव्यते॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितम्, इतस्तावदागम्यताम्।

सूत्रधार—(नेपथ्य को सामने देखकर) आर्ये, यदि नेपथ्य-कार्य नटों की सज्जा, सम्पन्न हो गया हो, तो इधर आओ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रविश्य[1] (प्रवेश करके)

नटी—आर्यपुत्र, इयमस्मि (अज्जउत्त, इयं ह्मि।)

नटी—आर्यपुत्र, यह मैं उपस्थित हूँ।

टिप्पणी—सूत्रधार: Manager, अवसितम् Over, इतस्तावत् आगम्यताम् Just come here—M. R. Kale आर्य My lord, नाट्यस्य यदनुष्ठानं सूत्रं स्यात् स बीजकम्। रङ्ग देवता पूजाकृत्, सूत्रधार इति स्मृतः॥ जहाँ अभिनेतागण अभिनय के लिए उचित वस्त्र धारण करते हैं—कुशीलव कुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते। सूत्रम-कथासूत्र, नेपथ्य शब्द के ३ अर्थ हैं—१. वेषधारण, २. वेषधारण स्थान, ३. यवनिका (पर्दा) 'नेपथ्ये तु प्रसाधने, रङ्गभूमौ, वेष भेदे है मः' वस्तुतः नटी के प्रसाधन-भूमि को नेपथ्य कहते हैं। मातृगुप्ताचार्य के अनुसार नेपथ्य को रस माना गया है।'[2] आर्ये-सूत्रधार की पत्नी, भरतमुनि के विचार से पत्नी को 'आर्या' कहते हैं। नेपथ्यनिनो नेत्रस्य पथ्यं—जो नेत्रों को हितकारी हो या नेः नेतुः पथ्यं—जो अभिनेता को हितकारी हो। मोनियर विलियम के अनुसार नेपथ्य का अर्थ पट या यवनिका है। ए० वी० गजेन्द्र गदकर के अनुसार शिष्ट स्त्रियाँ समाज में आगमन के पूर्व अपने को सुसज्जित करती थीं। 'रत्नकोश' ग्रन्थ के अनुसार स्त्रियाँ पति को 'आर्यपुत्र', 'जीवेश', 'नाथ', 'वल्लभ' आदि नामों से सम्बोधित करती हैं।

अज्जउत्त—कालिदास स्त्रीपात्रों के लिए शौरसेनी प्राकृत प्रयोग करते हैं। (मध्यवर्ती वर्ण य लोप, र लोप)

सूत्रधार—आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठां परिषदियम्। अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तल[3]नामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत् प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः।

सूत्रधार—आर्ये, यह अत्यधिक (विशिष्ट) विद्वानों की बड़ी सभा है। आज हमें कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञान शाकुन्तल नामक नये नाटक का अभिनय करना है। अतः प्रत्येक पात्र पर ध्यान देना।

नटी—सुविहितप्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते। (सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं पि परिहाइस्सदि।)

नटी—आपके सुव्यवस्थित अभिनय के द्वारा (अभिनय में) कोई कमी नहीं होगी।

सूत्रधार—आर्ये कथयामि ते भूतार्थम्।

सूत्रधार—आर्ये, मैं तुमसे सत्य बात कहता हूँ।

आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥२॥

हिन्दी—विद्वानों को जब तक संतोष न हो जाये, तब तक मैं अपने अभिनय-कौशल को सफल नहीं मानता क्योंकि अच्छी तरह से शिक्षितों का भी अन्तःकरण (चित्त) अपने विषय में विश्वास रहित होता है।

टिप्पणी—भूतं न्याये सत्योपमानयोः विश्वः आ परितोषाद्—'पञ्चमी अपाङ्परिभिः' से आ

१. निर्णय सागर प्रेस संस्करण में 'प्रविश्य' पाठ नहीं है। प्रो० काले इस मत से सहमत हैं।

२. मालाभूषण वस्त्राद्यै नेर्पथ्य रसउच्यते।

३. पाठ-भेद—नवेनाभिज्ञान शाकुन्तलाख्येन—काले

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के योग में पञ्चमी प्रयोग—अभिनय, यह ४ प्रकार के हैं[१]—आंगिक, कायिक, आतार्य, सात्त्विक। अप्रत्यय: अविश्वास-राघव भट्ट, No Confidence— काले, बलवत् शिक्षितानां— Well Instricted— Kale.

अप्रत्यय—इससे यह अर्थ ध्वनित होता है कि पता नहीं मेरे परिश्रम का क्या फल होगा? विद्वानों को यह अभिनय पसन्द आयेगा या नहीं। यहाँ प्रकारान्तर से प्रतिपादित अर्थ वर्णित होने से पर्यायोक्त अलंकार एवं उत्तरार्द्ध के सामान्य से पूर्वार्द्ध से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। राघव भट्ट के अनुसार यहाँ 'अविमृष्ट विधेयांश' दोष है, जिसको दूर करने के लिए 'स्वस्मिन्' प्रत्नेति नोचेत: ऐसा पाठ होना चाहिए। यहाँ आर्या छन्द है—प्रथम तृतीय पाद में १२ मात्राएँ, द्वितीय में १८ मात्राएँ एवं चतुर्थ पाद में १५ मात्राएँ होती हैं, मन्ये— Consider, प्रयोगसाधु विज्ञानम्— The Knowledge of representation to be perfect.

नटी—आर्य, एवमेतत्[२]। अनन्तरकरणीयमार्य आज्ञापयतु।

(अज्ज, एवं एदम्। अणन्तरकरणिज्जं अज्जो आणवेदु।)

हिन्दी—हे आर्य! ऐसा ही करना है, इसके अनन्तर जो करना है, उसे आप आदेश दें।

सूत्रधार:—किमन्यदस्या: परिषद: श्रुतिप्रसादनत:। तदिदमेव तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम्। संप्रति हि—

हिन्दी अनुवाद—इस सभा के कानों को आनन्दित करने के अतिरिक्त और क्या? इसलिए शीघ्र ही प्रारम्भ हुए और सदैव उपभोग योग्य इस ग्रीष्म ॠतु के विषय में गाओ।

इस समय वस्तुत:

सुभगसलिलावगाहा: पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता: ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसा: परिणामरमणीया: ॥ ३ ॥

अन्वय—सुभगसलिलावगाहा:, पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता:, प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसा: परिणामरमणीया: ॥ ३ ॥

हिन्दी—जल में स्नान करना सुखद लगता है, स्थल कमलों के संसर्ग से सुगन्धित वन की वायु वाले, सघन छाया में सरलता से प्राप्त होने वाली नींद वाले एवं सायंकाल दिन सुन्दर (सुहावने) लगते हैं।

संस्कृत व्याख्या—सुखजलस्नाना:, स्थल कमल सम्पर्क सुगन्धि कानन पवना:, घनच्छाय सुखलभ्यस्वापा: परिणामदिवस परिणामे, सायंकाले, दिवसा वासरा: रमणीया: मनोहरा: सन्ति।

टिप्पणी—सुभग: सलिलावगाह: येषु ते (ब० व्री०), पाटलानां संसर्गेण सुरभय: वनवाता: येषु—ब० व्री०, परिणामे रमणीया येषु ते—ब० व्री० पाटली पुण्याणां संसर्ग: सम्बन्धो येषु ते—ब० व्री०, पुष्पे क्लीबेऽपि पाटला:—अम०, पाटली पुष्पाणां—रा० भ०, वैयाकरण भागुरि के मत से वगाह और अवगाह दोनों पाठ हैं। उपसर्ग के अ का लोप। काले महोदय सुभग का अर्थ Delightful, सुरभि का Fragrant, सुलभ का easily induced, परिणामरमणीया—Charming towards their close करते हैं।

---

१. भवेदभिनयोऽवस्थानुकार: स चतुर्विध: ।
आजि को वाचिकश्चैव मातार्य: सात्त्विकस्तथा ॥

२. नि० सा०—एवमेव सत्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलंकार—यहाँ सभिप्राय विशेषणों से (स्नान का सुखद होना) ग्रीष्म विशेण्य का वर्णन होने से परिकर अलंकार एवं ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार, स, व, र आदि वर्णों की अनेकशः आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है, उक्ति विशेषणैर्साभिप्रायैः परिकरो मतः, स्वभावोक्ति रसौ चारु यथावद् वस्तु वर्णनम् आर्याछन्द, यहाँ भारती वृत्ति का प्ररोचना अंग, एवं आयुख अंग का प्रारम्भ है।

गुण—माधुर्य, रीति-पाञ्चाली।

विशेष—(१) इस श्लोक से महाकवि ने ग्रीष्म ऋतु की सुखदता, वातावरण की सुरम्यता, एवं उपभोग क्षमता (अर्थ) ध्वनित किया है। (२) इस श्लोक से महाकवि ने सूचित किया है कि नाटक का पर्यवसान सुखद होगा

नटी—तथा (तह) **इति गायति।**

अनु०—वैसे ही होगा (ग्रीष्म का वर्णन) ऐसा कहकर नटी गाती है।

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि ।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥ ४॥

(ईसीसिचुम्बिआइं भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाइं।)

हिन्दी—मदोन्मत्त तरुणियाँ दयाभाव से युक्त होकर भ्रमरों से कुछ-कुछ आस्वादित किये गये सुकुमार-केसर के अग्रभागों से युक्त शिरीष पुष्प को (अपने) कानों का आभूषण बना रही हैं।

संस्कृत व्याख्या—मद विह्वलाः तरुण्यः दयमानाः सप्रणयाः—भ्रमरैः द्विरेफैः, ईषद्-ईषद्—अल्यम्-अल्यम्, चुम्बितानि आस्वादितानि सुकुमार—मृदुकिञ्जल्क कलितानि शिरीष पुष्पाणि-अवतसयन्ति—कर्णाभरणतां नयन्ति।

टिप्पणी—प्रकृष्टः मदोयस्याः—प्रमदाः—ब० व्री०, मदोविकारः सौभाग्यं यौवनाद्यवलेपजः, सौभाग्य, यौवन आदि के गर्व से उत्पन्न मनोविकार को मद कहते हैं, अमरकोश में स्त्रियों के निम्न विशेषण हैं—अङ्गना भीरु कामिनी, वामलोचना प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी, सुन्दरी रमणी रामा, सुकुमाराः केसराणां शिखां येषां ते तानि—ब० व्री०, शिरीष० शिरीषाणां कुसुमानि (तत्पु०) कालिदास ने रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत में शिरीष पुष्प की कोमलता एवं सुन्दरीयों द्वारा कान का आभूषण बनाने का कथन किया है। दयमानाः—दय् + शानच्, योनि० विक्ति० दयमाना का अर्थ 'प्यार भरी' करते हैं, जो साधु नहीं, भ्रमर और स्त्रियों दोनों अत्यन्त करुणा के साथ व्यवहार करती हैं। भ्रमर केसरों को काटते नहीं केवल चाटते हैं, स्त्रियाँ उनका आभूषण बनाती हैं न कि दुरुपयोग, अवतंसयन्ति प्रवतंस + णिच् + लट्—'तत्करोति तदाचष्टे' सूत्र से नामधातु है।

अलंकार—शिरीष पुष्पों को धारण करने का हेतु है उन पर दया करना। अतः काव्यलिंग अलंकार है। हेतोवार्क्य पदार्थत्वे काव्यलिंग निगद्यते। जहाँ किसी हेतु का पद या वाक्य रूप से वर्णन हो, गुण-प्रसाद, रीति-वैदर्भी[१]। प्रो० शारदारञ्जन रे ने यहाँ शिरीष पुष्प में शकुन्तला एवं भ्रमर में दुष्यन्त का अर्थ व्यंजित किया है।

---

१. वैदर्भी-लाटी रीति की मध्यवर्ती पाञ्चाली है।
'लाटी तु रीति वैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता।'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छन्द—उद्गाथा—'पूर्वार्द्धे उत्तरार्द्धे मात्राः त्रिंशयिति सुभयसंभणिता सा उद्गाथा उक्ता'। यहाँ कवि कालिदास यह अर्थ व्यंजित करते हैं कि दुष्यन्त भी शिरीष पुष्पवत् शकुन्तला से प्रणय करते हैं।

विशेष—कालिदास ने यहाँ अपनी प्रणय दृष्टि से सुकुमारभाव का वर्णन किया है, शिरीषपुष्प की कोमलता तो जग विख्यात है एवं भारतीय नारियाँ स्वभावतः मृदु, सरल, एवं करुणा भाव से परिपूर्ण होती हैं, ऐसा चित्रण किया है।

सूत्रधारः—आर्ये, साधु गीतम्। अहो, रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमत् प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयामः।

हिन्दी—हे आर्ये, तुमने सुन्दर गीत गाया, ओह, राग से बँधे हुए अन्तःकरण वाले दर्शक चारों ओर चित्रावलियों की भाँति हैं। अतः इस समय किस रूपक का प्रदर्शन करके इनको प्रसन्न करें।

नटी—नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति। (णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णासाउन्दलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए अधिकारीअदु त्ति।)

हिन्दी—आर्य, आपने पहले से ही आदेश दिया था कि अभिज्ञानशाकुन्तल नामक अपूर्ण नाटक का अभिनय किया जाय।

टिप्पणी—रङ्ग—रज्यति अस्मिन् इतिरागः—रंगशाला, परन्तु लक्षणा से दर्शक अर्थ है, यहाँ सूत्रधार को नाटक शब्द प्रयुक्त करना था, परन्तु नटी के गीत राग से आकृष्ट होकर वह विस्मृत कर गया कि अभिज्ञान शब्द प्रस्तुत नाटक है, न कि प्रकरण। मिश्रः—रङ्गनाथ के अनुसार मिश्र का अर्थ 'पूज्य' है, वेदान्त वेक्ता—जगद्धर, बहुशास्त्र—अभ्यासी—पृथिवीधर आर्य—कुलं शीलं दया दानं धर्म सत्यं—कृतज्ञता। अद्रोह इति यष्वेतत् तानार्यान् संप्रचक्षते—भरतमुनिः। 'वृत्तेनहि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया—व्यासदेवः' आर्य—अर्यते इति, ऋ + ण्यत्, 'कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनारन्'। तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः—वशिष्ठः।

प्रयोग—अभिनय, प्रयोग प्रधानं हि नाट्य शास्त्रम्—मालवि०, प्र + युज् + घञ् प्रयोग का अर्थ है representation प्रस्तुतिकरण—

सूत्रधारः—आर्ये, सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया।[१] कुतः।

तवास्म गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥५॥

(इति निष्क्रान्तौ ॥)

प्रस्तावना

हिन्दी—आर्ये! तुमने (मुझे) ठीक स्मरण दिलाया। इस समय मैं निश्चित भूल गया था क्योंकि—अनुवाद—तुम्हारे मनोहर इस संगीत राग से मैं उसी प्रकार बलपूर्वक हर लिया गया हूँ, जिस तरह अतिवेगगामी हिरण से राजा दुष्यन्त हर लिये गये हैं।

१. पाठ-भेद—मया तत्—मारिष

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—अतिवेगवता शीलेन सारंगेण हरिणेन, एषः अयं नृपः दुष्यन्तः हारिणा-मनोहर शीलेन तव नट्या:गीतरागेण—गीतरागेण—गानमाधुर्येण, प्रसभं—बलात् हृतः—आकृष्टः।

टिप्पणी—हारिणा—हृ + णिनि—तृ० ए० व० हृतः—हृ + क्तः, अतिरंहसा—अतिशयितः रहः वेंगः यस्य + ब० व्री०, (१) सूत्रधार के मन के हरण होने का हेतु संगीत का संगीत होना है। अतः काव्यलिंग अलंकार है।, (२) ह, र, ग वर्णों की आवृत्ति होने से पूर्णोपमा अलंकार है। अनुष्टुप् छन्द—'श्लोके षष्ठ गुरुगेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्टादयो ह्रस्व' सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

एषः—शब्द निर्देशित करता है कि रंगमच पर रथारूढ़ दुष्यन्त और मृग प्रस्तुत होने को हैं। सारंग—सारं शवलितम अंगं यस्य—ब० व्री, प्रो० रे एवं गदकर के विचार से सारंग का अर्थ है 'सारंग मुनि' अर्थात् क्रोधी दुर्वासा के द्वारा दुष्यन्त हठात् शकुन्तला से दूर किया जायेगा, ऐसा अर्थ ध्वनित है। गुण एवं रीति—प्रसाद तथा वैदर्भी। बंगला संस्करण में 'राजा' का नाम दुष्यन्त दिया गया है। सारंग पुंसि हरिणे चातके च मतंगजे। शंवले त्रिषु इति मेदिनी। रंहस्तरसी तु रयः स्यदः जनः—अय०।

छन्द—अनुष्टुप्—अनुष्टुप के द्वितीय और चौथे चरण में चौथे अक्षर के बाद जब जगण आवे, तो 'पथ्यावक्त्र' छन्द होता है। 'पुमान् स्त्रियाः' (१/२/६७) नियम से जहाँ पर स्त्री-पुरुष दोनों को सूचित करना हो, वहाँ पुल्लिग के दो वचन का प्रयोग होता है, अतः निष्क्रान्तौ।

अनुवाद—इस तरह सूत्रधार और नटी दोनों (रंगमंच से) चले गये।

प्रस्तावना—प्र + स्तु + णिच् + पुत्र + शप्

(१) सा० द० में आचार्य विश्वनाथ ने इसकी निम्न परिभाषा दी है—नटी विदूषको वापि पारि पार्श्विक एवं वा। सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥ चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुता क्षेपिभिर्मिथः। आमुखं तन्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपिसा॥

जहाँ सूत्रधार नटी, विदूषक, या कोई सहायक सूत्रधार के साथ विभिन्न वाक्यों से परस्पर अपने कार्य के विषय में बात करें, उसे 'प्रस्तावना' कहते हैं। इसे 'आयुख या स्थापना' भी कहते हैं। सा० द० में इसे अवगलित और दशरूपक में प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना माना है।

(२) धनञ्जय के अनुसार—सूत्रधारो नटी ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्। स्वकार्यं प्रस्तुता क्षेपि चित्रोक्त्या यत् तदामुखम्॥ (दशरूपकम्)

(३) दशरूपक और राघवभट्ट के अनुसार यहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना है।

एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधार प्रयोगतः।

पात्र प्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः॥

(४) महाकवि कालिदास ने यहाँ संकेत किया है कि जैसे सूत्रकार संगीत में अपने कार्य को विस्मृत कर देता है वैसे शकुन्तला स्वकार्यवश दुर्वासा को भूल जाती है और शाप के कारण दुष्यन्त भी शकुन्तला को भूल जाता है। जैसे नटी सूत्रधार को नाटक का स्मरण कराती है, वैसे अँगूठी दुष्यन्त को शकुन्तला-प्रणय का स्मरण दिलाती है। इस प्रस्तावना के ३ भेद हैं—१. कथोद्घातक, २. प्रवर्तक, ३. प्रयोगातिशय ४. अवगलित।

विशेष—जो सूत्रधार का अनुचर हो और उससे कम गुणों वाला हो, उसे परिपार्श्विक कहते हैं।

मारिष—मारिष्यंति हिनस्ति—आदरणीय सम्बोधन—किसी मुख्य पात्र को सादर सम्बोधित करने के लिए सूत्रधार द्वारा प्रयुक्त रीति— दे०—आप्टे—शब्दकोश—पृ०७९६ इस नाटक में 'विस्मृति' एक अनूठी घटना है जो इसमें घटती है, जिस पर पूरा नाटक आश्रित है। काले महोदय—प्रसंग हृतः का अर्थ Forcibly led away, गीतरागेण—ravishing melody of your song करते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च)

सूतः—(राजानं मृगं चावलोक्य) आयुष्मन्,

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ॥ ६ ॥

हिन्दी—तदनन्तर हिरण का पीछा करते हुए बाण और धनुष हाथ में लिये हुए राजा और सारथि रथ पर आरुढ़ होकर रंगमंच पर प्रवेश करते हैं।

सूतः—हिन्दी अनु०—सारथि, राजा और हरिण को देखकर कहता है—हे चिरञ्जीवी! मैं कृष्णसार मृग और प्रत्यञ्चा चढ़े धनुष वाले आप पर दृष्टि डालते हुए मृग का रूप धारण करने वाले (यज्ञ) का पीछा करने वाले आपको मानो साक्षात् भगवान शंकर के रूप में देख रहा हूँ।

संस्कृत व्याख्या—अस्मिन् कृष्णसारे, मृगविशेषे, अधिज्यकार्मुके-आरोपित गुणशरासने, त्वयि दुष्यन्ते, चक्षुः ददत्-दृष्टि दंदत्—कुर्वन, मृगानुसारिणं—मृगरूपधारिणं यज्ञानुसरन्तं साक्षात् पिनाकिनम्—शिवम् इवष पश्यामि—अवलोकयामि (चिन्तयामि)

टिप्पणी—नाट्यशास्त्र प्रणेता भरतमुनि के अनुसार सूत रथी को आयुष्मन् कहें। 'आयुष्मन्नी वाच्यन्तु रथी सूतेन सर्वदा्'। क्योंकि रथी बड़ी आयुवाला एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति होता थां।

कृष्णश्च असौ सारश्च—कर्मधा० समा०, अधिश्च कार्मुकम्—अधिज्यं कार्मुकंयस्य—ब० व्री०, कर्मन् + उकञ्—कार्मुकं, पिनाकिनम्—धनुष विशेष (पिनाक) को धारण करने वाले शिव, पिनाक + इनि—पिनाकिन्, यहाँ पौराणिक आख्यान संकेतिक है। महाभारत एवं पुराण दोनों से (शिव एवं वायु पुराण) साहित्यों में यह कथा आई है। दक्ष प्रजापति, जो शिव के श्वसुर थे, उन्होंने अपने अश्वमेध यज्ञ में शिव को आमंत्रित नहीं किया और यज्ञ में उपस्थित पार्वती का अपमान किया एवं शिव की निन्दा की। पार्वती ने अपने पति का अपमान न सह पाने के कारण योगाग्नि में अपने को भस्म कर दिया। इस समाचार से अत्यंत क्रुद्ध होकर शिव ने दक्ष को मार डाला। उस समय मृग का रूप धारण करके यक्ष भागा, अपने धनुष पर बाण रख कर शिव ने उसका पीछा किया।

शरेण सहितः सशरः—सहार्थक ब० व्री०, सशरश्च असौ, तादृशौ हस्तौ 'यस्य—ब० व्री, सूत—सू उत्पन्न करना + क्त, सुवति अश्वान् इति सूतः—क्षत्रिय वर्ण द्वारा ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न जाति को सूत कहते हैं। राजा इन्हें सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखते थे। ततः पविशति—यहाँ से मुख्य कथा प्रारम्भ हो रही है। इतिवृत्त ३ प्रकार का होता है, प्रख्यात, उत्पाद्य, मिश्र। यहाँ प्रख्यात इति वृत्त है, जो महाभारत एवं पद्मपुराण से ग्रहीत है। यहाँ दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है जो अतिगंभीर, क्षमावान्, अहंकार को दबाने वाला, दृढ़व्रती है। यहाँ 'ततः प्रविशति' से द्वितीय अङ्क तक 'मुख सन्धि' है। अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली 'मुख सन्धि' है—'मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थ रस सम्भवा।'

अलंकार—'इव' पद से यहाँ दुष्यन्त की शिव के रूप में सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है। यहाँ विशेष अलंकार है क्योंकि एक ही चक्षु एक साथ सूत, राजा और मृग को देख रही है।

छन्द—अनुष्टुप।

देवधर एवं प्रो० काले 'मृगानुसारिणं' का अर्थ Chasing the deer करते हैं वे कृष्णसार का अर्थ Antelope करते हैं।

राजा—सूत, दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः। अयं पुनरिदानीमपि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः[१]
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥ ७॥
(सविस्मयम्) तदेष कथमनुपतत एव मे प्रत्यनप्रेक्षणीयः संवृतः ।

हिन्दी—राजा—हे सारथि, इस हिरण से हम लोग बहुत दूर तक खिंच गये (हमे दूर कर दिया) देखो, यह अब भी, पीछे दौड़ते हुए रथ पर दृष्टि बाँधे, (टकटकी लगाये) रथ पर गर्दन मोड़कर मनोहरता से पुनः-पुनः दृष्टिपात करता हुआ बाण-प्रहार के डर से पिछले अर्ध भाग को अगले शरीर में अधिक समेटे हुए, थकावट के कारण खुले मुख से गिरते हुए आधे चबाये गये कुशों से मार्ग को व्याप्त करने वाला, ऊँची उछालों से आकाश में अधिक परन्तु पृथ्वी पर कम दौड़ पा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—राजा दुष्यन्तः सूतं कथयति-पश्य,—अवलोकय, अनुपतति—पश्चात् धावति, स्यन्दने—रथे, ग्रीवायाः कन्धरायाः, अपरवृत्या इति यथा स्यात्तथा तेन अभिरामं मनोहरं, मुहुः बारम्बारं, दत्त दृष्टिः बद्ध चक्षुः, शरपवनभयात्—बाणसम्पात शङ्क्या पश्चार्द्धेन[२]—शरीरस्यार्द्धभागेन, भूयसा—अधिकेन, प्रविष्टः प्रवेशं गतः, श्रमविवृत०—श्रमविकसित वदन पतद्भिः, अर्द्धावलीढैः—अर्द्धचर्वितैः, दर्भैः—कुशैः, कीर्णवर्त्मा—व्याप्तमार्गः, उदग्र प्लुतत्वात्—उच्चतरोत्प्लवनात्, वियति—आकाशे, बहुतर अधिकं, उर्व्याम्—पृथिव्याम्, स्तोके—अल्पं, प्रयाति—धावति, । प्रकृष्टं याति—रा० भ०, अत्र स्वभावोक्तिरलंकारः, स्रग्धरा छन्दः ।

टिप्पणी—व्याकरण—अनु + पत + शतृ— सप्त० ए० व०, स्यन्दने—स्यन्द्—स्यन्दते धावति इति स्यन्दनः दत्तदृष्टिः दत्ता दृष्टिः येन—ब० व्री०, प्रो० रे के अनुसार 'मुहुः' पद के साथ संगति न होने के कारण बद्धदृष्टिः पाठ अशुद्ध है। दृश् + क्त—दृष्टिः, परन्तु प्रो० गदकर मृग की सावधानी के कारण 'वद्ध दृष्टि०' पाठ अधिक उचित मानते हैं। शरश्च पतन—ष० तत्पु०-तस्मात्, हेतौ पञ्चमी, पश्चार्द्धेन—अपरस्यासौ अर्द्धः—कर्मधा० समा०, अपर को 'पश्च' आदेश होता है। मृग अपने पीछे के भाग को अगले भाग में समेटे हुए, गोलकी भूतं—गोला किये हुए—रा० भ०, अवलीढं— अव + लिह् + क्त (कर्म में) श्रमेण—विवृतं मुखं—तृ० तत्पु०, भ्रंश + णिनी तृ० ए० व०, कीर्णं वर्त्म येन—ब० व्री० ।

अलंकार—(१) यहाँ उत्प्रेक्षावाचक 'इव' शब्द के अभाव के कारण 'गूढोत्प्रेक्षा' अलंकार है (२) यहाँ गर्दन टेढ़ी करना, रथ की ओर देखना, शरीर को सिकोड़ना, थकने से मुँह फैलाना एवं ऊँची उछालों को भरना आदि हिरण की स्त्राभाविक चेष्टाओं का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है। (३) छन्द-स्रग्धरा-म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रग्धरा कीर्तितेया। और ३ यगण तों तथा ३ बार ७-७ अक्षरों पर विश्राम हो तथा प्रत्येक चरण में २१ अक्षर हों। (४) काव्यप्रकाशकार मम्मट के अनुसार भयानक रस, परन्तु कुछ टीकाकार 'वीररस' मानते हैं।

विशेष—यहाँ महाकवि ने भयग्रस्त हिरण के द्रुतगति से भागने पर उसके अत्यन्त स्वाभाविक क्रियाओं का चित्रण किया है, जो प्राकृतिक होने के साथ मनोवैज्ञानिक भी है। चित्रण की यह विद्या

१. नि० सा०—बद्धदृष्टिः (टकटकी लगाए हुए)
२. अपरस्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कवि की अद्वितीय काव्य प्रतिभा को व्यक्त करता है। काले महोदय दत्त दृष्टि का Flinging a glance, अवलीढ Half chewed, प्रयाति Traverses more through the sky and less on ground अर्थ करते हैं।

कोश—अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः—अप०, सर्वसंता वसुभती वसुधोर्वी वसुन्धरा + अयम्०। भीतिर्भी साध्वसं अप०।

(संविस्मयम्[1]) तदेषः कथयनुपतत एव मे प्रयत्न प्रेक्षणीयः संवृत्तः[2] ?

(आश्चर्य के साथ) तो यह मृग पीछा करते हुए मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक देखने योग्य कैसे हुआ ?

सूतः—आयुंष्मन्, उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद् रथस्य मन्दीकृतो वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः। सम्प्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति।

हिन्दी—हे आयुष्मन्! यह ऊँची-नीची भूमि है, अतः मैंने घोड़े का लगाम खींच कर रथ का वेग धीमा कर दिया, जिससे यह हिरण दूर निकल गया था। इस समय (आपके) समतल भूमि पर स्थित होने से आपके लिए इसका प्राप्त होना कठिन नहीं होगा।

राजा—तेन हि मुच्यन्तामभीषवः।

हिन्दी—तो घोड़े की लगाम ढीली कर दो।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, पश्य पश्य—

हिन्दी—महाराज की जैसी आज्ञा!, (रथ के वेग को दिखाकर)
आयुष्मन्, देखिए, देखिए—

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ॥८॥

अन्वय—रश्मिषु मुक्तेषु (सत्सु) अमी रथ्याः मृगजवाक्षमया इव निरायतपूर्वकायाः निष्कम्पचामरशिखाः निभृतोर्ध्वकर्णाः आत्मोद्धतैः अपि रजोभिः अलङ्घनीयाः (सन्तः) धावन्ति।

हिन्दी—लगाम के ढीली करने पर अश्व मानो रथ के वेग को न सह पाने के कारण शरीर के अग्रभाग को फैलाए, स्थिर कलँगी के अग्रभाग वाले एवं शान्त कर्णों को ऊपर उठाये हुए, अपने से उठाई गई (खुरों से उड़ाई गई) धूलि से आगे होकर दौड़ रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—रश्मिषु प्रग्रहेषु, मुक्तेषु—शिथिलेषु, अमी रथ्याः—अश्वाः मृगजवाक्षमयेव—हरिणवेगासहनशीलतया इव, निरायत० विस्तारित देहपूर्वभागाः, निष्कम्प० निश्चल—शिरोभूषणानुभागाः, निमृतोर्द्ध०—स्थिराः अर्द्धकर्णाः येषां ते, आत्मोद्धतैः स्वखुरोत्थितैः अपि

---

१. नि० सा०—सविस्मयम् इति नास्ति।
२. नि० सा०—संवृत्तः इति नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रजोभिः धूलिभिः पारुंभिः, अलङ्घनीयाः—अनतिक्रमणीयाः, धावन्ति—वेगेन गच्छन्ति, स्वभावोक्तिः उत्प्रेक्षा अनुप्रासश्च अलंकाराः, वृत्तः—वसन्ततिलका।

टिप्पणी—मुच + क्त—मुक्तः, ब० व०, रश्मिषु—अश्नुते अश् व्याप्तौ—'अश्नोते रशश्च' अश् + मि—अश् को रश आदेश, नितराम आयतः पूर्वकायः येषां ते—ब० व्री०, निष्कम्पाः चामराणां शिखा येषां— ब० व्री०, चमरी मृग के केश से बने पदार्थ को 'चामर' कहते हैं, जो वायु करने का साधन है, निभृताः ऊर्ध्वाश्च कर्णाः येषां—ब० व्री०, निभृत—निश्चेष्ट, क्रिया रहित, मो० विलियम 'पीछे की ओर झुके हुए अर्थ' करते हैं, जो यथार्थ नहीं। आत्मोद्धतैः—अपने खुरों से उठी धूलि से आगे, उत् + हन + क्त—उद्धत, रथ्याः—रथ्यो वोढा रथस्य यः—अयं, रथं वहन्ति ये—रथ + यत्—प्र० वि० ब० व०, श्लोक के ४ विशेषण अश्वों के तीव्र गति को व्यंजित करते हैं, लङ्घ + अनीचर—जव—वेग, अक्षमा—असमर्थ होने वाले ये घोड़े। मृगाणां जवः कस्मिन क्षमा—तत्पु०।

अलंकार—(१) दौड़ते अश्वों का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार (२) हिरण के वेग को न सह पाने के कारण अश्वों के तीव्र गति की संभावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार। (३) प्रसादगुण तथा वैदर्भी रीति। कुछ लोग ओज गुण भी मानते हैं।

छन्द—वसंततिलका—तभजाज गौगः जहाँ तगण, भगण, दो जगण एवं दो गुरु वर्ण हों

कोश—आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म च—अथ किरण प्रग्रहो—रश्मि—अभ०।

काले ने मुक्त का अर्थ Reins being loosend, रथ्यः—Steeds अक्षमा Not to be over-taken by dust. निष्कम्प—Motion less निभृत Steady किया है।

विशेष—महाकवि कालिदास शास्त्रज्ञ होने के साथ बहुज्ञता से परिचित हैं। यह श्लोक महाकवि के पशु-विद्या की विज्ञता का परिचायक हैं।

राजा—सत्यम्। अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः। तथा हि—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलतां
यदद्धा विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किंचित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्॥ ९॥

हिन्दी—राजा—सत्य है, ये घोड़े सूर्य और इन्द्र के अश्वों को भी अतिकान्त कर रहे हैं।

टिप्पणी—हरित्—क्रियते एभिरिति हरिः—यास्कः हरति इति हरिः—इन्द्र, सूर्य के घोड़े को हरित एवं इन्द्र के घोड़े को 'हरिः' कहते हैं। ये दोनों वैदिक प्रयोग हैं। प्रो० गदकर के अनुसार ये वैदिक प्रयोग सामान्य पाठक या श्रोता के लिए बुद्धिगम्य नहीं वाजिनः—वाज + इनि = अवश्यं व्रजन्ति इति वज्र गतौ + णिनि, वाजः वेगः यस्य— ब० व्री०।

हिन्दी—रथ के वेग के कारण जो वस्तु देखने में छोटी थी वह अकस्मात विशाल हो जाती है, जो वस्तु (वृक्षादि) वस्तुतः एक दूसरे से टूटी हुई है, वह जुड़ी हुई सी प्रतीत होती है, जो वस्तु स्वभावतः कुटिल है, वह भी नेत्रों में सीधी सी दिखाई देती है, क्षणभर के लिए कोई वस्तु न मुझसे दूर है, न मेरे समीप।

संस्कृत व्याख्या—रथस्य स्यन्दनस्य जवः वेगः तस्मात् यत् यद्वस्तु आलोके—दर्शने, सूक्ष्मं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षुद्रम्, तत् सहसा—झटिति, विपुलतां—विशालतां, व्रजति—याति, प्राप्नोति, यत् अद्धा वस्तुतः, विच्छिन्न—कुटिलं तत् कृतसंधानम्, परस्पर मिलितमिव, 'भवति—जायते', यत् प्रकृत्या स्वभावतः, वक्रं—कुटिलः, तदपि नयनयोः नेत्रयोः, समरेखं—सरलं, क्षणम—क्षणमात्र मपि किञ्चित् न मे दूरं, न पार्श्वे समीपे (अस्ति) अत्र स्वभावोक्तिः, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, अनुप्रासाश्च अलंकाराः, शिखरिणी वृत्तम्।

विशेष—यहाँ रथ के उद्धत गति का स्वाभाविक वर्णन किया है एवं रथारूढ़ पुरुष द्वारा किये गये प्रत्यक्ष अनुभवों का महाकवि ने यथार्थ चित्रण अंकित किया है।

टिप्पणी—आलोके— आ +लोक + घञ—सप्त० ए० व०, वि + छिद + क्त, 'रदाभ्यां निष्ठातो से द' के बाद क्त को न, कृतं संधानं यस्य—ब० व्री०, समरेखं—समरेखा यस्य ब० व्री०, रथस्य जवात—हेतौ पञ्चमी।

(१) अलंकार—यहाँ तीव्र गति से दौड़ते वाहन की स्थिति का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार, 'इव' पद उत्प्रेक्षा अलंकार है, नमे दूरे रंग में पार्श्वे से यथा संख्य अलंकार, यहाँ छोटी वस्तु का बड़ा होना, पृथक् का मिश्रित होना आदि वर्णन होने से विरोधाभास अलंकार है। वस्तुतः वस्तु ऐसी रहती नहीं, केवल देखने में प्रतीत होती है।

(२) छन्द—शिखरिणी—रुद्रैश्छिन्ना यमन सभलागः शिखरिणी—जिसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण लय एवं गुरु वर्ण हो तथा ६ तथा ११ वर्णों पर यति (विराम) हो।

(३) साहित्य के ३६ नाट्यालंकारों में 'कृष्णसारे' से यहाँ तक 'विभूषण' नाट्यभूषण है। जहाँ गुणों, उपमादि अलंकारों एवं आभूषण के समान बहुत से युक्त वर्णन हो, उसे 'भूषण' नामक नाट्यालंकार कहते हैं।

सूत, पश्यैनं व्यापाद्यमानम्। (इति शरसन्धानं नाटयति)

हिन्दी—हे सारथि, इस मारे जाते हुए (हरिण) को देखो!
(इस तरह राजा दुष्यन्त बाण चलाने का अभिनय करते हैं)
नेपथ्ये—(पर्दे के पीछे से)

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

हिन्दी—हे राजन्! यह तपोवन का मृग है, यह वध के योग्य नहीं, वध के योग्य नहीं।

सूतः—(आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु ते बाणपथवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः।

हिन्दी—(आश्रम मृग सम्बन्धी बात सुनकर तथा देखकर) आयुष्मन् आपके तथा इस बाण के लक्ष्य में स्थित, हरिण के बीच तपस्वी आ गये हैं।

राजा—(ससंभ्रमम्) तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः।

हिन्दी—(घबड़ाहट के साथ राजा सूत से कहते हैं) तो घोड़ों की लगाम रोको।

सूतः—तथा। (इति रथं स्थापयति)

हिन्दी—ठीक है। (रथ को रोकता है।)

(ततः प्रविशत्यात्मनातृतीयो वैखानसः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—(तब दोनों शिष्यों के साथ तपस्वी प्रवेश करता है)

वैखानसः—(हस्तमुद्यम्य) राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

हिन्दी—(हाथ उठाकर) हे राजन्, यह आश्रम मृग है, यह मारने योग्य नहीं है। मारने योग्य नहीं है।

टिप्पणी—राजन्—भरतमुनि के अनुसार ऋषि लोग राजा को 'राजन्' सम्बोधन करते हैं—'राजन् ऋषिभिर्वाच्यः', वैखानसः—विखनसं ब्रह्म वेति असौ अथवा विखनसं ब्रह्माणं वेत्ति तपसा असौ, वैखानसो वनवासो वानप्रस्थश्च तापसः—वैजयन्ती हन्तव्यः—हन् +तव्य। धार्मिक जीवन के तीसरे आश्रम में प्रवेश करने वाला ब्राह्मण, मानव जीवन के पचास वर्षों के अनन्तर मनुष्य सपत्नीक या बिना पत्नी के इस वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है एवं तपस्या करता है। इनके निवास भूमि को 'आश्रम' कहते हैं, जहाँ हिंसा सर्वथा वर्जित होती है, वने वनसमूहे वा प्रतिष्ठते, वन + स्था + क दे० आप्टे, पृ० ९१७, वन + अण—वानम् स्वार्थे।

न खलु न खलु[1] बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥ १० ॥
तत् साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम् ।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ॥ ११ ॥

अन्वय—अस्मिन् मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशौ अग्निरिव अयं बाणः न खलु न खलु संनिपात्यः। बत हरिणकानाम् अतिलोलं जीवितं च क्व, निशितनिपाताः वज्रसाराः ते शराः च क्व?

हिन्दी—इस सुकुमार हरिण के शरीर पर पुण्य-समूह पर अग्नि के समान यह बाण न चलाइये, न चलाइये। खेद है कि कहाँ हरिणों का अत्यन्त चंचल जीवन और कहाँ तीक्ष्ण प्रहार वाले सहश आप के बाँण? इसलिए, अच्छी तरह चढ़ाये इस (बाण) को उतार लीजिए। आपका आयुध (बाण) पीड़ितों की रक्षा है, निरपराधों पर प्रहार के लिए नहीं।

संस्कृत व्याख्या—अस्मिन्—एतस्मिन्, मृदुनि—कोमले, मृगशरीरे—हरिणशरीरे, पुष्पराशौ—कुसुमपुञ्जे, अग्निरिव—वह्निरिव, अयं बाणः—एष बाणः, न खलु—निश्चयेव, संनिपात्यः—निसेयाः, प्रहरणीयः, बत खेदे, हरिणकानाम्—बालमृगाणां, अतिलोलम्—अतिशयचञ्चलं, सुकुमारं, जीवितं—जीवनं, क्व—कुत्र, निशितनिपाताः—तीक्ष्णप्रहाराः, वज्रसाराः—कलिश कठोरा ते तव, शराः—बाणाः, अत्र विषमालंकार अर्थान्तरन्यासश्च, मालिनी छन्दः।

टिप्पणी—सम् + नि + पत् + णिच + यत् न खलु से दो बार पद का प्रयोग सूचित है। हरिण + क प्रत्यय (अनुकम्पा अर्थ में) निशितः निपातः येषां ते ब० व्री० वज्रवत् सारो येषां ते—ब० व्री. क्व-क्व के प्रयोग से दो वस्तुओं (कोमल हरिण शरीर एवं कठोर (बाण) में महान् अन्तर सूचित है। जैसे—'क्वसूर्य प्रभवो—वंशः रघुवंश,'।

अलंकार—(१) दो विषम वस्तुओं में तुल्य होने से विषम अलंकार, (२) पूर्वार्द्ध का कोमल मृग पर कठोर बाण प्रहार समर्थ उत्तरार्द्ध (वज्र के समान तुम्हारे बाण-प्रहार) से होने के कारण अर्थान्तर न्यास अलंकार है। (३) राजा के शस्त्र-धारण का हेतु प्रपरिक्षण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

---

१. नि० सा०—न खलु [illegible] इति—अयं [illegible] नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छन्द—मालिनी ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः—जिसमें २ नगण, मगण, २ यगण हों एवं ८ तथा ७ वर्णों पर यति हो।

रीति एवं गुण—वैदर्भी एवं प्रसाद। राघवभट्ट के संस्करण में प्रस्तुत श्लोक का अभाव है।

राजा—एष प्रतिसंहृतः[1]। (इति यथोक्तं करोति।)

हिन्दी—यह (बाण मैंने उतार दिया) (ऐसा कथानुसार करता है)

वैखानसः—सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः।

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव ।
पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ॥ १२ ॥

हिन्दी—पुरुवंश में प्रदीपस्वरूप आप (दुष्यन्त को) कोयह उचित है।

अन्वय—यस्य पुरोः वंशे जन्म, तव इदं युक्तरूपम्। एवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनं पुत्रम् आप्नुहि।

हिन्दी—जिसका पुरुवंश में जन्म है, ऐसे आपके लिए यह अति उचित है, इस प्रकार अपने गुणों से युक्त आप चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करें।

संस्कृत व्याख्या—यस्य—भवतः, पुरोः—ययाति वंशे, जन्म—उत्पत्तिः, तव—दुष्यन्तस्य, इदं—एतद्, युक्तरूपं—अतिशयेन युक्तम्, उपपन्नं, एवंगुणोपेतम्—एतादृशैर्गुणैर्युक्तम्, चक्रवर्ति-सार्वभौमम्, पुत्रं—तनयं, आप्नुहि—लभस्व।

टिप्पणी—युक्तरूपम् - युक्त + रूपम् प्रसंसायां रूपम् + णिनि, पुत्रम् - पुम् नाम नरकात् त्रायते— म० स्मृ०, पुम्नाम्नो नरकात् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः—पद्मपुराण चन्कवतिर्चनम्—चक्रं राम समूहं याक्तयितुं शीलं—यस्य—ब० व्री० चक्रे भूमण्डले वर्तितुं शीलम् अस्य, या चक्रं सैन्मं चालयितुं शीलं यस्य—ब० व्री० सर्वेयः क्षितिपालेभ्यः नित्यं गृह्णाति यो धरम्। स संप्राप्ति विज्ञेयश्चक्रवर्ती स एव हि ॥ —पुराण मत के अनुसार ज्ञात क्षत्रियों के सूर्य एवं चन्द्र—इन वंशों में दुष्यन्त चन्द्रवंशी थे। जिसमें भरत, बलराम, कृष्ण आदि हैं।

इतरौ—(बाहूउद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि।

हिन्दी—दोनों (तपस्वी हाथ उठाकर) चक्रवर्ती पुत्र को अवश्य ही प्राप्त करो।

राजा—(सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम्।

हिन्दी—(प्रणाम के साथ) मुझे स्वीकार है।

वैखानसः—राजन्, समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः।

हिन्दी—राजन, हम लोग समिधा लाने के लिए निकले हैं। यह मालिनी नदी के तट पर कुलपति कण्व ऋषि का आश्रम दिखाई दे रहा है। यदि आपके अन्य कार्य में विलम्ब न हो तो प्रवेश करके अतिथि सत्कार ग्रहण कीजिए।

टिप्पणी—समिध्—सम् + इन्ध् + क्विप्—यहाँ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः से चतुर्थी प्रयोग, मालिनीतीरस्य अनु—अव्य० समा० अतति इति अतिथिः (अत् + इथिः), मुनीनां दश

१. प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम् इत्यपि पाठः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

साहस्त्रं योऽन्न पान्नादि पोषणात्। अध्यापयति विप्रर्षिश्चासौ कुलपतिः स्मृतः।—विद्यासागर, मालिनी नदी—गंगा नदी की सहायक एक नदी है जो कोटद्वार के पास बहती है। इसका दूसरा नाम 'मन्दाकिनी' है। ''एकरात्रं तु निवसन्ततिथि ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथि रुच्यते।'' समिदाहरणाय से सत्कारः तक उल्लेख नामक नाट्यालंकार है।

अपि च—

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य ।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ॥ १३ ॥

अन्वय—तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः रम्याः क्रियाः समवलोक्य मौर्वीकिणाङ्क मे भुजः क्रियत् रक्षति, इति ज्ञास्यसि।

हिन्दी—तपस्वियों के विघ्नसहित सुन्दर (यज्ञादि) क्रियाओं को देखकर प्रत्यञ्चा के आघात चिह्नों से अंकित मेरी भुजा ऋषियों मुनियों की कितनी रक्षा करती है, इसका भी आपको ज्ञान होगा?

संस्कृत व्याख्या—तपोधनानां—तपस्विजनानां, प्रतिहतविघ्नाः—निरस्तान्तरायाः, रम्याः—मनोहराः, क्रियाः—यज्ञादिकर्माणि, समवलोक्य—दृष्टा, मौर्वीकिणाङ्क—ज्याया चिह्नितः, मे—मदीय, भुजः—बाहु, कियद्—कीट्टक्, रक्षति—पालयति, इति—ज्ञास्यति, अनुबोधिष्यति, अनुभविष्यति, अत्र काव्यलिंग, पुनरुक्तवदाभास, परिकरश्च अलंकाराः आर्या छंदः।

टिप्पणी—तप एवं धनं येषां—ब० व्री०, प्रतिहता विघ्नाः यासां—ब० व्री०, विघ्नोअंत्तरायः प्रत्यूहः—अम०, रम्या—रम् + यत्, क्रियाः—ये क्रियाएँ ९ प्रकार की हैं जैसे-(१) शिक्षा, पूजा, चेष्टा आदि। आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम्। उपायाः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रियाः॥ किणा एवं अङ्क—इन दोनों का समानार्थ प्रतीत होने से पुनरूक्तवदाभास अलंकार है। (२) जन्म यस्य से तामेव प्रस्थामि तक मुख सन्धि का 'उपक्षेप' नाम अङ्ग है—काव्यार्थस्यु समुत्पतिरुत्क्षेप इति स्मृतः। (३) यहाँ शकुन्तला की कथा का बीज है जैसे अतिथि सत्कार के द्वारा राजा से प्रेम, उसको शाप-प्राप्ति एवं शाप की निवृत्ति।

मौर्वी—मूर्वी—मूँज नामक घास से बनी डोरी को मौर्वी कहते हैं, इससे क्षत्रिय के धनुष की डोरी बनती थी—क्षत्रियस्तु मौर्वीज्या—म० स्मृ०, किण—प्रत्यज्या की रगड़ से बने आघात को किण कहते हैं। यहाँ 'ज्ञाप्ति' नामक नाट्य लक्षण है—'ज्ञप्तिः केनचिदंशेन किञ्चिद् यत्रानुमीयते।' भुजः—में एक वचन होने से राजा को अदत्र रक्षा के लिए दूसरे की अपेक्षा नहीं ऐसा अर्थ ध्वनित है। किणाकं से राजा का महाप्रतापी होना व्यजित है।

राजा—अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः।

हिन्दी—क्या कुलपति यहाँ (आश्रम में) उपस्थित हैं।

वैखानसः—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।

हिन्दी—अभी ही अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि-सत्कार के लिए नियुक्त करके, उसके प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ गये हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—भवतु। तामेव द्रक्ष्यामि[१]। सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः कथयिष्यति[२]।

हिन्दी—अच्छी बात है। उसी से मिलूँगा। निश्चित ही वह मेरी श्रद्धा जानकर महर्षि से बतायेगी।

वैखानसः—साधयामस्तावत्। (इति सशिष्यो निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—अच्छा हम चलते हैं (इस तरह शिष्य के साथ तपस्वी बाहर चला जाता है)

राजा—सूत, नोदयाश्वान्[३]। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।

हिन्दी—राजा—हे सारथि, घोड़ों को आगे बढ़ाओ, पवित्र आश्रम के दर्शन से तबतक अपने को पवित्र करें।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति भूयो रथवेगं रूपयति।)

हिन्दी—जैसी महाराज की आज्ञा। (इस तरह रथ के वेग का अभिनय करता है)

राजा—(समन्तादवलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एवायमाभोगस्तपोवनस्येति[४]।

हिन्दी—(चारों ओर देखकर) हे सारथि, बिना बताये हुए भी यह ज्ञात ही होता है कि यह तपोवन की सीमा है।

सूतः—कथमिव।

हिन्दी—यह कैसे?

विशेष—सोमतीर्थ—कुछ विद्वानों के अनुसार पानीपत के पास स्थित तीर्थ क्षेत्र है। कुछ के अनुसार सोमतीर्थ प्रभासतीर्थ का दूसरा नाम है, जो गुजरात प्रदेश में काठियावाड़ के पास सोमनाथ मन्दिर के समीप स्थित है। श्रीमद्भागवत् के अनुसार जब दक्ष ने चन्द्र को क्षय रोग से ग्रस्त होने का शाप दिया, तो उसने उससे मुक्त होने के लिए इसी स्थान पर तपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप वह क्षयरोग से मुक्त हो गया था।

कुलपतिः—दस हजार छात्रों एवं मुनियों का पोषण करने एवं शिक्षा देने वाले को कुलपति कहते हैं—आचार्यो बहुशिष्याणां मुनीनामग्रणीस्तु यः। व्रत यज्ञादि कर्माद्यः स वै कुलपतिः स्मृतः॥[५] मालिनी-नदी का दूसरा नाम मन्दाकिनी है, यह गंगा की सहायक एवं कोटद्वार के पास बहती है। अतिथि—अविद्यमाना तिथिर्यस्य सः, अतति गच्छति, न तिष्ठति इति अतिथिः, अत+इथिन्।

राजा—किं न पश्यति भवान्। इह हि—

हिन्दी—क्या आप नहीं देख रहे हैं, क्योंकि यहाँ पर—

---

१. पश्यामि—काले, २. करिष्यति—काले,
३. चोदय (हाँको) Drive Horses, ४. आश्रमाभोगः—नि० सा०
५. पद्मपुराण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः॥ १४॥

अपि च—

कुल्याम्भोभिः[१] पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भांकुरायां
नष्टाशंका हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति॥ १५॥

अन्वय—(क्वचित्) तरूणाम् अधः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः नीवाराः (दृश्यन्ते), क्वचित् इङ्गुदीफलभिदः प्रस्निग्धाः उपलाः एव सूच्यन्ते, (क्वचित्) विश्वासोपगमात् अभिन्नगतयः मृगाः शब्दं सहन्ते, (क्वचित्) च तोयाधारपथाः वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः (दृश्यन्ते)।

हिन्दी—कहीं वृक्षों के नीचे तोतों से पूर्ण कोटरों के द्वार से नीचे गिरे नीवार (जंगली धान्य) दिखाई दे रहे हैं, कहीं इंगुदी फलों को तोड़ने वाले चिकने पत्थर दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं विश्वास हो जाने से सहज (निर्भय) स्वाभाविक चाल वाले हिरण कोलाहल सहते हैं या धैर्यपूर्वक सुन रहे हैं, कहीं सरोवरों के मार्ग वल्कल वस्त्रों के प्रान्तभाग से गिरे हुए जल रेखाओं से चिह्नित दिखाई दे रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—क्वचित् तरुणां वृक्षाणाम् अधः तले भ्रष्टाः नीवाराः तरुविवराग्रच्युताः नीवाराः धान्यः विशेषाः दृश्यन्ते, क्वचित् इंगुदीफलभिद्ः—ऋषि तरुवदारकाः प्रस्निग्धाः सुचिक्कणाः उपलाः प्रस्तराः पाषाणाः सूच्यन्ते दृश्यन्ते, क्वचित् विश्वासोपगमात्—विश्वासलाभात्, अभिन्नाः गतयः येषां ते तादृशाः हरिणाः शब्दं सहन्ते, क्वचित् तोयाधारपथाः—जलाशय गमनमार्गाः—वल्कलरेखा—वल्कलमग्रोत्पन्न जलरेखाचिह्निताः—दृश्यन्ते।

टिप्पणी—तृण धान्यानि नीवाराः—अम०। नीवार एक प्रकार का धान्य है, जो वन में उगता है नि + वृ + घञ्, शुकाः गर्भे येषां ते—ब० व्री०, शुक—शुक् गतौ + क प्रत्यय, तेषां कोटराणां मुखेभ्यः भ्रष्टाः तत्पु०, शुक व्यास सुते कीरे—मेदिनी शुक का अर्थ यहाँ तोता है। पक्षी जो नीवार कणों को वृक्षों के कोटरों में अपने शावकों को खिलाते हैं, उनसे कुछ धान्य वृक्षों के नीचे गिर जाते हैं। इंगुदी फल भिदः—इंगुदींना फलानि भिन्दन्ति—उप० तत्पु०, इंगुदीफल भिद + क्विप्, इङ्गदी फल को तापस तरु इङ्गुदी तापसतरुः—अम०। तपस्वी लोग इंगुदी फल को खाने व प्रकाश करने में उपयोग करते हैं, पत्थरों से इनके चिकने फलों को तोड़ने के कारण पत्थर भी स्नेहयुक्त हो गये थे। शब्दं सहन्ते—निर्भय होकर सुनते हैं, पातञ्जल योग के अनुसार अहिंसारत रहने से प्राणी मनुष्यों के प्रति वैरभाव त्याग देते हैं और निर्भय बन जाते हैं। विश्वासस्य उपगमात्—ष० तत्पु०—वल्कल शिखा निष्यंद—तपस्वी लोग सरोवरों में स्नान के उपरान्त जब लौटते थे तब उनके वल्कल वस्त्रों के प्रान्त भाग से टपकती जल बूँदों से आश्रम मार्ग निसिक्त हो जाते थे। आ० आनन्दवर्धन के अनुसार—यह उत्तम काव्य का श्लोक है जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारी होता है। इसे 'ध्वनि काव्य' भी कहते हैं।

१. नि० सा०— कुल्याम्भोभिः अयं श्लोको नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलंकार—(१) आश्रम का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है जैसे पशुओं की निर्भयता, वल्कल वस्त्रों से मार्ग की सिक्तता आदि। (२) 'च' पर तीन वाक्यों का समुच्चय होने से समुच्चय अलंकार। (३) कारण से आश्रय रूप कार्य का अनुमान होने से अनुमानालंकार। अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्। (४) काव्यलिंग—यहाँ पत्थरों की सुचिक्कणता का हेतु इंगुदीफल का भेदन एवं मृगों के शब्द सहन का हेतु विश्वास प्राप्त करना है। (५) शार्दूल विक्रीडित छन्द—सूर्योश्वैर्मसजास्तता सगुखः शार्दूल विक्रीडितं अर्थात् प्रत्येक पद में १९ वर्ण, मगण, सगण, जगण, २ तगण, १ गुरु। इनमें १२ (आदित्य) एवं ७ (अश्व) वर्णों पर यति (विराम) होता है।

प्रसाद गुण—वैदर्भी रीति

ध्वनि—इस श्लोक से तपस्वियों के आश्रम की अहिंसा, शान्ति, निर्भयता एवं द्वेष राहित्य आदि भाव महाकवि ने व्यंजित किया है एवं आश्रमों में स्वभावतः विद्यमान शान्ति एवं मनोहर स्थिति का वर्णन है।

अन्वय—पवन चपलैः कुल्याम्भोभिः शाखिनः धौतमूलाः (सन्ति), आज्यधूमोद्गमेन किसलयरुचां रागः भिन्नः (दृश्यते), एते च नष्टाशङ्काः हरिणशिशवः छिन्नदर्भाङ्कुरायाम् उपवनभुवि अर्वाक् मन्दमन्दं चरन्ति।

हिन्दी—वायु से चञ्चल, कृत्रिम नदियों के जल से वृक्षों की जड़ें धुल गई हैं, हवन के धूएँ के उठने से किसलयों की कान्ति के समान लालिमा भिन्न हो गई है और ये निर्भय हरिण शावक समीप ही उखाड़े गये कुश काँटो वाली उपवन भूमि पर धीरे-धीरे संचरण कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—पवनचपलैः—वायु चञ्चलैः, कुल्याम्भोभिः—कृत्रिमनदीभिः, शाखिनः—वृक्षः, धौतमूलाः—प्रक्षालितमूलाः, आज्यधूमोद्गमेन—हविर्धूमोत्पन्नेन, किसलयरुचां—पल्लवकान्तिनां, रागः—लालिमा-भिन्नः, पृथगीभूतः एते—दृश्यमानाः, हरिणाः—मृगशिशवः, नष्टाशंका—निर्भयाः, छिन्नदर्भाङ्कुरायां—लूनकुशायां, उद्यान भूमि—उपवन धरायां, अर्वाक्—समीप एव, मन्दं मन्दं—शनैः शनैः, चरन्ति—क्रीडन्ति। अत्र काव्यलिङ्गं, अनुमान, समुच्चय, स्वभावोक्ति—अलंकाराः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी—निर्णयसागर प्रेस आदि प्रामाणिक संस्करणों में इसे प्रक्षिप्त मानकर छोड़ दिया गया है। अतः इसकी व्याख्या नहीं दी गई है।

छिन्नाःदर्भाणाम् अंकुरा येषां—ब० व्री०, यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द है इसके प्रत्येक पद में १७ वर्ण है मगण, भगण, नगण, रगण एवं २ गुरु वर्ण। इसमें ४-७ वर्णों पर यति। अम्बुधि (४) रस (६) नग (७)—मन्दाक्रान्ताम्बुधि रसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्॥

सूतः—सर्वमुपपन्नम्

हिन्दी—आपने जो कुछ कहा, सब ठीक है।

राजा—(स्तोकमन्तरं गत्वा) तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत्। एतावत्येव रथं स्थापय, यावदवतरामि।

हिन्दी—(कुछ आगे बढ़कर) आश्रम तपस्वियों को विघ्न न पहुँचाओ, अतः यहीं रथ रोको, जबतक मैं उतरता हूँ।

सूतः—धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्मान्।

हिन्दी—मैंने लगाम (रास) पकड़ ली है, आप उतरें।

राजा—(अवतीर्य) सूत, विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। (इति सूतस्याभरणानि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धनुश्चोपनीयार्पयति) सूत, यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः।

हिन्दी—विनीत वेष से तपस्वियों के आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। तो यह लो। (इस तरह महाराज दुष्यन्त अपने आभूषण एवं धनुष उतार कर सारथि को सौंपते हैं।) हे सारथि, जबतक मैं आश्रम वासियों को देखकर लौटूँ, तबतक तुम अश्वों की पीठ को गीला कर लेना।

सूतः—तथा। (इति निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—सारथि—वैसा ही होगा। (जाता है।)

राजा—(परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमद्वारम्। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य, निमित्तं सूचयन्)

हिन्दी—राजा (घूम कर और देखकर) यह आश्रम का द्वार है, तो इसमें प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करके निमित्त को सूचित करता हुआ)

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ १६ ॥

अन्वय—इदम् आश्रमपदं शान्तं, बाहुः च स्फुरति, इह अस्य फलं कुतः। अथवा भवितव्यानां सर्वत्र द्वाराणि भवन्ति।

हिन्दी—यह आश्रम स्थान शान्त है अर्थात् इस आश्रम के निवासी शम गुण युक्त हैं और मेरी (दाहिनी) भुजा फड़क रही है। यहाँ इसका परिणाम कैसे प्राप्त होगा? अथवा भावी घटनाओं के मार्ग सब जगह बन जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—इदं दृश्यमानम् आश्रमद्वारम् शमप्रधानं मे दक्षिणो हस्तः स्पंदते। इह—अस्मिन् तपोवने, भुजस्पन्दनस्य साफल्यं—कथं संभवति। किं वा भाविघटनानां उपायाः सर्वत्र जायन्ते।

टिप्पणी—(१) 'आश्रम' पद का लक्षणा से अर्थ आश्रम निवासी प्राणी है, (२) अद्‌भुतसागर के अनुसार दक्षिण भुजा का फड़कना सुन्दर स्त्री की प्राप्ति है—वामेतरभुजस्पन्दो वरस्त्रीलाभसूचकः। (३) यहाँ कथावस्तु के बीज की वृद्धि ही 'परिकर' है जो मुखसन्धि का द्वितीय अंग है। (४) यहाँ उत्तरार्द्ध के सामान्य से पूर्वार्द्ध के विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। (५) यहाँ पहले कही गई बात का निषेध करने के कारण 'आक्षेप' अलंकार है। (६) प्रसाद गुण—वैदर्भी रीति।

भवितव्यानां— Things destined to happen: find ingress everywhere—डॉ० काले।

ऐसे ही शकुन वर्णन भट्टिकाव्य—प्रथम सर्ग, विक्रमो० अङ्क ३, रघुवंश सर्ग ६ तथा १२ एवं हर्ष के नागानन्द नाटक में हैं, जीमूत वाहन को मलयवती की प्राप्ति हुई है। होनहार बलवान होता है—यह बात मालतीमाधव—अङ्क १०, गीतगोवि० ११ से भी प्रमाणित है। अवश्यं भाविनो भव्याः। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास और आक्षेप अलंकार है, छन्द—आर्या।

नेपेथ्ये—(नेपथ्य में)

इत इतः सख्यौ। (इदो इदो सहीओ।)

हिन्दी—सखियों इधर आओ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अये, दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते। यावदत्र गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अये, एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते। (निपुणं निरूप्य) अहो, मधुरमासां दर्शनम्।

हिन्दी—राजा—(कान लगाकर), अरे वृक्षवाटिका के दाहिनी ओर वार्तालाप जैसा सुनायी दे रहा है तो वहाँ पर चलता हूँ। (घूमकर और देखकर) अरे, ये तपस्वी कन्याएँ अपनी शक्ति के अनुरूप सिंचन घड़ों से छोटे पौधों को पानी देने के लिए इधर ही आ रही हैं (भलीभाँति देखकर) ओह, इन तपस्वी कन्याओं का दर्शन (स्वरूप) मनोहर है।

टिप्पणी—'एनया द्वितीयेन' से दक्षिणेन पद के योग से वाटिका में द्वितीया, स्वस्य प्रमाणम्—ष० तत्पु०, बालाश्च ते पादपाः तेभ्यः—कर्मधा० समास नेपथ्य में शकुन्तला की उक्ति शौरसेनी प्राकृत में है। नायिकानां सखीनां च शौरसेनी प्रकीर्तिता—भरत, कनति, कन्यते वा 'कनी दीप्तौ' कन् + यक् + टाप्—कन्यका अर्थात् जो प्रकाशित होती है, उसे कन्या कहते हैं। मधुरम् पद से आश्रम की कन्याओं का सौन्दर्यातिशय व्यंजित है, दर्शनम्—दृश् + ल्युट्।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥ १७॥
यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ।
(इति विलोकयन् स्थितः।)

अन्वय—यदि शुद्धान्तदुर्लभम् इदं वपुः आश्रमवासिनः जनस्य (अस्ति तदा) खलु उद्यानलता वनलताभिः गुणैः दूरीकृताः।

हिन्दी—अन्तःपुर में भी दुर्लभ यह शरीर यदि आश्रम निवासी व्यक्तियों का है, तो अवश्य ही उपवन की लताएँ वन लताओं से (सौन्दर्य, सुकुमारता आदि) गुणों के द्वारा तिरस्कृत की गई हैं।

तो कुछ समय इस छाया का आश्रय लेकर प्रतीक्षा करता हूँ। (इस तरह देखता हुआ खड़ा हो जाता है।)

संस्कृत व्याख्या—राजान्तःपुर दुष्प्राप्यं ईदृशं शरीरं चेत, तर्हि आश्रमवासिनः तपोवन वासिनः लोकस्य तदा खलु, उद्यानलताः वाटिकावीरुधः गुणैः वनलताभिः कानन लताभिः लावण्यादिगुणैः दूरीकृताः निराकृताः। अत्र निदर्शना अप्रस्तुप्रशंसा, दृष्टान्तालंकाराः, आर्या छन्दः।

टिप्पणी—शुद्धा उपधाशुद्धा रक्षका अन्ते समीपे अस्य इति शुद्धान्तः तस्मिन् दुर्लभम्—तत्पु०, दुर् + लभ् + खल् स्त्रयागारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम् शुद्धान्तश्चावरोधश्च—अम०। गात्रं सहननं वपुः—अम०, यहाँ लक्षणों से अन्तःपुर का अर्थ अंतःपुर की स्त्रियाँ है। कवि यहाँ कृत्रिम सौन्दर्य की अपेक्षा नैसर्गिक सौन्दर्य की उत्कृष्टता प्रतिपादित करता है। यहाँ पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दोनों वाक्यों की समाप्ति उपमा में होने से निदर्शना अलंकार है। यहाँ शकुन्तला रूप विशेष के प्रस्तुत होने पर उसका सामान्य कथन होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। यहाँ शकुन्तला की अद्वितीय कमनीयता वस्तु अलंकार ध्वनि से व्यंजित है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं आर्या छन्द।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्वचित् विशेषः सामायान्, सामान्यं वा विशेषतः । कार्यानिमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्सभम ॥ अप्रस्तुतप्रशंसा चेत् ॥

"The creepers of the garden surpassed by these of the forest in point of excellence."—Kale.

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला ।)

शकुन्तला—इत इतः सख्यौ । (इदो इदो सहीओ ।)

हिन्दी—(तब वृक्षों के सेचन रूप कार्य को करती हुई शकुन्तला सखियों के साथ प्रवेश करती है) शकुन्तला—सखियों इधर आओ, इधर आओ ।

अनसूया—हला शकुन्तले, त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि । येन नवमालिकाकुसुमपेलवाऽपि[1] त्वमेतेषामालवालपूरणे नियुक्ता । (हला सउन्दले, तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पिअदरेत्ति तक्केमि । जेण णोमालिआकुसुमपेलवा वि तुमं एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता ।)

हिन्दी—अनसूया—सखी शकुन्तला पिता काश्यप (कण्व) को आश्रम के वृक्ष तुमसे अधिक प्रिय हैं, यह मैं मानती हूँ जिससे नवमालिका के पुष्पों से भी अधिक कोमल होने पर तुम्हें इन थालों को भरने के लिए नियुक्त किया है ।

टिप्पणी—हला—सखियाँ परस्पर बात करने में 'हला' अव्यय का प्रयोग करती हैं 'समानाभिस्तथा सख्यो हला भाष्याः परस्परम्'—ना० शा० । तातश्चासौ काश्यपः—कर्मधा० समास, वृक्ष + कन् अत्यार्थे—लघु अर्थ में, नवमालिका कुसुमवत् पेलवा—उपमित कर्मधा०, Tender like the blossom of jasmine—Kale. पेलवा—Soft देवधर, आसमन्तात् लवं जलं आलाति गृहणाति इति आलवालम्—Basins of these काले । सं० नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नायिकाएँ एवं उनकी सखियाँ शौरसेनी प्राकृत बोलती हैं हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति । नायिकानां सखीनां च शौरसेनी प्रकीर्तिता—भरत । तातस्तु जनकः पिताः अम० । पेलवे कोमलं तनौ-शाश्वतः त्वत्—युष्मत्, तसिव् स्वार्थे तत्रभवान-पूज्य अर्थ में । काश्यप—'मरीचि के पुत्र' कश्यप सात प्रजापतियों में एक हैं ।

शकुन्तला—न केवलं तातनियोग एव । अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु । [ण केवलं तादणिओओ एव्व । अत्थि मे सोदरसिणोहो वि एदेसु ।] **(इति वृक्षसेचनं रूपयति ।)**

हिन्दी—केवल पिता का ही आदेश नहीं अपितु मेरा भी इन वृक्षों पर सगे भाई-सा स्नेह है । (इस तरह वृक्षों के सिंचन का अभिनय करती है ।)

---

१. 'अपि' इति नास्ति, त्वमपि—नि० सा०

अम० दोग्धि इति दुहिता—द्रह + तृच् अर्थात् जो माता-पिता के धनों का दोहन करती हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—कथमियं[1] सा कण्वदुहिता। असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः, यः इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते।

हिन्दी—क्या यह कण्व की पुत्री शकुन्तला है? निश्चय ही पूज्य कण्व अविवेकी हैं जिसने इसे तपोवन कार्यों में लगाया है।

टिप्पणी—सोदर स्नेह—इससे शकुन्तला का आश्रम वृक्षों के प्रति प्रेम अंकित है—समानम् उदरं यस्य सः: ब० व्री०, तेषु स्नेहः सप्त० तत्पु०, वोपसर्जनस्य—पा० सू० से संयुक्त अर्थ में सह का 'स' आदेश, Sisterly affection—Kale असाधु दर्शी undiscriminate—Kale, असाधुदर्शी— is not a good judge—रे,

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-
स्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलतां[2] छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥ १८॥

अन्वय—यः ऋषिः अव्याजमनोहरं इदं वपुः किल तपःक्षमं साधयितुम् इच्छति, स ध्रुवं नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुं व्यवस्यति।

हिन्दी—शकुन्तला का यह शरीर स्वाभाविक सुन्दर है। जो कण्व मुनि तपस्या सहने योग्य इसको बनाने की इच्छा कर रहे हैं, वे निश्चय ही नीले कमल के पत्ते की धार से शमी वृक्ष को काटने की चेष्टा कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—यः मुनिः कण्वः—अव्याजं स्वभावसुन्दरं, इदं—एतत्, शरीरं, तपः क्षमं—तपस्यायोग्यं साधयितुं—सम्पादयितुं, इच्छति—वाञ्छति, सः किल—स कण्वः, निश्चयेन नीलोत्पल पत्र धारया—इन्दीवर दलाग्रेण, शमी लतां छेत्तुं—कर्तितुम्, व्यवस्यति—कामथते समीहते।

टिप्पणी—अविद्यमानः व्याजः यस्मिन् ब० व्री०, तच्च मनोहरं—कर्मधा० समा०, मनोहरं—मनस्+हृ+अच्, नीलं च तत् उत्पलम्—कर्मधा०, नीला कमल शीतल चन्द्रिका में विकसित सुकुमार पुष्प है, इससे शकुन्तला का सौन्दर्य संवर्धित है। वि+अव+सो (दिवादी)—र्व्यवस्यति, Does purpose—Kale छेत्तुं—Cleave, अव्याज मनोहरं—artlessly beautiful—Kale, Charming—Deodhar.

अलंकार— (१) यहाँ अनेक वाक्य निदर्शना अलंकार है। (२) ध्रुवं से उत्प्रेक्षा अलंकार—'भद्रे शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येव मादयः।' (३) अव्याज मनोहरं में मनोहरता का कारण न होने से विभावनालंकार (४) यहाँ पूर्वार्ध में विरुद्ध कार्य संघटना होने से विषमालंकार है। (५) यहाँ सादृश्य के आधार पर असम्भव कर्म की कल्पना करने के कारण 'अभिप्राय' नामक नाट्य लक्षण है—सा० द० 'अभिप्राय वस्तु सादृश्याद द्भुतार्थ कल्पना।' (६) यहाँ शकुन्तला में राजा के पूर्व उत्पन्न राग की बहुलता प्रकाशित होने से 'परिकर' नामक मुख सन्धि का अङ्ग है—समुत्पन्नार्थं बाहुल्यं ज्ञेयं परिकरः पुनः। (७) वैदर्भी शैली—प्रसाद, माधुर्य गुण, व्यंजना, प्रधानता, (८) छन्द—वंशस्थ—जतौस्थतु वंशस्थ मुदीरितं जरौ, (९) कोशः— किल सम्भाव्य वार्तयोः.

नोट—(विशेष)- यहाँ कालिदास ने मानवीय मन का अन्तस्तल स्पर्शी चित्रण किया है। उनकी दृष्टि में अत्यन्त सुकोमल शकुन्तला से तप साधन कराना अविवेक पूर्ण कार्य है।

---

१. (आत्म गतम्)—नि० सा०

२. समित्व[illegible]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भवतु, पादपान्तर्हित एव विश्रब्धं तावदेनां पश्यामि। (इति तथा करोति।)

हिन्दी—अच्छा लो, वृक्षों की ओट में होकर ही इसे (शकुन्तला को) निश्चिन्तता से देखता हूँ (इस तरह वैसा करता है)

शकुन्तला—सखि अनसूये, अतिपिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रिताऽस्मि। शिथिलय तावदेतत्। [सहि अणसूए, अदिपिणद्धेण वक्कलेण पिअंवदए णिअन्तिद ह्मि। सिढिलेहि दाव णं।]

हिन्दी—सखी अनसूया, प्रियंवदा द्वारा दृढ़ता से बँधे इस वल्कल वस्त्र से मैं पीड़ित हो रही हूँ, इसे ढीला कर दो।

अनसूया—तथा। [तह।] **(इति शिथिलयति।)**

हिन्दी—अनसूया—ठीक है (इस तरह ढीला करती है।)

प्रियंवदा—(सहासम्) अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व। मां किमुपालभसे[1] [एत्थ पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालह। मं किं उवालहसि।]

हिन्दी—प्रिय०—(हँसकर) इस विषय में स्तनों को विस्तृत करने वाली अपनी युवास्था को उलाहना दो। मुझे क्यों उलाहना दे रही हो?

राजा—सम्यगियमाह।

हिन्दी—इस ने उचित कहा है।

टिप्पणी—पादेन पिवति इति पादपः, पाद + पा + क, पिनद्धं—अपि + नह + क्त, भागुरि के मत से अपि वल्कलेन कर्तरि, वि + श्रृम्भ् + क्त, पयोधर—धृ + अच्, पयोधरः, तस्य विस्तारमितृ—ष० तत्पु०, पयोधरस्तु कुचे मेघे, पयोधरः कोषकारे नारिकेले स्तनेऽपि च, वल्कल वस्त्र—Bark garment—Kale, अतिपिनद्धेन—fastend tightly.

विशेष—श्रृंगाररस के सम्पोषक, मानवीय सौन्दर्य के स्पष्ट सूचक विस्तृत स्तनों की ओर महाकवि इंगित करना चाहता है।

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना[2] **स्कन्धदेशे**
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन ।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण ॥ १९ ॥

अन्वय—स्कन्धदेशे उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन अस्याः इदम् अभिनवं वपुः पाण्डुपत्रोदरेण पिनद्धं कुसुमम् इव स्वां शोभां न पुष्यति।

हिंन्दी—कँधों पर बँधी हुई छोटी गाँठ वाले तथा स्तनयुगल के विस्तार को ढँकने वाले वल्कल वस्त्र से इसका यह नव यौवन सम्पन्न शरीर पीले पत्तों के अन्तराल में आवृत पुष्प की भाँति अपने सौन्दर्य को धारण नहीं करता।

१. नि० सा०—'मां किमुपालभसे' नास्ति।
२. नि० सा०—अयं श्लोको नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—स्कन्ध देशे—अंस देशे, उपहित सूक्ष्म ग्रन्थिना—दत्तक्षुद्र ग्रन्थिना, स्तन युगपरिणाहाच्छादिना—कुचद्वयविस्ताराच्छादिना, वल्कलेन—वल्कलवस्त्रेण—अस्याः शकुन्तलायाः इदं—एतत्, अभिनवं वपुः नव यौवनोपेतं शरीरं, पाण्डु पत्रोदरेण—पीतदल मध्य भागेन पिनद्धं—आच्छादितं, कुसुमिव—प्रसूनमिव, स्वां-स्वकीयां—शोभां—कान्तिम् न पुष्यति, न धारयति।

टिप्पणी—यह श्लोक निर्णय सागर प्रेस में न होने से प्रक्षेप है। उपहितौ सूक्ष्म ग्रन्थौ अस्य—ब० व्री०, स्तनयुगल परिणातं छादयितुं शील यस्च—ब० व्री०, छन्द—मालिनी, अलं०—अनुप्रास एवं उपमा, परिणाहो विशालता—अम०, शोभाम—राग, यौवन, लालित्य—सुख भोग आदि गुणों से युक्त शरीर की सुन्दरता को शोभा कहते हैं—रूप यौवन लालित्य भोगाद्यैरङ्ग भूषणम्।

अथवा काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलं न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्यति। कुतः—

हिन्दी—भले ही यह वल्कल वस्त्र उसके शरीर के अनुकूल न हो, परन्तु यह अलंकार की शोभा नहीं कर रहा है, ऐसा नहीं है क्योंकि—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ २० ॥

अन्वय—शैवलेन अपि अनुविद्धं सरसिजं रम्यं (भवति), मलिनम् अपि लक्ष्म हिमांशोः लक्ष्मीं तनोति, वल्कलेन अपि इयं तन्वी अधिकमनोज्ञा हि मधुराणाम् आकृतीनां किमिव मण्डनं न (भवति)।

हिन्दी—शैवाल (सेवर) से घिरा होने पर भी सरोरुह (कमल) रमणीय होता है, कृष्ण वर्ण का होने पर भी कलङ्क चन्द्रमा की शोभा बढ़ाता है। यह कृशाङ्गी शकुन्तला वल्कल से भी बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही है मनोहर शरीरों के लिए कौन सी वस्तु अलंकरण (शोभाधायक) नहीं होती।

संस्कृत व्याख्या—शैवलेनापि आवृत्तं पद्मं कमलं रम्यं मनोहरं भवति, मलिनं—कृष्ण वर्णमपि, लक्ष्म—कलङ्कं, हिमांशोः चन्द्रस्य, लक्ष्मीम्—शोभाम् तनोति—विस्तारयति + वल्कलेन—वल्कत, वस्त्रैपि, तन्वी—कृशाङ्गी, इयं—शकुन्तला अधिक मनोज्ञा—मनोहारिणी वर्तते, मधुराणां—मनोज्ञानाम् आकृतीनाम्, शरीणां, किमिव—वस्तु—मण्डनं—अलंकरणं न भवति। अत्र प्रतिवस्तूपमा अर्थान्तरन्या सश्चालंकारो, माधुर्यं नाम सात्विकोऽलंकारः, प्रसिद्धिर्नाम—नाट्यालंकारः, मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी—सरसिजं—सरसि + जन् + ड (कर्त्तरि) तत्पुरुषे कृति बहुलं से सप्तमी का अलुक्। यह योगरूढ़ शब्द है, सरसिज के अनेक अर्थ होने पर भी यह शब्द 'कमल अर्थ में' रूढ़ है। अनु + व्यध + क्त (छेद करना) सम्प्रसारण से य का इ हुआ, रम्म् = रम् + यत् नपुं० ए०व०, हिमाः अंशवः यस्य स—ब० व्री०, लक्ष्म—कलङ्क चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्—अम० मनः + ज्ञा + क + टाप्, मण्डनं—मण्ड् (सजाना) + ल्युट् सा० द० के अनुसार नायिकाओं के सात्विक अलंकारों में यहाँ 'माधुर्य' अलंकार है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार यहाँ 'प्रसिद्धि' नामक नाट्य लक्षण है।

अलंकार—(१) उपमान उपमेय दो वाक्यों में सौन्दर्य रूप साधारण धर्म का वर्णन होने से प्रतिवस्तूपमा। (२) चतुर्थ चरण में सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, प्रसाद गुण, रीति—लाटी, मालिनी छन्द, राघवभट्ट के अनुसार यहाँ 'प्रकम भंग' दोष है क्योंकि यहाँ उपमान हिमांशु कर्ता नहीं है। तुलना—सर्व शोभनीयं सुन्दरं नाम (प्रतिमा) स्वभावसुन्दरं वस्तु न

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कार मपेक्षते। (दृष्टान्त शतक), न रम्यामाहार्यमपेक्षते गुणम्। (किरा०) शैवल—Moss, रम्यं, Charming, लक्ष्य—Spot, लक्ष्मी—beauty sweet forms, तनोति—heightens—Kale.

नोट—यहाँ महाकवि का मानवीय सौन्दर्य बोध प्रकट है। यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के आगार इन्दीवर एवं चन्द्र—इन दो प्रसिद्ध उपमानों के आधार पर शकुन्तला का स्वाभाविक लावण्य चित्रित किया गया है।

शकुन्तला—(अग्रतोऽवलोक्य) एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः। यावदेनं संभावयामि। [एसो वादेरिदपल्लवङ्गुलीहिं तुवरेदि विअ मं केसररुक्खओ। जाव णं संभावेमि।] **(इति परिक्रामति।)**

हिन्दी—(सामने की ओर देखकर) यह बकुल वृक्ष वायु से हिलाई गई अपनी पत्ती रूपी अँगुलियों से अपने पास आने के लिए मुझे शीघ्रता करा रहा है तो (जल-सेचन द्वारा) इसका सम्मान करती हूँ। (ऐसा कहकर घूमती है।)

टिप्पणी—त्वरयति—hurry up, संभावयामि—attend to it—Kale,

प्रियंवदा—हला शकुन्तले, अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ। [हला सउन्दले, एत्थ एव्व दाव मुहुत्तअं चिट्ठ।]

हिन्दी—सखी शकुन्तला यहीं थोड़ी देर रुको।

शकुन्तला—किं निमित्तम्[1]। [किं णिमित्तं]

हिन्दी—किसलिए

प्रियंवदा—यावत् त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति। [जाव तुए उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि।]

हिन्दी—तुम्हारे सन्निकट रहने से यह केसर वृक्ष लता रूपी पत्नी से युक्त की भाँति प्रतीत हो रहा है।

शकुन्तला—अतः खलु प्रियंवदाऽसि त्वम्। [अदो क्खु पिअंवदा सि तुमं।]

हिन्दी—इसी से तुम निश्चय ही प्रियंवदा (सार्थक नाम वाली) हो।

राजा—प्रियमपि तथ्यमाह शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु—

हिन्दी—प्रियंवदा ने शकुन्तला से प्रिय होने के साथ सत्य बात कही है।

टिप्पणी—संसार में बात हितकारी तथा प्रिय दोनों एक साथ नहीं होती। यदि सत्य है, तो प्रिय नहीं है, प्रिय है तो सत्य नहीं। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः। —वा० रामायण, हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः—कि० १/५। प्रियम् + वद् + खच् + टाप्, नाथेन सह सनाथः तृ० त०, प्रियं वदति असौ—कर्मधा० समा०। इस वार्तालाप में 'निरुक्त' भूषण है।

---

१. नि० सा०—किं निमित्तम् नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥ २१ ॥

अन्वय—अधरः किसलयरागः बाहू कोमलविटपानुकारिणौ अङ्गेषु कुसुमम् इव लोभनीयं यौवनं संनद्धम् (अस्ति)।

संस्कृत व्याख्या—अस्याः—शकुन्तलायाः, अधरोष्ठः—पल्लवताम्रः, बाहू—भुजौ, कोमल०—मृदुतर शाखा सदृशौ, अङ्गेषु—शरीरावयवे, कुसुमम्—प्रसूनमिव, लोभनीयम्—हृदयाकर्षकमेव, यौवनम्—तारुण्यं, सन्नद्धं—प्रकटीभूतम।

हिन्दी—(इस शकुन्तला के) अधरोष्ठ नवीन पल्लव के समान लाल हैं। दोनों भुजाएँ कोमल शाखाओं की भाँति हैं, इसके (शरीर के) अवयवों में पुष्प के सदृश आकर्षक युवावस्था प्रकट (व्याप्त) है।

टिप्पणी—कोमलयोः विटपयोः अनुकारिणौ—ष० तत्पु०, युवन् + अण्—यौवनम्, नपु० ए० व०, लोभनीयम्—लुभ् विमोहने + अनीयर, सन्नद्धम्—सम् + नह् + क्त, शकुन्तला के अधर की तुलना किसलय से करने के कारण उपमालंकार है, आर्या छन्द है, यहाँ सम्बद्ध अर्थ के अनुसार ही शब्द-प्रयोग है। अतः 'पदोच्चय' नामक नाट्यालंकार है—'संचयोऽर्थानुरूपो यः पदानां स पदोच्चयः' यहाँ 'अंगेषु' पद से नेत्र, मुख, उन्नत स्तन, निम्न नाभि, पृथुल नितम्ब भाग रूपी अर्थ ध्वनित हो रहा है।

लोभनीयम्—इसके सौन्दर्य पर कोई भी मोहित हो सकता है। अतः मैं भी आकृष्ट हो रहा हूँ यह ध्वनि इस शब्द से अभिप्रेत है।

अनुकारिणौ—imitate tender twigs, कुसुम् इव लोभनीयं-attractive like a blossom, bewitching—देवधर, नायिका के लक्षणानुसार शकुन्तला पद्मिनी स्त्री थी। 'सकल तनु सुवेशा पद्मिनी पद्मगंधा—रतिमंजरी', Shines—देवधर

नोट—तपोवन कै नैसर्कि परिवेश में शकुन्तला के आकर्षक सौन्दर्य को चित्रित करके महाकवि ने शकुन्तला का आश्रम लावण्य व्यंजित किया है।

अनसूया—हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतासि[१]। [हला सउन्दले, इअं सअंवरवहू सहआरस्स तुए किदणामहेआ वणजोसिणित्ति णोमालिआ। णं विसुमरिदा सि।]

हिन्दी—अनसूया—सखी शकुन्तला, आम वृक्ष की यह स्वयंवर-वधू तुम्हारे द्वारा वनज्योत्सना नाम से संज्ञित नवमल्लिका है। क्या इसे भूल गई हो?

शकुन्तला—तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि। (लतामुपेत्यावलोक्य च) हला रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। नवकुसुमयौवना वनज्योत्सना, बद्धपल्लवतयोपभोगक्षमः सहकारः। [तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं। हला रमणीए क्खु काले इमस्स लदापाअवमिहुणस्य वइअरो संवुत्तो। णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणी, बद्धपल्लवदाए उवभोअक्खमो सहआरो।]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. नि० सा०—विस्मृतवत्यसि।

हिन्दी—शकुन्तला—तब तो मैं अपने को भी भूल जाऊँगी (लता के समीप जाकर और देखकर) सखी अनसूया, इस सुन्दर अवसर पर इस नवमल्लिका और सहकार वृक्ष का सम्मिलन हो गया है। वनज्योत्स्ना नवीन प्रसून रूपी यौवन से युक्त है और यह सहकार वृक्ष पत्तियों से युक्त होने के कारण उपभोग में समर्थ है।

(इति पश्यन्ती तिष्ठति।)

हिन्दी—(इस प्रकार देखती हुई खड़ी हो जाती है।)

टिप्पणी—स्वयम्वर०—स्वयं व्रियते अस्मिन् इति स्वयम्वरः स्वयं वृणुते असौ—कर्मधा० सहकारः—सहकारयति मेलयति द्वन्द्वम् इति सहकारः जो नायक-नायिका, पति-पत्नी दोनों को एक दूसरे से मिला देता है। यहाँ लता और आम में पति-पत्नी व्यवहार की प्रतीति होने से समासोक्ति अलं०, 'शोभा' नामक नाट्यालंकार है।

प्रियंवदा—अनसूये, जानासि किं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति। [अणसूए, जाणासि किं सउन्दला वनजोसिणिं अदिमेत्तं पेक्खदि त्ति।]

हिन्दी—प्रियंवदा—अनसूया, क्या तुम जानती हो कि शकुन्तला वनज्योत्स्ना को अत्यधिक क्यों देख रही है?

अनसूया—न खलु विभावयामि। कथय। [ण क्खु विभावेमि। कहेहि।]

हिन्दी—अनसूया—मैं तो नहीं जानती हूँ, बताओ।

प्रियंवदा—यथा वनज्योत्स्नाऽनुरूपेण पादपेन संगता, अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति। [जह वणजोसिणी अणुरूवेण पादवेण संगदा, अवि णाम एव्वं अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअं त्ति।]

हिन्दी—जैसे वनज्योत्स्ना अपने अनुकूल आम्र वृक्ष की संगिनी बन गई है, वैसे क्या मैं भी अपने अनुकूल पति को प्राप्त करूँगी?

शकुन्तला—एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः। [एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो।]

हिन्दी—शकुन्तला—निश्चय ही, यह तुम्हारे मन की अभिलाषा है।

(इति कलशमावर्जयति।)

हिन्दी—ऐसा कहकर घट उड़ेल देती है।

टिप्पणी—(१) यहाँ 'विलोभन' नामक मुख सन्धि है। (२) प्रस्तुत स्थल पर सखियों के वार्तालाप में शृंगार रस के अनुकूल वातावरण की सृष्टि महाकवि की नाट्यकला प्रकट करती है। अपि-अव्यय सम्भावना के अर्थ में है—गर्हासमुच्चय सम्भावनास्वपि-अम०।

राजा—अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात्। अथवा कृतं सन्देहेन।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी—कुलपति—जो १०,००० शिष्यों को एक साथ ही भोजन देकर शिक्षा देता है उसे कुलपति कहते हैं। असवर्णं क्षेत्रं इति-कर्मधा०। मनुस्मृति के अनुसार क्षत्रिय का अपनी जाति तथा नीचे की जाति से विवाह करने का विधान था। कृतं—अलम् 'गम्यमानापि क्रिया कारक विभक्तौ प्रयोजिका' वार्तिक से या निषेधार्थक अलं के योग में तृतीया, कृतमितिनिषेधानिवारणयोः—वर्धमानः। Enough of my misgivings—Kale. अलं महीपाल तवश्रमेण—रघुवंश।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ॥ २२ ॥

अन्वय—इयम् असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा अस्ति, यत् मे आर्यं मनः अस्याम् अभिलाषि (अस्ति)। हि सन्देहपदेषु वस्तुषु सताम् अन्तःकरणप्रवृत्तयः प्रमाणम्।

हिन्दी—यह (शकुन्तला) निश्चय ही क्षत्रिय द्वारा पत्नी रूप में ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि मेरा श्रेष्ठ मन इसे चाहता है। संदिग्ध विषयों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं।

संस्कृत व्याख्या—इयं—शकुन्तला, नूनं—निःसन्देहं, क्षत्रपरिग्रहक्षमा—क्षत्रियवरणयोग्या अस्ति, यस्मात्—कारणात्, मे—मम, आर्यं—श्रेष्ठं, मनः—हृदयम्, अस्याम्—शकुन्तलायाम्, अभिलाषि—अभिलाषयुक्तं भवति, हि—यस्मात्, सन्देहपदेषु—संशय स्थानेषु, वस्तुषु—विषयेषु, सताम्—सज्जनानां, अन्तःकरणप्रवृत्तयः—चित्तवृत्तयः मनांसि वा प्रमाणम्, निश्चयहेतुः। अत्राऽर्थान्तरन्यासा, अप्रस्तुतप्रशंसा, अलंकारः काव्यलिंगं, पुनरुक्तवदाभासश्च, वंशस्थं वृत्तम्।

टिप्पणी—असंशयम्—नास्ति संशयः यस्मिन्—ब० व्री०, सम् + शी + अच्, क्षत्रस्य परिग्रहः तस्य क्षमा—ष० तत्पु०, परि + ग्रह + अपि, अभि + लष् + णिनि, सताम्—अस् + शतृ-ष० ब०व०, अन्तःकरणस्य प्रवृत्तयः-ष० तत्पु०।

नोट—(१) इसमें मानवीय प्रकृति का रहस्य उद्घाटित है। प्रमाणम्-प्रमीयते अनेन इति-प्र + मा + ल्युट्, करणे, (२)यहाँ 'परिन्यास' नामक मुखसन्धि का अङ्ग है—शकुन्तला के पति दुष्यन्त के प्रेम रूपी काव्यार्थ का वर्णन करने के कारण 'परिन्यास' है, (३)यहाँ 'क्षत्रपरिग्रहक्षमा' कहने से पूर्वार्द्ध में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार एवं उत्तरार्द्ध में सामान्य कथन से विशेष कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, (४) द्वितीय चरण में आर्यं मनः अभिलाषि-प्रथम चरण-क्षत्रपरिग्रहक्षमा का हेतु है अतः काव्यलिंग अलंकार, (५) मनः अन्तःकरण आदि कथन होने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। (६) छन्द—वंशस्थ (७) प्रसाद गुण—वैदर्भी रीति

मनुस्मृति के अनुसार शिष्टों का आचरण तथा आत्मतुष्टि भी प्रमाण है—आचारश्चैव साधूनामात्मनंस्तुष्टिरेव च-स्वस्थ्य च प्रियमात्मनः॥ (८) दशरूपक के अनुसार शृंगाररस भेद की १० अवस्थाओं में अभिलाषा एक है। Compare—सखे! न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते—अङ्क २, अ० शा०, क्षत्रपरिग्रहक्षमा—to be the wife of a क्षत्रिय, मे आर्यं मनः My Noble mind has loving towards her.—Deodhar, अभिलाषि—Covets her, प्रमाणम्—Unerring guide—Kale, असंशय—Surely—Deodhar. (९) कोश—परिग्रह परिजने पत्नी स्वीकार मूलयोः-विश्वः।, क्षत्रं पत्नी शरीरयोः अम०, असमान वर्ण क्षत्रियादि कव्यम को 'क्षत्र' कहते हैं, (१०) कुछ के अनुसार यहाँ धीरोदात्त में आत्म प्रशंसा अनौचित्य दोष है। परन्तु दशरूपककार की दृष्टि में यह शृंगार का एक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भेद है। (११) क्षत्रिय—जो क्षत्र से रक्षा करे, उसे क्षत्रिय कहते हैं—क्षत्र + क्ष, क्षतात् किल त्रायत इत्युदणः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढं-घु वंश या लोक रक्षक एवं दुष्टजनों का निग्राहक ही क्षत्रिय है—शुक्र नीति।

तथापि तत्त्वतः एनामुपलप्स्ये।

हिन्दी—फिर भी इसको यथार्थरूप से समझूँगा।

शकुन्तला—(ससंभ्रमम्) अम्मो, सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते। [अम्मो, सलिलसेअसंभमुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ।]

हिन्दी—शकुन्तला—(भयपूर्वक), जल सेचन से व्याकुल होकर उड़ा हुआ यह भ्रमर नवमल्लिका को छोड़कर मेरे मुख की तरफ बढ़ रहा है।

(इति भ्रमरबाधां रूपयति।)

हिन्दी—(इस तरह भ्रमर बाधा का अभिनय करती है।)

राजा—(सस्पृहं विलोक्य[१]) साधु, बाधनमपि रमणीयमस्याः।

यतो यतः[२] षट्चरणोऽभिवर्तते
ततस्ततः प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते
भयादकामाऽपि हि दृष्टिविभ्रमम् ॥ २३॥

अपि च। (सासूयमिव[२])

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ २४॥

हिन्दी—राजा—(तृष्णापूर्वक अवलोकन कर) ठीक है, इसका पीड़ित होना भी सुन्दर है।

अन्वय—हि यतः यतः षट्चरणः अभिवर्तते, ततः ततः प्रेरितवामलोचना विवर्तितभ्रूः इयं भयात् अकामा अपि अद्य दृष्टिविभ्रमं शिक्षते।

हिन्दी—क्योंकि जिधर-जिधर यह भ्रमर जाता है, उधर-उधर सुन्दर नेत्रों को घुमाने वाली, भौहों को तानने वाली यह (शकुन्तला) भय के कारण काम भाव के बिना भी आज कटाक्षपात को सीख रही है।

टिप्पणी—षट्चरणाः यस्य—ब० व्री०, विवर्तिता भ्रूः यस्याः—ब० व्री०, यहाँ शकुन्तला के काम भाव सीखने की कल्पना होने से प्रतीयमानोत्प्रेक्षालंकार, बिना काम भाव के कटाक्ष पात सीखने से विभावना अलंकार है। कामोऽभिलाषः—अम०।

---

१. नि० सा०—विलोक्य।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. 'यतः यतः' यह श्लोक तथा 'सासूयम्' नि० सा० में नहीं है।

अन्वय—मधुकर, चलापाङ्गां वेपथुमतीं दृष्टिं बहुशः स्पृशसि, रहस्याख्यायी इव कर्णान्तिकचरः मृदु स्वनसि, करौ व्याधुन्वत्याः रतिसर्वस्वम् अधरं पिबसि, वयं तत्त्वान्वेषात् हताः त्वं खलु कृती।

हिन्दी—हे भ्रमर, चंचल नेत्र प्रान्तों वाली कम्पन युक्त नेत्रों का तुम बार-बार चुम्बन करते हो। गुप्त बात कहने वाले की भाँति कान के समीप जाकर मधुर गुंजार करते हो। हाथों को हिलाती हुई (शकुन्तला) के रति सर्वस्व अधर का पान करते हो। सत्य का अन्वेषण करने के कारण हम वञ्चित हो गये, परन्तु (हे भ्रमर) तुम निश्चय ही धन्य हो।

संस्कृत व्याख्या—हे भ्रमर चलापाङ्गां—चञ्चल नेत्र प्रान्तां, वेपथुमतीं—तरलिताम, दृष्टिं—नयनम्, बहुशः—अनेकबारं, स्पृशसि—चुम्बसि, रहस्याख्यायीव—गुप्त भाषाभाषी इव, कर्णान्तिकगोचरः—श्रवण समीपगामी, मृदु—कोमलं, स्वनसि—ध्वनसि, करौ—भुजे, व्याधुन्वत्याः—कम्पयन्त्याः, रतिसर्वस्वं—सुरतिसारं, अधरं—ओष्ठं, पिबसि—दंशसि, वयं—दुष्यन्तः, तत्त्वान्वेषात्—तत्त्वान्वेषणात्, हताः—हतभागाः, त्वं—भ्रमरं, खलु—निश्चयेन, कृती—कृतार्थोऽसि।

टिप्पणी— (१) भ्रमर प्रसंग कालिदास की मौलिक उद्भावना है जिसे वस्तुतः रूपक में गति लाने के उद्देश्य से किया गया है। (२) यहाँ नायक (दुष्यन्त) में कामुकता का भाव प्रकाशित है जिससे वह मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण करके भ्रमर प्रवृत्ति को स्वीकार करना चाहता है। चलौ अपाङ्गौ यस्याः ताम्—ब० व०, चञ्चल नयन सुन्दरता का भाव व्यंजित करते हैं, वेप् + अथुच्, वेपथुः अस्या सा० ब० वं.० बहुशः स्पृशसि—इससे दुष्यन्त की भ्रमर के प्रति ईर्ष्या भावना व्यंजित है। यह शकुन्तला का अधर-पान अनेक बार कर रहा है, परन्तु मैं एक-बार भी उसके चुम्बन से वञ्चित हूँ। रहस्यं आचष्ठे, आख्याति—आ + ख्या + णिनि, व्याधुन्वत्या—वि + आ + धु + शतृ + ङीप्—ष० ए० व०, तत्त्वान्वेषात्—हेतौ पञ्चमी, अनु + इष् + घञ्, राघवभट्ट के के अनुसार रति सर्वस्वं का अर्थ संभोगनिधानं है। कामसूत्र के प्रणेता वात्स्यायन के अनुसार अधर-पान रति का उत्तेजक है। भारवि के अनुसार 'अधर-मधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति।'

अलंकार—(१) प्रस्तुत विषय भ्रमर पर दृष्टि-स्पर्श, अधर-पानादि का अप्रस्तुत विषय कामुक के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार, (२) वयंहताः त्वंकृती—में उपमान भ्रमर का उपमेय दुष्यन्त से उत्कृष्ट वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार। (३) प्रथम तीन चरण हेतु रूप में वर्णित होने से काव्यलिंग अलंकार। (४) रहस्याख्यायीव में उत्प्रेक्षालंकार। (५) भ्रमर स्वभाव का वर्णन होने से स्वभावोक्तिलंकार, (६) भ्रमर को शकुन्तला के नेत्रों में नील कमल का भ्रम होने से भ्रान्तिमान् अलंकार। (७) प्रसाद गुण वैदर्भी रीति। (८) शिखरिणी छन्द—रसै रूद्रैश्छिन्ना यमन सभलागः शिखरिणी—इसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, गुरु एवं लघु वर्ण होते हैं। ६ एवं ११ वर्णों पर यति होती है। (९) यहाँ 'प्राप्ति' नामक मुख-सन्धि का वर्णन है—प्राप्तिः सुखागमः। वयं हताः—We are undone (unhappy) owing to our, कृती—We are indeed blessed, बहुश स्पृशसि—Repeatedly touchest her tremulous eye. रहस्याख्यामीव—whispering a secret, व्याधुच्याः—waving her hands, रति सर्वस्वं—the sole treasure of delight—Kale.

शकुन्तला—नैष धृष्टो[१] विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। (पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) कथमितोऽप्यागच्छंति। हला, परित्रायेथां मामनेन[२] दुर्विनीतेन मधुकरेणाभिभूयमानाम्। [ण एसो धिट्ठो विरमदि। अण्णदो गमिस्सं। कहं इदो वि आअच्छदि। हला, परित्ताअह मं इमिणा दुव्विणीदेण महुअरेण अहिहूअमाणं।]

१. धृष्टो दुष्टो—नि० सा०।
२. दुष्ट मधुकरेण परिभूयमानाम्—नि० सा०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—यह उद्दण्ड भ्रमर चुम्बन करने से मानता नहीं। दूसरी जगह चली जाती हूँ। (कुछ पग चलकर, दृष्टिपात के साथ) कैसे, यहाँ भी भ्रमर आ रहा है। हे सखी, इस दुष्ट भ्रमर से पीड़ित मुझे बचाओ!

उभे—(सस्मितम्) के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम। [का वअं परित्तादुं। दुस्सन्दं अक्कन्द। राअरक्खिदव्वाइं तवोवणाइं णाम।]

हिन्दी—दोनों—(मुस्कान के साथ) रक्षा करने वाले हम कौन हैं ? महाराज दुष्यन्त को पुकारो, तपोवन की रक्षा तो राजा लोग करते हैं।

राजा—अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। न भेतव्यं न भेतव्यम्—(इत्यर्धोक्ते स्वगतम्) राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु। एवं तावदभिधास्ये।

हिन्दी—यह अवसर स्वयं को प्रकाशित करने का है। न डरो, न डरो, (इतना आधा वाक्य कहकर अपने मन में) मेरा राजा होना प्रकट हो जायगा। तो इस प्रकार कहूँगा।

शकुन्तला—(पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) कथमितोऽपि मामनुसरति। [कहं इदो वि मं अणुसरदि।]

हिन्दी—शकुन्तला—(कुछ पग चलकर दृष्टिपात करके) क्यों इधर भी भ्रमर मेरा पीछा कर रहा है।

राजा—(सत्वरमुपसृत्य)

हिन्दी—राजा—(शीघ्र निकट जाकर)

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ॥ २५॥

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः)

अन्वय—दुर्विनीतानां शासितरि पौरवे वसुमतीं शासति (सति) कः अयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु अविनयम् आचरति।

हिन्दी—दुष्टों के नियमन करने वाले पुरु वंशी दुष्यन्त के पृथ्वी की रक्षा करने पर 'यह कौन है' जो भोली भाली ऋषि कन्याओं से असभ्यता का व्यवहार कर रहा है।

नोट—नायक-नायिका का परस्पर परिचय महाकवि की मौलिक कल्पना का अद्भुत निदर्शन है, यही विधि मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय नाटकों में भी व्यवहृत हुई है।

संस्कृत व्याख्या—दुर्विनीतानां—दुर्जनानां, शासितरि—शासके दुष्यन्ते, वसुमतीं—वसुन्धराम, शासति—पालयति, सति कः अयम्—कः असौ, मुग्धासु—सरलासु, तपस्विकन्यासु—ऋषि कुमारीषु, अविनयम्—असदाचारम्, आचरति—व्यवहरति। अलंकारः—अनुप्रासः, आर्या वृत्तम्।

विशेष—वसुधनं यस्यां सा—वसुमतीम्-ब० व०, पौरवे—अनादरे भावलक्षणे सप्तमी, (षष्ठी चानादरे) शासति—शास्+तृच्, 'यस्यच भावेन भावलक्षणं' से सप्तमी, यहाँ दण्ड नामक मुख सन्धि का अंग है। प्रथमावतीर्णमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा। यहाँ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा ने अपने को प्रच्छन्न रखकर पुरु वंशी राजा का प्रभाव परिलक्षित किया है। (सभी सखियाँ राजा को देखकर मानो घबड़ा जाती हैं।)

अनसूया—आर्य, न खलु किमप्यत्याहितम्। इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता। [अज्ज, ण क्खु किं वि अच्चाहिदं। इयं णो पिअसही महुअरेण अहिहूअमाणा कादरीभूदा।]

हिन्दी—अनसूया—हे आर्य, निश्चित ही कोई विपत्ति नहीं आई थी। हम दोनों (अनसूया-प्रियंवदा) की प्रिय सखी यह शकुन्तला भ्रमर से पीड़ित होती हुई भयभीत हो गई थी।

(इति शकुन्तलां दर्शयति)

हिन्दी—(ऐसा कहकर शकुन्तला को दिखाती है)

राजा—(शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) अपि तपो वर्धते।

हिन्दी—(शकुन्तला की ओर मुख करके) क्या आपका तप बढ़ रहा है?

(शकुन्तला साध्वसादवचना तिष्ठति।)

हिन्दी—(शकुन्तला भय से मौन रहती है)

अनसूया—इदानीमतिथिविशेषलाभेन। हला शकुन्तले, गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति। [दाणिं अदिहिविसेसलाहेन। हला सउन्दले, गच्छ उडअं। फसमिस्सं अग्घं उवहर। इदं पादोदअं भविस्सदि।]

हिन्दी—अनसूया—इस समय आप जैसे अतिथि के समागम से। सखी शकुन्तले, कुटी में जाओ, फलयुक्त अर्घ लाओ। यह घटस्थ-जल पाद-प्रक्षालन हेतु होगा।

टिप्पणी—अविनयम् आचरति—rudely behaves, दुर्विनीत—ill-behaved, न अत्याहितम्—It is nothing serious, कातरीभूता—Troubledly bee, अपितपो वर्धते—does penance prosper?—Kale.

राजा—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।

हिन्दी—राजा—आपलोगों की मनोहर (प्रिय) एवं सत्यवाणी से ही मेरा अतिथि-सत्कार कर दिया गया।

प्रियंवदा—तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः। [तेण हि इमस्सिं पच्छाअसीअ-लाए सत्तवण्णवेदिआए मुहूत्तअं उववसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो।]

हिन्दी—प्रियंवदा—तो इस सघन छाया वाली सप्तपर्ण की वेदी पर क्षण भर बैठकर अपनी क्लांति (थकावट) को दूर करें।

राजा—नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः।

हिन्दी—निश्चय ही तुम लोग भी इस (वृक्ष-सेचन) कार्य से थक गई हो।

टिप्पणी—म०स्मृ०—सम्प्राप्ताय त्वतिथि ये प्रदद्यादासनोदके। अन्नं चैष यथा शक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्। अर्घ के ८ पदार्थ है—आपः क्षीरं कुशाग्रं च दधि सर्पिः सतण्डुलम्। यवः सिद्धार्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कश्चैव—अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः॥ सु + ऊन् + क्विप्। सुष्ठु ऊनयति प्रीणयतीति सुनृता—Kale, सुष्ठु नृत्यन्ति जना अनेनहर्षात् इति—सु + नृत् + घञ्। सप्तपर्ण—इसे सतवन या छितवन कहते हैं, इसकी प्रत्येक टहनी (डाली) में ७ पत्ते होते हैं।

उटजः—उटः तृणपर्णादिस्तस्माज्जायते इति। पादार्थम् उदकम् इति पादोदकं (च० तत्पु०), फलमिश्रमर्घम्—शब्द से अनसूया ने शकुन्तला को अतिथि सत्कार का स्मरण दिला दिया, जिसके लिए महर्षि कण्व ने उसे आदेश दिया था। अनसूया के कथन से यहाँ 'अनुवृत्ति' नाट्यालंकार है—प्रश्नयादनुवर्तनम्—सा० द०।

अनसूया—हला शकुन्तले, उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम्। अत्रोपविशामः। [हला सउन्दले, उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं। एत्थ उवविसह्म।]

हिन्दी—अनसूया—सखी शकुन्तला, हम लोगों को अतिथियों का सम्मान करना उचित है। यहाँ बैठते हैं।

(इति सर्वा उपविशन्ति)

हिन्दी—(इस प्रकार सभी स्त्रियाँ बैठती हैं)

शकुन्तला—(आत्मगतम्[1]) किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवत्ता। [किं णु क्खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअह्मि संवुत्ता।]

हिन्दी—शकुन्तला—(मन में) क्या कारण है कि इस व्यक्ति को देखकर मैं आश्रम-विरोधी विकृति का लक्ष्य बन गई हूँ।

राजा—(सर्वा विलोक्य) अहो समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम्।

हिन्दी—(सभी स्त्रियों को देखकर) अहो, तुल्य अवस्था एवं सौन्दर्य के समय आप सबका स्नेह भी सुन्दर है।

टिप्पणी—वयः रूपश्च—वयोरूपे, द्वन्द्व—समा०, समेवयो रूपे, ताभ्याम् रमणीयम्-(तत्पु०), ध्वनि—शकुन्तला का रूप उत्कृष्टतर है तथापि धीरोदात्त नामक दुष्यन्त की अपनी आसक्ति गोपित करने के लिए महाकवि ने 'सम' शब्द प्रयुक्त किया।

प्रियंवदा—(जनान्तिकम्[2]) अनसूये, को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते। [अणसूये, को णु क्खु एसो चउरगम्भीराकिदी महुरं पिअं-आलवन्तो पहाववन्तो विअ लक्खीअदि।]

हिन्दी—प्रियंवदा—(हाथ की ओट में) हे अनसूया, कौन है यह? जो सुन्दर गम्भीर आकृति के साथ मधुर एवं प्रिय बात करते हुए प्रभावशाली जैसा दिखाई दे रहा है।

---

१. जो वस्तु दूसरों से सुनने योग्य न हो—अश्राव्यंखलु यद्वस्तु तमिह स्वगतं मतम्।

२. परस्पर वार्तालाप के मध्य में हाथ की ओट में जो बात किसी से की जाय, उसे जनान्तिकम् कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

प्रभावशाली—Possessed of Majesty—Kale

अनसूया—सखि, ममाप्यस्ति कौतूहलम्। पृच्छामि तावदेनम्। (प्रकाशम्) आर्यस्य मधुरालापजनितो विस्रम्भो मां मन्त्रयते—कतम आर्येण राजर्षिवंशोऽलंक्रियते। कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः। किंनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीतः। [सहि, मम वि अस्थि कोदूहलं। पुच्छिस्सं दाव णं। अज्जस्स महुरालावजणिदो वीसम्भो मं मन्तावेदि—कदमो अज्जेण राएसिवंसो अलंकरीअदि। कदमो वा विरहपज्जुस्सुअजणो किदो देसो। किंणिमित्तं वा सुउमारदरो वि तवोवणगमणपरिस्समस्स अत्ता पदं उवणीदो।]

हिन्दी—अनसूया—आपके मनोहर वार्तालाप से उत्पन्न विश्वास मुझे पूछने के लिए कह रहा है। कौन सा राजर्षि वंश आपसे अलंकृत है? किस देश के लोगों को आपने अपने वियोग से उत्कंठित किया है तथा किस कारण से अति सुकुमार होने पर भी अपने को तपोवन में आने की थकावट से युक्त किया है।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) हृदय मोत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितान्यनसूया मन्त्रयते। [हिअअ, मा उत्तम्म। एसा तुए चिन्तिदाइं अणसूआ मन्तेदि।]

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) हे हृदय अधीर मत बनो, यह अनसूया तुम्हारे प्रश्नों को पूछ रही है।

राजा—(आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि, कथं वात्मापहारं करोमि। भवतु। एवं तावदेनां वक्ष्ये। (प्रकाशम्) भवति, यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः, सोऽहमविघ्न क्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) मैं किस तरह अपना परिचय दूँ या किस तरह अपने को छिपाऊँ। जो कुछ भी हो। इस प्रकार मैं इनसे कहता हूँ। (प्रकट) पूज्ये, ज़ो पुरुवंशी राजा द्वारा धर्माधिकार में नियुक्त है, वह मैं विघ्न रहित धार्मिक क्रियाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस तपोवन में आया हूँ।

अनसूया—सनाथा इदानीं धर्मचारिणः। [सणाहा दाणिं धम्मआरिणो]

हिन्दी—अनसूया—इस समय (आज) तपोवन वासी धन्य हैं।

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति।)

हिन्दी—(शकुन्तला शृंगार लज्जा का अभिनय करती है।)

सख्यौ—(उभयोराकारं विदित्वा, जनान्तिकम्) हला शकुन्तले, यद्यत्राद्य तातः संनिहितो भवेत्। [हला सउन्दले, जइ एत्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अज्ज तादो संणिहिदो भवे।]

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(शकुन्तला दुष्यन्त के भावों को जानकर) यदि आज यहाँ पिता कण्व उपस्थित होते!

शकुन्तला—ततः किं भवेत् [तदो किं भवे।]

हिन्दी—शकुन्तला—तब क्या होता?

सख्यौ—इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति। [इमं जीविदसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि।]

हिन्दी—दोनों सखियाँ—तो वे जीवन के सर्वस्व इस शकुन्तला से इस अतिथि-विशेष को कृतार्थ करते।

शकुन्तला—युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि। [तुम्हे अवेध। किं वि हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं।]

हिन्दी—शकुन्तला—तुम दोनों भाग जाओ। कुछ मन में रखकर (सोचकर)कह रही हो। तुम दोनों सखियों की बातें मैं नहीं सुनूँगी।

राजा—वयमपि तावद् भवत्योः सखीगतं किमपि[१] पृच्छामः।

हिन्दी—राजा—मैं भी आप दोनों की सखी (शकुन्तला) के विषय में कुछ पूछना चाहता हूँ।

सख्यौ—आर्य, अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना [अज्ज, अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा।]

हिन्दी—दोनों सखियाँ—हे आर्य, कृपा के तुल्य यह प्रार्थना है।

राजा—भगवान् कश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः। इयं च वः सखी तदात्मजेति कथमेतत्।

हिन्दी—राजा—पूज्य कण्व नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में विख्यात हैं और आपकी यह सखी (शकुन्तला) उनकी कन्या है, यह कैसे है?

अनसूया—शृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः। [सुणादु अज्जो। अत्थि को वि कोसिओ त्ति गोत्तणामहेओ महाप्पहाओ राएसी।]

हिन्दी—अनसूया—आर्य सुनें। कोई कौशिक गोत्र नाम वाले महाप्रभावशाली राजर्षि हैं।

राजा—अस्ति, श्रूयते।

हिन्दी—राजा—(राजर्षि) हैं, ऐसा मैंने सुना है।

अनसूया—तमावयोः प्रियसख्या प्रभवमवगच्छ। उज्झितायाः

१. किमपि—इति नास्ति—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता। [तं णो पिअसहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा।]

हिन्दी—अनसूया—उन (विश्वामित्र) को हमारी सखी का पिता समझिए। त्यागी हुई इसके शरीर के संवर्धन आदि से कण्व इसके पिता हैं।

राजा—उज्झितशब्देन जनितं मे कौतूहलम्। आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि।

हिन्दी—राजा—'परित्यक्त' इस शब्द से मुझे उत्सुकता उत्पन्न हो गई है। प्रारम्भ से सुनने की इच्छा है।

अनसूया—श्रृणोत्वार्यः। गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमिपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी। [सुणादु अज्जो। गोदमीतीरे पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किंवि जादशंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा पेसिदा णिअमविग्घकारिणी।]

हिन्दी—अनसूया—आर्य सुनें, प्राचीन काल में निश्चय ही उन राजर्षि (विश्वामित्र) के गौतमी नदी के तट पर प्रचण्ड तप में स्थित होने पर किसी कारण वश शंकाग्रस्त देवों ने अनुष्ठान में विघ्न पैदा करने वाली मेनका नामक अप्सरा को भेजा।

टिप्पणी—नैष्ठिक—कूर्मपुराण के अनुसार उपकुर्वाण और नैष्ठिक ब्रह्मचारी के २ भेद हैं। उपकुर्वाण—यह विद्यार्जन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, परन्तु नैष्ठिक आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। कौशिक—रामायण के अनुसार विश्वामित्र कुश गोत्र के प्रपौत्र थे। इनके पिता गाधि थे। इन्होंने प्रचण्ड तप करके ब्रह्मत्व प्राप्त किया था।

राजा—अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्।

हिन्दी—राजा—दूसरों की तपस्या से देवों को भय है।

अनसूया—ततो वसन्तावतारसमये[१] तस्या उन्मादयितृ रूपं प्रेक्ष्य...... [तदो वसन्तोदारसमए से उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ......।] **(इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति)**

हिन्दी—अनसूया—तदनन्तर वसन्त ऋतु के आगमन काल में उस मेनका के उन्मादक रूप को देखकर (इस प्रकार आधा कहकर ही लज्जा से रुक जाती है।)

राजा—परस्ताज्ज्ञायत एव। सर्वथाऽप्सरः संभवैषा।

हिन्दी—राजा—आगे विदित ही है। वस्तुतः यह शकुन्तला अप्सरा से उत्पन्न है।

अनसूया—अथ किम् [अह इं।]

हिन्दी—अनसूया—तब फिर क्या?

टिप्पणी—यहाँ पूर्ववृत्तान्त का उल्लेख करने के कारण (आख्यान) नामक नाट्यालंकार है—आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. वसन्तोदारसमये—नि० सा०, काले

राजा—उपपद्यते।

हिन्दी—राजा—उचित ही है।

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ २६ ॥

अन्वय—मानुषीषु अस्य रूपस्य संभवः कथं वा स्यात्। प्रभातरलं ज्योतिः वसुधातलात् न उदेति।

हिन्दी—मनुष्य जाति की नारियों में ऐसे दिव्य सौन्दर्य (जैसा इसमें है) का उद्भव कैसे हो सकता है ? आभा से प्रकाशित तेज पृथ्वी मण्डल से उत्पन्न नहीं होता।

संस्कृत व्याख्या—मानुषीषु—मानवजातिस्त्रीषु, अस्य—एतादृशस्य, दिव्यरूपस्य—सौन्दर्यस्य, सम्भवः—समुत्पत्ति, कथं—किमर्थं सम्भवति, प्रभातरलं—मयूखोज्जलम्, ज्योतिः—तेजः, वसुधातलात्—भूमण्डलात्, न उदति—न आविर्भवति।

टिप्पणी—मानुषीषु—मनु + अञ् + ङीप्। षुक् का मध्य में आगम। प्रभातरलं ज्योतिः का अर्थ राघवभट्ट ने 'चन्द्रः' किया है। The flash with quivering light—Kale. स्त्रियों की तुलना कालिदास विद्युत से करते हैं—कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया न ममोर्वशी—विक्रमो०। (१) एक ही उत्पत्ति क्रिया का सम्भव एवं उदय-दोनों क्रियापदों से पृथक् निर्देश करने के कारण प्रतिवस्तूपमालंकार एवं कुछ लोग दृष्टान्तालंकार मानते हैं। (२) पथ्यावक्त्र छन्द। (३) 'निदर्शन' नामक नाट्य भूषण है। (४) 'विलोभन' नामक मुखसन्धि का अंग है-गुणाख्यानं विलोभनम्। (५) तरलश्च चंचले—भासुरे च—विश्वः।

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति)

हिन्दी—(शकुन्तला नीचे मुख करके खड़ी होती है)

राजा—(आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः। किं तु सख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधभावकातरं[1] मे मनः।

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) मेरी मनःकामना को अवसर मिल गया। परन्तु सखियों से परिहास में कही गई वर प्रार्थना को सुनकर द्विविधा में पड़ने के कारण मेरा मन अधीर हो रहा है।

टिप्पणी—धृतद्वैध०—distressed owing to divided thoughts.—Kale.

प्रियंवदा—(सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा) पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः। [पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो।]

हिन्दी—प्रियंवदा—(मुस्कराती हुई शकुन्तला को देखकर नायक की ओर मुख करके) फिर कुछ कहने की इच्छा है आपको।

(शकुन्तला सखीमङगुल्या तर्जयति)

हिन्दी—(शकुन्तला सखी की तर्जनी से डराती है।)

टिप्पणी—यहाँ 'मुक्ति' नामक मुखसंधि का अंग है।

---

१. द्वैधीभाव—नि० सा० का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्।

हिन्दी—राजा—आपने उचित अनुमान लगाया। हमें उत्तम चरित्र सुनने के लोभ से कुछ और भी (बातें) पूछना है।

प्रियंवदा—अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।
[अलं विआरिअ। अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो णाम।]

हिन्दी—प्रियंवदा—कुछ विचार न करें। तपस्वियों से बेरोक-टोक (प्रश्न) पूछा जा सकता है।

टिप्पणी—इससे शकुन्तला की नारीसुलभ शिष्टता सूचित होती है। प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छन च—अम०—अलम्—निषेधार्थक अव्यय, अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः। तपोवन का वातावरण स्वतंत्र होता है, क्योंकि वहाँ फल, छाया, जल मूल आदि सेवन के लिए प्राणी स्वच्छंद होता है—यथेच्छायोग्यं को वनमिदमयं मे सुदिवसः—भवभूति।

राजा—इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि।

हिन्दी—राजा—आपकी (प्रियंवदा की) सखी के विषय में यह जानना चाहता हूँ।

वैखानसं किमनया व्रतमा प्रदानाद्
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव[1] सदृशेक्षणवल्लभाभि-
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ॥ २७॥

अन्वय—किम् अनया मदनस्य व्यापाररोधि वैखानसं व्रतम् आ प्रदानात् निषेवितव्यम्। आहो सदृशेक्षणवल्लभाभिः हरिणाङ्गनाभिः. समम् अत्यन्तमेव निवत्स्यति।

हिन्दी—क्या इस शकुन्तला के द्वारा कामभाव के व्यापारों को रोकने वाले इस ब्रह्मचर्य व्रत को विवाह के पूर्व ही धारण करना है अथवा (मृगियों के) समान नेत्रों वाली होने से यह मृगियों के साथ ही निवास करेगी (ब्रह्मचर्य व्रत में रहेगी।)

संस्कृत व्याख्या—किम्—अला शकुन्तलया, मदन—कामभावस्य, व्यापार रोधि—व्यवहार रोधि, वैखानसं—तापसं व्रतम्, आप्रदानात्—परिणय पर्यन्तं, निषेवितव्यम्—पालयितव्यम्, आहो—अथवा, सदृशेक्षण—तुल्यनेत्र प्रियाभिः मृगीभिः, समं—सह, अत्यंतमेव—यावज्जीवनं करिष्यति।

टिप्पणी—वैखानसं—वैखानस + अण्—व्रतम्—वानप्रस्थ या तपस्वी का नियम ब्रह्मचर्य। यहाँ विशेषणों के साभिप्राय होने के कारण 'परिकर' अलं० है—उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरोमतः। छन्द—वसन्ततिलका, गुण एवं रीति—प्रसाद, वैदर्भी, उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः अर्थात् जिसमें तगण, भगण, २ जगण, २ गुरु वर्ण हों। मदनस्य व्यापाररोधि—कटाक्षपात एवं कटिचालन आदि काम भाव के कार्य, अंगना तु नितम्बिनी—हैमः, हारीत स्मृति के अनुसार स्त्रियों की २ कोटियाँ हैं—(१) ब्रह्मवादिनी—जो उपनयन संस्कार युक्त होकर घर में रहकर वेदाध्ययन करती हैं, (२) सद्योवधू—जिनका उपनयन संस्कार करके उनसे विवाह करना चाहिए।

सदृशानि ईक्षणानि मारनां ताः ब० व्री०, व्यापाररोधि—which obstructs the influence of love. अत्यंत निवत्स्यति—will she ever live with the females of deers.—Kale.

१. अत्यंतमात्मसदृशे०—काले।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रियंवदा—आर्य, धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः। [अज्ज, धम्मचरणे वि परवसो अयं जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो।]

हिन्दी—प्रियंवदा—आर्य, धर्मानुष्ठान में यह भी पराधीन है, केवल इसे इसके अनुरूप वर को देने का पिता का संकल्प है।

(ध्वनित अर्थ है—आप इसे ग्रहण कर सकते हैं)

राजा—(आत्मगतम्) न दुरवापेयं खलु प्रार्थना।

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।

आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ॥ २८॥

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) शकुन्तला को प्राप्त करने की मेरी प्रार्थना दुर्लभ नहीं है।

अन्वय—हृदय, साभिलाषं भव, सम्प्रति सन्देहनिर्णयः जातः। यत् अग्निम् आशङ्कसे, तत् इदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।

हिन्दी—(दुष्यन्त कहते हैं) हे मेरे अन्तःकरण, तुम शकुन्तला की प्राप्ति के विषय में आशान्वित बनो। इस समय प्रियंवदा के सूचित करने पर मेरे हृदय का (शकुन्तला ग्रहण विषयक) संशय दूर हो गया। जिसे तुम अनल समझते थे, वही (शकुन्तला) स्पर्श करने योग्य मणि है।

विशेष—दुष्यन्त के उक्त कथन से राजा की विवेकपूर्णता एवं कर्तव्यभावना व्यंजित होती है। क्षत्रिय कन्या शकुन्तला अभिलाषा योग्य एवं प्रार्थनीय है।

टिप्पणी—(१) अभिलाषेण सह—सहार्थक ब० व०, 'तेन सहेति तुल्ययोगे' से सह अर्थ में तृतीया, कामोऽभिलाषः तर्षश्च-अम० सन्देहस्य निर्णय—ष० तत्पु०, स्पर्शक्षमम्—स्पर्शं क्षमते—द्वि० तत्पु०, (२) उत्तरार्द्ध वाक्य पूर्व के प्रति हेतु होने से काकलिंग अलं, (३) यहाँ 'समाधान' नामक मुख सन्धि का अंग है। बीजस्य आगमनं यत्तु तत समाधान मुच्यते, (४) नायक के उक्त कथन से उसकी उत्सुकता एवं मानसिक स्थिरता ध्वनित होती है। (५) रत्नम् जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते पदार्थों के वर्ग में जो उत्कृष्ट हो उसे 'रत्न' कहते हैं, अग्नि एवं रत्न से शकुन्तला की स्वाभाविक पवित्रता, तेजस्विता एवं उत्कृष्टता व्यंजित है। (६) राघवभट्ट के अनुसार यहाँ नायक दुष्यन्त की उत्कृष्टता रूप अर्थ व्यंजित है—नायकोत्सुक्यं ध्वनितम्। भव साभिलाषं—Do cherish your wish, सन्देहनिर्णयो जातः—matter of doubt has now been turned into a certainty, आशङ्कसे—that suspectest as fire, स्पर्शक्षत्रं रत्नम्—is a jewel capable of being touched.—Kale. (७) आर्या छन्द, (८) प्रसाद गुण—वैदर्भी रीति।

शकुन्तला—(सरोषमिव) अनसूये, गमिष्याम्यहम्। [अणुसूए, गमिस्सं अहं।]

हिन्दी—शकुन्तला—(क्रोधयुक्त की भाँति) अनसूया मैं चली जाऊँगी।

अनसूया—किंनिमित्तम्। [किंणिमित्तं।]

हिन्दी—अनसूया—किसलिए?

शकुन्तला—इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निवेदयिष्यामि। [इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमीए णिवेदइस्सं।]

हिन्दी—शकुन्तला—इस असम्बद्ध प्रलाप (निरर्थक बकवास) करने वाली प्रियंवदा को आर्या गौतमी से कहूँगी अर्थात् प्रियंवदा की शिकायत गौतमी से करूँगी।

अनसूया—सखि, न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्। [सहि, ण जुत्तं अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छन्ददो गमणं।]

हिन्दी—अनसूया—हे सखी, अतिथि का सत्कार किये बिना विशिष्ट अतिथि को छोड़कर स्वच्छन्दता पूर्वक जाना उचित नहीं।

(शकुन्तला न किंचिदुक्त्वा प्रस्थितैव)

हिन्दी—(शकुन्तला बिना कुछ कहे चली जाती है।)

राजा—(ग्रहीतुमिच्छन् निगृह्यात्मानम्। आत्मगतम्) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। अहंहि—

हिन्दी—राजा—(पकड़ना चाहते हुए अपने को नियंत्रित करके। अपने मन में) अहो, कामिजनों की चित्तवृत्ति क्रिया के अनुसार ही होती है। मैं तो—

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥ २९ ॥

अन्वय—मुनितनयाम् अनुयांस्यन्, सहसा विनयेन वारितप्रसरः, हि स्थानात् अनुच्चलन् अपि गत्वा पुनः प्रतिनिवृत्तः इव।

हिन्दी—मुनि (कण्व) पुत्री शकुन्तला का अनुसरण करते हुए अकस्मात् शील के द्वारा जिसका बढ़ना रोक दिया गया है, ऐसा मैं इस स्थान से चलते हुए भी जाकर मानो फिर लौट आया हूँ।

संस्कृत व्याख्या—मुनितनयाम्—कण्वपुत्रीम्, अनुयास्यन—अनुगमिष्यन्, सहसा—अकस्मात्, विनयेन—शीलेन, वारितप्रसरः—अवरुद्धवेगः, प्रदेशात्—स्थानात्, अनुच्चलन्—अनुतिष्ठन्, ताम गत्वा—अनुसृत्य, प्रतिनिवृत्तः—पुनरागतः। अत्र उत्प्रेक्षाविरोधाभासश्चअलंकारौ। आर्यावृत्तम्।

टिप्पणी—मुनेः तनया ताम्—ष० तत्पु०, अनु + या + लृट् + शतृ, विनयेन करणे तृतीया। मनु० स्मृति के अनुसार 'श्रुत्वा स्पृष्ट्वा-स विज्ञेयो जितेन्द्रियः, वारित प्रसरः वेगः यस्य-ब० व्रीं०, उत्+चल्+शतृ, वृ + णिच् + क्त वारित, गत्वा प्रतिनिवृत्त एव—उत्प्रेक्षा, अनुयास्यन अपि गत्वा विरोधाभास, सहसा विनयेन में काकलिंग अलं०, यहाँ दुष्यंत का शील एवं संयम व्यंजित होता है। 'परिभावना' नामक मुख सन्धि का अंग है।

प्रियंवदा—(शकुन्तलां निरुध्य) हला, न ते युक्तं गन्तुम्। [हला, ण दे जुत्तं गन्तुं।]

हिन्दी—प्रियंवदा—(शकुन्तला को देखकर) हे सखी, तुम्हारा जाना उचित नहीं।

शकुन्तला—(सभ्रूभङ्गम्) किंनिमित्तम्। [किंणिमित्तं।]

हिन्दी—शकुन्तला—(भौंहें तानकर) किसलिए।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रियंवदा—वृक्षेसेचने द्वे धारयसि मे। एहि तावत्। आत्मानं मोचयित्वा ततो गमिष्यसि। [रुक्खसेअणे दुवे धारेसि मे। एहि दाव। अत्ताणं मोचिअ तदो गमिस्ससि।]

हिन्दी—प्रियंवदा—दो वृक्षों के सेचन का मेरा ऋण तुम पर है। आओ पहले ऋण को मुक्त कर लो, तब जा पाओगी।

टिप्पणी—धारेरुत्तमर्णः—जो जिसका ऋणी हो उसमें चतुर्थी विभक्ति है, अतः 'मे' में चतुर्थी विभक्ति।

(इति बलादेनां निवर्तयति।)

हिन्दी—इस प्रकार बलपूर्वक उसे लौटाती है।

राजा—भद्रे, वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः—

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्त्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥ ३० ॥

हिन्दी—राजा—भद्रे, वृक्षों के सेचन मात्र से अत्यधिक थकी हुई आपको मैं देख रहा हूँ। क्योंकि इसके (शकुन्तला के)

अन्वय—घटोत्क्षेपणात् अस्याः बाहू स्रस्तांसौ अतिमात्रलोहिततलौ, प्रमाणाधिकः श्वासः अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति। वदने कर्णशिरीषरोधि घर्माम्भसां जालकं बद्धम्, बन्धे स्रंसिनि मूर्धजाः च एकहस्तयमिताः पर्याकुलाः।

हिन्दी—(जल पूर्ण) घड़ों को उठाने से जिसके दोनों कन्धे (भार से) झुके हुए हैं एवं जिसकी दोनों हथेलियाँ अत्यधिक लाल रंग की हो गई हैं, सामान्य से अधिक श्वास अभी भी स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर रहा है, मुख पर कान में पहने शिरीष पुष्प को रोकने वाला स्वेद कणों का समूह व्याप्त (फैला हुआ) है, केश-पाश के खुल जाने पर एक हाथ से नियंत्रित किये सँभाले गये केश-समूह (इधर-उधर) बिखर गये हैं।

संस्कृत व्याख्या—घटोत्क्षेपणात्—जलपूर्णकलशोत्थापनात्, बाहू—करौ, स्रस्तांसौ—अवनतस्कन्धौ, अतिमात्रलोहिततलौ—अत्यधिकरक्तकरतलौ, प्रमाणाधिकः—स्वमात्राधिकः, श्वासः—निश्वासः, अद्यापि—अधुनापि, स्तनवेपथुं—कुचकम्पनं, जनयति—करोति, वदने—आनने, कर्णशिरीषरोधि—श्रोतशिरीषकुसुमरोधकम्, धर्माम्भसां जालकम्—श्वेदबिन्दुसमूहम्, बद्धं—अभिव्याप्तम्, बन्धे—केशपाशे, स्रंसिनि—स्खलिते, मूर्धजाः—शिरो स्थित केशः, एकहस्तयमिताः—एक पाणिनियमिताः, तथापि पर्याकुलाः—विपर्याः। अत्र समुच्चयः अनुमानंचालंकारौ। काव्यलिङ्गमपि, अनुप्रासश्च। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

नोट—यहाँ दुष्यन्त शकुन्तला के सुकुमार सौन्दर्य का प्रथम दर्शन करते हैं, एवं महाकवि ने शकुन्तला के लावण्य का भव्य रूप प्रस्तुत किया है।

टिप्पणी—स्रस्तौ असौ यस्य—ब० व्री०, अतिमात्रं लोहिततलं ययोः तौ—ब० व्री०, इस पद से शकुन्तला की सुकुमारता एवं सौन्दर्य रूप अर्थ व्यंजित है। घटस्य उत्क्षेपणं—ष० तत्पु०, प्रमाणात्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अधिकः—पञ्चमी तत्पु०, कर्णस्थं शिरीषं—मध्यम पद लोपी तत्पु० , रोद्धुं शीलं यस्य—ब० व्री०, घर्मस्य अम्भासि ष० तत्पु०, एकहस्तेन यमिताः—तृ० तत्पु० ।

अलंकार—(१) शकुन्तला की थकावट के लिए अनेक पद दिये जाने से समुच्चय अलंकार, (२) घटोत्क्षेपणात् हेतु सर्वत्र प्रयुक्त होने से दीपक अलंकार, (३) स्तनों के काँपने से यह अनुमत होता है कि प्रमाण से भी अधिक श्वास शकुन्तला के मुख से निकल रहा है, (४) शार्दूल[1] विक्रीड़ित छन्द, (५) प्रसाद गुण एवं लाटी रीति। प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपने कानों की शोभा के रूप में शिरीष पुष्प धारण करती थीं। चारु कर्णे शिरीषम्—मेघदूत

यहाँ 'द्रष्ट' नामक भूषण है—यथादेशं यथा कालं यथा रूपं च वर्णते। प्रत्यक्षं परोक्षं वा तद्दृष्टं दृष्टवत् भवेत् ॥

स्रस्त—drooping, अतिमात्र लोहित—extremely reddened, स्तनवेपथु जनयति—Causes her breasts to heave, कर्ण शिरीष रोधि—obstructing the flower of शिरीष, पर्याकुलाः—dishevelled, बन्धे—knot of hair.

धर्मः स्यादातपे ग्रीष्मे उष्ण स्वेदाम्भसोरपि-विश्वः ।

तदहमेनामनृणां करोमि। (इत्यङ्गुलीयं दातुमिच्छति।)

हिन्दी—तो मैं इसे (शकुन्तला को) ऋणरहित कर देता हूँ। (इस कहकर अँगूठी देना चाहता है।)

(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः)।

हिन्दी—(दोनों (शकुन्तला एवं प्रियंवदा) नामांकित अँगूठी के अक्षरों को पढ़कर एक दूसरे की तरफ देखती हैं।)

राजा—अलमस्मानन्यथा संभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयम्।

हिन्दी—राजा—हमें कोई अन्य समझना निरर्थक है। यह राजा का दान ही है।

टिप्पणी—यहाँ 'दृष्ट' नामक भूषण है तथा 'कएण' नामक मुख सन्धि का अंग है। न ऋणं विद्यते यस्याः—ब० व्री०, अनुवाच्य (पढ़कर) अनु + वच + णिच् + ल्यप् On reading letters of the name inscribed on the ring.—Kale.

प्रियंवदा—तेन हि नार्हत्यंतदङ्गुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचनेनानृणेदानीमेषा। (किंचिद् विहस्य) हला शकुन्तले, मोचिताऽस्यनुकम्पिनार्येण, अथवा महाराजेन। गच्छेदानीम्। [तेण हि णारिहदि एदं अंगुलीअअं अंगुलीविओअं। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा दाणिं एसा। हला सउन्दले, मोइदा सि अणुअम्पिणा अज्जेण, अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं।]

हिन्दी—प्रियंवदा—तब यह अँगूठी आपकी अँगुली से पृथक होने योग्य नहीं है। आर्य के वचनों से यह उत्रृण हो गई। (कुछ मुस्कराकर) सखी शकुन्तला दयालु आर्य या महाराज से मुक्त कर दी गई हो। अब जाओ।

---

१. जिसके प्रत्येक चरण में १९ अक्षर हों, ७ एवं १२ वर्णों पर यति हो एवं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, सगण, जगण, सगण, २ तगण एवं गुरु वर्ण हो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला—(आत्मगतम्) यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। (प्रकाशम्) का त्वं विस्रष्टव्यस्य[1] रोद्धव्यस्य वा। [जइ अत्तणो पहविस्सं। का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुन्धिदव्वस्स वा।]

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) यदि मैं स्वतंत्र होऊँगी। (प्रकट रूप में) तो तुम मुझे मुक्त करने या रोकने वाली कौन हो?

राजा—(शकुन्तलां विलोक्य। आत्मगतम्) किन्नु खलु यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना। कुतः—

हिन्दी—राजा—(शकुन्तला को देखकर) (अपने मन में) क्या निश्चित ही जैसे हम इसके प्रति कामनायुक्त हैं वैसे यही यह भी हमारे प्रति है अथवा मेरी कामना अवसर प्राप्त कर गई है।

टिप्पणी—(१) लब्धावकाशा मे प्रार्थना—my desire has obtained scope—Kale. आत्मनः 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' से षष्ठी, यहाँ शकुन्तला में अनुराग रूपी बीज का उदय होने से 'उद्भेद' नामक मुख सन्धि का अंग है, (२) कुछ टीकाकार समाधान मुख सन्धि का अंग मानते हैं। (३) राजा की उक्ति में यहाँ 'विधान' नामक मुख सन्धि का अंग है। (४) यहाँ दुष्यन्त में शकुन्तला अनुराग विषयक निश्चय होने से सुख है।

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥ ३१ ॥

अन्वय—यद्यपि मद्वचोभिः वाचं न मिश्रयति, मयि भाषमाणे अभिमुखं कर्णं ददाति। कामं मदाननसंमुखीना न तिष्ठति, अस्याः दृष्टिः तु भूयिष्ठम् अन्यविषया न।

हिन्दी—यद्यपि यह शकुन्तला मेरी बात में बात नहीं मिलाती है किन्तु मेरे बोलने पर मेरी ओर अपने कानों को लगाती है (मेरी बात सुनती है) भले ही यह मेरे मुख के सामने नहीं रहती है तथापि इसकी दृष्टि बहुलता से दूसरी ओर नहीं रहती।

संस्कृत व्याख्या—इयं शकुन्तला यद्यपि मद्वचनैः—मम वचनैः, वाचं स्वकीयां वाणीं न योजयति मयि—दुष्यन्ते भाषमाणे कथयति। वार्तालापं कुर्वति न वा अभिमुखं प्रति—मां प्रति कर्णं ददाति—अवधानं ददाति, श्रोत्रं करोति। काम- प्रकामम्, यद्यपि मदानन सम्मुखी०—मन्मुखाभिमुखी न तिष्ठति, स्थिति न करोति, तथापि अस्या शकुन्तालाया दृष्टिः, अन्यविषया—मद् भिन्न विषयिणी न वर्तते।

टिप्पणी—(१) यहाँ 'विलास' नामक नायिकालंकार प्रकट है, (२) प्रारम्भिक ३ चरणों में अस्मद् शब्द का प्रयोग होने से नायक की सौभाग्यतिशयता व्यंजित है। (३) 'प्राप्ति' नामक मुख सन्धि का अंग है। (४) अनुराग रूप कार्य के प्रति कर्ण प्रदानादि हेतुओं का वर्णन होने से 'समुच्चय' अलंकार है। (५) वसन्त तिलका वृत्त है। (६) यहाँ नायक के प्रति नायिकागत अनुराग भाव इंगित है। विकारो नेत्र वक्त्रस्य तद्वाक्यश्रवणादरः। अथ व्याजेन तद्वीक्षा अनुरागेङ्गितं मतम्॥

१. विसर्जितव्यस्य—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(नेपथ्ये)

भो भोस्तपस्विनः, सन्निहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भक्त। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः।

हिन्दी—हे हे तपस्वियों, तपोवन के प्राणियों की रक्षा के लिए एकत्र हो जाओ। निश्चय ही आखेट के लिए विहार करने वाला राजा दुष्यन्त समीप स्थित है।

टिप्पणी—मिश्रमति—joins not her words to mine, कर्ण दंदाति—pays attention to me, कामम्—granted that, दृष्टिः—अय विषया न—her sight has no other object, मृगया—मृग + णिच् + श व्यंजित अर्थ है कि दुष्यन्त रूपी आखेटक तपोवन के शकुन्तला नामक सत्त्व को अपने अनुराग रूपी पाश में आबद्ध करने जा रहा है। अतः तपस्वियों, तपोवन की रक्षा के लिए सावधान हो जाइये।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु-
विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु ।
पतति परिणतारुणप्रकाशः
शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥ ३२ ॥

अपि च—

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः ।
मूर्तोविघ्नस्तपस इव नो भिन्नासारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥ ३३ ॥

अन्वय—तथाहि तुरगखुरहतः परिणतारुणप्रकाशः रेणुः शलभसमूहः इव विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमेषु पतति।

हिन्दी—क्योंकि घोड़ों के खुरों से उठी हुई तथा अस्ताचल की ओर उन्मुख दिनकर की लाल कान्ति के समान धूलि पतंग समूह की भाँति (वृक्षों की) शाखाओं में संलग्न जल से भीगें वल्कल वस्त्रों वाले तपोवन के वृक्षों पर पड़ रही है।

संस्कृत व्याख्या—अश्वखुरोत्क्षिप्तः, अस्तसूर्य प्रकाशस्व रक्ताभः धूलिः पतङ्गपंक्ति इव जलार्द्रवल्केषु तपोवन वृक्षेषु पतति।

टिप्पणी—(१) तुरेण गच्छति तुरगः—तुर + गम् + उः, परिणतः यः अरुणः कर्मधा० समा०, रेणुईयोः स्त्रियाँ धूलिः—अभ०, प्रकाश इव अरुणः, विटपेषु विषक्तानि जलाडीनि वल्कलानि येषु—ब० व्री०, (२) परिणतारुणप्रकाश, शलभसमूह में लुप्तोपमा तथा श्रौतोपमा अलंकार है। (३) पाञ्चाली रीति तथा प्रसाद गुण, (४) पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में २ नगण, १ रगण, १ यगण तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में १ नगण, २ जगण, १ रगण, १ गुरु यह अर्धसमवृत्त है।

अयुजि न युगरेफतो यकारो। युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥

(५) यहाँ दुष्यन्त नामक कथन से शकुन्तला उत्साहित है। अतः 'भेद' नामक मुख सन्धि का अंग है।—भेदः प्रोत्साहना मता—(सा० द०) (६) कोश-घोटके पीतितुरग तुरत्रश्च तुरङ्गमाः।, अरुण—ऋ+उनन्—ऋच्छति गच्छति इत अरुणः। अरुणोऽस्फुटरागे च सूर्ये सूर्यस्य स्पटथौ—इति धरणिः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(७) शलभ समूह इव—like a flight of locusts. जलार्द्रवल्कलेषु—having wet bark-garments—Kale.

अन्वय—स्यन्दनालोकभीतः तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः भिन्नसारङ्गयूथः गजः न तपसः मूर्तः विघ्नः इव धर्मारण्यं प्रविशति।

हिन्दी—रथ के दिखाई पड़ने से डरा हुआ, तेज आघात (धक्का) से टूटे हुए वृक्ष के तने में लगा हुआ एक दाँत वाला, पैरों से खींचे हुए लता समूहों के लिपटने से बन्धन वाला हाथी तपस्या में शरीरधारी विघ्न की भाँति तपोवन में प्रविष्ट हो रहा है।

संस्कृत व्याख्या—स्यन्दनालोकभीतः—रथ दर्शनसंत्रस्तः, तीव्राघातप्रतिहत—दृढ़ प्रहाराभिहत वृक्षस्कन्ध संसक्तैकदन्तः, पादाकृष्ट व्रततिवलयासङ्ग संजात पाशः—चरणाक्षिप्तलता मण्डन परिवेष्ठन जात बन्धः भग्न मृगसमूहः गजः धर्माचरणस्य साक्षात् शरीरधारी प्रत्यूह इव अन्तराय इव तपोवनं प्रविशति।

टिप्पणी—(१) स्यन्दनस्य आलोकः तस्मात् भीतः—तत्पु०, तरुस्कन्धे लग्नः एकः दन्तः यस्थ—ब० व्री०, पादैः आकृष्टाः तृ० तत्पु०, भिन्नः सारंगाणां यूथः अनेन—ब० व्री०, चातके हरिणे पुंसि सारंगः—अम०, विहन्यते अनेन इति विघ्नः स्यन्द + ल्युट—स्यन्दन, (२) विघ्न इव—उत्प्रेक्षालंकार, (३) भयानक रस, गजगत भय स्थायी भाव, (४) ओज गुण, पाञ्चाली रीति, (५) मन्दाक्रान्ता छन्द। (६) लग्नैकद्रन्तः भिन्नसारंग, आदि ४ विशेषणों से रथ का वेगातिशय ध्वनित है—विशेषण चतुष्टयेन वेगातिशयो व्यंजते—रा० भ० भिन्नसारंग यूथो—having scatterad herds of dear—Kale.

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः)

हिन्दी—(सभी सुनकर कुछ घबड़ा गईं)

राजा—(आत्मगतम्) अहो धिक्। पौरा अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु। प्रतिगमिष्यामस्तावत्।

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) ओह, धिक्कार है, नागरिक मेरी खोज करते हुए तपोवन को घेर रहे हैं। अच्छा तब तक लौट जाता हूँ। are disturbing the penance-forest—Kale.

सख्यौ—आर्य, अनेनारण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय। [अज्ज, इमिणा आरण्णअवुत्तन्तेण पज्जाउल म्ह। अणुजाणीहि णो उडअगमणस्स।]

हिन्दी—दोनों सखियाँ—आर्य, इस वन गज के वृत्तान्त से हम लोग घबड़ा गई हैं। हमें कुटीर गमन की अनुमति प्रदान करें।

राजा—(ससंभ्रम्) गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे।

हिन्दी—राजा—(घबड़ाकर) आप लोग जायें। मैं भी जिस तरह आश्रम में पीड़ा न हो, वैसे ही प्रयत्न करूँगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(सर्व उत्तिष्ठन्ति)

हिन्दी—(सभी उठकर खड़े हो जाते हैं।)

सख्यौ—आर्य, असंभावितातिथिसत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जामह आर्यं विज्ञापयितुम्। [अज्ज, असंभाविदादिहिसक्कारं भूओ वि पेक्खणणिमित्तं लज्जेमो अज्जं विण्णविदुं]

हिन्दी—सखियाँ—हे आर्य, अतिथि-सत्कार सम्पादन न करने के कारण पुनः आश्रम में दर्शन देने के लिए आपसे निवेदन करने के लिए हमलोग लज्जित हो रही हैं।

राजा—मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—नहीं ऐसी बात नहीं। आप लोगों के दर्शन से ही मेरा सत्कार हो गया है।

शकुन्तला—अनसूये, अभिनवकुशसूच्या परिक्षतं मे चरणं कुरबकशाखापरिलग्नं च वल्कलम्। तावत् परिपालयत मां यावदेतन्मोचयामि [अणसूये, अहिणअकुससूईए परिक्खदं मे चलणं कुरवअसाहापरिलग्गं अ वक्कलं। दाव परिपालेध मं जाव णं मोआवेमि।]

हिन्दी—शकुन्तला—अनसूया, नवीन कुशों के अग्रभाग से मेरे पैरों में आघात हो गया है तथा मेरा वल्कल वस्त्र कुरबक की शाखा में फँस गया है। जब तक मैं इसे छुड़ाऊँ, तब तक मेरी प्रतीक्षा करो।

(शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।)

हिन्दी—(शकुन्तला राजा को देखती हुई बहाने से रुककर पुनः सखियों के साथ चली गई।)

राजा—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकान् समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयेयम्। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। मम हि—

हिन्दी—राजा—राजधानी में प्रवेश के लिए मेरा उत्साह शिथिल हो गया है। तब तक अनुचरों के पास उन्हें तपोवन से कुछ दूर ठहरा दे। शकुन्तला विषयक प्रेम-व्यापार अपने को निवृत्त (पराङ्मुख) करने में मैं असमर्थ हूँ। मेरा तो—

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥ ३४॥

अन्वय—हि मम शरीरं पुरः गच्छति, चेतः प्रतिवातं नीयमानस्य केतोः चीनांशुकम् इव असंस्तुतं पश्चात् धावति।

हिन्दी—(मेरा) शरीर आगे की ओर जाता है, किन्तु मेरा हृदय वायु के प्रतिकूल ले जाते हुए ध्वज के चीनी वस्त्र की भाँति अपरिचित पीछे की ओर दौड़ रहा है।

संस्कृत व्याख्या—कण्वाश्रमे शकुन्तलां वीक्ष्य तस्या रूप सम्पदा आकृष्टो भूत्वा दुष्यंतः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कथयति मे—मदीयं शरीरं वपुः, पुरः—अग्रतः गच्छति—प्रयाति, चेतः—हृदयं, प्रतिवातं—वायु सम्मुख, नीयमानस्य-चाल्यमानस्य, केतोः—ध्वजस्य, चीनांशुकम्—पटवस्त्रं इव असंस्तुतम्, अपरिचितं, पश्चात्—पृष्ठतः, धावति—प्रयाति।

टिप्पणी—(१) चीनांशुकमिव—चीन देश का वस्त्र अपनी कान्ति एवं दृढ़ता के लिए विश्वविख्यात था। प्रतिवातं—वातस्य प्रतिकूलं—अव्ययीभा० समा०, नीयमानस्य—नी + यक् + शानच् —ष० ए० व०, (२) शरीर आगे दौड़ता है एवं मन पीछे—इसमें सम्बन्ध में असम्बन्ध का वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलं० (३) असंस्तुत इव-उपमालंकार, चीनांशुकमिव-उपमालंकार। 'त' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने अनुप्रास अलंकार (४) आर्या छन्द Like the China silk cloth of the banner bonne against the wind.—Kale. प्रथम अङ्क का मूल्याङ्कन—घटनाओं के विकास एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक का प्रथम अङ्क पूर्ण सफल है। इसमें प्रकृति का स्वच्छन्द एवं मनोहर चित्रण है।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

हिन्दी—(इस प्रकार रंगमंच के सभी पात्र चले गये।)

(इति प्रथमोऽङ्कः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विषण्णो विदूषकः)

हिन्दी—तदन्तर दुःखी विदूषक रंगमंच पर प्रविष्ट होता है।

विदूषकः—(निःश्वस्य) भो दिष्टम्[1]। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिष्वाहिण्ड्यतेऽटवीतोऽटवी।

[भो दिट्ठं एदस्स मअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो म्हि। अअं मओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झण्णे वि गिम्हविरलपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि अडवीदो अडवी।]

हिन्दी—विदूषक—(साँस लेकर) हा, शिकारी स्वभाव वाले इस राजा की मित्रता से दुःखी हो गया हूँ। यह हरिण, यह शूकर, यह व्याधु—इस प्रकार दोपहर समय में भी ग्रीष्म के कारण विरल वृक्षों की छाया वाली अरण्यवीथियों में एक वन से दूसरे वन में घूमते रहते हैं।

टिप्पणी—विदूषक—नेता का सहायक पात्र, कुसुम, वसन्तादि के नाम पर जिसका नाम हो, जो अपने वेष, कर्म, भाषा, शरीरादि से दूसरों को हँसाने वाला हो उसे विदूषक कहते हैं। मृग्यन्ते पशवः अस्यां सा मृगया, मृगया शीलं यस्य—ब० व्री० पादेन पिवन्ति इति पादपः, पादपस्य छाया—ष० तत्पु०, आहिण्ड्यते—आ + हिण्ड् + लट् (भावे)—अरण्यं विपिनम्—अम०। यहाँ विदूषक की कथा पताका है, जो प्रासङ्गिक वृत्ति हो, उसे 'पताका' कहते हैं—

व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते— सा० द०

पत्रसंकरकषायाणि कदुष्णानि[2] गिरिनदीजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारो भुज्यते। तुरगानुधावनकण्डितसंधे रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। इयतेदानीमपि पीडा न निष्क्रामति। ततो गण्डस्योपरि पिण्डकः[3] संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता।

[पत्तसंकरकसाआइं कदुण्हाइं गिरिणईजलाइं पीअन्ति। अणिअदवेलं सुल्लमंसभूइट्ठो आहारो अण्हीअदि। तुरगाणुधावणकण्डिदसन्धिणो रत्तिम्मि वि णिकामं सइदव्वं णत्थि। तदो महन्ते एव्व पच्चूसे दांसीएपुत्तेहिं सउणिलुद्धएहिं वणग्गहणकोहाहलेण पडिबोधिदो म्हि। एत्तएण दाणिं वि

---

१. दृष्टम्—(देखा)   २. कदूनि—नि० सा०   ३ पिटकः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पीडा णिक्कमदि। तदो गण्डस्य उवरि पिण्डओ संवुत्तो। हिओ किल अह्मेसु ओहीणेसु तत्तहोदो मआणुसारेण अस्समपदं पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउन्दला मम अधण्णदाए दंसिदा।]

हिन्दी—पत्तियों के मिलने से कसैले (विरस) कुछ उष्ण पर्वतीय नदियों के जल पीते रहते हैं। अनिश्चित अवसर पर गर्म शलाका पर स्थित मांस प्रधान भोजन करते हैं, घोड़ों के पीछे दौड़ने से पीड़ित शरीर के जोड़ों वाले होकर रात्रि में भी पूर्णतः (भाँति-भाँति) सोने को नहीं मिलता। तब अत्यन्त प्रातःकाल में पक्षियों के लोभी शबर पुत्रों द्वारा वन घेरने वाली ध्वनि से जगा दिया गया हूँ। इतना होने पर भी दुःख शान्त नहीं होता। यह फोड़े के ऊपर दूसरा फोड़ा हो गया। कल हमारे पीछे रह जाने पर राजा के द्वारा हिरण का पीछा किये जाने पर तपोवन में प्रवेश करके तपस्वीकन्या शकुन्तला मेरे दुर्भाग्य से देखी गई।

साम्प्रतं नगर-गमनाय[1] मनः कथमपि न करोति। अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत्। का गतिः। यावत्तं कृताचा-रपरिक्रमं पश्यामि। (इति परिक्रम्यावलोक्य च) एष बाणासन-हस्ताभिर्यवनीभिर्वनुपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु। अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रमं[2] लभेय।

[संपदं णअरगमणस्स मणं कहं वि ण करेदि। अज्ज वि से तं एव्व चिन्तअन्तस्स अच्छीसु पभादं आसि। का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं पेक्खामि। एसो बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं पडिवुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो होदु। अङ्गभङ्गविअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं। जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं।]

हिन्दी—इस समय वह (महाराज दुष्यन्त) राजधानी लौटने का मन किसी प्रकार भी नहीं करते हैं। आज भी उसी शकुन्तला का चिन्तन करते हुए नेत्रों से सबेरा कर दिया। क्या किया जाय। उनके दैनिक कार्य समाप्त होने पर मिलूँगा। (चलकर देखकर) यह प्रिय सखा धनुष धारण किये हुए वन कुसुम माला धारिणी यवनियों से घिरे इधर ही आ रहे हैं। ठीक है। अंग भंग से पीड़ित की भाँति होकर खड़ा रहूँगा। शायद इसी तरह कुछ विश्राम मिल जाय।

(इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः।)

हिन्दी—(इस प्रकार लकड़ी के दण्ड का सहारा लेकर खड़ा हो गया।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा।)

हिन्दी—(तदनन्तर पूर्वनिदिष्ट परिवार के साथ राजा प्रवेश करता है।)

राजा—(आत्मगतम्)[3]

हिन्दी—राजा—(अपने मन में)

१. नि० सा०—गमनस्य (गमनाय)   २. नि० सा०—विश्रामं

३. का०—आत्मगतम् नास्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि[१] ।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥ १ ॥

अन्वय—कामं प्रिया न सुलभा, तु मनः तद्भावदर्शनाश्वासि, मनसिजे अकृतार्थे अपि उभयप्रार्थना रतिं कुरुते।

हिन्दी—भले ही शकुन्तला की प्राप्ति मुझे न हो, तथापि मेरा हृदय उसके प्रेम भाव को देखने से आश्वस्त (निश्चिन्त) है। कामदेव के सफल न होने पर भी कामी कामिनियों की परस्पर मिलन रूपी अभिलाषा (कामना) सुख उत्पन्न करती है।

नोट—महाकवि कालिदास ने उक्त पद्य में यह व्यंजित किया है कि उत्कृष्ट प्रेम की कृतार्थता दो प्रेमियों के परस्पर सम्मिलन में है और यह कामना अनुराग जन्य आनन्द प्रदायिनी है।

संस्कृत व्याख्या—कामम्—यद्यपि, प्रिया—शकुन्तला, सारल्येन न सुलभा—प्रापणीया। तथापि मे मनः-हृदयं—तद्भाव—दर्शनाश्वासि— तदानुरागावलोकनेन संतुष्टम, मनसिजे—काम भावे, अकृतार्थेऽपि—अचरितार्थे, असफलीभूते, उभय प्रार्थना—परस्परसम्मिलनः कामना, रतिं—सुखं, आनन्दं, जनयति—करोति।

टिप्पणी—(१) सुलभ—सु + लभ् + खल् + टाप्, तस्याः भावः तद्दर्शनं—ष० तत्पु० आ + श्वस् + णिनि मेघदूत में ऐसी ही उक्ति है—स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं—विभ्रमो हि प्रियेषु॥ मानसिज—मनसि + जन + ड—अकृत्वार्थे—कृतः अर्थेः येभ्यः ते—ब० व्री०, उभयोः प्रार्थना—ष० तत्पु०, प्र + अर्थ + युच् + टाप्। (२) पूर्वार्द्ध (विशेष) का परार्ध (सामान्य) से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार। मनसिजे अकृतार्थेऽपि रतिं कुरुते—विरोधाभासअलंकार। (३) प्रसादगुण—वैदर्भी रीति, (४) यहाँ 'विलास' नामक मुख सन्धि का अंग है। समीहा रति भोगार्था विलास इति कथ्यते। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार मानने से नाटक में सरलता एवं सहृदयता के भाव व्यंजित होते हैं। कुछ लोग काव्यलिंग एवं अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार मानते हैं।

(स्मितं कृत्वा) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते।

हिन्दी—(मुस्कराकर) इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार अपने प्रिय जन की मनोवृत्ति को समझने वाला कामी विप्रलब्ध होता है (ठगा जाता है)

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या[२] तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव ।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ॥२॥

अन्वय—अन्यतः अपि नयने प्रेरयन्त्या तया यत् स्निग्धं वीक्षितम्, नितम्बयोः गुरुतया विलासात् इव यच्च मन्दं यातम्, मा गा इति उपरुद्धया सा सखी यदपि सासूयम् उक्ता, तत् सर्व मत्परायणं किल, अहो कामी स्वतां पश्यति।

हिन्दी—दूसरी ओर भी नेत्रों को डालने वाली उस शकुन्तला के द्वारा जो प्रेमपूर्वक देखा गया, नितम्ब भाग के निचले हिस्से के भारी होने के कारण विलासपूर्वक जो मन्द गमन

---

१. दर्शनायासि—नि० सा०
२. प्रेषयन्त्या—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किया गया, (मत जाओ) इस प्रकार रोके जाने पर भी जो क्रोध युक्त होकर उसके द्वारा कहा गया, वह सब चेष्टाएँ मेरे लिए थीं, अहो कामासक्त व्यक्ति सब जगह अपने लिए ही देखता है।

नोट—इसमें महाकवि ने दुष्यन्त के द्वारा—कामासक्त पुरुष के हृदयगत भावनाओं की अति सुन्दर अभिव्यंजना की है। यहाँ प्रेमी-प्रेमिका—दोनों की चेष्टाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

संस्कृत व्याख्या—अथस्मिन् वस्तुनि अपि नयने—नेत्रे, प्रेरयन्त्या-व्यापार-यन्त्या तया शकुन्तलया यत्-स्निग्धं-साभिलाषं वीक्षितं—अवलोकितं, नितम्बयोः—कटि प्रदेशस्य पश्चात् भागस्य, गुरुतया—पृथुलतया, विलासात्—भाव विशेषात—मन्दं—मन्थरम्, यात गमनं मा गाः—मागच्छ इति उपरुद्धया—निवारितगत्या सा—सखी—प्रियंवदा सासूयम—सेर्व्यम्, उक्ता—अभिहिता—कथिता, तत् सर्वम, मत्परायणम्—मधुरागकृतं, अहो—आश्चर्यं, कामी—काम परवशः पुरुषः सर्वंकालं स्वतां—आत्मविषयतां, पश्यति—अवगच्छति—मन्यते।

टिप्पणी—प्रेरयन्त्या—प्र + ईर् + णिच् + शतृ + ङीप् = तृ०ए०व०, स्निग्ध दृष्टिः—विकाशि स्निग्ध मधुरा चतुरे बिभ्रती भ्रुवोः। कटाक्षिणी साभिलाषा। दृष्टिः स्निग्धा अभिधीयते। नितम्बयो गुरुतया—इससे नारियों का सौन्दर्य-व्यंजित है। पश्चात् नितम्बः स्त्रीकट्याः विलासाः-धीरतापूर्वक देखना, विचित्र चाल, मुस्कान युक्त बात करना—ये सभी विलास हैं। सासूया—असूयया सह मा गाः—इ + लुङ्, म०पु० ए०व०, इ को गा आदेश, तथा अडागम अभाव (न माङ्योगे), 'इणोगालुङ्',

अलंकार— १. यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलं, २. विलासादिव में उत्प्रेक्षालंकार, ३. यहाँ कामिनी की शृंगारिक चेष्टाओं का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलं, ४. शार्दूलविक्रीडित छन्द, ५. प्रसादगुण एवं वैदर्भी रीति, तुलना —श्रोण्णीभारा दलसगमन स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्—मेघदूत०।

विदूषकः—(तथास्थित एव) भो वयस्य, न मे हस्तपादं प्रसरति। तद्[1] वाङ्मात्रेण जापयिष्यामि। जयतु[2] जयतु भवान्।

[भो वअस्स,ण मे हत्थपाआ पसरन्ति। ता वाआमेत्तएण जीआवइस्सं। जेदु जेदु भवं।]

हिन्दी—विदूषक—हे मित्र मेरे हाथ-पैर फैलते नहीं। अतएव वाणी मात्र से ही कहता हूँ। आपकी जय हो।

राजा—कुतोऽयं[3] गात्रोपघातः ?

हिन्दी—राजा—यह अंगों (हाथ-पैरादि) में जकड़न कैसे है।

विदूषकः—कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।

[कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छेसि।]

हिन्दी—विदूषक—स्वयं आँखें फोड़कर आँसू गिराने का कारण क्यों पूछते हैं ?

राजा—न खल्ववगच्छामि।

हिन्दी—राजा—निश्चित ही मैं नहीं जानता।

---

१. नि० सा०—'तद्' नास्ति। २. जयतु (जेदु) इति, ३. नास्ति—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषकः—भो वयस्य, यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत् किमात्मनः प्रभावेण, ननु नदीवेगस्य।

[भो वअस्स, जं वेदसो कुज्जलीलं विडम्बेदि, तं किं अत्तणो पहावेण, णं णईवेअस्स ?]

हिन्दी—विदूषक—हे मित्र, वेतस लता (बेंत) जो कुबड़े का अनुकरण करती है, तो क्या वह अपनी इच्छा से अथवा नदी के प्रवाह के कारण ?

राजा—नदीवेगस्तत्र कारणम्।

हिन्दी—राजा—उसमें (वेतस की वक्रता में) नदी वेग ही हेतु है।

विदूषकः—ममापि भवान्

[मम वि भावं।]

हिन्दी—विदूषक—मेरे भी आप कारण हैं।

राजा—कथमिव।

हिन्दी—राजा—कैसे ?

विदूषकः—एवं राजकार्याण्युज्झिवैतादृश[1] आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत् प्रसीद मे। एकाहमपि तावद् विश्रम्यताम्।

[एव्वं राअकज्जाणि उज्झिअ एआरिसे आउलप्पदेसे वणचर वुत्तिणा तुए होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावद समुच्छारणेहिं संखोहिअसंधिबन्धाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसीद मे। एक्काहं वि दाव विस्समीअदु।]

हिन्दी—विदूषक—इस प्रकार राज सम्बन्धी कार्यों को त्यागकर ऐसे घनघोर प्रदेश में शबर लोगों जैसा आपको होना चाहिए ? यह सत्य है कि प्रतिदिन जंगलीं पशुओं का अनुगमन करने से मेरे अंगों के सभी जोड़ ढीले पड़ गये हैं, शरीर पर नियन्त्रण अब नहीं है। तो आप मुझपर प्रसन्न होइये। अतः एक दिन के विश्राम कीजिए।

राजा—(स्वगतम्) अयं चैवमाह। ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः। कुतः—

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) यह विदूषक ऐसा विश्राम के लिए कह रहा है। मेरा भी मन कण्व पुत्री का स्मरण करके आखेट कार्य से विमुख हो रहा है। क्योंकि—

टिप्पणी—शुनः पदानि इव पदानि येषां ते श्वापद—ब०व्री०, गात्राणाम्—अधीगर्थ दयेशां कर्मणि से—षष्ठी वि०, मृगया विक्लवं My mind too is weaned from chase.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. तादृशे—तारिसे—नि० सा०

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो
धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ।। ३ ।।

अन्वय—अधिज्यम् आहितसायकम् इदं धनुः मृगेषु नमयितुं न शक्तः अस्मि। यैः प्रियायाः सहवसितम् उपेत्य मुग्धविलोकितोपदेशः कृतः इव।

हिन्दी—प्रत्यञ्चा चढ़े हुए एवं बाण रक्खे हुए इस धनुष को मैं हरिणों पर आकृष्ट करने में असमर्थ हूँ, जिन्होंने मेरी प्रिया (शकुन्तला) के साथ रहकर मानो उसे मधुरता देखना सिखाया है।

नोट—इस पद्य में महाकवि कालिदास ने दुष्यन्त की सहृदयता व्यंजित की है। मृगों के प्रति उपकृत होने के कारण उसकी कारुण्य भावना उद्भूत होती है।

संस्कृत व्याख्या—अधिज्यम्—प्रत्यञ्चायुक्तम, आहितसायकम्—धृतशरम, इदम—एतद धनुः धनुर्दण्डम, अहं मृगेषु—हरिणेषु चालितुं न समर्थोऽस्मि। यैः हरिणैः मदीयैः शकुन्तलायाः सहवासं उपेत्य कृत्वा, मधुरतया अवलोकनं प्रशिक्षितः।

टिप्पणी—(१) काव्यलिंग—यहाँ पूर्व वाक्य उत्तर वाक्य के प्रति हेतु होने से काव्यलिंग अलं०, (२) कृत इव—हरिणों के द्वारा शकुन्तला को मधुर विलोकन की शिक्षा देने की सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा। (३) पुष्पिताग्रा छन्द—जिसके प्रथम तथा तृतीय चरण में २ नगण, तथा एक रगण के साथ यगण हो, दूसरे-चौथे चरण में नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु वर्ण हो। (४) यहाँ अनुस्मृति नामक तीसरी मदनावस्था का वर्णन है। अधिज्या यस्मिन-ब०व्री०, वसतिः स्यात् स्त्रियां वासे-मेदिनी मुग्धानि च तानि विलोकितानि (कर्मधा०), मौर्वी ज्यांशिञ्जिनी गुणः-अम। उपेत्य—उप + इ + ल्यप्। यहाँ शकुन्तला का मुग्ध सौन्दर्य व्यंजित है। बाल्यावस्था एवं ब्रह्मचारी होने के कारण शकुन्तला में मुग्धभाव है—रा० भ०। प्रत्यञ्चा—String, as instruction were given to her in casting artless glances.—M. R. Kale

मुग्धानि—स्वभाव सुन्दराणि—रा० भ० विक्लवं—विह्वलं विरक्तमिति यावत रा०म०

विदूषकः—(राज्ञो मुखं विलोक्य) अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रुदितमासीत्।

[अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मन्तेदि। अरण्णे मए रुदिअं आसि।]

हिन्दी—विदूषक—(राजा का मुख देखकर) आप कुछ मन में रखकर चिन्तन कर रहे हैं। मैंने तो अरण्यरोदन किया था।

राजा—(सस्मितम्) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—और क्या, मेरे द्वारा मित्र की बातें उल्लंघनीय नही हैं। अतः मैं खड़ा हूँ। Friend's words are not be disregarded—Kale.

विदूषकः—चिरं जीव। (चिरं जीअ)

हिन्दी—विदूषक—आप दीर्घ तक जीवित रहें।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(इति गन्तुमिच्छति।)

(इस तरह जाने की इच्छा करता है।)

राजा—वयस्य, तिष्ठ। सावशेषं मे वचः।

हिन्दी—राजा—मित्र रुको, अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई।

विदूषकः—आज्ञापयतु भवान्। [आणवेदु भवं।]

हिन्दी—विदूषक—आप आदेश करें।

राजा—विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्ननायासे[1] कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

हिन्दी—राजा—विश्राम करने के बाद आप भी मेरे एक सहज कार्य में सहायक बनें।

विदूषकः—किं मोदक[2]खादिकायाम्। तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः। [किं मोदअखज्जिआए। तेण हि अअं सुगहीदो खणो।]

हिन्दी—विदूषक—क्या लड्डू खाने में, तो यह अवसर मुझे मान्य है। (स्वीकार है)

राजा—यत्र वक्ष्यामि। कः कोऽत्र भोः।

हिन्दी—राजा—जिसमें मैं कहूँगा। अरे यहाँ कौन है ?

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

दौवारिकः—(प्रणम्य) आज्ञापयतु भर्ता। [आणवेदु भट्टा।]

हिन्दी—द्वारपाल—(राजा को प्रणाम करके)—महाराज आज्ञा दें।

राजा—रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

हिन्दी—राजा—हे रैवतक, सेनापति को बुलाओ।

दौवारिकः—तथा। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य) एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्तेतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः। [तह। एसो अण्णावअणुक्कण्ठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि। उवसप्पद अज्जो।]

हिन्दी—द्वारपाल—ऐसा ही हो। (राजा के पास से जाकर सेनापति के साथ पुनः प्रवेश करके) यह महाराज आदेश देने के लिए उत्सुक होकर इधर ही देखते हुए स्थित हैं। आप समीप पहुँचें।

सेनापतिः—(राजानमवलोक्य) दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता। तथा हि देवः—

हिन्दी—सेनापति—(राजा को देखकर) मृगया में दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं, परन्तु

---

१. 'एकस्मिन्' नास्ति—नि० सा०, २. [illegible]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy Kathmandu Collection

वह राजा में गुण के लिए हो गई है। क्योंकि महाराज—

टिप्पणी—अरण्यरोदनम—निरर्थक कार्य, सावशेषम्—अवशिष्यते, इति तेन सह—सहार्थक ब०व्री०, विगतं श्रांतं यस्य सः—विश्रान्तः ब०व्री० सह अयते इति सहायः मोदयति इति मोदकः मुद + णिच् + ण्वुल्—जो प्रसन्न कराता है। द्वारि स्थितः—द्वौवारिकः—द्वार + ठक्, नीचेषु प्राकृतं भवेत्—नियम से द्वारपाल प्राकृत भाषा बोलता है। दृष्टाः दोषाः यस्याः सा दृष्टदोषा—ब०ब्री०, मत्स्य पुराण के विचार से राजा का सेनापति धनुर्विद्या का ज्ञाता हो—कुलीनः शीलसम्पन्नः धनुर्वेद विशारदः। राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा।

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति ॥ ४॥

अन्वय—गिरिचरः नागः इव देवः अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्व रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैः अभिन्नम् अपचितम् अपि व्यायतत्वात् अलक्ष्यं प्राणसारं गात्रं बिभर्ति।

हिन्दी—पर्वत पर विचरण करने वाले हाथी की तरह निरन्तर धनुष की डोरी खींचने से कठोर, सूर्य की किरणों को सहन करने में समर्थ, पसीने की बूँदों से रहित, दुर्बल होने पर भी विस्तृत होने से न दिखाई देने वाले प्राणरूपी बल वाले शरीर को धारण करते है।

नोट—यहाँ सेनापति द्वारा मृगया (शिकार) के अनेक गुण अभिव्यंजित है। मृगया परिश्रमशीलता, कष्ट सहिष्णुता तथा शरीर बलिष्ठता का कारण है। इसमें महाकवि ने राजा के ऐश्वर्य एवं प्रभाव को ध्वनित किया है।

संस्कृत व्याख्या—गिरिचरः शैलविहारी, नाग इव—गज इव, अनवरत धनु०—निरन्तर धनुष-प्रत्यञ्चा कर्षणेन कठोर मणिबंधम्, रवि किरण०—सूर्य किरण सहन शीलम्, स्वेदलेशैः—श्वेदविन्दुभिः अभिन्नं—असंयुक्तम्, अपचितम्—क्षीणम् अपि व्यायत्वात्—पुष्पाङ्गत्वात् अलक्ष्यम्—अप्रतीयभावं (अदृष्टि गोचरं) प्राणसारं—बलपूर्वकम्, गात्रं—वपुः शरीरं वा विभर्ति—धारयति।

टिप्पणी—न अगः—नागः न गच्छति इति अगः, न अगः इति नागः अर्थात जो स्थिर न हो, नागः पन्नग मातंग—मेदिनी—अनवरतं धनु—र्ज्या आकर्षणं तेन शूरः तेंन क्रूरः मणिवंधः यस्य—ब०व्री०, व्यायत्वात—वि + आ + यम् + क्त, हेतौ पञ्चमी. अपचितम्—अप + चि + क्त—घटना, दुर्बल होना, प्राणः बलमेव सारः यस्मिन्—ब०व्री०, ज्या मौर्वी ज्या वसुन्धरा—शाश्वतः। गिरिचरः—चरेष्टः—चर धातु से ट प्रत्यय, (१) पर्वत विहारी हाथी से दुष्यन्त की तुलना करने के कारण उपमालं। (२) समस्त विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलं०। (३) राजा के विशेषणों के द्वयर्थक (हाथी एवं राजा पक्ष में) होने से श्लेषालं०। छन्द-मालिनी, प्रसाद-गुण। मालिनी छन्द के लक्षण—ननमय ययुतेयं—मालिनी भोगिलोकैः—जिसमें २ नगण, मगण,, २ यगण तथा ८ (भोगि) तथा ७ (लोक) वर्णों पर यति हो।

मनु० ७/५० में राजा के ४ दोष हैं—मदिरा-पान, द्यूत, स्त्री संग, शिकार (मृगया)। का० नी० में भी मदिरा पान, स्त्री, मृगया, द्यूत ये ४ दोष बताये गये। रवि किरण सहिष्णु-Capable of enduring the rays of sun, व्यायत्वात् due to muscular development प्राणसारं—essence of strength. क्रूरपूर्वम्—प्रो० गदकर यहाँ पूर्व पद निरर्थक मानते हैं।

(उपेत्य) जयतु जयतु स्वामी। गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमन्यत्रावस्थीयते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—सेनापति—(महाराज के पास जाकर) महाराज की जय हो। जंगल सिंहादि पशुओं से घिर गया है तो आप यहाँ क्यों बैठे हैं।

राजा—मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन[1]।

हिन्दी—राजा—आखेट की निन्दा करने वाले माधव्य ने मुझे निरुत्साहित कर दिया है।—My ardour has been damped—Kale.

सेनापति—(जनान्तिकम्) सखे, स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। (प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधेयः[2]। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्।

हिन्दी—सेनापति—(मुँह फेरकर) मित्र (विदूषक) अपनी स्थिति पर दृढ़ रहो, मैं महाराज की इच्छा के अनुसार रहूँगा। (प्रकट रूप में) यह मूर्ख बकता रहे। निश्चित ही महाराज ही इस विषय में प्रमाण हैं।

टिप्पणी—विधेय + अण्—वैधेय-मूर्खः रा० भ० let the fool prate as he like.—Kale निदर्शनम्—मृगया के गुण युक्त में राजा ही प्रमाण हैं। माधव्य विदूषक का नाम है।

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः ॥५॥

अन्वय—वपुः मेदश्छेदकृशोदरं लघु उत्थानयोग्यं भवति। सत्त्वानां भयक्रोधयोः विकृतिमत् चित्तम् अपि लक्ष्यते। स च धन्विनाम् उत्कर्षः यत् चले लक्ष्ये इषवः सिध्यन्ति, मृगयां मिथ्या एव व्यसनं वदन्ति, ईदृक् विनोदः कुतः।

हिन्दी—चर्बी के घट जाने के कारण क्षीण उदर वाला शरीर, हल्का एवं उत्साह के योग्य हो जाता है। प्राणियों की भय-क्रोध के समय विचलित मनोवृत्ति परिज्ञात होती है। यह धनुर्धरों का वैशिष्ट्य है कि गतिशील लक्ष्य पर उनके बाण सफल होते हैं। लोग आखेट को व्यर्थ ही व्यसन कहते हैं ऐसा (आखेट जैसा) मनोविनोद कहाँ है?

संस्कृत व्याख्या—वपुः शरीरं मेदोविनाशेन क्षीणम् उदरं यस्य, लघु—भारहीनं, उत्साह—योग्यं भवति। सत्त्वानां जीवानां भयक्रोधावसर—योः विकृतं चञ्चलं भवति। धनुष्काणाम्—उत्कर्षः नैपुण्यमिदं यत, चंचले लक्ष्ये, बाणाः सफलाः भवन्ति, जनाः आखेटं मुधैव व्यसनं दोषं वदन्ति, एवं मनोरंजनं कुत्र वर्तते।

नोट—महाकवि ने यहाँ मृगया को सर्वश्रेष्ठ मनोरञ्जन कहा है। इससे शरीर की स्वस्थता, बलिष्ठता एवं उत्साह योग्यता प्राप्त होती है। साथ ही यहाँ सैनिक स्वभाव का सुन्दर चित्राङ्कन दर्शनीय है।

टिप्पणी—मेदसः छेदेन कृशम् उदरम् यस्य—ब० व्री०, उत्थानस्य योग्यम्—ष० तत्पु० मेदोहि सर्वजन्तुनाम उदरेषु अवस्थितेषु स्थितम्—भावप्रकाश, मनु ने (म० स्मृ० ७/४) मृगया को कामज व्यसन कहा है—मृगाक्षो कामजो दशको गुणः—कामन्दकनीतिसार में मृगया के गुण बताये गये हैं—जितश्रमत्वं व्यायामः, आममेदकफक्षयः। चलस्थिरेषु लक्ष्येषु बाणसिद्धिरनुत्तमा॥ यहाँ राजा के

१. माढव्येन—नि० सा० २. वैधेयः—विधवा का पुत्र—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चित्तानुवर्तन के कारण दाक्षिण्य नामक नाट्यालंकार है। यहाँ दोष को गुणरूप में प्रदर्शित करके 'मृदव' नामक 'वीथिका' अंग है—दोषा गुणा, गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत्॥ सा० द०। व्यसनं—व्यस्यते कर्तव्यात् अनेन इति व्यसनं, वि + अस + ल्युट व्यवस्यति श्रेयः अस्मात्, व्यसति, अधो व्रजति अस्मात् इति व्यसन—अर्थात् जिससे व्यक्ति कर्त्तव्य से च्युत हो या उसका कल्याण नष्ट हो जाय, उसे 'व्यसन' कहते हैं। विकृति र्विद्यते यस्मिन् तत्—ब० व्री० धन्वम अस्ति अस्य धन्वी, तेषाम। छन्द—शार्दूलविक्रीड़ित। (१) यहाँ मृगया के निर्दोष होने के अनेक कारणों का उल्लेख है अतः समुच्चय अलंकार। (२) यहाँ पूर्व ३ वाक्य अन्तिम वाक्य मृगया के व्यसन न होने के कारण हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है। उत्कर्षः— glory of the archery, इषवः सिध्यन्ति—arrows hit a moving mark, मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयां ईहम् विनोदः कुतः—Vainly chase is called a vice, where else is found such amusement.—Kale.

विदूषकः—(सरोषम्) अपेहि[1] रे उत्साहहेतुक। अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि। (अवेहि रे उच्छाह हेतुअ। अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडवीं आहिण्डन्तो णारणासिआलोलुवस्स जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि।)

हिन्दी—विदूषक—(क्रोध से युक्त होकर, सेनापति से कहता है) हे उत्साह बढ़ाने वाले दूर हट, महाराज समझ गये हैं। तुम तो एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमते हुए मनुष्य की नाक के लालची किसी ऋक्ष के मुख में गिर जाओगे।

राजा—भद्र सेनापते, आश्रमसंनिकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत्—

हिन्दी—राजा—हे सेनापति, हम लोग आश्रम के निकट स्थित हैं अतः तुम्हारी बात को मैं नहीं मानता हूँ।

टिप्पणी—गर्हितं लुच्यति इति लोलुपः—लुप् + यङ् + अ + अच्। मोनियर विलियम्स रीछ को मनुष्य की नाक पकड़ने वाला कहते हैं।

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहततिभि[2]र्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥ ६॥

अन्वय—महिषाः शृङ्गैः मुहुः ताडितं निपानसलिलं गाहन्ताम्। छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थम् अभ्यस्यतु। वराहततिभिः विश्रब्धं पल्वले मुस्ताक्षतिः क्रियताम्। इदम् अस्मद्धनुः च शिथिलज्याबन्धं विश्रामं लभताम्।

हिन्दी—(भैसों के) सीगों से बार-बार विलोड़ित तालाब के जल में भैंसे अवगाहन करें (डुबकी लगायें)। छाया में झुण्ड बाँधे हुए हरिणों का समूह जुगाली का अभ्यास करे, सुअरों का समूह विश्वास युक्त (निश्चिंत) होकर तलैयों (अल्प सरोवरों) में नागरमोथा खायें। ढीली हुई प्रत्यञ्चा वाला हमारा यह धनुष विश्राम करे।

१. अपेहि (अवेहि) पाठो नास्ति—नि० सा० २. ततिभिः—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—महिषाः—लुलायाः, शृङ्गैः—विषाणैः, मुहुः—बारम्बारम्, ताडितम्—आहतम्, निपानसलिलं—जलाशय जलं, गाहन्ताम्—आलोडयन्तु, छाया बद्ध०—अनातप बद्ध यूथम्, मृगकुलं—मृग समूहः, रोमन्थम्—चर्वितचर्वणम्, अभ्यस्यतु—पुनः पुनः करोतु। विश्रब्धं—निर्भयम्, वराहततिभिः—शूकर समूहैः, पल्वले—अल्प सरसि, जलाशये, मुस्ताक्षतिः क्रियताम्—जलीय वृणोत्खननं करोतु, इदं—एतद्, मम धनुः कोदण्डः शिथिलज्याबन्ध—शिथिलत प्रत्यञ्चाबन्धः, विश्रामं—विश्रान्तिं, लभताम्—प्राप्नोतु।

टिप्पणी—(१) निपीयते अस्मिन् इति निपानम् तस्य सलिलम्—ष० तत्पु०, छायासु बद्धं कदम्बकं येन—ब० व्री०, रोमन्थम्—रोकं मथ्नाति (ग लोप)—तारानाथ, रोमस्य मन्थः—भानुजी, रोग + मथ् + अण्—रोग को नष्ट करने वाला, वराहततिः—सूअरों के झुण्ड, प्रो०—गदकर 'वराहतति' पाठ मानते हैं। शिथिलः ज्यायाः बन्धः येन—ब० व्री०, वि + श्रम् + णिच् + अच्—पाणिनि अम् से अन्त होने वाली बाधाओं में वृद्धि का निषेध करते हैं, अतः विश्राम पाठ अशुद्ध है। परन्तु भवभूति, कालिदास यह प्रयोग करते हैं—विश्रामो हृदयस्य यत्र (उत्तर०) राघव भट्ट, वल्लभ, भट्टोजि दीक्षित इसे अपाणिनीय प्रयोग कहते हैं। (२) यहाँ प्राणियों की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार, (३) कार्यकारण दोनों का समान काल में वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलं० (४) यहाँ अनेक क्रियाओं का संग्रह होने से समुच्चय अलं० (५) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द।

नोट— १. यहाँ महिष, हरिण, वराह आदि अनेक प्राणियों की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन है। २. यहाँ महाराज दुष्यन्त में करुणा एवं स्नेह के भाव अभिव्यंजित हैं। ३. नायक, नायिकाओं के साथ जलक्रीडा, स्वतन्त्र मिलन, दन्तक्षत आदि जन्य आनन्द प्राप्त करें, यह अर्थ संकेतित है।

Let the Bisons punge in the water of puddles chews the cud, let the groups of boars dig up the musta grass, let this bow have repose with the fastening of its string loosened.—Kale.

सेनापतिः—यत् प्रभविष्णवे रोचते।

हिन्दी—सेनापति—जो महाराज को अच्छा लगे।

राजा—तेन हि निवर्तय पूर्वगतान् वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-
स्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥ ७॥

हिन्दी—राजा—इसलिए आगे गये हुए वन घेरने वालों को लौटाओ। मेरे सैनिकों को इस तरह रोक दो जिससे वे तपोवन में विघ्न न पहुँचावें। देखो!

अन्वय—शमप्रधानेषु तपोधनेषु दाहात्मकं गूढं तेजः अस्ति। हि स्पर्शानुकूलाः सूर्यकान्ताः इव अन्यतेजोऽभिभवाद् तत् वमन्ति।

हिन्दी—शान्ति युक्त तपस्वियों में जला देना वाला तेज छिपा रहता है, क्योंकि स्पर्श के योग्य सूर्यकान्त मणि की भाँति वे दूसरों के तेज से अभिभूत होने के कारण उसे (छिपे तेज को) प्रकट करते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—शान्तिसम्पन्नेषु तपस्विषु दाहात्मकं-दहन स्वभावं, तेजः धाम अस्ति-भवति। हि यतः स्पर्शानुकूला—स्पर्शयोग्याः सूर्यकान्ताः सूर्यकान्तमणयः इव अन्य तेजोऽभिभवात् अन्य तेजोसमाक्रमणात्। तत् स्वकीयं प्रच्छन्नं तेजः वमन्ति प्रकटयन्ति।

नोट—इसमें महाकवि कालिदास ने राजा दुष्यन्वत का प्रजापालकत्व एवं तपोवन के प्रति आदरातिशय भाव व्यंजित किया है।

टिप्पणी—शमः प्रधानं येषु—ब० व्री०, स्पर्शस्य अनुकूला—ष० तत्पु०, अन्यस्य तेजः (ष० तत्पु०) अभिभव—अभि + भू + घञ्, हेतौ पञ्चमी से पञ्चमी, वमन्ति—वम + लट् प्र० पु० ब० व०, तप एव धनं येषां ते—ब० व्री० सूर्यकान्ताः सूर्य के सामने पड़ने पर सूर्यकान्त मणि से तीक्ष्ण किरणें निकलती हैं। सूर्यवत् कान्ताः—उपमित कर्मधा० (१) तपस्वियों की सूर्यकान्त मणि से तुलना करने के कारण उपमालं०, (२) गुप्त तेज का अनुमान होने से अनुमानालंकार, (३) श्लेष तथा अनुप्रास (धाने, धने), (४) उपजाति छन्द, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति। (५) पौराणिक आख्यान के अनुसार जमदग्नि एवं वशिष्ठ आदि ऋषियों के आश्रमों में हैहयराज कार्तवीर्य एवं विश्वामित्र के प्रविष्ट होने पर उन्हें अपमानित होना पड़ा।

सेनापतिः—यदाज्ञापयति स्वामी।

हिन्दी—सेनापति—महाराज की जैसी आज्ञा।

विदूषकः—ध्वंसतां ते उत्साहवृत्तान्तः। (धंसदु दे उच्छाहवुत्तन्तो।)

हिन्दी—विदूषक—तुम्हारी मृगया के प्रति उत्साह वार्ता (प्रवृत्ति) नष्ट हो जाये।

(निष्क्रान्तः सेनापतिः)

(सेनापति निकल गया)

राजा—(परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेशम्। रैवतक[1], त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु।

हिन्दी—राजा (सेवकों की ओर देखकर)—आप लोग आखेट के वेश को उतार दें रैवतक, तुम भी अपना कार्य (द्वार पर स्थित रहना) करो।

परिजनः—यद् देव आज्ञापयति (जं देवो आणवेदि)

हिन्दी—सेवक वर्ग—जो महाराज की आज्ञा

(इति निष्क्रान्तः)

(सभी पात्र निकल गये)

विदूषकः—कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतमेतस्मिन् पादपच्छायाविरचितवितानसनाथे शिलातले निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि। (किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं एदस्सिं पादवच्छाआविरइदविदाणसणाथे सिलाअले णिसीददु भवं, जाव अहं वि सुहासीणो होमि।)

१. रैवतक—पुरुष पात्र, जो नाटक में द्वारपाल का कार्य सम्पन्न करता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—विदूषक—आपने इस स्थान को मक्षिका रहित (एकान्त, शून्य) बना दिया। इस समय आप इस वृक्ष की छाया में चँदोवा युक्त शिलातल पर बैठें, जिससे मैं भी सुख पूर्वक बैठ सकूँ।

राजा—गच्छाग्रतः।

हिन्दी—राजा—आगे चलो।

विदूषकः—एतु भवान्। (एदु भवं।)

हिन्दी—विदूषक—आप आइये

(इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ)

(इस प्रकार दोनों चारों ओर घूमकर बैठ जाते हैं)

राजा—माधव्य,[१] अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि। येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।

हिन्दी—राजा—हे माधव्य, (विदूषक, राजा का सचिव) तुमने प्राप्तव्य नेत्रों के फल को नहीं पाया क्योंकि तुमने द्रष्टव्य वस्तु को नहीं देखा।

विदूषकः—ननु भवानग्रतो मे वर्तते। (णं भवं अग्गदो मे वट्टदि।)

हिन्दी—विदूषक—आप तो मेरे सामने ही हैं।

टिप्पणी—प्रो० शारदारंजन राय के विचार से उक्त दृश्य प्रात:काल का है। माधव्य अनवाप्तचक्षुः फलः से तृतीय अंक तक प्रतिमुख संधि है ? प्रतिमुख संधि में बीच का दृश्य अदृश्य रूप से प्रकाशित होता है। अनवाप्तचक्षुः—You have not obtained the fruit of your eye's for you have not seen the object must worthy to be seen.

राजा—सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति। अहं तु[२] तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि।

हिन्दी—राजा—सभी लोग अपनों को सुन्दर समझते हैं। मैं उस कण्व ऋषि के आश्रम की अलंकार स्वरूपा शकुन्तला के सम्बन्ध में कहता हूँ।

Every one considers his own as beautiful.—Kale. Seems his own—राय

विदूषकः—(स्वगतम्) भवतु। अस्यावसरं न दास्ये। (प्रकाशम्) भो वयस्य, ते तापसकन्यकाऽभ्यर्थनीया दृश्यते। (होदु। से अवसरं ण दाइस्सं। भो वअस्स, ते तावसकण्णआ अब्भत्थणीआ दीसदि।)

हिन्दी—विदूषक—(अपने मन में) अच्छा इसका अवसर नहीं दूँगा। (प्रकट) हे मित्र, तुमसे तपस्वी कन्या (शकुन्तला) प्रार्थनीय दिखाई पड़ती है।

राजा—सखे, न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते।

हिन्दी—राजा—हे मित्र, अग्राह्य वस्तुओं में पुरुवंशियों का चित्त नहीं जाता, या व्याप्त नहीं होता।

---

१. माढव्य—नि० सा० २. अहं तु—नास्ति—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् ।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ॥ ८ ॥

अन्वय—शिथिलम् अर्कस्य उपरि च्युतं नवमालिकाकुसुमम् इव तत् मुनेः अपत्यं किल सुरयुवतिसंभवम् उज्झिताधिगतम्।

हिन्दी—शिथिल मन्दार पुष्प के ऊपर नवमालिका (चमेली) के पुष्प की भाँति वह ऋषि (कण्व) की कन्या शकुन्तला निश्चित ही अप्सरा के द्वारा छोड़ दी गई है और मुनि द्वारा उपलब्ध की गई है।

संस्कृत व्याख्या—शिथिलम्—वृन्तात् श्लथम्, अर्कस्य—मन्दार वृक्षस्य उपरि, च्युतं—पतितं, नवमालिकाकुसुमम्—लताप्रसूनम्, इव तत्—शकुन्तला मुनेः —कण्वस्य, अपत्यम्—सन्ततिः, सुरयुवतिसम्भवम्—मेनकागर्भसमुत्पन्नम्:, मेनकयापरित्यक्तम् कण्वेन प्राप्तम् इति।

नोट—इस श्लोक में महाकवि कालिदास ने शकुन्तला की अतिशय सुन्दरता एवं अतिशय पेलवता (कोमलता) व्यंजित किया है।

टिप्पणी—(१) शकुन्तला की तुलना नव मालिका के पुष्प से की गई है अतः उपमालंकार। (२) शकुन्तला विश्वामित्र एवं मेनका के संयोग से उत्पन्न है तथा मेनका से परित्यक्त होकर कण्व द्वारा गृहीत की गई है। (३) आर्या छन्द एवं आख्यान नामक नाट्यालंकार है—आख्यानं पूर्व वृत्तोक्तिः—सा० द० अर्थात् जहाँ पूर्व वृत्तान्त का वर्णन किया जाय। सुराणां युवतिः—ष० तत्पु०, तस्या सम्भवः—ष० तत्पु०, अपत्यम्—न पतत्रि पितरः येन जातेन तत्—अर्थात् सन्तान जिसके पैदा होने पर पितरों का स्वर्ग लोक से अधः पतन नहीं होता। ललाम—लङ्-वाल्ये विलासे + क्विप्, ललमयति—अम् गत्यादो से कर्मणि। अपर लल् + अम् + अण् = ललाम। इस पद्य में सुन्दर उपमा की छटा दर्शनीय है—जैसे नवमालिका एवं वृन्त से पुष्प वियुक्त होता है, उसी प्रकार शकुन्तला मेनका एवं विश्वामित्र से वियुक्त होकर कण्व के आश्रम में आ गई है। शकुन्तला की तुलना नवमालिका (चमेली पुष्प) से करने के कारण अतिशय सुकुमारता एवं कोमलता अर्थ व्यंजित है।

विदूषकः—(विहस्य) यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभोगिणो[१] भवत इयमभ्यर्थना। (जह कस्स वि पिण्डखज्जूरेहि उव्वेजिदस्स तिन्तिणीए अहिलासो भवे, तह इत्थिआरअणपरिभोइणो भवदो इअं अब्भत्थणा।)

हिन्दी—विदूषक—(हँसकर) जैसे किसी पिण्डखजूर से उद्वेजित हुए को इमली (खाने की) इच्छा होती है वैसे ही स्त्रियों के परिभोक्ता आर्य की यह (शकुन्तला) विषयिणी अभिलाषा है।

Just as one palled with sweet dates has a desire for tomarind, so is this longing of yours.—Kale.

राजा—न तावदेनां पश्यसि येनैवमवादीः।

हिन्दी—राजा—जब तक तुम इसे नहीं देखते हो तभी तक ऐसा कह रहे हो।

---

१. परिभाविणो—नि० सा० स्मैकृत पाठ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषकः—तत् खलु रमणीयं यद् भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति।
(तं खु रमणिज्जं जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि।)

हिन्दी—विदूषक—वह निश्चय ही सुन्दर होगी, जो आपको भी विस्मय उत्पन्न करती है। That must, indeed be charming which excites your admiration.—Kale.

राजा—वयस्य, किं बहुना—

हिन्दी—राजा—मित्र अधिक कहने से क्या लाभ?

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ ९ ॥

अन्वय—धातुः विभुत्वं तस्याः वपुः च अनुचिन्त्य मे साविधिना चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा मनसा नु रूपोच्चयेन कृता, अपरा स्त्रीरत्नसृष्टिः प्रतिभाति।

हिन्दी—ब्रह्मा जी के निर्माण-सामर्थ्य, एवं उस (शकुन्तला) के शरीर का विचार करके, मुझे (दुष्यन्त को) वह शकुन्तला ब्रह्मा के द्वारा पहले चित्र खींचकर उसमें प्राणों का संचार करके एवं ब्रह्मा जी द्वारा अपने मन से ही रूप राशि द्वारा रचित रमणीरत्न प्रतीत हो रही है।

संस्कृत व्याख्या—विधेः निर्माण कौशलम्, तस्या शकुन्तलायाः वपुः शरीरं अनुचिन्त्य विभाव्य मे—मम, सा शकुन्तला ब्रह्मणा चित्रे—चित्र फलके निवेश्य—आलेख्य, परिकल्पित सत्त्वयोगा—दत्त प्राण—संचारा, मनसा—चित्तेन रूपोच्च्येन—सौन्दर्य राशिना, कृता—समुत्पादिता अपरा—अपूर्व प्रमदारत्न सृष्टिः प्रतिभाति—प्रति भासते। अत्र सन्देहः काव्यलिंग, अतिशयोक्तिश्चालंकाराः, वसन्त तिलका वृत्तम्।

टिप्पणी—निवेश्य—नि + विश् + णिच् + ल्यप्—परिकल्पित सत्त्वयोगा—परिकल्पितः सत्त्वस्य योगः यस्यां सा- ष० तत्पु० रूपाणाम् उच्चयः (ष० तत्पु०) विधिना—अनुक्ते कर्त्तरि से तृतीया, स्रष्टाप्रजापति र्वेद्या। विधाता विश्वासृट् विधिः अम०, शारदारंजन राय के अनुसार प्रथम स्त्री सृष्टि तिलोत्तमा थी (तिल-तिल करके बनाई गयी थी।) दूसरी शकुन्तला है। राघव भट्ट, विद्या सागर के अनुसार अपरा का अर्थ अनुपमा, अद्वितीया है। (१) कवि को 'नु' पद से शकुन्तला में अन्य स्त्रीरत्न का संशय होने से सन्देह अलंकार है। (२) स्त्रीरत्नसृष्टिर परा से अतिशयोक्ति अलंकार, (३) चतुर्थ पाद प्रथम तीन पादों का हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार है। (४) वसन्त तिलका छन्द, (५) यह श्लोक शकुन्तला का सौन्दर्य व्यंजक है, प्रसादगुण एवं वैदर्भी रीति। तुलना—सा राम णीयक निधेरधि देवता वा सौन्दर्य सार समुदाय निकेतनं वा। तस्याः सखेः नियत मिन्दुसुधामृणाल ज्योत्स्नादि कारणम मून्मदनश्च वेधाः मालविका।

विदूषकः—यद्येवं, प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्। (जइ एव्वं, पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं।)

हिन्दी—विदूषक—यदि ऐसा है, तो अब सभी रूपवती स्त्रियाँ तिरस्कृत हो गई। All fair ladies are now throne into the background.—Kale.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—इदं च मे मनसि वर्तते।

हिन्दी—राजा—और (शकुन्तला के सौन्दर्य-विषय में) मेरे मन में यह विचार उत्पन्न होता है।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥ १०॥

अन्वय—अनघं तद्रूपम् अनाघ्रातं पुष्पम्, कररुहैः अलूनम् किसलयम्, अनाविद्धं रत्नम्, अनास्वादितरसम् नवं मधु, पुण्यानां च अखण्डं फलम् इव, विधि इह कं भोक्तारं समुपस्थास्यति इति न जाने।

हिन्दी—उस शकुन्तला का निर्मल लावण्य बिना सूँघे पुष्प के समान, नखों से न काटे गये पल्लव की भाँति, बिना छिदे रत्न की भाँति, उपभोग न किये गये मधु की भाँति, सर्वथा नवीन तथा पुण्पों के सम्पूर्ण फल के समान है। मुझे यह ज्ञात नहीं कि ब्रह्मा इस सौन्दर्य का उपभोक्ता किसको बनायेगा?

संस्कृत व्याख्या—तस्याः शकुन्तलायाः सौन्दर्यं न आघ्रातं पुष्पम्—प्रसूनम् इव, कररुहैः नखैः अलूनम्—अच्छिन्नम्, किसलयम इव, अनाविद्धं—अक्षतं, रत्नम्—मणिरिव, अनास्वादित रसं—उपभोगरहितं, नवं—नवीनं, मधु—क्षौद्रमिव, पुण्यानां—सुकृतानां, अखण्डं—सम्पूर्णं, फलमिव—परिपाक इव, अहं न वेद्मि कं—भाग्यवन्तं, सौभाग्यशालिनं वा पुरुषं विधिः—ब्रह्मा, समुप—स्थास्यति—आनयिष्यति।

नोट—इस पद्य में शकुन्तला मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित है। उसका कौमार्यभाव, अस्पृश्य सौन्दर्य, पवित्र लावण्य एवं उत्तम जन परिभोग क्षमता रूप अर्थ व्यंजित है। कालिदास की यह सौन्दर्य मान्यता भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।

टिप्पणी—(१) नायिका के गुणों का वर्णन होने से 'गुण-कीर्तन' नामक नाट्य लक्षण है। 'गुणानां कीर्तनं यत्तु तदेव गुण कीर्तनम्' (२) एक उपमेय (शकुन्तला) का अनेक उपमान होने के कारण मालोपमालंकार—'मालोपमा' यदेक स्योपमानं बहु दृश्यते, (३) यहाँ दुष्यन्त की शकुन्तला विषयक उत्कृष्ट संभोग अभिलाषा ध्वनित है। (४) सभी विशेषण अभिप्रय युक्त होने से परिकर अलं० है। (५) यहाँ शोभा नामक अलंकार है—रूप यौवनलालित्यं भोगाधैरङ्ग भूषणं शोभा प्रोक्ता। (६) शिखरिणी छन्द—यगण, मगण, नगण, सगण, भगण लघु, गुरु वर्ण, रस (६) तथा रुद्र (११) वर्णों पर यति हो। (७) माधुर्य गुण एवं वैदर्भी रीति। न आघ्रातं—घ्रा + क्त—नञ तत्पु०, न लूनं—लञ् + छेदने + क्त आविद्ध आ + व्यध् + क्त, समुपस्थास्यति सम उप + स्था + णिच् + लृट, जाने—ज्ञा + लट् उ० पु० ए० व० अनुपसर्गात् कः ज्ञा + क = ज्ञः। अनघं—flawless, किसलयम्—tender sprout, अखण्ड पुण्यानां फलम्—The reward of collected merit, समुपस्था० विधि—whom Providence designs as her enjoyer.—Kale

विदूषकः—तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य[1] हस्ते पतिष्यति।

१. तैलमिश्र—पाठान्तर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्स वि तवस्सिणो इंगुदीतेल्लचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि।)

हिन्दी—विदूषक—तो आप उसे तुरन्त बचायें। कहीं वह इंगुदी तैल के समान चिकनी शिखा वाले (वृद्ध पुरुष) किसी तपस्वी के हाथ न पड़ जाय।

राजा—परवती खलु तत्रभवती। न च संनिहितोऽत्र गुरुजनः।

हिन्दी—राजा—निश्चित ही वह परतंत्र है तथा उसके पिता भी यहाँ उपस्थित नही हैं।

विदूषकः—अथ भवन्तमन्तरेण[1] कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः।

(अध भवन्तं अन्तरेण कीदिसो से दिट्ठिराओ।)

हिन्दी—विदूषक—आपके विषय में उसका नेत्रानुराग किस प्रकार का है।

राजा—निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। तथापि तु—

हिन्दी—राजा—स्वभाव से ही तपस्वी कन्याएँ मुग्ध (भोली) होती हैं, फिर भी—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं
हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो न च संवृतः ॥ ११ ॥

अन्वय—मयि अभिमुखे ईक्षितं संहृतम्, अन्यनिमित्तकृतोदयं हसितम्। अतः तया विनयवारितवृत्तिः मदनः न विवृतः, न च संवृतः।

हिन्दी—मेरे सामने पड़ने या देखने पर वह दृष्टि हटा लेती थी, किसी अन्य कारण से हँस देती थी। इस तरह उस (शकुन्तला) ने शील द्वारा रोके गये व्यापार वाले अपने काम भाव को न प्रकट किया और न छिपाया ही।

संस्कृत व्याख्या—मयि दुष्यन्ते अभिमुखे स्थिते सति तया शकुन्तलया ईक्षितं—विलोचनं, संहृतम्—संकोचितम्, अन्य निमित्त०—कथान्तरव्याजेन, हसितं—तेन हसनं कृतम्, अतः विनय वारिता लज्जावरुद्ध प्रसरः कामः मदनः न विकृतः प्रकटीकृतः न संवृतः—न गोपितः। अत्र विरोधाभासालंकारः द्रुतविलम्बितवृत्तम्। The feeling of love was neither displayed nor smotherd by her.—Kale.

नोट—यहाँ मुग्धा नायिका शकुन्तला की चेष्टाओं का वर्णन है। यह पद्य शकुन्तला में सहज लज्जाशीलता एवं अपरिचित पुरुष के प्रति आकर्षण जन्य जिज्ञासा व्यंजित करता है तथा उत्तम नायिका के अनुरूप हाव-भाव व्यंजित करता है।

टिप्पणी—अन्य निमित्त अन्यस्मात् निमित्तात्—उदयः यस्य—ब० व्री०, विनयेन वारिता वृत्तिः यस्य—ब० व्री०, संहृतं—सम् + हृ + क्त, ईक्ष् + क्त इस पद से शृंगार लज्जा व्यंजित होती है न विवृतः न संवृतः—इस अंश में विरोधाभास अलंकार है, नेत्रों का संहरण, एवं मन्द मन्द हास नायिका का कामभाव व्यंजित करता है। अन्य निमित्त—पद से लज्जा, उत्तम नायिकात्व, एवं स्वीय अनुभावभाव द्योतित होता है। शृंगार को सूचित करने वाले नाना प्रकार के गात्रज विकार को

१. अत्रभवतीम्। वि. पा.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'मोट्टायित' भाव कहते हैं—स्वाभिलाषा प्रकटनं मोट्टायित मितीरितम्। चित्तज विकार को 'हाव' (हेला) और गात्रज विकार को 'भाव' कहते हैं। द्रुत विलम्बित वृत्त।

विदूषकः—न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति। (ण क्खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अंकं समारोहदि।)

हिन्दी—विदूषक—निश्चित ही तुम्हारी ओर देखने मात्र से वह तुम्हारी गोद में नहीं बैठती।

राजा—मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतयाऽपि काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या। तथा हि—

हिन्दी—राजा—सखियों के साथ प्रस्थान करने पर पुनः उसने विनम्रता के साथ अपना स्नेह भाव प्रकट किया था।

टिप्पणी—शालीन—शाला + खञ् (ईन) स्यादधृष्टे तु शालीनः—अम० अर्थात् जो विनम्र हो उसे शालीन कहते हैं। शाला—प्रवेशमर्हति इति शालीनः।

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ॥ १२ ॥

अन्वय—तन्वी कतिचिदेव पदानि गत्वा अकाण्डे दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इति स्थिता। द्रुमाणां शाखासु च असक्तम् अपि वल्कलं विमोचयन्ती विवृत्तवदना आसीत्।

हिन्दी—दुर्बल शरीर वाली वह (शकुन्तला) कुछ ही (दो या तीन) पग जाकर अनवसर में ही कुश की नोक से पैरों के आहत होने पर खड़ी हो गई तथा वृक्षों की डालियों में वस्त्र के न उलझने पर भी वस्त्र को सुलझाती हुई उसने मेरी ओर मुख कर लिया था।

संस्कृत व्याख्या—तन्वी—कृशाङ्गी, सा शकुन्तला कतिपयानि। पदानि—चरणानि, गत्वा—चलित्वा, अकाण्डे—अनवसरे, दर्भाङ्कुरेण—कुशाङ्कुरेण, क्षतः—विद्धः, चरणः—पादः, आसीत इति माम्, अवलोकयितुं स्थिता, द्रुमाणां—वृक्षाणां, शाखासु—स्कन्धेषु, असक्तमपि अलग्नमपिं, वल्कलं—वल्कल वस्त्रं, विमोचयन्ती—विश्लेषयन्ती, विवृत वदना—पराङ्गमुखी, आसीत्—स्थिता। अत्र व्याजोक्तिः विरोधाभासः स्वभावोक्तिश्चालंकाराः, वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी—कतिचित्—दो या तीन कदम रा० भ०—इस पद से नायिका का उत्कण्ठा भाव व्यंजित है। 'तन्वी' पद से शकुन्तला का गमन असामर्थ्य सूचित होता है। काण्ड चावसरे क्षणे—धरणिः। तनु + ङीप् विवृतं वदनं यस्याः सा ब० व्री०, विमोचयन्ती—वि + मुच् + णिच् + शतृ + ङीप्—छुड़ाती या सुलझाती हुई, असक्तम—न सज्ज् + क्त Not disentangle—Kale. वल्कलं—Bark-garment—Kale. क्षतं—being pricked by blade of darbha—Kale. क्षद् + क्त, तन्वी पद नारी-सौन्दर्य का व्यंजक है। तन्वी श्यामा शिखरिदशमा—मेघदूत (१) असक्तमपि विमोचयंती में वस्त्र न फँसने पर भी सुलझाना—यहाँ विरोधाभास अलंकार है। (२) विवृतवदना—पद से 'हेतु' अलंकार सूचित है। (३) यहाँ मुग्धा नायिका के स्वभाव का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है। (४) बसन्ततिलका वृत्तम् (५) इस पद्य में शकुन्तला का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

औत्सुक्य एवं अनुरागातिशय व्यंजित है। यहाँ प्राचीन टीकाकार पैरों के घायल होने का बहाना तथा वस्त्र को सुलझाने का बहाना करने से व्याजोक्ति अलंकार मानते हैं।

विदूषकः—तेन हि गृहीतपाथेयो भव। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि। (तेण हि गहीदपाहेओ होहि। किदं तुए उववणं तवोवणं त्ति पेक्खामि।)

हिन्दी—विदूषक—तब तो आप प्रेम पथ के पथिक बन जायें तथा शकुन्तला आपकी पाथेय (मार्ग का भोजन) होगी। मैं यह देख रहा हूँ कि आपने तपोवन को आनन्दोद्यान बना दिया।

राजा—सखे, तपस्विभिः कैश्चित् परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत् केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः[१]।

हिन्दी—राजा—मित्र! कुछ तपस्वियों ने मुझे पहचान लिया है तो सोचो कि किस बहाने से मैं फिर आश्रम में जाऊँ?

विदूषकः—कोऽपरोऽपदेशो युष्माकं राज्ञाम्[२]। नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति। (को अवरो अवदेसो तुम्हाणं राआणं। णीवारच्छट्ठभाअं अम्हाणं उवहरन्तु त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—आप जैसे राजाओं को क्या दूसरा बहाना? नीवार धान्य का छठा भाग हमारे लिए लाइये (ऐसा कहिए।)।

राजा—मूर्ख, अन्यमेव भागधेयमेते तपस्विनो निर्वपन्ति, यो रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यते। पश्य—

हिन्दी—राजा—मूर्ख, कुछ दूसरा ही बहाना बना। ये तपस्वी हमें उस भाग को देते हैं, जो रत्न-समूहों को भी त्याग करके स्वीकार करने योग्य है।

टिप्पणी—भागधेयः बलिः करः—अम०। which is prized even above heaps of jewels.—Kale.

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद् धनम्।
तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः॥ १३॥

अन्वय—नृपाणां वर्णेभ्यः यत् धनम् उत्तिष्ठति तत् क्षयि। आरण्यकाः नः अक्षय्यं हि तपःषड्भागं ददति।

हिन्दी—राजाओं को (ब्राह्मण आदि) वर्णों से जो द्रव्य मिलता है, वह विनश्वर है, परन्तु तपस्वी लोग हमें अविनश्वर अपनी तपस्या का छठाँ भाग प्रदान करते हैं।

संस्कृत व्याख्या—नृपाणां—राज्ञाम्, वर्णेभ्यः—ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णेभ्यः, यत् धनम् करं उत्तिष्ठति—प्राप्यति, तत् द्रव्यं क्षयि—नश्वरम्, आरण्यकाः—मुनयः नः अस्मभ्यं तपः षड्भागम् अक्षय्यं तपस्या षष्ठांशम् ददति—वितरन्ति, अत्र व्यतिरेकालंकारः। अनुष्टुप् छन्दः।

---

१. सकृदप्याश्रमे वसाम (एक बार आश्रम में रह सकें)। २. तव राज्ञः—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी—क्षयि—क्षि + इनि, अक्षय्यं—क्षि + यत् + नञ् तत्पु०, क्षेत्तुं शक्यम् निपातनात्, सामान्य रूप से क्षेयम् पद बनता है। यहाँ धन की अपेक्षा तप को श्रेष्ठ बताने से 'व्यतिरेक' अलंकार है। विदूषक को मूर्ख कहकर उसकी भर्त्सना करने के कारण 'वज्र' नामक प्रतिमुख सन्धि है 'प्रत्यक्ष निष्ठुरः वज्रम' सा० द०, चिन्तय से यहाँ तक 'विलास' नामक प्रतिमुख सन्धि अंग है।

(नेपथ्ये) (पर्दे की आड़ में)

हन्त[1] सिद्धार्थौ स्वः।

हिन्दी—हर्ष है कि हम दोनों कृतार्थ हो गये।

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अये, धीरप्रशान्तस्वैरस्तपस्विभिर्भवितव्यम्।

हिन्दी—राजा—(कान लगाकर) अरे, गम्भीर शान्त स्वरों से इन्हें तपस्वी होना चाहिए।

(प्रविश्य) (प्रवेश करके)

दौवारिकः—जयतु जयतु भर्ता। एतौ द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ। (जेदु जेदु भट्टा। एते दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा।)

हिन्दी—द्वारपाल—महाराज की जय हो! ये दोनों ऋषि कुमार द्वार पर खड़े हैं।

राजा—तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ।

हिन्दी—राजा—तो शीघ्र ही उन दोनों को (भीतर) ले आओ।

दौवारिकः—एष प्रवेशयामि (इति निष्क्रम्य, ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य) इत इतो भवन्तौ। (एसो पवेसेमि। इदो इदो भवन्ता।)

हिन्दी—द्वारपाल—अभी प्रवेश कराता हूँ (बाहर निकलकर और मुनिकुमारों के साथ प्रवेश करके) आप दोनों इधर से आयें।

(उभौ राजानं विलोकयतः) (दोनों राजा को देखते हैं)

प्रथमः—अहो, दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयताऽस्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदस्मिन्[2] ऋषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः—

हिन्दी—प्रथम—अहो, तेजस्वी होकर भी इसका शरीर विश्वास उत्पन्न करता है। अथवा ऋषियों के तुल्य राजा के लिए यह उचित ही है। क्योंकि—

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ॥ १४॥

---

१. हन्त—हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भ विषादयोः—अम०। हन्त हर्षवाची अव्यय है।

२. अस्मिन्—[illegible]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—अमुना अपि सर्वभोग्ये आश्रमे वसतिः अध्याक्रान्ता। रक्षायोगात् अयम् अपि प्रत्यहं तपः संचिनोति। वशिनः अस्य अपि केवलं राजपूर्वः पुण्यः मुनिः इति शब्दः चारणद्वन्द्वगीतः मुहुः द्यां स्पृशति।

प्रसंग—राजा की ऋषि कल्पना के विषय में ऋषिकुमार कहता है।

हिन्दी—यह भी सभी पुरुषों से भोगने योग्य गृहस्थाश्रम में निवास करता है, प्रजारक्षण से भी यह महाराज (दुष्यन्त) प्रतिदिन तपस्या का संचय करता है। संयमी इसका भी केवल राज पूर्वक प्रतीत ऋषि (राजर्षि) यह शब्द, चारण दम्पत्तियों से गाया गया पुनः पुनः स्वर्ग का स्पर्श करता है।

नोट—यहाँ कवि कालिदास के अनुसार गृहस्थाश्रम एवं उपकार तथा त्यागमय गृहस्थ जीवन आदर्श जीवन है।

संस्कृत व्याख्या—अमुना दुष्यतेन अपि सर्व—भोग्यास्पदे आश्रमे—गृहस्थाश्रमे वसतिः स्थितिः अध्याक्रान्ता—अधिकृता, रक्षायोगात्—प्रजासंरक्षणानुष्ठानात्, अयं दुष्यन्तः अपि प्रत्यहं—प्रतिदिनं, तपः—पुण्यं, संचिनोति—अर्जयति, वशिनः—जितेन्द्रियस्य, अस्य दुष्यन्तस्य केवलं राजपूर्वः राजर्षि शब्द विशिष्टः मुनिः ऋषिः इति संकेतितः (शब्दः) मुहुः पुनः पुनः धाम्—स्वर्गम्, स्पृशति—व्याप्नोति। अत्र व्यतिरेक, श्लेषालंकारौ, मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी—मुनिः—ऋषि, वशिनः—जितेन्द्रिय, द्यां—द्युलोक को, स्पृशति—स्पर्श कर रहा है—स्पृश लट् प्र० पु० ए० व०। अधि + आ + क्रम + क्त + टाप्-स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार मंत्रयुक्त मुनि शब्द स्वर्ग का स्पर्श करता है, उसी प्रकार राजर्षि शब्द स्वर्ग का स्पर्श करता है। आश्रमे—भारतीय संस्कृति में ४ आश्रम हैं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास । मनु ने गृहस्थ को सर्वश्रेष्ठ कहा है—यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ यथा नदी नदा सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

(१) यहाँ उपमान ऋषि से उपमेय राजर्षि का उत्कृष्ट वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार तथा श्लिष्ट पद के कारण श्लेष। मन्दा क्रान्ता छन्द—मगण, भगण, नगण, २ तगण, २ गुरु वर्ण हों तथा ४ समुद्र +, ६ रस, + ७ पर्वत वर्णों के बाद यदि हो।

द्वितीयः—गौतम। अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः ?

हिन्दी—(दूसरा)—हे गौतम, क्या यही इन्द्र का मित्र दुष्यन्त है ?

प्रथमः—अथ किम्

हिन्दी—(पहला)—और क्या ?

द्वितीयः—तेन हि

हिन्दी—(दूसरा)—इसी से

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते सुर युवतयो[१] बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ १५ ॥

१. समितिषु सुराः (युद्धों में देव लोग) ऐसा भी पाठ है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—तेन हि नगरपरिघप्रांशुबाहुः अयम् एकः उदधिश्यामसीमां कृत्स्नां धरित्रीं भुनक्ति, एतत् न चित्रम्। हि दैत्यैः बद्धवैराः सुराः समितिषु अस्य अधिज्ये धनुषि पौरुहूते वज्रे च विजयम् आशंसन्ते।

हिन्दी—नगर के अर्गला दण्ड की भाँति विशाल भुजा वाला यह दुष्यन्त अकेले सम्पूर्ण पृथ्वी को भोग रहा है। क्योंकि असुरों से शत्रुता बाँधे देवता युद्धों में इसके डोरी चढ़े धनुष में एवं इन्द्र के वज्र में विजय की आशा करते हैं।

संस्कृत व्याख्या—नगरस्य परिघः अर्गला तद्वत् प्रांशू उन्नतौ, विशालौ बाहू-भुजौ यस्य तादृशः दुष्यन्तः एक अद्वितीयः उदधि—श्याम सीमां—सागरपर्यन्तां, धरित्रीम्—वसुधाम् भुनक्ति—पालयति, रक्षति. एतत—इदं चित्रम्—आश्चर्यजनकम्, हि—यतः दैत्यैः असुरैः, बद्धवैरा—सक्तविद्वेषा, सुराः—देवाः, समितिषु—संग्रामेषु, अस्य दुष्यन्तस्य अधिज्ये—प्रत्यञ्चायुक्ते धनुषि—कोदण्डं, पौरुहूते—ऐन्द्रे, वज्रे—कुलिशे, विजयं—जयं, आशन्ते—अभिलषन्ति। अत्र पर्यायोक्तम, दीपकं लुप्तोपमा काव्यलिंग चालंकाराः मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

नोट—यहाँ द्वितीय ऋषिकुमार द्वारा महाकवि कालिदास ने महाराज दुष्यन्त के पराक्रमपूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन किया है।

टिप्पणी—उदधि—उदकानि धीयन्ते अस्मिन् इति उदधिः—ब० व्री० उदधिः श्यामासीमा यस्याः सा—ब० व्री०, उदधिः—सागराऽर्णवः—अम०, धरा धरित्री, धरणि—अम०, नगरपरिघौ इव प्रांशू बाहू यस्य—ब० व्री०, बद्धवैरा—बद्धं वैरं यैस्ते—ब० व्री०, समितिषु—सम्भूय यान्ति येषु अर्थात् जिसमें लोग एक साथ मिलकर गमन करते हैं समितिः साम्पराये स्यात् सभाया संगमेऽपि-मेदिनी। आंशसन्ते—आ + शंस् + लट् प्र० पु० ब० व०, पौरुहूते—पुरुहूतस्य इदं—पौरुहूत 'इन्द्रो मरुत्वान्' पुरुहूतनः पुरन्दरः—अम०, सीमन् + डाप्—सीम,

अलंकार—(१) इन्द्र के वज्र की तुलना में दुष्यन्त के धनुष में अधिक विशेषता होने से व्यतिरेक अलंकार, (२) धनुष एवं वज्र का विजया से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलं०, (३) नगरपरिघ प्रांशु बाहु—में उपमालं०, (४) श्लोक का उत्तरार्द्ध नैतच्चित्रं का कारण होने से काव्यलिंगअलं०, छन्द मन्दाक्रान्ता, यहाँ वीर रस ध्वनित है।

कृत्स्नां—Entire, भुनक्ति—rule, एकः alone, The gods expect victory in battles through his string bow and the thunder bolt of Indra, आशंसन्ते समितिषु—विजयं पौरुहूते च वज्रे—Kale.

उभौ—(उपगम्य) विजयस्व राजन्।

हिन्दी—दोनों—(राजा के निकट जाकर) महाराज (दुष्यन्त) विजयी हों।

राजा—(आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ।

हिन्दी—राजा—(आसन से उठकर) आप दोनों को प्रणाम करता हूँ।

उभौ—स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपहरतः।)

हिन्दी—दोनों—आपका कल्याण हो (इस तरह दोनों ऋषि कुमार फलों का उपहार देते हैं।)

राजा—(सप्रणामं परिगृह्य) आज्ञापयितुमिच्छामि।

हिन्दी—राजा—(प्रणामपूर्वक स्वीकार करके) मैं चाहता हूँ (कि आप लोग कुछ) आज्ञा दें।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उभौ—विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थः। तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते।

हिन्दी—दोनों—आप यहाँ हैं, यह आश्रमवासियों को विदित है। अतः वे आपसे प्रार्थना करते हैं।

राजा—किमाज्ञापयन्ति?

हिन्दी—राजा—वे क्या आदेश देते हैं।

उभौ—तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसांनिध्याद् रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति। तत् कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।

हिन्दी—दोनों—पूज्य कण्व ऋषि के उपस्थित न होने के कारण राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करते हैं। अतः कुछ समय तक आप सारथि सहित आश्रम की रक्षा करें।

टिप्पणी—दोनों ऋषि कुमारों ने राजा को फल उपहार स्वरूप भेंट किया, क्योंकि राजा, देवता, गुरु के समीप रिक्त हस्त होकर जाने से कार्य सिद्ध नहीं होता। देवो राजा गुरुर्भार्या वैद्यो नक्षत्र पाठकः। रिक्तपाणि न गन्तव्यं तत्र कार्यं न सिध्यति। रिक्तपाणिर्न सेवेत राजानम् देवतां गुरुम्। —स्मृति। आश्रमसदाम्-आश्रमे सीदन्ति, इति तेषां क्तस्व च वर्तमाने सूत्र से षष्ठी—राज्ञां पूजितः। इष्टेः विघ्नः- ष० तत्पु०, यज् + क्तिन्—ब० व्री।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—मैं आभारी हूँ।

विदूषकः—(अपवार्य[१]) एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना। (एसा दाणिं अणुऊला ते अब्भत्थणा।)

हिन्दी—विदूषक—(राजा की ओर मुख करके) यह प्रार्थना इस समय आपके अनुकूल है।

राजा—(स्मितं कृत्वा) रैवतक, मद्वचनादुच्यतां सारथिः सबाणासनं रथमुपस्थापयेति।

हिन्दी—राजा—(मुस्कान के साथ) रैवतक, मेरे आदेश से सारथि से कहो कि शरासन के साथ रथ लावें।

दौवारिकः—यद् देव आज्ञापयति (जं देवो आणवेदि।)

हिन्दी—दौवारिक—जैसी महाराज की आज्ञा।

इति निष्क्रान्तः

(यह कह कर निकल गया।)

उभौ—(सहर्षम्)

हिन्दी—दोनों—प्रसन्नतापूर्वक

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥ १६ ॥

---

१. तद्भवेदपवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते। (एक ओर होकर कोई गुप्त बात कहना)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—पूर्वेषाम् अनुकारिणि त्वयि इदं युक्तरूपम्। खलु पौरवाः आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः।

हिन्दी—पूर्वजों का अनुकरण करने वाले आपके लिए यह अनुरूप (अत्यन्त उचित) है, वस्तुतः पुरुवंशी सम्राट् विपन्नों के अभयदान रूपी यज्ञों के व्रती रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—पूर्वेषां—पूर्वजानां, अनुकारिणि—सदृशे, त्वयि—श्रीमति (दुष्यन्ते), इदं—एतद्, युक्तरूपम्—अनुरूपम्, अनुकूलम्। खलु—वस्तुतः, पौरवाः—पुरुवंशी महाराजानः, आपन्नभय सत्रेषु—विपन्न रक्षण यज्ञेषु, दीक्षिताः—धृतनियमाः।

टिप्पणी—(१) युक्तरूपम्—रूपम प्रशंसायाम्, सत्रमाच्छादेन यज्ञः-अम०, अनु + कृ + णिनि—अनुकारिणि, (i) उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध का कारण होने से काव्यलिंग अलंकार। (२) उत्तरार्द्ध से पूर्वार्द्ध का समर्थन होने अर्थान्तरन्यास अलं०। (३) अभय रूप सत्र में रूपक अलंकार, (४) अनुष्टुप् छन्द।

राजा—(सप्रणामम्) गच्छतां[१] पुरो भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव।

हिन्दी—राजा—(प्रणामपूर्वक) आप दोनों आगे चलिए। मैं भी पीछे-पीछे आ रहा हूँ।

उभौ—विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ।)

हिन्दी—दोनों—महाराज की जय हो। (यह कहकर निकल गये)

राजा—माधव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्।

हिन्दी—राजा—माधव्य (विदूषक) क्या तुम्हें शकुन्तला दर्शन की उत्सुकता है?

विदूषकः—प्रथमं सपरिवाहमासीत्। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः (पढमं सपरिवाहं आसि। दाणिं रक्खसवुत्तन्तेण बिन्दुवि णावसेसिदो।)

हिन्दी—विदूषक—पहले बहुत उत्सुकता थी, परन्तु इस समय राक्षसों के समाचार से बिन्दु मात्र भी शेष नहीं है।

राजा—मा भैषीः। ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे।

हिन्दी—राजा—डरो मत! तुम मेरे पास ही रहोगे।

विदूषकः—एष राक्षसाद् रक्षितोऽस्मि। (एस रक्खसादो रक्खिदो म्हि।)

हिन्दी—विदूषक—तो मैं राक्षस से सुरक्षित हो गया हूँ।

(प्रविश्य) (प्रवेश करके)

दौवारिकः—सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते। एष पुनर्नगराद् देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः। (सज्जो रधो भट्टिणो विजअप्पत्थाणं अवेक्खदि। एस उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरओ करभओ आअदो।)

---

१. गच्छतम् (जाइये)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—द्वारपाल—रथ तैयार है तथा स्वामी की विजय यात्रा के प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु महारानी का यह आज्ञा वाहक करभक नगर से आया है।

टिप्पणी—परिवाहः—जलोद्रेक को कहते हैं। वर्तिष्यते—वृत् + लृट्, राक्षस—रक्ष + अण् स्वार्थे—या भैषीः भी + लुङ् म० पु० ए० व०, मा के योग में अट् नहीं होगा, केवल लुङ् लकार। देवीनाम्—पूजार्थे ब० व०। रमणीय वस्तुओं के देखने में जो चंचलता होती है, उसे कुतूहल कहते हैं—रम्ये वस्तु समालोके लोरुता स्यात्कुतूहलम्—सा० द०।

राजा—(सादरम्) किमम्बाभिः प्रेषितः ?

हिन्दी—राजा—(सम्मान पूर्वक) क्या माताजी ने भेजा है ?

दौवारिकः—अथ किम्। (अह इं।)

हिन्दी—द्वारपाल—हाँ।

राजा—ननु प्रवेश्यताम्।

हिन्दी—राजा—तो ले आओ।

दौवारिकः—तथा। (इति निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य) एष भर्ता। उपसर्प। (तह। एसो भट्टा। उवसप्प।)

हिन्दी—द्वारपाल—जो आज्ञा। (निकलकर—करभक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं। समीप चलो।

करभकः—जयतु जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति। आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं संभावनीयेति। (जेदु जेदु भट्टा। देवी आणवेदि। आआमिणि चउत्थदिअहे पउत्तपारणो मे उववासो भविस्सदि। तहिं दीहाउणा अवस्सं संभाविदव्वा त्ति।)

हिन्दी—करभक—जय हो, महाराज की जय हो, महारानी ने आज्ञा दी है कि आगामी चौथे दिन मेरे उपवास का पारण होगा। उस समय चिरंजीवी मुझे अवश्य सम्मानित करें।

I must be honoured with her presence.—Kale

राजा—इतस्तपस्विकार्यम्। इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधेयम्।

हिन्दी—राजा—इधर तपस्वियों का कार्य है (राक्षस-विनाश) उधर गुरुजनों की आज्ञा। दोनों ही अनुलंघनीय हैं। इस विषय में क्या किया जाय ?

विदूषकः—त्रिशङ्कुरिवान्तरा[१] तिष्ठ। (तिसङ्कू विअ अन्तरा चिट्ठ।)

हिन्दी—विदूषक—त्रिशङ्कु की भाँति मध्य में लटके रहिए।

---

१. अन्तराले तिष्ठ (बीच में)—लि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—वस्तुतः मैं व्याकुल हो गया हूँ।

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः ।
पुरः प्रतिहतं शैले स्त्रोतः स्त्रोतोवहो यथा ॥ १७॥

अन्वय—कृत्ययोः भिन्नदेशत्वात् मे मनः पुरः शैले प्रतिहतं स्त्रोतोवहः स्त्रोतः यथा द्वैधीभवति।

हिन्दी—दो कार्यों के भिन्न-भिन्न देश में स्थित होने से मेरा मन वैसे ही संशय में पड़ गया है, जैसे—सामने स्थित पर्वत से टकराकर नदी का प्रवाह दो भागों में विभक्त हो गया हो।

संस्कृत व्याख्या—कृत्ययो—कार्ययोः, भिन्नदेशत्वात्—विभिन्न देशस्थत्वात्, मे मनः—मम चित्तं, अग्रे—पर्वते, प्रतिहतं—अवरुद्धं, स्त्रोतोवहः—नद्याः, स्त्रोतः—प्रवाह इव, द्वैधीभवति—विभक्तं भवति। अत्रोपमालंकार, अनुष्टुप छन्दः।

टिप्पणी—महाराज दुष्यन्त इस पद्य में कहते हैं कि मेरे सामने दो कार्य हैं (१) तपस्वियों का राक्षस-विनाश रूपी कार्य, (२) माता का आदेश पालन। दोनों आवश्यक हैं। उन दोनों के बीच पड़ा मेरा मन पर्वत से दो भागों में बँटी धाराओं के समान है। यहाँ मन की स्त्रोत से तुलना करने के कारण उपमालंकार है तथा अनुष्टुप छन्द है। मन का जल प्रवाह से सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया गया, अतः अतिशयोक्ति अलं०। छन्द—अनुष्टुप्।

नोट—यहाँ महाकवि कालिदास ने दुष्यन्त के मानसिक अर्न्तद्वन्द्व का व्यावहारिक मूर्तरूप चित्रित किया है। यहाँ अमूर्त (चित्त) की मूर्त (प्रवाह) से तुलना (उपमा) दी गई है। स्त्रोतोम्बुवेग इन्द्रिये—अम०। स्त्रोतः—जल प्रवाह, कृत्य०—Two duties in different places. प्रतिहतं—obstructed—काले।

(विचिन्त्य) सखे, त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः। अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति।

हिन्दी—(चिन्तन करके) हे मित्र, माता ने तुम्हें पुत्रवत स्वीकार किया है। अतः आप यहाँ से लौटकर मुनियों के कार्य में व्यस्त हृदय मुझको निवेदित करके, पूज्य माता के कार्य को सम्पन्न कर देना।

विदूषकः—न खलु मां रक्षोभीरुकं गणयसि[1]। (ण क्खु मं रक्खोभीरुअं गणेसि।)

हिन्दी—विदूषक—निश्चित ही मुझे राक्षसों से भयभीत न समझना।

राजा—(सस्मितम्) कथमेतद् भवति संभाव्यते ?

हिन्दी—राजा—(हँसकर) आप में यह भय कहाँ से संभावित है ?

विदूषकः—यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि। (जह राआणुएण गन्तव्वं तह गच्छामि।)

---

१. गणय—समझना—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—विदूषक—जिस प्रकार राजा के लघु भ्राता को जाना चाहिए, उसी प्रकार जाऊँगा।

राजा—ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वाननुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि।

हिन्दी—राजा—वस्तुतः तपोवन में कोई बाधा न हो, अतः सभी अनुयायियों को तुम्हारे साथ ही भेजंता हूँ।

विदूषकः—(सगर्वम्) तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः। (तेण हि जुअराओ म्हि दाणिं संवुत्तो।)

हिन्दी—विदूषक—तब तो मैं युवराज बन गया हूँ।

राजा—(स्वगतम्) चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनासन्तः पुरेभ्यः कथयेत्। भवतु। एनमेवं वक्ष्ये। (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा। प्रकाशम्) वयस्य, ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य—

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) यह ब्राह्मण बालक चंचल है। कहीं यह हमारी (शकुन्तला) विषयक मनोभावना को रानियों से न कह दे। (विदूषक का हाथ पकड़कर, प्रकट रूप से) मित्र, मुनियों के प्रति सम्मान भाव के कारण मैं तपोवन जा रहा हूँ। निश्चित ही, कण्व कन्या में मेरी कामना नहीं है।

नोट—यहाँ शकुन्तला विषयक अपने अनुराग को छिपाने के लिए राजा विदूषक का अनुनय करता है, अतः 'प्रतिमुख' सन्धि का 'पर्युपासन' अङ्ग है—सा० द०। विचार का अन्यथाभाव होने से 'विपर्यय' नामक नाट्य-लक्षण है।

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे
परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ १८ ॥

अन्वय—सखे, वयं क्व, मृगशावैः समम् एधितः परोक्षमन्मथः जनः क्व। परिहासविजल्पितं वचः परमार्थेन न गृह्यताम्।

हिन्दी—(दुष्यन्त विदूषक से कहते हैं) हे मित्र, हम नागरिक कहाँ और मृग बच्चो के साथ बढ़ी या पाली गई, कामकला से अनभिज्ञ शकुन्तला कहाँ। हँसी में कहे गये (मेरे) वचनों को यथार्थ न समझ लेना।

संस्कृत व्याख्या—सखे—हे मित्र, वयं—महाकुलीनाः, क्व—कुत्र, मृगशावैः—हरिणशिशुभिः, समं—साकं, एधितः—पोषितः, परोक्षमन्मथः—काम कलानभिज्ञः एषा शकुन्तला, क्व—कुत्र, परिहासविजल्पितम्—उपहासपूर्वकम् कथनं, परमार्थेन—वस्तुतः, न गृह्यताम्—न ज्ञायताम्। अत्र विषमा लं०, काव्यलिंगम् वियोगिनी वृत्तम्।

टिप्पणी—मन्मथः—मथति इति मथः-शेषे षष्ठी। मन्मथः कामचिन्तायां कपित्थे कुसुमायुधे-विश्वः। परोक्षम—पर + अक्षि + अच्। (१) पूर्वाद्ध पद उत्तराद्ध पद का हेतु होने से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काव्यलिंग अलंकार, (२) यहाँ 'समवृत्ति' नामक प्रतिमुख सन्धि का अंग है—'सम्वृत्तिः स्वयमुक्तस्य स्वयं प्रच्छादनं भवेत्।' (३) वियोगिनी छन्द में पहले तीसरे पाद में १० वर्ण होते हैं, २ सगण, १ जगण, १ गुरु दूसरे, चौथे पाद में ११ वर्ण होते हैं, १ सगण, १ भगण, १ रगण, १ लघु १ गुरु। यह अर्द्धसमवृत्त है।

अन्त में प्रयुक्त 'इति' पद प्रकरण का समाप्ति सूचक है— इति प्रकरणे हेतौ प्रकाशादि समाप्तिषु—विश्वः।

विदूषकः—अथ किम्।

हिन्दी—विदूषक—ठीक है।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(सभी पात्र रंगमंच से प्रस्थान करते हैं।)

(इति द्वितीयोऽङ्कः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः ।)

हिन्दी—तब कुशों को लेकर यजमान (कण्व) का शिष्य प्रवेश करता है।

शिष्यः—अहो, महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः। यत्रप्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति निरुपद्रवाणि नः कर्माणि संवृत्तानि।

हिन्दी—शिष्य—अहो, महाराज दुष्यन्त अत्यंत प्रभावशाली हैं। आदरणीय उनके तपोवन में प्रवेश करते ही हमारे (यज्ञादि) कार्य विघ्नरहित हो गये।

नोट—यहाँ विष्कम्भक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग तृतीय अङ्क से प्रारम्भ होता है। प्रो० ए० बी० गजेन्द्रगदकर यहाँ 'कुश हस्तः' पाठ अधिक सुन्दर मानते हैं, प्रविष्ट मात्र-मयूर व्यंसक तत्पु० समा०, निर्गता उपद्रवाणि येषां ते—ब० व्री०।

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ १ ॥

अन्वय—बाणसन्धाने का कथा, हि स दूरतः ज्याशब्देन एव धनुषः हुंकारेण इव विघ्नान् अपोहति।

हिन्दी—(धनु पर बाण चढ़ाने की क्या बात?) क्योंकि, वह (धनुष) दूर से ही धनुष की डोरी के शब्द से, मानो हुँकार से बाधाओं को दूर भगाता है।

नोट—हुंकारेणेव—डोरी के शब्द से भय दूर नहीं होता बल्कि बाण चलाने से दूर होता है तथापि वैसी कल्पना करने के कारण उत्प्रेक्षालंकार, का-कथा—अर्थापत्ति अलंकार। वैदिक साहित्य में रुद्रों का हुंकार वर्णन है, कुमार सम्भव में भी रुद्रों का हुंकार वर्णन है। शिशुपालवधम (माघ) में भी शिशुपाल का हुंकार वर्णन है।

यावदिमान् वेदिसंस्तरणार्थं दर्भानृत्विग्भ्य उपहरामि। (परिक्रम्यावलोक्य च। आकाशे) प्रियंवदे, कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते। (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद् बलवदस्वस्था शकुन्तला, तस्याः शरीरनिर्वापणायेति। तर्हि यत्नादुपचर्यताम्। सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि तावद् वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि।

तब तक यज्ञवेदी पर बिछाने के लिए मैं इन कुशों को पुरोहितों को प्रदान करता हूँ। प्रदक्षिणा करके और देख करके, (आकाश की ओर) हे प्रियम्वदे, यह उशीनर का लेप तथा मृणालयुक्त कमल पत्र किसके लिए ले जा रही हो? (सुनने का अभिनय करके) क्या बोल रही हो? धूप लगने से शकुन्तला अत्यन्त अस्वस्थ है, उसके शरीर को शान्ति (सुख) देने के लिए। तब तो प्रयत्न पूर्वक सेवा करना। वह तो पूजनीय कुलपति कण्व का दूसरा प्राण है। मैं भी तब तक यज्ञीय शान्ति सलिल इस (शकुन्तला) के लिए गौतमी[1] के हाथ भेजूँगा।

टिप्पणी—वेदि—विद् + इन्, चुरादि् अइ धातु विद्य से प्रत्यय, विते, शोधनेन जायते विचार्यते, प्राप्यते—स्त्रियामङ्गचमुद्रायां स्यात् परिष्कृत भूतले—मेदिनी, संस्तरणम्—बिछौना, ऋत्विक—

१. गौतमी शकुन्तला की परिचारिका है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऋतु + यज् + क्विप्—ऋतौ यजत्ति ते ऋत्विजः। For cooling her body—Kale. शरीरनिर्वापणाय, Kale, The very life of Reverend Kanva. I will send for soothing the sacrifical water by Gautami. उशीनर—चरक संहिता में उशीनर लेप शीतल एवं प्रदाह निवारक लेप है। उशीर जल चन्दन वारिभिस्तत्—च० सं०। वैतानिकं—वितानस्य इदं, उनत्ति इति उदकं—'उन्दी वक्लदेन'—यज्ञसम्बन्धी, आकाशे—जहाँ से नाटकों में पात्र के बिना ही 'क्या कहते हो', आदि शब्दों के द्वारा अभिनेता अपने विचारों को प्रकट करता है, उसे आकाश भाषित कहते हैं।

(इति निष्क्रान्तः)

(यह कहकर शिष्य रंगमंच से निकल जाता है।)

विष्कम्भकः।

जो भूत या भविष्य की कथाओं का सूचक हो, अङ्क के प्रारम्भ में कथा वस्तु को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने वाला हो, उसे विष्कम्भक कहते हैं। यदि पात्र शुद्ध संस्कृत बोले तो शुद्ध और प्राकृत भाषी होने पर उसे मिश्र विष्कम्भक कहते हैं। जो पूर्व या पर के कथाभाग को वियोजित करे, उसे विष्कम्भक कहते हैं।

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा।)

(राजा दुष्यन्त काम की अवस्था में प्रवेश करता है।)

राजा—(निःश्वस्य)[1] (लम्बी साँस लेकर)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ॥ २॥

अन्वय—तपसः वीर्यं जाने, सा बाला परवती इति मे विदितम्। तथापि इदं हृदयं ततः. निवर्तयितुम् अलं न अस्मि।

हिन्दी—(दुष्यन्त कहते हैं) मैं तपस्या की सामर्थ्य जानता हूँ, वह शकुन्तला पराधीन (कण्व के अधीन) है, यह भी मुझे ज्ञात है, फिर भी इस मन को मैं उससे विमुख करने में असमर्थ हूँ।

संस्कृत व्याख्या—अहं तपसः—तपस्यायाः, वीर्यं—शक्ति, जाने—जानामि, सा—शकुन्तला, बाला—कन्या, परवती—पराधीना, इति मे विदितम्—ज्ञातम्, एतत् हृदयं चेतः मनः शकुन्तलायाः निवर्तयितुम्, न अलम्—न समर्थोऽस्मि।

टिप्पणी—(१) कार्य के प्रस्तुत रहने पर भी अप्रस्तुत (तपसो वीर्यं जाने) कार्य का कथन करने के कारण अप्रस्तुत प्रशंसालंकार है। (२) यहाँ तापन नामक प्रतिमुख सन्धि का अंग है—'उपायासंदर्शनं यन्तु तापनं नाम तद् भवेत्।'

(मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थः। कुतः—

हिन्दी—(कामपीड़ा का अभिनय करके) भगवन् अनंग तुम और चन्द्रमा—दोनों विश्वासपात्रों से कामीजनों का समूह प्रवञ्चित हो रहा है।

---

१. सचिन्तं निःश्वस्य (चिन्ता के साथ साँस लेकर)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी—आयुध्यते अनेन इति आयुधम्। अस्य कुसुमम् एव आयुधम्— ब० व्री०। चद्रं कर्पूरं सादृश्येन माति तुलयति चन्द्रं आह्लादं मिमीते, निर्मिमीते अथवा चन्दयति आह्लादयति इति चद्रं: मिमीते कालमिति या: चन्द्रश्चासौ माश्च—कर्मधा-समा०, अतिसंधीयते—अति + सम + धा + लट् कर्मणि।

तब कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥ ३ ॥

अन्वय—तव कुसुमशरत्वम् इन्दोः शीतरश्मित्वम् इदं द्वयं मद्विधेषु अयथार्थं दृश्यते। इन्दुः हिमगर्भैः मयूखैः अग्निं विसृजति। त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि।

हिन्दी—(दुष्यन्त कामदेव के विषय में कहते हैं) हे कामदेव, तुम्हारा पुष्प बाण (धारी) होना तथा चन्द्रमा का शीतल किरण वाला होना ये दोनों बातें मुझ (दुष्यन्त) जैसे विरही जनों के विषय में असत्य दिखाई देती हैं, क्योंकि चन्द्रमा तुषारभरी किरणों से अग्नि बरसाता है और तुम (कामदेव) भी अपने पुष्पबाणों को वज्रवत् कठोर बना रहे हो।

संस्कृत व्याख्या—तव—ते, कामदेवस्य, कुसुमशरत्वम्—पुष्पबाणत्वं, इन्दोः—चन्द्रस्य, रश्मित्वं—हिमांशुत्वं, इदम्—एतत्, द्वयम्—उभयम्, मद्विधेषु—माट्टशेषु, विरहीजनेषु, अयथार्थं असत्यं, दृश्यते—ज्ञायते, इन्दुः—चन्द्रः हिमगर्भैः—तुषारगर्भैः, मयूखैः—किरणैः, अग्निं—पावकम्, विसृजति—विकीर्णति, त्वमपि—कामोऽपि, कुसुमबाणान्—पुष्पमयान् शरान्, वज्रसारीकरोषि-कुलिशवत् कठोरान् करोषि, अत्र अप्रस्तुत प्रशंसा, काव्यलिङ्ग, विरोधाभास परिणामश्चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

नोट—चन्द्रमा एवं कामदेव विरहातुर प्रेमीजनों के साथ अत्यन्त निष्ठुर व्यवहार करते हैं। महाकवि कालिदास ने इसकी अतिकरुण उद्भावना की है। यहाँ कवि यह आशय प्रकट करता है कि संयोग में प्रकृति के जो मनोरम उपादान सुखदायी हैं, वियोग काल में वे ही दुःखदायी प्रतीत होते हैं।

टिप्पणी—(१) कुसुमानि एव शराः अस्य (ब० व्री०) अरविन्दमशोकं च चूतं च नव मल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्च बाणस्य सायकाः। सम्मोहनोन्मादनौ च शोषण स्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः-कालिका पुराण। शीताः रश्मयः—ब० व०, अर्थस्य योग्यं = यथार्थं—ष० तत्पु०, वज्र इन सराः येषां ते—ब० व्री०, वज्रसारीकरोषि—अभूत् तदभावे च्वि, वज्र सार + च्वि + कृ लट्, हिमं गर्भे येषां ते—ब० व० पूर्वार्द्ध वर्णन से उत्तरार्द्ध वर्णन में क्रमभंग है (जो पुष्प है, वह वज्र जैसा कठोर, जो शीतल है, वह दाहक कैसे बनेगा ?) शीतरश्मित्व, कुसुमशरत्व कुसुमबाणान् आदि में कथित पदत्व दोष है, परन्तु कामोन्माद में ये सब संगत हैं। (२) मद्विधेषु से सामान्य कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार, (३) पूर्वार्द्ध अर्थ के प्रति उत्तरार्द्ध अर्थ हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार, (४) हिमगर्भैः अग्निम्, में विरोधाभास अलं०, (५) चन्द्रमा का अपनी किरणों से आग बरसाना एवं काम का पुष्प बाणों से वज्र की भाँति कठोर प्रहार करना से बिषमालंकार, (६) वज्रसारी करोषि—उपमालंकार (पुष्पबाणों का वज्र की भाँति कठोर होना) (७) कुसुमबाणान्—कुसुमों पर प्रकृतोपयोगी बाण का आरोप होने के कारण परिणामालंकार (८) यहाँ गुणों के प्रति विपरीत कार्य करने के कारण 'गुणातिपात' नामक नाट्यालंकार है। (९) मालिनी छन्द। (१०) कोष एवं व्युत्पत्ति अग्निम्—अगि गतौ से इनि प्रत्यय—अगति गच्छति इति अग्निः, अग्निवैश्वानरो वह्निः नीतिहोमो धनञ्जयः—अमः

(सखेदं[१] परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः खिन्नमात्मानं विनोदयामि। (निःश्वस्य) किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते

१. सखेदं—वि० सा० सविलासम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि। (सूर्यमवलोक्य) इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद् गच्छामि। (परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा) अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

(खेद के साथ घूमकर) निर्विघ्न यज्ञकार्य समाप्त होने पर ऋषियों से जाने की अनुमति पाकर अपने खिन्न मानस (मन) को कहाँ बहलाऊँ। (साँस लेकर) मेरी प्रिया शकुन्तला के अतिरिक्त मेरा और क्या आश्रय है ? तब तक उसी को खोजता हूँ। (सूर्य को देखकर) इस तीव्र ग्रीष्म को लताकुञ्जों में मालिनी नदी के तट पर शकुन्तला सखियों के साथ व्यतीत करती है। तो वहाँ चलता हूँ। (घूमकर तथा स्पर्श का अभिनय करके।, अहो, यह स्थान सुन्दर हवा के कारण मनोहर है।

टिप्पणी—संस्थिते—समाप्त होने पर—सम् + स्था क्त, सदस्या—विधि ज्ञाता को सदस्य कहते हैं—सदस्या विधिदर्शिनः, प्रवातेन सुभगः—तृ० त० समा०। ततः प्रविशति से शरणमन्यत् तक उद्वेग नाम कामदशा है।

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥ ४॥

अन्वय—अनङ्गतप्तैः अङ्गैः अरविन्दसुरभिः मालिनीतरङ्गाणां कणवाही पवनः अविरलम् आलिङ्गितुं शक्यः।

हिन्दी—कामपीड़ित अंगों से, कमल की सुगन्ध से युक्त एवं मालिनी की लहरों के कणों को धारण करने वाला वायु, निरन्तर आलिंगन करने योग्य है।

नोट—यहाँ नायक की कामदशा का चित्रण एवं शृंगार रसानुकूल कोमल कान्त पदावली की छटा अवलोकनीय है।

संस्कृत व्याख्या—अनंगतप्तैः—कामपीड़ितैः, अङ्गैः—अवयवैः, अरविन्दसुरभिः—कमल सुगन्धिः, मालिनीनदीतरंगाणां, कणवाही—जल बिन्दुधारी, पवनः—वायुः, अविरलं—दृढम्, आलिङ्गितुं—परिसेवितुम्, शक्यः—योग्यः अत्र समासोक्तिअलं०, आर्या छन्दश्च।

टिप्पणी—यावदेनाम—से गच्छामि तक प्रतिमुख सन्धि का परिसर्प नायक द्वितीय अंग। दृष्टनष्टानुसरणं परिसर्प इतीरितः—सा० द०, दुष्यन्त के प्रिया दर्शन रूप आत्मप्रसादन कार्य में पर्वत सहायक है अतः 'समाहित' अलंकार है।

(परिक्रम्यालोक्य च) अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया शकुन्तलया भवितव्यम्। तथा हि—

हिन्दी—(चारों ओर घुमकर और देखकर) इस वेतस लता से घिरे लताकुञ्ज में शकुन्तला को उपस्थित होना चाहिए। क्योंकि—

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङक्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ॥ ५॥

अन्वय—पाण्डुसिकते अस्य द्वारे पुरस्तात् अभ्युन्नता, जघनगौरवात् पश्चात् अवगाढा, अभिनवा पदपङ्क्तिः दृश्यते।

हिन्दी—श्वेत बालु वाले इस लता मण्डप के द्वार पर आगे की ओर उठी हुई, नितम्बों के भारी होने से पीछे की ओर गहरी, नवीन पग चिह्नों की पंक्ति दिखाई दे रही है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी—जघनं स्यात् स्त्रियाः श्रोणि पुरोभागे छटावपि—मेदिनी ! प्रस्तुत पद में शकुन्तला का सुमनोहर गति विलास चित्रित है।

यावद् विटपान्तरेणावलोकयामि। (परिक्रम्य, तथा कृत्वा, सहर्षम्) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु। श्रोण्याम्यासां विश्रम्भकथितानि। (इति विलोकयन् स्थितः।)

हिन्दी—तब तक वृक्षों की ओट से देखता हूँ। (घूमकर उसी प्रकार देखकर हर्ष के साथ) ओह, नयनों को मोक्ष जैसा आनन्द मिल गया। यह मेरी अभिलषित कान्ता पुष्प बिछे प्रस्तर पट्ट पर लेटी है तथा सखियों से सेवित हो रही है। अच्छा इनकी गुप्त वार्ता को सुनता हूँ। (इस तरह उन्हें देखता हुआ खड़ा होता है।)

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला)

हिन्दी—इसके बाद पूर्वोक्त व्यापार वाली (फूलों के बिछौने पर लेटी हुई) शकुन्तला सखियों के साथ प्रवेश करती है।

सख्यौ—(उपवीज्य सस्नेहम्) हला शकुन्तले, अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः। (हला सउन्दले, अवि सुहअदि दे णलिणीपत्तवादो।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(अनुसूया, प्रियवंदा) (पंखा झलकर स्नेह के साथ) सखी शकुन्तला क्या कमल-पत्र की वायु तुम्हें सुख प्रदान करती है ?

शकुन्तला—किं वीजयतो मां सख्यौ। (किं वीअअन्ति मं सहीओ)

हिन्दी—शकुन्तला—सखियों, क्या तुम लोग मुझ पर पंखा झल रही हो ?

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ विषाद का अभिनय करके एक दूसरे की ओर देखती हैं।

राजा—बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते। (सवितर्कम्) तत्किमयमातपदोषः स्यात्, उत यथा मे मनसि वर्तते। (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन।

हिन्दी—राजा—शकुन्तला अत्यधिक अस्वस्थ शरीर वाली दिखाई पड़ती है। (चिन्ता के साथ) तो क्या शकुन्तला की यह अस्वस्थता धूप के कारण है ? अथवा जैसा मेरे मन में है। (कामना के साथ शकुन्तला का निरीक्षण करके, अथवा संदेह करना व्यर्थ है।

टिप्पणी—यहाँ 'वर्ण-संहार' नामक प्रतिमुख सन्धि का अंग है। चतुर्वणीयगमनं वर्णसंहार इण्यते। 'किं मां वीजयतो' यहाँ विधूत नामक प्रतिमुख सन्धि का अंग है। सुख + णिच् + शतृ—प्रो० रे 'सुखायते' पाठ मानते हैं। प्रो० गदकर 'सुखायते' पाठ उचित मानते हैं। सुखयति—सुखं करोति तत्करोति तदाचष्टे से णिच्, ''या दृष्टिः पतितापाङ्गा विस्तारितपुटद्वया। निमेषिण्यस्त तारा च विषण्णा सा विषादिनी॥'' अये लब्धं निर्वाणम् The elixir of my eyes is found. एषा में मनोरथ प्रियतमा—सखीभ्यामन्वास्यते—The beloved of my heart is waited upon by her two friends.—Kale

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं[1]
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥ ६ ॥

अन्वय—प्रियायाः स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं साबाधम् इदं वपुः किमपि कमनीयम्। युवतिषु मनसिजनिदाघप्रसरयोः तापः कामं समः, तु ग्रीष्मस्य अपराद्धम् एवं सुभगं न।

हिन्दी—(दुष्यन्त कहते हैं) प्रिया (शकुन्तला) के स्तनों पर लगाए गये खस से युक्त, अधिक कुम्हलाए कमल नाल के कंकण से युक्त, पीड़ा युक्त यह शरीर अनिर्वचनीय सुन्दर है। कामिनियों में कामभाव एवं ग्रीष्म के प्रभाव के कारण संताप चाहे समान हो, परन्तु ग्रीष्म ऋतु का संताप इस प्रकार चित्ताकर्षक नहीं होता।

टिप्पणी—(१) स्तनयोः न्यस्तम् उशीरं यस्मिन—ब० व्री०, प्रशिथिलं मृणालैकवलयं—यस्मिन्—ब० व्री०, नि + दह + घञ्, प्र + सृ + घञ्, साबाधम्—आबाधनम् तथा सह, आ + बाध् + अ (भावे), अपराद्धं—सन्ताप (२) शकुन्तला के संताप के लिए दो विशेषण हैं काम एवं ग्रीष्म। अतः समुच्चयालंकार, (३) शकुन्तला के सौन्दर्याधायक हेतु न होने पर भी कमनीयता रूप कार्य का वर्णन होने के कारण विभावना अलंकार, (४) साबाधम्—बाधा युक्त होने पर भी किसी विषम कार्य की उत्पत्ति न होने से विशेषोक्ति अलंकार, (५) आतप के प्रभाव से काम का प्रभाव अधिक वर्णित होने से व्यतिरेक अलं०, (६) शकुन्तला के स्थान पर युवतिषु इस सामान्य (नारिजनों) का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलं०, (७) शिखरिणी छन्द, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति। साबाधं किमपि कमनीयम् though full of torment is indescribably lovely. न सुभगं युवतिषु अपराद्धम्—The injury caused to young maidens by heat is not so charming.—Kale.

प्रियंवदा—(जनान्तिकम्) अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खल्वस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्। (अणसुए, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जुस्सुआ विअ सउन्दला। किं णु खु से तण्णिमित्तो अअं आतंको भवे।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(हाथ की ओट में) हे अनसूए, उस राजर्षि के प्रथम मिलन से प्रारम्भ करने के साथ शकुन्तला व्याकुल सी रहती है। निश्चित ही क्या इसकी यह पीड़ा उस दुष्यन्त के कारण ही है?

अनसूया—सखि, ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु। प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। (प्रकाशम्) सखि, प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते सन्तापः। (सहि, मम वि ईदिसी आसंका हिअअस्स। होदु पुच्छिस्सं दाव णं। सहि, पुच्छितव्वासि किम्पि। बलवं खु दे संदावो।)

हिन्दी—अनसूया—हे सखी! मेरे हृदय में भी यह आशङ्का है। ठीक है, इससे (शकुन्तला) से पूछती हूँ। (प्रकट रूप से) सखि, तुमसे कुछ पूछना है। निश्चित ही तुम्हारी पीड़ा अधिक है।

---
१. शिथिलित०—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला—(पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला, किं वक्तुकामसि। (हला, किं वत्तुकामासि।)

हिन्दी—शकुन्तला—(शरीर के पूर्वार्द्ध भाग को बिस्तर से उठाकर), सखी क्या कहना चाहती हो ?

अनसूया—हला शकुन्तले, अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि। कथय किंनिमित्तं ते सन्तापः। विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य। (हला सउन्दले, अणब्भन्तरा क्खु अम्हे मदणगदस्स वुत्तन्तस्स। किं दु जादिसी इदिहासणिबन्धेसु, कामअमाणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसीं दे पेक्खामि। कहेहि किंणिमित्तं दे संदावो। विआरं क्खु परमत्थदो अजाणिअ अणारम्भो पडिआरस्स।)

हिन्दी—अनसूया—सखी शकुन्तले, हम दोनों काम सम्बन्धी घटनाओं से अपरिचित हैं, किन्तु जैसी ऐतिहासिक कथाओं में कामियों की दशा सुनी जाती है, वैसी ही तुम्हारी देख रही हूँ। बताओ, तुम्हारी पीड़ा का क्या कारण है ? क्योंकि वस्तुतः रोग को बिना जाने हुए उसका प्रतिकार (चिकित्सा) प्रारम्भ नहीं किया जा सकता।

राजा—अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। नहि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम्।

हिन्दी—राजा—अनसूया को भी मेरा वाला सन्देह है। मेरी धारणा (विचार) अपने अभिप्राय (स्वार्थ) से नहीं थी।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) बलवान् खलुमेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्। (बलवं क्खु मे अहिणिवेसो। दाणिं वि सहसा एदाणं ण सक्कणोमि णिवेदिदुं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) वस्तुतः मेरी आसक्ति बहुत प्रबल है। इस समय अकस्मात् इन दोनों सखियों से (अपनी आसक्ति) नहीं बता सकती।

प्रियंवदा—सखि शकुन्तले, सुष्ठु एषा भणति। किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे। अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति। (सहि सउन्दले, सुट्ठु एषा भणादि। किं अत्तणो आतंकं उवेक्खसि। अणुदिअहं क्खु परिहीअसि अंगेहि। केवलं लावण्णमई छाया तुमं ण मंजदि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—सखी शकुन्तला, यह ठीक कह रही है। तुम अपनी पीड़ा को उपेक्षित क्यों कर रही हो। तुम दिनों दिन दुर्बल होती जा रही हो, केवल सुन्दर आभा इस समय तुम्हारा परित्याग नहीं कर पा रही है।

राजा—अवितथमाह प्रियंवदा। तथा हि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—राजा—प्रियंवदा ने सत्य कहा है, क्योंकि—

टिप्पणी—परिहीयसे—परि + हान + ओहार त्यागे यक + कर्म वाक्य, अवितथं—विगतं तथ्यं सत्यं यस्मात् इति वितथं—नञ् तत्पु०, प्रतिभाति यदङ्गेपु तल्लावण्यमिहो च्यते—मल्लिनाथ।

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ॥७॥

अन्वय—आननं क्षामक्षामकपोलम्, उरः काठिन्यमुक्तस्तनम्, मध्यः क्लान्ततरः, अंसौ प्रकामविनतौ, छविः पाण्डुरा। मदनक्लिष्टा इयं पत्राणां शोषणेन मरुता स्पृष्टा माधवी लता इव शोच्या च प्रियदर्शना च आलक्ष्यते।

हिन्दी—(दुष्यन्त कहते हैं) इस शकुन्तला का मुखमण्डल अत्यधिक दुर्बल कपोलों वाला है, इसके वक्ष स्थल पर स्तनों ने शिथिलता प्राप्त कर ली है, इसकी कटि अधिक क्षीण और कन्धे अधिक झुके हुए हैं तथा शरीर पीले रंग की हो गया है। काम भाव से पीड़ित यह शकुन्तला पत्रों को सुखा देने वाले वायु से स्पर्शित माधवीलता की भाँति चिन्तनीय एवं सुन्दर रूप वाली दिखाई दे रही है।

संस्कृत व्याख्या—आननं—मुखं, क्षामक्षामकपोलम्—कृशतर गण्डस्थलम्, उरः—वक्षस्थलम्, काठिन्यमुक्त स्तनम्—अकठोर पयोधरम्, मध्यः—कटि प्रदेशः क्लान्ततरः-क्षीणतरः, अंसौ—स्कन्धौ, प्रकाममअवनतौ—अत्यंतम अनवतौ, छविः—कान्तिः, पाण्डुरा—पाण्डुवर्णा, मदनक्लिष्टा—काम संतप्ता, इयम्—शकुन्तला, पत्राणाम्—दलानाम्, शोषणेन—शोषण कर्म कारिणा, मरुता—पवनेन, स्पृष्टा—लंघिता, माधवी—लता, वासन्ती वीरुधिव, शोच्या—शोचनीया, प्रियदर्शना—मनोज्ञादर्शना, आलक्ष्यते—परिदृश्यते।

टिप्पणी—वितथं त्वनृतं वचः—अम०, क्षामक्षामौ कपोलौ यस्मिन्—ब० व्री०, कपोल—कम्पते इति, 'कटि चलने', 'कपिर्गण्डगण्डि' से ओलच् प्रत्यय, गण्डौ—कपोलौ- अम०, अथवा कं सुखं पोलति—पुल महत्त्वे + अण्। इसमें काम पीड़ित शकुन्तला की दशा का वर्णन है। (१) सोच्या च प्रियदर्शना च में विरोधाभास अलंकार, (२) शोच्य होने का कारण मदन क्लिष्टा है, अतः काव्यलिंग अलं०, (३) काम पीड़ित दशा का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलं०, (४) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द।

शकुन्तला—सखि, कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि। किन्त्वायासयित्रीदानीं वां भविष्यामि। (सहि, कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। किन्दु[1] आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—सखी, किस दूसरे से मैं अपना कष्ट कहूँगी? किन्तु तुम दोनों के लिए अब कष्ट का कारण बनूँगी।

उभे—अत एव खलु निर्बन्धः स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। (अदो एव्व क्खु णिब्बन्धो। सिणिद्धजणसंविभत्तं हि दुक्खं सज्झवेदणं होदि।)

---

१. किन्तु—नि० सा० इति पाठो नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—दोनों—अतएव जो यह आग्रह है, क्योंकि प्रेमी जनों में बँटा हुआ दुःख सहने योग्य पीड़ा वाला होता है।

टिप्पणी—आयासयित्री—आ + यास + णिच् + शतृ—यहाँ महर्षि कण्व ने मानव-जीवन का व्यावहारिक पक्ष उद्घाटित किया है। यद्यपि मनुष्य अपनी वेदना स्वयं सहता है तथापि स्नेहियों में बाँटकर उनकी सहानुभूति की शीतलता प्राप्त करता है। कस्य तावत् इयं वृत्तान्तं निवेद्य सह्यवेदनमिव दुःखं करिष्यामि—प्रियदर्शिका। Social sorrow loses half its pain.—Dr. Johnson. यहाँ प्रतिमुख सन्धि है।

राजा—पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य[१] बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ॥ ७ ॥

अन्वय—इयं बाला समदुःखसुखेन जनेन पृष्टा मनोगतम् आधिहेतुं न वक्ष्यति न। अनया बहुशः विवृत्य सतृष्णं दृष्टः अपि अत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतः अस्मि।

हिन्दी—राजा—यह तरुणी शकुन्तला सुख दुःख में सम रहने के कारण सखियों से पूछे जाने पर मन स्थित दुःख का कारण नहीं बतायेगी। इसने अनेक बार मुख फेरकर अभिलाषायुक्त होकर मेरी ओर देखा है, फिर भी इस समय मैं इसका उत्तर सुनने को उत्सुक हूँ।

संस्कृत व्याख्या—इयं—तरुणी शकुन्तला, समदुःखसुखेन—तुल्य पीड़ानन्देन, अनेन सखीजनेन, पृष्टा—जिज्ञासिता, मनोगतं—हृदय स्थितं, आधिहेतुम्—क्लेश कारणम्, न वक्ष्यति—कथयिष्यति, अनया—शकुन्तलया, बहुशः—भृशं, विवृत्य—परावृत्य, सतृष्णं—सस्पृहम्, दृष्टः—वीक्षितः, अत्रान्तरे काले—अस्मिन समये, श्रवणकातरतां—श्रवणाधीरतांगतः, अस्मि—प्राप्तोऽस्मि। अत्र काव्यलिंगअलंकारः, वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी—समं दुःखसुखं यस्य तेन—ब० व्री०, बाला—१६ वर्ष की नायिका को कहते हैं। आधि—मानसिक पीड़ा को आधि कहते हैं—पुंस्याधिः मानसी व्यथा, विवृत्य वि + वृत् + ल्यप्—मुख फेरकर, न वक्ष्यति न—वामन के विचार से दो नञ् एक सम्भावना व्यक्त करते हैं—द्वौ नञौ प्रकृतार्थे सविशेषं गमयतः। श्रवणकातरतां—एक महान अवसर की घोषणा से मनुष्य में कातरता आना स्वाभाविक है। मोनिमर विलियम के विचार से नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि के अनुसार नायिका अपने प्रवृद्ध प्रेम को प्रेमी के प्रति चार प्रकार से व्यक्त करती है, (१) लेख—प्रस्थापन, (२) स्निग्ध वीक्षण, (३) मृदुभाषित्व, (४) दूती सम्प्रेषण। यहाँ से लेकर तृतीय अङ्क तक गर्भ संधि है। वसंततिलका छन्द। बाला होने के कारण मनोगत भावों को प्रकाशित करती है, अतः काव्यलिंग अलंकार। उत्तरार्द्ध में विभावना एवं विशेषोक्ति अलंकार।

शकुन्तला—सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः—(इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयति)। (सहि, जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो सो तवोवणरक्खिदा राऐसी—)

हिन्दी—शकुन्तला—हे सखी, जब से तपोवन के रक्षक वे राजर्षि मेरी दृष्टि में आये हैं (ऐसा आधा कहकर लज्जित होने का अभिनय करती है।)

---

१. निवृत्य—नि० सा० (लाटकर)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उभे—कथयतु प्रियसखी। (कहेदु पिअसही।)

हिन्दी—दोनों—(अनुसूया एवं प्रियंवदा) हे प्रियसखी, बताओ।

शकुन्तला—तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थाऽस्मि संवृत्ता। (तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवत्थम्हि संवुत्ता।)

हिन्दी—शकुन्तला—उस समय से ही उनके प्रति कामना होने के कारण मेरी यह दशा प्राप्त हो गई है।

राजा—(सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्।

हिन्दी—राजा—(हर्ष के साथ) जो सुनना था, उसे मैंने सुन लिया।

टिप्पणी—कामसूत्र के अनुसार काम की यह सातवीं अवस्था है। यहाँ गुह्य अर्थ के प्रकाशित हो जाने से गर्भ सन्धि का क्षिप्ति अंग है—रहस्यार्थस्य उद्भेदः क्षिप्तिः स्यात्—सा० द०

स्मर एव तापहेतुनिर्वापयिता स एव मे जातः।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये[1] जीवलोकस्य ॥ ९ ॥

अन्वय—तपात्यये जीवलोकस्य अभ्रश्यामः दिवस इव, स्मरः एव मे तापहेतुः स एव निर्वापयिता जातः।

हिन्दी—ग्रीष्मऋतु के बीतने पर प्राणियों के लिए मेघों से बनाये गये दिन की भाँति काम ही मेरी पीड़ा का कारण और वही शान्ति देने वाला (ताप मिटाने वाला) होगा।

संस्कृत व्याख्या—तपात्यये—ग्रीष्म ऋतौ व्यतीते, जीवलोकस्य—प्राणिसमुदायस्य, अभ्रश्यामः—मेघवत् कृष्णवर्णः, वासरः—दिवसः, इव—सदृशं, स्मरः—काम एव, मे—मम (शकुन्तलायाः) तापहेतु—संतापकारणम्, स एव—काम एव, निर्वापयिता—हर्षदायकः, जातः—सम्पन्नः। अत्र विरोधाभास, उपमा, अनुप्रासाश्चालंकाराः, आर्या छन्दः।

टिप्पणी—(१) तापहेतु और ताप नाशक दोनों एक साथ होने के कारण विरोधाभास अलंकार, (२) आर्या छन्द, (३) राघव भट्ट यहाँ अर्धश्यामः पाठ करते हैं, (४) मदन की तुलना वर्षा काल के कृष्ण दिन से करने के कारण उपमालंकार है।

शकुन्तला—तद्यदि वामनुमतं, तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथाऽवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम्। (तं जइ वो अणुमदं, तह[2] वट्टह जह तस्स राएसिणो अणुकम्पणिज्जा होमि। अण्णहा अवस्सं सिंचह मे तिलोदअं।)

हिन्दी—शकुन्तला—तो यदि तुम दोनों की सम्मति हो, तो मैं उस राजर्षि (दुष्यन्त) की अनुकम्पा प्राप्त करूँ अन्यथा निश्चित ही तुम दोनों तिल मिश्रित जल से मेरा तर्पण करो अर्थात् मैं मर जाऊँगी।

टिप्पणी—अनुमतं—If you approve, offer me seamum mixed water or look upon me as dead.—Kale.

राजा—संशयच्छेदि वचनम्।

हिन्दी—राजा—इस (शकुन्तला) का कथन मेरे सन्देह को नष्ट करने वाला है।

---

१. इवार्ध—(जैसे आधा)—नि० सा० २. तह—तदा तथा (ता तह)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी—शकुन्तला का दुष्यन्त पर आसक्ति विषयक सन्देह।

प्रियंवदा—(जनान्तिकम्) अनसूये, दूरगतमन्मथाऽक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा, स ललामभूतः पौरवाणाम्। तद् युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्। (अणसूए, दूरगअमम्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धभावा एसा, स ललामभूदो पोरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणन्दिदुं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(हाथ की ओट में) हे अनसूए, यह शकुन्तला अत्यन्त बढ़े हुए काम वाली विलम्ब सहने में असमर्थ है। जिसमें इसकी आसक्ति है, वह पुरुवंशियों में शिरोमणि है। तो इसकी कामना का अभिनन्दन करें।

टिप्पणी—युक्तम् अभिनन्दितुं—She should be congratulated on her.—Kale.

अनसूया—तथा यथा भणसि। (तह जह भणासि।)

हिन्दी—अनसूया—जैसा तुम कहती हो, सही है।

प्रियंवदा—(प्रकाशम्) सखि दिष्ट्याऽनुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते। (सहि, दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। को दाणिं सहआरं अन्तरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—हे सखी, सौभाग्य से तुम्हारी आसक्ति सुयोग्य है। जल-निधि को छोड़कर और कहाँ महानदी गिरती है। आम्र के अतिरिक्त कौन है वह, जो किसलय युक्त मालती लता को सहारा दे सकता है?

टिप्पणी—Where to shall a river bend its course, if not to the sea? सहते—What tree can support the atimukta creeper except the mango.—Kale.

राजा—किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखाऽनुवर्तेते।

हिन्दी—राजा—इस विषय में आश्चर्य क्या है, यदि दोनों विशाखा (नक्षत्र) चन्द्रलेखा का अनुसरण करते हैं)अर्थात् अनसूया-प्रियंवदा दोनों शकुन्तला का अनुसरण करती हैं।)

अनसूया—कः पुनरुपायो भवेद् येनाविलम्बितं निभृतं च सख्या मनोरथं संपादयावः। (को उण उवाओ भवे जेण अविलम्बिअं णिहुअं अ सहीए मणोरहं संपादेम्ह।)

हिन्दी—अनसूया—तो फिर कौन सा ऐसा उपाय है, जिससे हम दोनों शीघ्र ही गुप्त रूप से सखी की कामना पूर्ण कर सकें।

प्रियंवदा—निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्। (णिहुअं त्ति चिन्तणिज्जं भवे। सिग्घं त्ति सुअरं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—'गुप्त रूप से' यह सोचने की बात है, 'शीघ्र' यह तो सरल है।

अनसूया—कथमिव। (कहं विअ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—अनसूया—कैसे ?

प्रियंवदा—ननु स राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते। (णं सो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो इमाइं दिअहाइं पजाअरकिसो लक्खीअदि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—निश्चित ही वह राजर्षि (दुष्यन्त) इस (शकुन्तला) की ओर प्रेम भरी दृष्टि से अपनी कामना प्रकट करके इन दिनों (रात्रि में) अधिक जागने के कारण दुर्बल दिखाई दे रहे हैं।

राजा—सत्यमित्थंभूत एवास्मि। तथाहि—

हिन्दी—राजा—वस्तुतः मैं ऐसा ही बन गया हूँ। क्योंकि—

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृतं
निशि निशिभुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥ १० ॥

अन्वय—निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिः अन्तस्तापात् अशिशिरैः अश्रुभिः विवर्णमणीकृतं मणिबन्धनात् स्रस्तं स्रस्तम् इदं कनकवलयं मया अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुः प्रतिसार्यते।

हिन्दी—(राजा दुष्यन्त कहते हैं) प्रत्येक रात्रि में बाहु पर रक्खे गये नेत्रों के अपाङ्ग से प्रवर्तित होने वाले और मानसिक क्लेश के कारण उत्पन्न उष्ण आँसुओं से मलिन मणियों वाला तथा हाथ के मूल (मणि बन्ध) से पुनः पुनः खिसके हुए इस स्वर्ण कंकण को मैं प्रत्यञ्चा के आघात-चिह्न से बचाता हुआ बार-बार इसे ऊपर खिसकाता रहता हूँ।

संस्कृत व्याख्या—निशि निशि—प्रतिनिशम्, भुजन्य०—भुजे न्यस्तः स्थापितः—अपाङ्ग, नेत्रयान्तः तस्मात् प्रसारिभिः अन्तस्तापात्—मानसिक क्लेशात्, अशिशिरैः—उष्णैः, अश्रुभिः—नेत्रजलैः, विवर्णमणीकृतं—मलिनीकृतं मणिबन्धनान्, स्रस्तं—विगलितं, इदं कनकवलयं—स्वर्णकंकणम्, मया—दुष्यतेन, अनभिलुलित—अस्पृष्ट मौर्वीकिणम्, प्रतिसार्यते—स्थाच्यते, अत्र स्वभावोक्तिरलंकारः। हरिणीवृत्तम्।

टिप्पणी—भुजे न्यस्तः अपाङ्गः यस्मात्—कर्म० धा०, अनभिलुलितः ज्यायाः घाताङ्कं यस्मिन्—ब० व्री०, (१) यहाँ दुर्बलता के कारण कंकण का बार-बार खिसकना आदि होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार, (२) मणि के मलिन होने का हेतु अश्रुप्रवाह है, अतः काव्यलिंग अलंकार, (३) यहाँ महाकवि ने विप्रलंभ शृंगार की सुन्दर अभिव्यंजना की है। (४) कुछ लोग यहाँ कार्य रूप वलय के स्रंसन रूप कारण से दुर्बलता सूचित होने के कारण यहाँ 'पर्यायोक्ति' अलंकार मानते हैं। मणिबन्ध—वह स्थान जहाँ राजा लोग प्राचीन काल में कंकण पहनते थे। विवर्णाः मणयः यस्य तत्—ब० व्री। हरिणी छन्द—जिसके प्रत्येक चरण में १ सगण, १ नगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु १ गुरु वर्ण हो, ६ (षड्), ४ (वेद), ७ (सूर्य के घोड़े) वर्णों के बाद यति हो तथा प्रत्येक चरण में १७ वर्ण होतें है।

प्रियंवदा—(विचिन्त्य) हला, मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। तं सुमनोगोपितं[1] कृत्वा देवप्रसादस्यापदेशेन तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।

१. इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनो गोपितं कृत्वा नि० सा० (इसको देवता के प्रसाद के बहाने फूलों में ढँककर)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(हला, मअणलेहो से करीअदु। तं सुमणोगोविदं करिअ देवप्पसादस्सा-वदेसेण से हत्थअं पावइस्सं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—हे सखी, इन (दुष्यन्त) को प्रेमपत्र लिखा जाय। उस प्रेम पत्र को पुष्पों में छिपाकर देवता के प्रसाद के बहाने उनके हाथों में पहुचाऊँगी।

अनसूया—रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति। (रोअइ मे सुउमारो पओओ। किं वा सउन्दला भणादि।)

हिन्दी—अनसूया—मुझे यह प्रेमयुक्त उपाय अच्छा लग रहा है। परन्तु शकुन्तला क्या कह रही है?

शकुन्तला—किं नियोगो वां विकल्प्यते। (किं णिओओ वो विकप्पीअदि।)

हिन्दी—शकुन्तला—क्या आप दोनों की आज्ञा टाली जा सकती है?

प्रियंवदा—तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावत् किमपि ललितपदबन्धनम्। (तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिन्तेहि दाव किम्पि[1] ललिअपदबन्धणं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—तो अपनी (प्रेम की) अवस्था के अनुसार एक सुन्दर पद-रचना पर विचार करो (या गीति लिखो)।

शकुन्तला—हला, चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्। (हला, चिन्तेमि अहं। अवहीरणाभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं।)

हिन्दी—शकुन्तला—हे सखी, मैं सोच रही हूँ, परन्तु अनादर के भय से मेरा हृदय कम्पित होता है।

राजा—(सहर्षम्)

हिन्दी—राजा—(प्रसन्नतापूर्वक)

टिप्पणी—विकत्त्यते-में 'मनोरथ' नामक नाट्य लक्षण है। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में नायिकाओं की प्रेमाभिव्यक्ति के लिए ४ उपाय बताये हैं—(१) प्रेम पत्र सम्प्रेषण, (२) प्रेमपूर्ण दृष्टि पात, (३) प्रेम भरी बातें, (४) दूती सम्प्रेषण। Can your arrangements be ever questioned by me ?—Kale. कुमारसम्भव में कहा है कि विद्याधर लोग भोजपत्र पर धातुओं के रस से प्रेमपत्र लिखते थे—न्यस्ताक्षरा धातुरसेन मम..........अनंगलेख क्रिययोपयोगम्॥—कु० सं०, ललितानां पदानां बन्धनम्—ष० तत्पु०।

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्॥११॥

---

१. किम्पि—नि० सा०—पाठो नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—भीरु, यतः अवधीरणां विशङ्कसे, सः अयं ते संगमोत्सुकः तिष्ठति। प्रार्थयिता श्रियं लभेत न वा, श्रिया ईप्सितः कथं दुरापः भवेत्।

हिन्दी—(राजा दुष्यन्त कहते हैं) हे भीरु प्रकृतिवाली! तुम जिससे अनादर की आशंका करती थी, वह दुष्यन्त तुम्हारे आलिंगन को उत्सुक है। अभिलाषी लक्ष्मी को प्राप्त करे या नहीं परन्तु लक्ष्मी से चाहा गया (लक्ष्मी के लिए) कैसे दुर्लभ होगा?

संस्कृत व्याख्या—हे भीरु—भयशीले, यतः—यस्मात् जनात्, त्वं अवधीरणां—तिरस्कारम्, विशङ्कसे—आशङ्कसे, अयं—एषः दुष्यन्तः, ते—तव, संगमोत्सुकः—संयोगोत्कंठित, तिष्ठति—स्थितः, प्रार्थयिता—प्रार्थी, अभ्यर्थी, श्रियं—लक्ष्मी, लभेत—प्राप्नुयात वा न, श्रिया—लक्ष्म्या, ईप्सितः—अभीष्टः, कथं—केन प्रकारेण दुर्लभः—दुरापः, भवेत्—स्यात्।

नोट—प्रो० ए० वी० गजेन्द्र गदकर इसे बहुत सुन्दर श्लोक मानते हैं। इसमें मानव स्वभाव की एक सुन्दर एवं सूक्ष्म समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

टिप्पणी—संगमेन उत्सुकः, प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च से तृतीया और सप्तमी दोनों होती है, ईप्सितः—आप + सन् + क्त (१) सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अतिशयोक्ति अलं०, कुछ टीकाकार यहाँ प्रक्रम भंग दोष मानते हैं। ञिभी भये + क्रु प्रत्यय = भीरुः, अव + धीर् + ल्युट् + टाप्, प्रार्थयिता— प्र + अर्थ् + णिच् + तृच्। यह अत्यन्त रोचक एवं मनोहारी श्लोक है, यहाँ शकुन्तला ही लक्ष्मी के रूप में सूचित है। यहाँ श्रुति, वृत्ति एवं छेकानुप्रास अलंकार भी है। छन्द—वंशस्थ—जतौनु वंशस्थमुदिरितौ जरौ—जगण, तगण, जगण एवं रगण।

सख्यौ—अयि[1] आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्सनां पटान्तेन वारयति। (अयि अत्तगुणावमाणिणि, को दाणिं सरीरणिव्वावइत्तिअं सारदिअं जोसिणिं पडन्तेण वारेदि।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—अरे, अपने गुणों का (कोमलता, सुन्दरता आदि) अपमान करने वाली, कौन संसार में शरीर को शान्ति प्रदान करने वाली चन्द्रिका को चादर से ढँकना चाहता है?

शकुन्तला—(सस्मितम्) नियोजितेदानीमस्मि। (णिओइआ दाणिं म्हि।) **(इत्युपविष्टा चिन्तयति।)**

हिन्दी—शकुन्तला—(मुस्कान के साथ) मैं इस काम (प्रेम पत्र-रचना) में लग गई हूँ।

राजा—स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। यतः—

हिन्दी—राजा—उचित ही है, अतः अपलक दृष्टि से मैं अपनी प्रियतमा को देखता हूँ।

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ॥ १२ ॥

अन्वय—पदानि रचयन्त्याः अस्याः उन्नमितैकभ्रूलतम् आननं कण्टकितेन कपोलेन मयि अनुरागं प्रथयति।

हिन्दी—पदों की रचना करती हुई इस शकुन्तला का ऊपर उठी हुई भौहों वाला मुख रोमाञ्चित कपोल से मेरे प्रति अनुराग प्रकट कर रहा है।

---

१. अयि—इति पाठो नास्ति—सि०सं०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—पदानि—सुबन्तादि काव्ययोग्यान् प्रयोगान् रचयन्त्याः—कुर्वन्त्याः, अस्याः—शकुन्तलायाः, उन्नमितै०—उदञ्चित—एक भ्रूलतया, आननं—मुखं, कण्टकितेन—रोमाञ्चितेन, कपोलेन—गण्डस्थलेन, मयि—दुष्यन्ते, अनुरागं—प्रीतिम् स्नेहं वा, प्रथयति—कथयति। अत्र स्वभावोक्ति उपमाचलंकारौ, आर्यावृत्तम्।

नोट—उन्नमिता भ्रूलता यस्य तत्—ब० व्री०, (१) कपोल पुलक से अनुराग का अनुमान होने से अनुमानालंकार, (२) भ्रूलता में उपमालंकार—यहाँ हर्ष भाव की अभिव्यंजना है, आर्या छन्द। यहाँ नायक नायिका के भाव को ग्रहण करने के कारण क्रम नामक गर्भ सन्धि का अंग है। यहाँ महाकवि ने अन्तर्मन की सूक्ष्मतम भावनाओं की अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्त की है।

शकुन्तला—हला, चिन्तितं मया गीतवस्तु। असंनिहितानि[1] पुनर्लेखनसाधनानि। (हला, चिन्तिदं मए गीदवत्थु। असण्णिहिदाणि उण लेहणसाहणाणि।)

हिन्दी—शकुन्तला—सखी, मैंने गीत का छन्द (वृत्त) सोच लिया है, परन्तु यहाँ लेखन सामग्री का अभाव है।

प्रियंवदा—एतस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्ता-वर्णं कुरु। (इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—शुक के उदर की भाँति कोमल इस कमल के पत्ते पर नखों से लिखो।

शकुन्तला—(यथोक्तं रूपयित्वा) हला, शृणुतमिदानीं संगतार्थं न वेति। (हला, सुणुद दाणिं सगदत्थं ण वेति।)

हिन्दी—शकुन्तला—(उपर्युक्त अभिनय करके) सखियों अब सुनो, इसका भाव उपयुक्त है या नहीं।

उभे—अवहिते स्वः। (अवहिंदे म्ह।)

हिन्दी—दोनों—सावधान हैं।

शकुन्तला—(वाचयति)

हिन्दी—शकुन्तला—(पढ़ती है।)

तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाऽपि रात्रावपि ।
निर्घृण, तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथाया[2] अङ्गानि ॥ १३ ॥

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवावि रत्तिम्पि ।
णिग्घिण तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं ॥ १३ ॥

अन्वय—निर्घृण, तव हृदयं न जाने, त्वयि वृत्तमनोरथायाः मम अङ्गानि मदनः दिवा अपि रात्रौ अपि बलीयः तपति।

---

१. न खलु संनिहितानि—नि० सा० पाठ में नहीं है।
२. वृत्तमनोरथान्यङ्गानि (मेरी ओर लगे हुए अङ्गों को)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—हे निर्दय! मैं तुम्हारे हृदय को नहीं जानती, परन्तु तुम्हारी कामना वाले मेरे अङ्गों को कामदेव रात-दिन अधिक तपा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—निर्घृण—हे निर्दय!, तव—दुष्यन्तस्य, हृदयं—मनः, न जाने—न जानामि, त्वयि—दुष्यन्ते, वृत्त मनोरथायाः-जाताभिलाषायाः-मम—शकुन्तलायाः, अंगानि—अवयवान, कुच कपोलादीन, कामः—मनोजः, दिवापि—दिन समये, रात्रावपि—रात्रिकालेऽपि, बलीयः—अत्यधिम्, तपति—व्यथयति। अत्र—अनुमानम्, अर्थापत्तिः, श्लेषः अलंकाराः, उद्गाथा छन्दः।

टिप्पणी—निरस्ता घृणा (दया) अस्य ब० व्री०, शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त के लिए प्रयुक्त विशेष, यह नायिका में प्रवल अनुराग एवं काम-वासना सूचित करता है। वृत्तः मनोरथः यस्याः सा तथा—ब० व्री० , रा० भ० मनोरथानि पाठ स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रो० रे, गदकर इसे नहीं मानते। नायिका का अभिप्राय है कि यदि मेरी तरह तुम्हें भी हृदय में सन्ताप होता तो तुम मेरे आलिंगन के लिए अवश्य आते। (१) मैं 'काम मुझे तपाता है' इस प्रकार के अनुमान के कारण अनुमान अलंकार है। (२) तव हृदयं न जाने—से नायक गत उत्कण्ठाभाव सूचित होता है अतः अर्थापत्ति अलं० (३) काम का 'मनोज एवं इच्छा' दोनों अर्थ होने से श्लेष अलं०, (४) विप्रलम्भ श्रृंगार, (५) छन्द[१]—गीति, (६) भरत के अनुसार यहाँ लेख नामक सध्यंग है।—'विवक्षितार्थ—ललिता पत्रिका लेख उच्यते।' रा० भ० प्रत्येक अंग की अलग-अलग अभिलाषा मानते हैं। जैसे—भुजाओं में तुम्हारे आलिंगन की इच्छा नेत्रों में तुम्हारे दर्शन की इच्छा, कानों में तुम्हारी वाणी सुनने की इच्छा, नासिका में तुम्हारे निःश्वास-गन्ध सूँघने की इच्छा, नितम्ब में तुम्हारी गोद में बैठने की इच्छा, कुचों में तुम्हारे हाथों से मिलने की इच्छा, कपोलों में तुम्हारे दन्तक्षत की इच्छा आदि। 'कामः तपति[३]' पद से गान्धर्व विवाह व्यंजित होता है। Cupid causes accute pain to the limbs of me whose affections is centred in you.—Kale.

राजा—(सहसोपसृत्य)

हिन्दी—राजा—(अकस्मात् शकुन्तला के पास पहुँचकर)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ॥ १४॥

अन्वय—तनुगात्रि, मदनः अनिशं त्वां तपति, मां पुनः दहति एव। दिवसः यथा शशाङ्कं ग्लपयति, कुमुद्वतीं न हि तथा।

हिन्दी—हे तन्वंगी, कामदेव तुम्हें रात-दिन तपाता रहता है, परन्तु मुझे तो यह भस्म कर देता है, क्योंकि दिन जितना चन्द्रमा को मलिन करता है उतना कुमुदिनी को मलिन नहीं करता।

संस्कृत व्याख्या—हे कृशाङ्गी, शकुन्तले, मदनः—कामः, अनिशं—सततं, त्वां—शकुन्तलां, तपति—संतापयति, मां पुनः—माम् दुष्यन्तं, दहति—दग्धी करोति, भस्मासात्कुरुते, यतोहि, दिवसः—दिनं, यथा चन्द्रं ग्लपयति—मलिनी करोति, संशोषयति, तेन प्रकारेण कुमुदिनीं न मलिनयति।

टिप्पणी—तनूनि गात्राणि यस्या सा०- ब० व्री०, सम्बो० ए० व०, दुष्यन्त नागरिक है, परन्तु शकुन्तला उपवन-कन्या। शकुन्तला स्वाभाविक रूप से अपना संताप प्रस्तुत करती है जबकि दुष्यन्त अपनी काम-पीड़ा अतिरंजित ढंग से कहता है। जिससे उसके कथन में कृत्रिमता की गन्ध है। रा० भ० के अनुसार पुरुष कठिन शरीर होते हैं—पुरुषं कठिन शरीरमिति, परन्तु स्त्री का कोमल अतः दुष्यन्त का कथन कृत्रिम है। दुष्यन्त का अपने को चन्द्रमा तथा शकुन्तला को कुमुदिनी कहना—यह सूचित करता है कि वह शकुन्तला को अपनी पत्नी मान चुका है। प्रो० काले इस उपमा को अत्यन्त साहित्यिक मानते

---

१. इसे उद्गाथा या गीति कहते हैं। यह आर्या छन्द का एक भेद है। इसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में ३०-३० मात्राएँ होती हैं १२ + १८ = ३० मात्राएँ पूर्वार्द्ध में, १२ + १८ मात्राएँ उत्तरार्द्ध में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं। (१) अलंकार—इस श्लोक में पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्तालं०, (२) कृशगात्र एवं स्त्रीत्व-रूपी कारणों के होने से काम संतप्त कर रहा है, अतः काव्यलिंग अलं०, (३) मदन सुखदायक किन्तु तापदायक है अतः विरोधाभासालं०, (४) तनु और गात्र—दोनों शब्द पर्यायवाची होने से पुनरुक्तवदाभास अलं०, (५) चन्द्र एवं कुमुदिनी—दोनों में नायक, नायिका की प्रतीति होने से समासोक्तिअलं०, (६) तपति, दहति दोनों क्रियाओं का कर्ता मदन है, अतः दीपक अलं०, (७) छन्द—आर्या, (८) प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति। ग्लपयति—ग्लै + णिच् + लट्, कुमुद + बतुप् + ङीप्, कुमुदवती कैरविण्यां दयितायां कुशस्य च—हैम०।

नोट—यहाँ महाकवि ने दुष्यन्त शकुन्तला का प्रस्तुत मिलन सोद्देश्य, मनोहर एवं औचित्यपूर्ण बताकर अपनी लोकोत्तर नाट्य कला का परिचय दिया है। यहाँ औत्सुक्य नामक भाव है—रस चन्द्रिका के अनुसार विलम्ब को न सह पाना, रम्य वस्तु की प्राप्ति, इच्छा आदि को औत्सुक्य कहते हैं।

सख्यौ—(विलोक्य सहर्षमुत्थाय) स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य। (साअदं अविलम्बिणो मणोरहस्स।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(देखकर, प्रसन्नता से उठकर) शीघ्र उपस्थित हुए मनोरथ का स्वागत है।

(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति।)

(शकुन्तला शिला पट्ट से उठकर खड़ा होना चाहती है।)

राजा—अलमलमायासेन।

हिन्दी—राजा—कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। Away with troubling your self.—Kale.

सन्दष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि ।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥ १५ ॥

अन्वय—सन्दष्टकुसुमशयनानि आशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि गुरुपरितापानि ते गात्राणि उपचारं न अर्हन्ति।

हिन्दी—कुसुमशय्या का मर्दन करने वाले, शीघ्र मलिन हुए कमलनाल के दलित होने से सुगन्धित, अधिक संतप्त तुम्हारा शरीर शिष्टाचार करने में असमर्थ है। Your limbs need not observe any formalities because of excruciating pain.—Kale.

नोट—'मनोरथ' शब्द का लक्षणा से दुष्यन्त अर्थ किया गया है—सन्दष्ट—सम् + दंभ + क्त—पीड़ित, यहाँ नायिका गत ग्लानि तथा नायकगत आवेग, औत्सुक्य आदि भाव व्यंजित हैं। 'गुरुः महति'—मेदिनीकोश के अनुसार गुरु का अर्थ अधिक है।

अनसूया—इतः शिलातलैकदेशमलंकरोतु वयस्यः। (इदो सिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो।)

हिन्दी—अनसूया—मित्र, आप शिलातल के एक भाग को सुशोभित करें।

(राजोपविशति। शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति।)

हिन्दी—(राजा बैठते हैं शकुन्तला लज्जा के साथ बैठती है।)

प्रियंवदा—द्वयोरपि युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनर्मां पुनरुक्तवादिनीं करोति। (दुवेण्णं पि वो अण्णोण्णाणुराओ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पच्चक्खो। सहीसिणेहो उण[1] मं पुणरुत्तवादिणिं करेदि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—आप दोनों का अनुराग स्पष्ट है। तथापि सखी का अनुराग मुझसे वही बात कहला रहा है।

राजा—भद्रे, नैतत् परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

हिन्दी—राजा—भद्रे, उसे रोकिए मत। क्योंकि कथनीय बात न कही जाने पर संताप पैदा करती है। What is intended to be said causes regret if not said—Kale.

प्रियंवदा—आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः। (आवण्णस्स विसअणिवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति एसो वो धम्मो।)

हिन्दी—प्रियंवदा—राजा को अपने जनपद के निवासी लोगों की विपत्ति निवारण करने वाला होना चाहिए, यह आपका कर्त्तव्य है।

राजा—नास्मात् परम्।

हिन्दी—राजा—इस (प्रजाओं के दुःख-निवारण) से बढ़कर कोई दूसरा कर्त्तव्य नहीं।

प्रियंवदा—तेन हीयमावयोः प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तदर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितमस्या अवलम्बितुम्। (तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इमं अवत्थन्तरं भअवता मअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलम्बिदुं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—तो यह हमारी प्रिय सखी आप के कारण ही भगवान् कामदेव के द्वारा इस अवस्था को पहुँचाई गई है। अतः आप कृपा पूर्वक इसके प्राणों की रक्षा करें।

राजा—भद्रे, साधारणोऽयं प्रणयः। सर्वथाऽनुगृहीतोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—भद्रे, यह प्रार्थना समान (दोनों की) है, (मेरी तथा शकुन्तला की) मैं सर्वथा अनुगृहीत हूँ।

शकुन्तला—(प्रियंवदामवलोक्य) हला, किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन। (हला, किं अन्तेउरविरहपज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण।)

हिन्दी—शकुन्तला—(प्रियंवदा को देखकर) अपने अन्तःपुर की रानियों के वियोग में दुःखी राजर्षि को रोकने से क्या?

राजा—इदमनन्यपरायणमन्यथा
हृदयसन्निहिते हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे
मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥ १६ ॥

१. पुनः (उण)—नि० सा० में पाठ नहीं है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—मदिरेक्षणे हृदयसन्निहिते, इदम् अनन्यपरायणं मम हृदयं यदि अन्यथा समर्थयसे, मदनबाणहतः पुनः हतः अस्मि।

हिन्दी—राजा—हे मतवाली, खञ्जन पक्षी जैसी नेत्रोंवाली एवं मेरे हृदय में निवास करने वाली, तुम्हीं में आसक्त इस मेरे हृदय को यदि तुम विपरीत समझोगी, तो मैं कामदेव के बाण से मारा गया पुनः मारा जाऊँगा।

संस्कृत व्याख्या—मदिरेक्षणे—चञ्चलनयने, हृदयसन्निहिते—चित्ते अवस्थिते, इदम्—एतत्, अनन्य परायणम्—अन्यतरानासक्तम्, मम हृदयं—मदीयं चित्तं, अन्यथा समर्थयसि—अथ प्रकारेण चिन्तयसि, तदा मदन बाणहतः—कामशरविद्धः अहं (दुष्यन्तः) पुनः—भूयः हतोऽस्मि—मारितोऽस्मि अत्र उपमाकाव्यलिंगपरिकरलाटानुप्रासाश्चालंकाराः द्रुतविलम्बितं छन्दः

टिप्पणी—मदिरेक्षणे—मदिरे ईक्षणे यस्या—ब० व्री, (१) माद्यति अनया इति मदिरा। मदो हर्षे धातु + किरच् प्रत्यय, मदिरा का अर्थ सुरा है, परन्तु लक्षण से मादक अर्थ है, (२) मदिरामत्त खंजन पक्षी का भी नाम है—मदिरा मत्त खञ्जनः—शब्द रत्नावली, अर्थात् मत्त खञ्जन पक्षी के समान चञ्चल नेत्रों वाली, मदनबाणहतः मदनस्य बाणः (ष० तत्पु०) तेन हतः (तृ० तत्पु०) अनन्य परायणं— न विद्यते अन्यं परायणं यस्य (ब० व्री०) यहाँ साम नामक सध्यंग है, **अलंकार** (१) अनन्यशरण का हृदयसंनिहित कारण है, अतः काव्यलिंग अलं०, (२) हृदयसंनिहित, मदिरेक्षणे आदि विशेषताओं के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार, (३) उपमा तथा लाटानुप्रास अलं०, (४) हृदये संनिहितं-सप्त० तत्पु० सम्बोधन में प्रयुक्त पद, (५) द्रुतविलम्बित छन्द जिसमें नगण, भगण, मगण, रगण में ४ गण हों तथा प्रत्येक पाद में १२ अक्षर हों। भरत मुनि के अनुसार जो सुन्दर, विकसित अपांग वाली, और चञ्चल पुतलियों वाली हो, उसे मदिरेक्षणा कहते हैं।

नोट—यहाँ राजा दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति एकनिष्ठभाव प्रकट होने से अलंकार द्वारा वस्तु ध्वनि है। प्रो० गदकर इसे अत्यन्त सुन्दर एवं साहित्यिक पद्य मानते हैं। अनेक टीकाकार इस पद्य का वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्यार्थ अनेक दृष्टियों से अर्थ करते हैं। मदिरेक्षणे—With bewitching eyes हृदयसंनिहिते—ever abiding in my heart—Kale.

अनसूया—वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय[1]। (वअस्स, बहुवल्लहा राआणो सुणीअन्ति। जह णो पिअसही बन्धुअणसोअणिज्जा ण होइ तह णिव्वाहेहि)

हिन्दी—अनसूया—हे मित्र, सुना जाता है कि राजाओं की बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं, अतः ऐसा व्यवहार करो, जिससे हम लोगों की प्रियसखी (शकुन्तला) बन्धुजनों के लिए सोचनीय न हो। Should not be bewailed by her kinsman—Kale. शकुन्तला राजा द्वारा परिव्यक्त होती है, इसका पूर्वामास नोटककार ने यहाँ किया है।

राजा—भद्रे, किं बहुना।

हिन्दी—राजा—भद्रे अधिक क्या कहूँ।

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररसना[2] चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥ १७॥

---

१. निर्वर्तय [णिव्वत्तेहि] (करना)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. समुद्र वसना (समुद्र जिसका वस्त्र है)—नि० सा०

अन्वय—परिग्रहबहुत्वे अपि द्वे मे कुलस्य प्रतिष्ठे, समुद्ररसना उर्वी च युवयोः इयं सखी च।

हिन्दी—अनेक पत्नियों (रानियों) के होने पर भी मेरे (दुष्यन्त) कुल की दो प्रतिष्ठा हैं—समुद्र रूपी मेखला से युक्त पृथ्वी और तुम दोनों की यह प्रिय सखी।

संस्कृत व्याख्या—दुष्यन्तः अनसूयां कथयति—पत्नीनाम् अधिकेऽपि मे मम—दुष्यन्तस्य कुलस्य वंशस्य, द्वे प्रतिष्ठे-द्वौ-गौरवहेतू स्तः समुद्रः सागरः रसना मेखला यस्य सा, उर्वी—पृथ्वी, युवयोः—भवत्योः, प्रियंवदानुसूययोः, एषा सखी—शकुन्तला। अस्मिन श्लोके तुल्ययोगिता, अतिशयोक्तिः श्लेषः समासोक्तिः अलंकाराः। पथ्यावृत्तम् श्लोकः वा छन्दः।

टिप्पणी—बह्व्यः वल्लभाः येषां ते—ब० व्री०, परिग्रह का अर्थ है पत्नी, परिग्रहः परिजने पत्न्यां स्वीकारभूत्योः—विश्व, यहाँ परिग्रह शब्द से अर्थ ध्वनित है कि शकुन्तला वल्लभा (प्रिया) **है और शेष** परिग्रह। परि + ग्रह् + अच्—पूर्णतः स्वीकार करना, प्रतिष्ठा गौरवे स्थितौ—हैमः; समुद्ररशना—(१) मुद्राभिः सह समुद्रः—मणि आदि से युक्त रशना—मेखला (२) समुद्रः एव रशना मस्य-ब० व्री०, (३) मुदं आनन्दं ददाति इति समुद्रा, सा रशना—प्रीति या आनन्द को देने वाली, (४) अपने प्रिय वचनों से लोगों को आनन्दित करने वाली। रघुवंश में भी कालिदास ने समुद्र को पृथ्वी की मेखला कहा है (द० सर्ग ६), स रत्नाकर मेखला मुर्वीम्। **अलंकार**— (१) यहाँ सखी (शकुन्तला) तथा पृथिवी—इन दोनों का प्रतिष्ठा रूप एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से 'तुल्ययोगिता'। (२) शकुन्तला को कुल की मर्यादा कहने के कारण अतिशयोक्ति अलं०, (३) समुद्ररशना में श्लेषालंकार, (४) पृथ्वी में स्त्री का आरोप होने से समासोक्ति अलं०, (५) शकुन्तला के उत्कर्ष का कथन होने से 'उदाहरण' गर्भ सन्धि का अंग है। उदाहरणमुत्कर्ष युक्तं वचनम्—सा० द०। **पथ्यावक्त्र छन्द**—अनुष्टुप् छन्द के द्वितीय, चतुर्थ चरणों में जब चौथे अक्षर के बाद जगण आता है तो उसे पथ्यावक्त्र छन्द कहते हैं—'युजोस्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्'। अनसूया का अभिप्राय है कि बहुत सी पत्नियों के मध्य होने पर भी आप शकुन्तला के प्रति उपेक्षा मत करना। बल्कि केवल शकुन्तला को ही ग्रहण करना।

उभे—निर्वृते स्वः। (णिव्वुदे म्ह।)

हिन्दी—दोनों—हम (अनसूया एवं प्रियंवदा) निश्चिन्त हो गईं।

प्रियंवदा—(सदृष्टिक्षेपम्) अनसूये, यथैष इतो दत्तदृष्टि-रुत्सुको मृगपोतको मातर मन्विष्यति। एहि, संयोजयाव एनम्। (अणसूए, जह[1] एसो इदो दिण्णदिट्ठी उत्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि, संजोएम णं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(बाहर दृष्टि डालकर) अनसूया, इधर की ओर देखता हुआ उत्सुक यह हरिण का बच्चा अपनी माता को खोज रहा है। आओ, हम दोनों इसे माता से मिला दें।

(इत्युभे प्रस्थिते)

(ऐसा कहकर दोनों प्रस्थान करती हैं।)

शकुन्तला—हला, अशरणाऽस्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु। (हला, असरणा म्हि। अण्णदरा वो आअच्छदु।)

हिन्दी—शकुन्तला—सखी, मैं असहाय हो गई हूँ, तुम दोनों में से एक तो आओ।

१. काले—यथा (जह)—इति पाठ नास्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उभे—पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते। (पुहवीए जो सरणं सो तुह समीवे वट्टइ।)

हिन्दी—दोनों—(दोनों सखियाँ) जो पृथिवी का आश्रय है, वह तुम्हारे पास ही है।

(इत्युभे निष्क्रान्ते)

(दोनों निकल जाती हैं)

शकुन्तला—कथं गते एव। (कहं गदाओ एव्व।)

हिन्दी—शकुन्तला—क्यों, दोनों (अनसूया-प्रियंवदा) चली गईं?

टिप्पणी—पोत: पाकोऽर्भको डिम्भ:—अम०। शकुन्तला जब दुष्यन्त के पास रहती है, तो प्रियंवदा हरिणशावक का बहाना करके वहाँ से हटती है, जिससे दोनों सुखपूर्वक मिल सकें।

राजा—अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते।

हिन्दी—राजा—घबड़ाना निरर्थक है। निश्चित ही तुम्हारा सेवकजन तुम्हारे समीप ही है।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥ १८ ॥

अन्वय—किं शीतलैः क्लमविनोदिभिः नलिनीदलतालवृन्तैः आर्द्रवातान् संचारयामि। उत करभोरु, ते पद्मताम्रौ चरणौ अङ्के निधाय यथासुखं संवाहयामि।

हिन्दी—हे करभोरु, क्या मैं शीतल तथा थकावट दूर करने वाले कमलिनी के पत्तों के पंखे से ठंडी हवा करूँ या कमल के समान लाल तुम्हारे दोनों चरणों को गोद में रख कर, उसी प्रकार दबाऊँ, जिससे तुम्हें सुख मिले।

संस्कृत व्याख्या—हे करभोरु, किं—शीतलैः— शीतैः क्लमविनोदिभिः—सन्तापसंहारकैः, नलिनीदल ताल वृन्तैः—कमलिनी पत्र व्यजनैः, आर्द्रवातान्—क्लिन्नपवनान, संचारयामि—करोमि, उत—अथवा, पद्मताम्रौ—कमलसदृशरक्तवर्णौ, चरणौ—पादौ, अङ्के—क्रोडे, निधाय—स्थापयित्वा, यथा सुखं—यथा ते, सुखं स्यात्तथा, संवाहयामि—मर्दयामि। अत्र परिणाम, परिकर विकल्प अलंकाराः वसन्ततिलकावृत्तम्।

टिप्पणी—करभोरु—करभौ इव ऊरु यस्याः—ब० व्री, करभः—किरति अनेन, कृ + अभच् = करभोरुमणि—बन्धादि कनिष्ठान्तोष्ट्रतत्सुते-मेदिनी। इसके दो अर्थ हैं (१) कलाई से लेकर कनिष्ठिका अंगुलि तक का भाग, (२) हाथी के बच्चे की सूँड, जिसकी जाँघ हाथी के बच्चे की सूँड से मिलती जुलती है, उसे 'करभोरु' कहते हैं। नलिनीदल ताल वृन्तैः—से हवा सुगन्धित होने का अर्थ व्यंजित है, आर्द्र से हवा की शीतलता व्यंजित है, 'संचारयामि' से पंखों को धीरे-धीरे चलाने का अर्थ व्यंजित है, पद्म ताम्रौ से चरणों की रमणीयता तथा कोमलता रूप अर्थ व्यंजित है। अतः वे दबाने योग्य हैं एवं कामीजनों के लिए सुखकर हैं। यहाँ राजा दुष्यन्त की चाटूक्ति बहुत मनोहारिणी है। (१) नायिका शकुन्तला के प्रसन्न करने के कारण यहाँ नामक प्रतिमुख संधि का अंग है, 'उपन्यास प्रसादनम्' (२) अभीष्ट सिद्धि के लिए अनेक बातें कहने के कारण 'माला' नामक नाटकीय लक्षण है—माला स्याद् यद्भीष्टार्थं नैकार्थप्रतिपादनम्। (३) कमलिनी दल में ताल वृन्त का आरोप प्रस्तुत अर्थ के लिए उपयोगी होने से परिणाम अलं०, (४) विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलं०, (५) प्रथम चरणों के पश्चात् विकल्प का प्रयोग होने से विकल्प अलं०,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(६) पद्मताम्रौ में चरणों की कमल से तुलना के कारण उपमालंकार, (७) प्रसादगुण तथा वैदर्भी रीति; (८) वसन्ततिलका छन्द। मोनियर विलियम्स के मत में 'आराधय' का अर्थ सेवा तथा पूजा करना है। Placing your lotus red feet in my lap I shall shampoo so as to soothe you—Kale. क्लम + वि + नुद् + णिच् + णिनि; सम + वह + णिय् + लट्—उ० पु० ए० व०।

शकुन्तला—न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये। (ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं)

हिन्दी—शकुन्तला—माननीय (आप) के प्रति मैं अपने को अपराधिनी नहीं बनाऊँगी।

(इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति)

(इस तरह शकुन्तला उठकर जाना चाहती है।)

राजा—सुन्दरि, अनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।

हिन्दी—राजा—सुन्दरी अभी दिन ढला नहीं और तुम्हारे शरीर की यह अवस्था हो गई।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् ।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः ॥ १९ ॥

अन्वय—नलिनीदलकल्पितस्तनावरणं कुसुमशयनम् उत्सृज्य परिबाधापेलवैः अङ्गैः कथम् आतपे गमिष्यसि ?

हिन्दी—कमलिनी के पत्तों से जिसके स्तनों का आवरण बनाया गया है, ऐसी पुष्प शय्या को त्यागकर पीड़ा के कारण कोमल अङ्गों से धूप में कैसे जाओगी ?

संस्कृत व्याख्या—कमलिनी पत्रैः रचितं कुचावरणम् यस्मिन्, तादृशं, कुसुमशयनं—पुष्पशय्याम्, उत्सृज्य—विमुच्य, परिबाधापेलवैः—परिपीडा कोमलैः, अङ्गै—शरीरावयवैः, आतपे—निदाघे, सूर्यप्रकाशे कथम्, गमिष्यसि—गमनं करिष्यसि। अत्र काव्यलिंग, परिकरश्चालंकारौ, आर्या वृत्तम्।

(इति बलादेनां निवर्तयति।)

(इस प्रकार कहकर बलपूर्वक उसे (शकुन्तला को) लौटाता है।

टिप्पणी—(१) शकुन्तला द्वारा राजा को माननीय कहने का अर्थ— आप मेरे पति हैं अतः मैं आपसे सेवा नहीं कराऊँगी। मो० विलियम्स के अनुसार—यदि गुरु कण्व की अनुमति के बिना आपसे प्रणय करूँगी तो उनकी दृष्टि में अपराधिनी बनूँगी। (२) परिबाधा पेलवैः में 'पेलव' शब्द को अश्लील मानकर कुछ विद्वान 'कोमल' शब्द प्रयुक्त करते हैं। ऐसा लगता है कि कालिदास के समय में यह शब्द अश्लील न रहा हो जिससे उन्होंने अपने काव्यों में प्रचुरता से इसका प्रयोग किया। परिबाधा पेलवैः With your limbs delicate by your suffering. अतिर्वाणो दिवसः The day has not yet been cool—Kale.

शकुन्तला—पौरव, रक्ष विनयम्। मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि। (पोरव, रक्ख विणअं। मअणसंतत्ताvि ण हु अत्तणो पहवामि।)

हिन्दी—शकुन्तला—पौरव (हे पुरुवंशी राजा) अपने शील की रक्षा करो। काम से पीड़ित होने पर भी मेरा अपने पर अधिकार नहीं।

राजा—भीरु, अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्नात्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि[१] च—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. का० प्रश्य (देखो)

हिन्दी—राजा—गुरुजनों का भय व्यर्थ है, तुम्हें देखकर धर्म को जानने वाले पूज्य कुलपति इस विषय में दोष नहीं समझेंगे। और भी—

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ॥ २० ॥

अन्वय—बह्व्यः राजर्षिकन्यकाः गान्धर्वेण विवाहेन परिणीताः, ताः पितृभिः अभिनन्दिताः च श्रूयन्ते।

हिन्दी—बहुत सी राजर्षि कन्याओं ने गान्धर्व-विधि से विवाह कर लिया और उनके पितृजनों ने उनका अनुमोदन किया, ऐसा सुना जाता है।

टिप्पणी—(१) यहाँ अप्रस्तुत सामान्य (कन्याएँ) से प्रस्तुत विशेष (शकुन्तला) की व्यञ्जना होने से अप्रस्तुत प्रशंसालंकार, (२) पथ्यावक्त्र छन्द। मनु के अनुसार विवाह के ८ भेद हैं ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्य, तथाऽसुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचः चाष्टमो मतः॥ मनु के अनुसार क्षत्रिय के लिए गान्धर्व विवाह को श्रेष्ठ बताया गया है। क्षत्रियस्तु गान्धर्वो विवाहो श्रेष्ठ उच्यते—म० स्मृति। स्वाहा तथा अग्नि, उषा और अनिरुद्ध, प्रभावती एवं प्रद्युम्न आदि के विवाह अनुमोदित थे। (हरिवंश पुराण. २/९४, ११९) यहाँ शास्त्र के अनुकूल मनोहर वाक्य होने से 'उपदिष्ट' नामक नाटकीय लक्षण है। यहाँ नायक द्वारा कथा के अनुवर्तन की चतुरता प्रदर्शित है एवं औत्सुक्य भाव सूचित है।

शकुन्तला—मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।
(मुञ्च दाव मं। भूओ वि सहीजणं अणुमाणइस्सं)

हिन्दी—शकुन्तला—अभी मुझे छोड़िए मैं फिर भी अपनी सखियों से अनुमति लूँगी।

राजा—भवतु। मोक्ष्यामि।

हिन्दी—राजा—ठीक है। छोड़ दूँगा।

शकुन्तला—कदा (कदा)

हिन्दी—शकुन्तला—कब?

राजा—अपरिक्षतकोमलस्य यावत्
कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।
अधरस्य पिपासता मया ते
सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ॥ २१ ॥

अन्वय—सुन्दरि यावत् षट्पदेन नवस्य कुसुमस्य इव पिपासता मया अपरिक्षतकोमलस्य अस्य ते अधरस्य रसः सदयं गृह्यते।

हिन्दी—राजा—हे सुन्दरी, जब तक भ्रमर के द्वारा नवीन पुष्प के रस की भाँति प्यासे (व्याकुल) मुझ दुष्यन्त से स्पर्श न किये गये एवं कोमल तुम्हारे अधरों का रस (स्वाद) दया पूर्वक ग्रहण किया जा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—हे सुन्दरी—मनोहारिणि, यावत्—यावत्कालपर्यन्तं, षट्पदेन—भ्रमरेण, नवस्य—नवीनस्य, कुसुमस्य—पुष्पस्य, इव पिपासता—पातुम् इच्छता, मया—दुष्यन्तेन, अपरिक्षतकोमलस्य—अदष्ट सुकुमारस्य, अस्य—एतस्य, ते—तव, अधरस्य—दन्तच्छदस्य, रसः—स्वादः, सदयं—दयापूर्वकम्, गृह्यते—आदीयते। अत्रोपमालंकारः। मालभारिणी वृत्तम्।

टिप्पणी—(१) इसमें दुष्यन्त की भ्रमर से तुलना करने के कारण उपमालंकार, (२) अधर रस-पान करने का हेतु प्यास से व्याकुल होना है अतः काव्यलिंग अलंकार, (३) श्लेषालं०, (४) रमणीय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

वस्तु की इच्छा करने के कारण (स्पृहा) नामक नाट्य लक्षण हैं। अपरिक्षतश्चासौ कोमलश्च कर्मधा० समा०, पा (पीना) + सन् + शतृ = तृ० ए० व० कामिनियों का अधर-रस सुरत कार्य से श्रेष्ठ है। कामिनीनाम् अधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते—रति-रहस्य। मालभारिणी—विषमे ससजा गुरुः समे चेत्, सभरा येन तु मालभारिणीयम्॥ जिसके प्रथम, तृतीय चरणों में सगण, जगण, २ गुरु हों, दूसरे एवं चौथे चरणों में सगण, भगण, रगण और मगण हों। इसको औपच्छन्दसिक वृत्त भी कहते हैं, यह अर्ध समवृत्त है।

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन।)

हिन्दी—यह कहकर दुष्यन्त शकुन्तला का मुख ऊपर उठाना चाहता है। शकुन्तला नाटकीयता के साथ रोकती है।)

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी। (चक्कवाकवहुए, आमन्तेहि सहअरं। उवट्ठिआ रअणी।)

हिन्दी—हे चक्रवाक प्रिये, अपने संगी को विदा करो, रात्रि हो गई।

शकुन्तला—(ससंभ्रमम्) पौरव, असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति। तद्[१] विटपान्तरितो भव। (पोरव, असंसअं मम सरीरवुत्तन्तोवलम्भस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि। ता विडवन्तरितो होहि।)

हिन्दी—शकुन्तला—(भय के साथ) हे पौरव, निःसन्देह मेरे शरीर का समाचार जानने के लिए माननीया गौतमी इधर आ रही है। अतः आप वृक्षों की ओट में हो जाइये।

राजा—तथा। (इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति।)

हिन्दी—राजा—अच्छा, (इस तरह अपने को छिपा कर स्थित होता है।)

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च)

हिन्दी—(इसके बाद हाथ में पात्र लिये हुए गौतमी और उसकी सखियाँ प्रवेश करती हैं।)

सख्यौ—इत इत आर्या गौतमी। (इदो इदो अज्जा गोदमी।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—इधर से आर्या गौतमी, इधर से।

गौतमी—(शकुन्तलामुपेत्य) जाते, अपि लघुसन्तापानि तेऽङ्गानि। (जादे, अवि लहुसंदावाइं दे अङ्गाइं।)

हिन्दी—गौतमी—(शकुन्तला के पास जाकर) पुत्री क्या तुम्हारे अंगों की पीड़ा कम हुई।

---

१. यावद् (जाव) ज्ञानसं... [illegible]

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला—आर्ये, अस्ति मे विशेषः। (अज्जे[1], अत्थि मे विसेसो।)

हिन्दी—शकुन्तला—हाँ आर्या, मेरा सन्ताप कम है। मेरी पूर्व दशा में कुछ अन्तर है।

गौतमी—अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से, परिणतो दिवसः। एहि, उटजमेव गच्छामः। (इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि। वच्छे, परिणदो दिअहो। एहि, उडजं एव गच्छम्ह।)

हिन्दी—गौतमी—इस कुश युक्त जल से तुम्हारा शरीर पीडा रहित हो जायेगा। (शकुन्तला के शरीर पर जल छिड़ककर।) दिन ढल गया, आओ, हम लोग कुटी में चले।

इति प्रस्थिताः।

हिन्दी—(इस तरह गौतमी, शकुन्तला और सखियाँ, सभी चल देती हैं)

शकुन्तला—(आत्मगतम्) हृदय, प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयविघटितस्य कथं ते सांप्रतं सन्तापः। (पदान्तरे स्थित्वा। प्रकाशम्) लतावहय सन्तापहारक, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय। (हिअअ, पढमं एव्व सुहोवणदे कादरभावं ण मुञ्चसि। साणुसअविहडिअस्स कहं दे संपदं संदावो। लदावलअ संदावहारअ, आमन्तेमि तुमं भूओ वि परिभोअस्स।)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) हे अन्तःकरण, पहले ही सहज प्राप्त कामना के होने पर तुमने घबड़ाहट नहीं छोड़ी। पश्चाताप के साथ वियुक्त होने पर इस समय तुम्हें संताप हो रहा है। (कुछ आगे चलकर) (प्रकट रूप में) हे लताकुञ्ज, हे पीडा निवारक, मैं तुम्हें भोग के लिए पुनः आमंत्रित करती हूँ।

(इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।)

हिन्दी—इस प्रकार दुःखी शकुन्तला अन्यों के साथ निकल गई।

राजा—(पूर्वस्थानमुपेत्य, सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि—

हिन्दी—राजा—(पूर्वस्थान पर पहुँच कर, निःश्वास के साथ) अहो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति विघ्नों से पूर्ण होती है। क्योंकि मैंने—

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं
प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः
कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥ २२॥

१. आर्ये (अज्जे)—नि० सा० में नहीं है।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—पक्ष्मलाक्ष्याः मुहुः अङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् अंसविवर्ति मुखं कथमपि उन्नमितं न तु चुम्बितम्।

हिन्दी—घनी बरौनियों सहित नेत्रों वाली, (उस शकुन्तला का) बराबर अँगुलियों से ढँके अधरोष्ठ वाला निषेध के अक्षरों के अस्पष्ट उच्चारण के कारण मनोहर, कंधे की दिशा में मोड़ा गया मुख किसी प्रकार उठाया तो परन्तु चुम्बन नहीं कर सका।

नोट—इस पद्य से शकुन्तला में लज्जा, संकोच, और गुरुओं के भय के कारण आत्म-समर्पण से विरत होना रूप अर्थ व्यंजित है।

टिप्पणी—पक्ष्माणि सन्ति अनयोः—इति पक्ष्मले। पक्ष्मले अक्षिणी मस्याः—ब० व्री०, यहाँ अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग और स्वभावोक्ति अलंकार है, और औपच्छन्दसिक छन्द है। 'पश्चात्ताप' नामक नाट्यालंकार है। कथम् उन्नमितं न चुम्बितं—से चुम्बन प्राप्त न होने से नायक गत अतिशय विषाद व्यंजित होता है।

क्व नु खलु संप्रति गच्छामि। अथवा, इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्तं स्थास्यामि। (सर्वतोऽवलोक्य)—

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ॥ २३ ॥

हिन्दी—अब कहाँ जाऊँ? अथवा यहीं, प्रिया के द्वारा सेवित तथा त्यक्त लता-कुञ्ज में क्षण भर रुकूँ (चारों ओर देखकर)

अन्वय—तस्याः शरीरलुलिता शिलायाम् इयं पुष्पमयी शय्या। (तस्याः) नखैः अर्पितः नलिनीपत्रे एष क्लान्तः मन्मथलेखः। (तस्याः) हस्ताद् भ्रष्टम् इदं बिसाभरणम्, इति आसज्यमानेक्षणः शून्यात् अपि वेतसगृहात् सहसा निर्गन्तुं न शक्नोमि।

हिन्दी—उस शकुन्तला के शरीर से विमर्दित (मसले गये) प्रस्तर खण्ड पर यह पुष्पों की बनी शय्या है, नखों से लिखा गया कमलिनी के पत्ते पर यह मुरझाया हुआ प्रेम-पत्र है। हाथ से गिरा हुआ यह कमलनाल का आभूषण है, इस प्रकार संसक्त दृष्टि वाला (मैं दुष्यन्त) सहसा वेतस-गृह से निकलने में असमर्थ हूँ।

संस्कृत व्याख्या—तस्याः—शकुन्तलायाः, शरीरलुलिता—शरीर मर्दिता, शिलायां—प्रस्तर पट्टे, इयं—एषा, पुष्पमयी—कुसुमरचिता, शय्या—शयनीयं, नखैः—तस्याः करंजैः, अर्पितः—उल्लिखितः, नलिनीपत्रे—कमलिनी दले, क्लान्तः—म्लानः, मलिनः, मन्मथलेखः—प्रेम पत्रं, करात्—हस्तात्, भ्रष्टं—पतितं, इयम्—एतद्, विसाभरणं—मृणालवलयम्, आसज्यमानेक्षणः—आसक्ते, ईक्षणेयस्य सः राजा, शून्याद—प्रियाविरहितामपि—वेतसगृहात्—वातीरकुञ्जात्, सहसा—अकस्मात्, निर्गन्तुं—बहिर्गन्तुम्, न शक्नोमि—समर्थोऽस्मि। अत्र काव्यलिंग, विभावना विशेषोक्ति श्चालंकाराः शार्दूलविक्रीड़ित छन्द।

नोट—यहाँ 'पुष्प' नामक प्रतिमुख सन्धि का अङ्ग है। पुष्पं वाच्यं विशेषवत् तनिक। यहाँ महाकवि कालिदास ने राजा के प्यासे नेत्र तथा खिन्न मन का अद्‌भुत वर्णन किया है, जो उनकी उच्चकोटि की काव्य-कला का अभिव्यंजक है।

टिप्पणी—पूर्वं परिभुक्तं पश्चात् मुक्तं (तस्मिन्—तत्पु०) (१) वेतसगृह में प्रिया न रहने पर भी रुकने के कारण विभावना है, (२) वेतसगृह के शून्य होने पर भी छोड़ कर न जा सकना—अतः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेषोक्ति अलं०, (३) वेतसगृह से न निकलने का कारण आसज्जमान दृष्टि: अत: शार्दूलविक्रीड़ित छन्द। (४) इसमें नायक का नायिका के प्रति अतिशय प्रीति, उत्कण्ठा एवं लालसा के भाव व्यंजित है। शरीर लुलिता, (५) इसमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है—जिसके प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण और २ तगण हों तथा अन्त में एक गुरु हो, ७ (अश्व), १२ (सूर्य) अक्षरों पर विश्राम हो। ''सूर्याश्वैर्मसेजस्तता: सगुख शार्दूलविक्रीड़ितम्''— शरीरलुलिता—crushed by her body, पुष्पमयीशय्या—her flowery couch, क्लान्त मन्वमथलेख: faded love-letter, नखैरर्पित incised with nails, विसाभरणं—Here is a lotus stalk as an ornament, आसज्यमानेक्षणो—My eys have been rivetted on several objects of love.—Kale.

(आकाशे) राजन्,

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदिं हुताशनवतीं परित: प्रयस्ता ।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधाना:
सन्ध्यापयोदकपिशा: पिशिताशनानाम् ॥ २४॥

अन्वय—सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते हुताशनवर्ती वेदिं परित: प्रयस्ता: सन्ध्यापयोदकपिशा: भयम् आदधाना: पिशिताशनानां छाया: बहुधा चरन्ति।

हिन्दी—(आकाश में) हे राजन्! सायंकालीन यज्ञादि कर्म में प्रवृत्त होने पर, अग्नियुक्त वेदी के चारों ओर फैले हुए सायंकालीन बादलों की तरह भूरे रंग वाले, भय प्रदान करने वाले मांस भक्षी—अर्थात् राक्षसों की छाया अनेक प्रकार से भ्रमण कर रही है।

संस्कृत व्याख्या—सायन्तने—सायंकालिके यज्ञकर्मणि, सम्प्रवृत्ते—प्रारब्धे, हुताशनवर्ती—वैश्वानरवर्ती, वेदिम्—यज्ञवेदिम्, परित:—अभित:, प्रयस्ता:—व्याप्ता:, सन्ध्यापयो—सन्ध्याकालिक मेघ वर्णा:, भयं-भीतिम्, आदधाना:—कुर्वाणा:, पिशिताशनानां—राक्षसानाम्, छाया:—प्रतिबिम्बानि, बहुधा—अनेकश:, चरन्ति—भ्रमन्ति।

टिप्पणी—सायन्तने—सायं + ट्यु (अन) बीच में 'त्' का आगम, सम्प्रवृत्ते—सम् + प्र + वृत् + क्त सप्त० ए० व०, हुतं अशनं यस्या:—ब० व्री०, पिशितमं अशनं येषां ते—ब० व्री० आ + धा + शानच्। (१) श, स, व वर्णों के अनेक बार आवृत्त होने से अनुप्रास अलंकार, (२) सन्ध्या पयोद कपिश में—उपमालंकार, (३) बिखरे होने के कारण भय प्रदान करते हैं अत: काव्यलिंग अलंकार। (४) यहाँ भयानक रस है, छायावलोकन विभाव, भय स्थायी भाव, (५) वसन्ततिलका छन्द। सवनकर्मणि प्रवृत्ते—Vesper-sacrifices being commenced. पिशिताशनानां—flesh-eaters, परित: प्रयस्ता:—scattered round the altar on which fire is kindled.—Kale.

राजा—अयमहमागच्छामि। (इति निष्क्रान्त:।)

हिन्दी—राजा—यह मैं आ रहा हूँ।

टिप्पणी—राजा की उक्ति से राजा का नायक एवं धीरोदात्त होना सूचित है। यहाँ त्रोटक नामक गर्भ सन्धि का अंग है। त्रोटक नाम पुन: संरब्धवाक्—सा० द०

(इति तृतीयोऽङ्क:)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।)

(तब पुष्प चयन का अभिनय करती हुई दोनों सखियाँ प्रवेश करती हैं।

अनसूया—हला[1] प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्। (हला पिअंवदे; जइ वि गन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्दला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं। तह वि एतिअं चिन्तणिज्जं।)

हिन्दी—अनसूया—सखी प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्व विधि से विवाहित होकर, कल्याण सम्पन्न करके शकुन्तला ने अपने अनुकूल पति को पा लिया है, इससे मेरा मन प्रसन्न है तथापि इतना विचारणीय है।

प्रियंवदा—कथमिव। (कहं विअ।)

हिन्दी—प्रियंवदा—वह क्या?

टिप्पणी—शकुन्तला की सखियाँ अनसूया एवं प्रियंवदा शकुन्तला के सौभाग्य लक्ष्मी के पूजन के लिए पुष्प चयन करने बाहर निकली हैं। शकुन्तला अपने प्रिय की स्मृति में कुटी में अन्यमनस्क होकर बैठी है। दुर्वासा ऋषि के उपस्थित होने पर स्वागत के स्थान पर उपेक्षा पाकर वे शकुन्तला को प्रिय द्वारा तिरस्कृत होने का शाप देते हैं। सखियाँ सुनकर घबड़ाती हैं और अनसूया ऋषि को मनाने चल पड़ती है तथा विनम्र निवेदन में वह सफल होती है। यहाँ 'हस्तादाने चेरस्तेये' सूत्र से अवचाय शुद्ध रूप है। रा० भ० ने 'अवचय' का प्रयोग शुद्ध माना, कालिदास ने दोनों रूपों को गृहीत किया है। निर्वृत कल्याणं यस्या सा—ब० व्री०, इस चतुर्थ अङ्क में करुण रस प्रधान, शृंगार रस गौण है, निर्वृत कल्याणा—Who has become happy by her love marriage—Kale. सा० द० के अनुसार चतुर्थ अङ्क से सप्तम अङ्क तक विमर्श सन्धि है—उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव च। पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भः परिकीर्तितः॥

अनसूया—अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति। (अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वृत्तन्तं सुमरदि वा ण वेति।)

हिन्दी—अनसूया—आज वह राजर्षि यज्ञ को समाप्त कर ऋषियों द्वारा विदा होकर अपने राजधानी में प्रवेश करके अन्तःपुर में मिल गये हैं। वे यहाँ घटी घटना को स्मरण करते है या नहीं।

प्रियंवदा—विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं

---

१. हला—इ[illegible]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रतिपत्स्यत इति। (वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअ अ आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति।)

हिन्दी—प्रियंवदा—विश्वास रक्खो। उस प्रकार की (दुष्यन्त जैसी) विशेष आकृतियाँ गुणविहीन नहीं होतीं। परन्तु पिता कण्व इस समाचार को सुनकर, समझ में नहीं आता कि क्या समझेंगे?

टिप्पणी—(१) प्रायो विरुपासु भवन्ति दोषाः यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति-वाराह मिहिर (वृहत्संहिता), (२) मागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु। न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्॥—मालविका०, (३) आकृति मनु गृहणन्ति गुणाः—दशकु०, (४) यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति, यत्राकारस्ततो गुणाः।—अग्नि पुराण

अनसूया की दृष्टि में दुष्यन्त उसकी सखी का प्रिय तो है परन्तु वह विलासी, राजा एवं कामुक है, अतः वह दुष्यन्त के प्रति संशयग्रस्त है। प्रियंवदा की दृष्टि में राजा विश्वस्त प्रेमी, श्रेष्ठ गुणों वाला एवं श्लाघ्य राजर्षि है अतः वह दुष्यन्त के प्रति विश्वस्त है। रा० भ० के अनुसार यहाँ ४ से ५ अङ्क तक इति यथोक्तं करोति पर्यन्त गर्भसन्धि है। इसमें पताकास्थानक, अर्थ प्रकृति और प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है।

अनसूया—यथाऽहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्। (जह अहं देक्खामि, तह तस्स अणुमदं भवे।)

हिन्दी—अनसूया—जैसा मैं समझती हूँ, वैसा तो उन्हें स्वीकृत ही होगा।

प्रियंवदा—कथमिव? (कहं विअ)

हिन्दी—प्रियंवदा—वह कैसे?

अनसूया—गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः। (गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो।)

हिन्दी—गुणवान् व्यक्ति को कन्या प्रदान करनी चाहिए, यह मुख्य धारणा है। उसे यदि भाग्य (दैव) बिना परिश्रम के सम्पन्न कर दे, तो गुरुजन बिना परिश्रम के ही सफल मनोरथ हो गये।

प्रियंवदा—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि। (सहि, अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(पुष्पपात्र को देखकर) हे सखि! पूजा कार्य के लिए हमने पर्याप्त पुष्प चुन लिये हैं।

अनसूया—ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया। (णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआ अच्चणीआ।)

हिन्दी—अनसूया—परन्तु शकुन्तला को सौभाग्य देवता की भी पूजा करनी है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रियंवदा—युज्यते। (जुज्जदि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—पूजा उचित है।

(इति तदेव कर्माभिनयतः[१]।)

(पुनः उसी कार्य (पुष्प-चयन) का अभिनय करती हैं।)

नेपथ्ये

(नेपथ्य में)

अयमहं भोः।

अरे यह मैं हूँ।

टिप्पणी—सौभाग्यदेवता—कुछ टीकाकार इसका अर्थ पति देवता तथा कुछ गौरी करते हैं।

अनसूया—(कर्णं दत्त्वा) सखि, अतिथीनामिव निवेदितम्। (सहि, अदिधीणं विअ णिवेदिदं।)

हिन्दी—अनसूया—(कान लगाकर) हे सखी, किसी अतिथि का निवेदन (पुकार) है।

प्रियंवदा—ननूटजसंनिहिता शकुन्तला। (णं उडजसण्णिहिदा सउन्दला।)

हिन्दी—प्रियंवदा—निश्चित ही शकुन्तला कुटी में उपस्थित है।

अनसूया—अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता[२]। अलमेतावद्भिः कुसुमैः। (अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं।)

हिन्दी—अनसूया—किन्तु आज वह हृदय से उपस्थित नहीं है, अतः इतने ही पुष्प रहने दो।

(इति प्रस्थिते)

(यह कहकर दोनों प्रस्थान करती हैं।)

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

आः, अतिथिपरिभाविनि

अरे, अतिथि का तिरस्कार करने वाली You, affrontier of a guest—Kale.

टिप्पणी—मनु ने अतिथि-सम्मान निम्न प्रकार किया है—अतिथि उपस्थित होने पर आसन, उदक, अन्न यथाशक्ति विधिपूर्वक सम्मान के साथ उसे प्रदान करना चाहिए—अन्नं चैव यथाशक्ति, संस्कृत्य विधिपूर्वकम्—म० स्मृ०।

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥ १ ॥

---

१. कर्मारभेते—(काम करती हैं)—नि० सा० २. संनिहिता—पाठ नहीं—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—अनन्यमानसा यं विचिन्तयन्ती उपस्थितं तपोधनं मां न वेत्सि, स प्रमत्तः प्रथमं कृतां कथाम् इव बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति।

हिन्दी—एकाग्रचित्त होकर, जिसके विषय में स्मरण करती हुई तू आए हुए मुझ तपस्वी (दुर्वासा) को नहीं जान रही है, किसी उन्मत्त पुरुष की भाँति पहले कही गई बात के समान स्मरण दिलाने पर भी वह तुझको स्मरण नहीं करेगा।

संस्कृत व्याख्या— अनन्य मानसा—एकाग्रचित्ता, यं जनं—दुष्यन्तं, विचिन्तयन्ती—स्मरन्ती, उपस्थित—समागतं, तपोधनं—तपस्विनं, मां—दुर्वाससं, न वेत्सि—जानासि, सः—दुष्यन्तः, प्रमत्तः—उन्मत्तः, प्रथमं—स्वयमेव, कृतां—विहितां, कथाम्—वार्तामिव, बोधितोऽपि—स्मारितोऽपि सन्, त्वां—शकुन्तलां, न स्मरिष्यति—स्मरणं करिष्यति। अत्रोपमा, काव्यलिंग, श्लेषश्चालंकाराः, वंशस्थ वृत्तम्॥

टिप्पणी—आःस्यात् कोपपीडयोः—अम०, क्रोधसूचक अव्यय, वि + चिन्त् + णिच् + शतृ + डीप्, न अन्यत् अवलम्बनं यस्याः—ब० व्री०, (१) यहाँ पूर्वार्द्ध—विस्मरण शाप का हेतु है अतः काव्यलिंग, (२) श्लोक का विशेषण पद अर्थ युक्त होने से परिकर अलं०, (३) दुष्यन्त की प्रमन्त (पागल) से तुलना करने के कारण उपमालंकार है। (४) वंशस्थ छन्द। दुर्वासा के शाप को संस्कृत नाट्य सिद्धान्त के अनुसार रंगमंच पर प्रस्यक्षतः दिखाया नहीं गया क्योंकि विवाह, भोजन, शापोत्सर्ग, मृत्यु, रति आदि कार्य नाटक में प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित नहीं करना चाहिए—'विवाहो-भोजनं शापोत्सर्गो. मृत्युं रतिं तथा'। जैसे अग्नि बिना विवेक के कोमल तथा कठोर सभी वस्तुओं को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही दुर्वासा का शाप शकुन्तला को अभिशप्त कर देता है। नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार शाप का वर्णन केवल विष्कम्भक में हो सकता है। साहित्य-दर्पण के अनुसार यहाँ विमर्श सन्धि है। शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः।

प्रियंवदा—हा धिक्[1], हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासा सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः (हद्धी, हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला। ण हु जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ वेअबलुब्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो।)

हिन्दी—प्रियंवदा—हाय, हाय अनर्थ हो गया। किसी पूजनीय व्यक्ति के प्रति, शून्य हृदय वाली शकुन्तला के द्वारा अपराध हो गया। (सामने देखकर) किसी ऐसे वैसे व्यक्ति के प्रति नहीं। यह तो सहज क्रोधी महर्षि दुर्वासा हैं। इस प्रकार शाप देकर प्रबल वेग से अनिवार्य गति से (महर्षि) लौटे जा रहे हैं। It has betided—अनर्थ हो गया।

अनसूया—कोऽन्यो[2] हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि। (को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकप्पेमि।)

---

१. हा धिक्—यह पाठ नही है—नि० सा०

२. कोऽन्य—प्रभवति—पाठ नहीं—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—अनसूया—अग्नि के अतिरिक्त दूसरा कौन ज़ला सकता है। जाओ, पैरों पर गिरकर इनको लौटा लो, मैं तब तक अर्घ तथा जल तैयार कर रही हूँ। While I get ready material for an offering to him—Kale.

नोट—कोऽन्यो .... प्रभवति अर्थात् जैसे जलाने का स्वभाव अग्नि का है वैसे सरलता से शाप देने का स्वभाव दुर्वासा का है, जो कोमल हृदया शकुन्तला को शाप देकर चले जा रहे हैं। यहाँ महाकवि ने दुर्वासा के क्रोध करने तथा शाप देने की प्रकृति की समीक्षा की है।

प्रियंवदा—तथा। (तह।)

हिन्दी—प्रियंवदा—अच्छा।

(इति निष्क्रान्ता।)

(ऐसा कहकर निकल गई)

अनसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्। (अम्मो, आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्टं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं।) **(इति पुष्पोच्चयं रूपयति।)**

हिन्दी—अनसूया—(कुछ चलकर लड़खड़ाने का अभिनय करके) अहो गिरती पड़ती चाल के कारण मेरे हाथ के अग्रभाग से कुसुमपात्र गिर गया है। (ऐसा कहकर फूलों को उठाने का अभिनय करती है।)

नोट—सुलभः कोपः यस्य—ब० व्री०, सुखेन लभ्यते इति सुलभः सुलभ् + खल् अति रोषणः प्रकृत्या-हर्ष चरित

प्रविश्य

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा—सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णातिष किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः। (सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।)

हिन्दी—प्रियंवदा—सखी, स्वभाव से ही टेढ़े वे भला किसकी प्रार्थना मानते हैं। तथापि (फिर भी) मैंने उन्हें कुछ दयालु बना लिया।

अनसूया—(सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय। (तस्सिं बहु एदं पि। कहेहि।)

हिन्दी—अनसूया—उनमें इतना भी बहुत है। बताओ क्या बात हुई ?

प्रियंवदा—यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति। (जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पढम त्ति पेकिखअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—प्रियंवदा—जब वे लौटने को इच्छुक नहीं हुए, तब मैंने निवेदन किया, भगवन् तप के प्रभाव को न समझने वाली पुत्रियों का यह प्रथम एक अपराध है। अत: आप क्षमा कर दीजिए।

अनसूया—ततस्ततः (तदो तदो)।

हिन्दी—अनसूया—तब क्या हुआ ?

प्रियंवदा—ततो[1] न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः। (तदो ण मे वअणं अण्णहाभविदुं अरिहदि, किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो एव्व अन्तरिहिदो।)

हिन्दी—प्रियंवदा—तब 'मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता। किन्तु परिचय के अलंकार को दिखाने से शाप निवृत्त हो जायेगा', ऐसा कहते हुए ही अन्तर्ध्यान हो गये।

अनसूया—शक्यमिदानीमाश्वसितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति। (सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअं सुमरणीयं त्ति सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोवाआ सउन्दला भविस्सदि।)

हिन्दी—अनसूया—अब आश्वस्त हुआ जा सकता है। उस राजर्षि ने प्रस्थान करते समय अपने नाम (दुष्यन्त) से अंकित अँगूठी स्मृति-चिह्न के रूप से (शकुन्तला की अँगुली में) स्वयं पहनाई है। उससे शकुन्तला स्वतन्त्र उपाय वाली होगी।

प्रियंवदा—सखि, एहि। देवकार्यं तावद् निवर्तयावः[2]। (सहि, एहि। देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह।) **(इति परिक्रामतः।)**

हिन्दी—प्रियंवदा— सखी आओ, तब तक देव-पूजन का कार्य सम्पन्न कर लें। (दोनों चारों ओर घूमती हैं।)

प्रियंवदा—(विलोक्य) अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्। (अणसूए, पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही। भत्तुगदाए चिन्ताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअन्तुअं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(देखकर) अनसूए, देखो तो हमारी प्रियसखी अपने बाँये हाथ पर मुख रखे हुए चित्र में खिंची की भाँति स्थित हैं। स्वामी के चिन्तन में मग्न अपने आप को भी नहीं समझ पा रही है तो फिर अतिथि को कैसे समझेगी ?

---

१. ततो—नि० सा०—मे र्नाहति। २. तावदस्याः (तो इसका) —काले

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनसूए—प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी। (पिअंवदे, दुवेणं एव्व णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खिदव्वा क्खु पकिदिपेलवा पिअसही।)

हिन्दी—हे प्रियम्वदे! दुर्वासा का यह शाप-वृत्तान्त हम दोनों तक ही सीमित रहे। (तीसरा न जान पाये) स्वभाव से ही कोमल प्रियसखी की रक्षा होनी चाहिए।

प्रियंवदा—को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति। (को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि।)

(इत्युभे निष्क्रान्ते।)

विष्कम्भकः

हिन्दी—प्रियंवदा—वह कौन है, जो उष्ण जल से नवमालिका को सींचेगा।

(यह कहकर दोनों निकल गईं)

विष्कम्भक समाप्त।

नोट—वामहस्तो—स्त्रियों का बायें हाथ पर मुख रखना अर्थात् चिन्तित होना प्रायः साहित्य में वर्णित है—दे० मेघदूत—२/२४। तृतीय अङ्क के प्रारम्भ की भाँति यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है क्योंकि सभी पात्र मध्यम वर्ग के हैं, स्त्रियाँ प्राकृत बोलती हैं। शकुन्तला से शाप न बताना अभूताहरण नामक विमर्श सन्धि का अंग है। तत्र व्याजाश्रमं वाक्यम अभूताहरणं मतम्—सा० द०। 'को नाम……सिञ्चति' में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। **नवमालिकाम्**—कालिदास ने इस शब्द से सुकुमारता, सुकोमलता तथा सुन्दरता का अर्थ व्यंजित किया है। कालिदास ने यहाँ प्रतीकात्मक शैली द्वारा शकुन्तला को नवमालिका तथा शाप को उष्ण जल वर्णित करके अर्थ की चारुता बढ़ा दी है। यहाँ जिज्ञासा है कि महाकवि ने शकुन्तला को शाप की घटना से अनभिज्ञ क्यों रक्खा? क्योंकि नाटकीय घटना के विकास एवं आकर्षण के लिए ही शकुन्तला को अनभिज्ञ रखना आवश्यक था। इससे अन्त तक पाठकों की सहानुभूति बनी रहती है।

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः।)

(इसके अनन्तर सोकर उठे हुए शिष्य का प्रवेश होता है।)

शिष्यः—वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त, प्रभातम्। तथाहि—

हिन्दी—शिष्य—प्रवास (सोमतीर्थ) से लौटे हुए आदरणीय कण्व ने मुझे समय का ज्ञान करने के लिए आदेश दिया है। प्रकाश निकल आया है, तो देखता हूँ कि रात कितनी बाकी है? (घूमकर, देखकर) ओह! प्रभातकाल हो गया है। क्योंकि—

नोट—शिष्य को अपने देर तक सोने के कारण खेद है। वह सोच रहा है कि सबेरा हो गया है।

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तेजोद्वयस्य　युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको　नियम्यत　इवात्मदशान्तरेषु ॥ २ ॥

अन्वय—एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरुणपुरःसरः अर्कः आविष्कृतः। लोकः तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्याम आत्मदशान्तरेषु नियम्यते इव।

हिन्दी—एक ओर वनस्पतियों का स्वामी अर्थात चन्द्रमा अस्त हो रहा है, दूसरी ओर अरुण (सूर्य का सारथि) को आगे करके सूर्य प्रकट हो रहा है। संसार दो तेजस्वियों के अस्त एवं उदय होने से मानो अपने दशा विशेषों (सुख दुःख स्वरूप) में नियंत्रित हो रहा है।

संस्कृत व्याख्या—एकतः—पश्चिमाकाशे, ओषधीनां—वनस्पतीनां पतिः--ईश्वरः चन्द्रः अस्तं याति—अस्ताचलं गच्छति, एकतः—पूर्वस्यां दिशि, अरुणपुरः सरः अरुण सारथिः सूर्यः आविष्कृतः—उदितो भवति, लोकः—जनः, संसारः, तेजोद्वयस्य—चन्द्रसूर्ययोः, युगपद्०—एकदा, व्यसनोदयाभ्यां—अस्तोदयाभ्यां, आत्मदशातषु—सुखदुःख स्वदशाविशेषेषु, नियम्यते—शिष्यते इव।

नोट—ओषधीनां पतिः—ओषः पाकः दीप्तिः वा धीयते इति ओषधिः ओष + धा + कि, इन्हें रोगनाशक कहा गया है। चन्द्रमा को इन ओषधियों का स्वामी कहा गया है। सोम ओषधीनां पतिः—वेद, ओषधीशो निशापतिः अम० चन्द्रमा की किरणें ओषधियों को बढ़ाती हैं परन्तु विपरीत समय आने पर यह ओषधीश भी अस्त हो जाता है अर्थात् अपनी रक्षा नहीं कर पाता। अर्घ—अर्च्यते इति अर्घः, अर्घ + घञ् 'अर्कोऽर्षे वर्णे स्फार्टके रवौ' ताम्रे दिवस्यतौ—मेदिनी। अरुणपुरः सरः गरुण का आग्रज, अरुण पैरों का लँगड़ा एवं सूर्य का सारथि है। इसे आगे करके ही सूर्य उदित होता है जिस तरह जब चन्द्रमा अस्त होता है तो सूर्य निकलता है उसी तरह संसार के प्राणियों को भी कभी सुख, कभी दुःख आदि विभिन्न अनुभूतियाँ होती हैं। यह संसार परिवर्तित होता रहता है, परन्तु विवेकी पुरुष इनसे प्रभावित नहीं होता।

विशेष—इनमें महाकवि ने संसार की परिवर्तन शीलता एवं मानव के भाग्य की नियम बद्धता का वर्णन शिष्य द्वारा समुपस्थापित किया है। कवि ने प्रस्तुत पद्य में प्रभात कालीन प्रवृत्ति-वर्णन के माध्यम से जीवन के चिर सत्य को उद्घाटित कियाहै। अर्थात् दुष्यन्त और शकुन्तला का जो अनुराग और दाम्पत्य कभी सुखमय था वह अब दयनीय दशा को प्राप्त करने वाला है। (१) यहाँ चन्द्र एवं सूर्य में दो जनों के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति, (२) 'इव' पद से उत्प्रेक्षा अलंकार, (३) चन्द्र एवं सूर्य प्रस्तुत हैं अत तुल्ययोगितालंकार, (४) चन्द्र-सूर्य का व्यसन एवं उदय से सम्बन्ध होने के कारण यथासंख्य अलंकार (५) यहाँ अपने पक्ष की सिद्धि के लिए उदाहरण देने से दृष्टान्त अलंकार, (५) वसन्ततिलका छन्द।

अपि च—

हिन्दी—और भी

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि　नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ ३ ॥

अन्वय—शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीयशोभा (सती) मे दृष्टिं न नन्दयति। नूनम् अबलाजनस्य इष्टप्रवासजनितानि दुःखानि अति-मात्रसुदुःसहानि।

हिन्दी—चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वही मनोहर कुमुदिनी अब चिन्तन योग्य शोभा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाली होकर मेरे नेत्रों को आनन्दित नहीं कर रही है। निश्चय ही नारियों को प्रिय प्रवास जन्यं दु:ख अत्यधिक दु:सह होते हैं।

संस्कृत व्याख्या—शशिनि—चन्द्रे, अन्तर्हिते—अस्तं गते सति, सा एव—प्रसिद्धा कुमुदिनी, संस्मरणीयशोभा—नष्टकान्तिः मे दृष्टिं, न नन्दयति—मम लोचनं न हर्षयति, नूनम्—निश्चितम्, अबलाजनस्य—प्रमदाजनस्य, इष्ट प्रवास०—स्वप्रियवियोगसमुद्भूतानि दुःखानि-कष्टानि, अत्यधिकं दुःसहानि भवन्ति।

नोट—यहाँ ड्रामटिक आइरनी है अर्थात् शकुन्तला को भविष्य में अपने प्रिय दुष्यन्त के साथ वियोग अधिक कष्टप्रद होगा। यहाँ सुदुःसह के साथ अतिमात्र प्रयोग अशुद्ध है परन्तु कवि ने विशेष बल के लिए अतिमात्र शब्द प्रयुक्त किया है।

अतिमात्र लोहिततलौ, तन्मातिमात्रमुत्कण्ठस्य, नास्ति बलं यस्यां सा अबला, अबला चासौ जनः—कर्मधा० (१) प्रस्तुत पद्य में चन्द्रमा एवं कुमुदिनी पर नायक-नायिका के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार, (२) उत्तरार्द्ध में सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, (३) संस्मरणीय शोभा दृष्टि का आनन्दित न होने देने का कारण होने से काव्यलिंग अलं०, (४) वसन्ततिलका छन्द, (५) समासोक्ति में प्रयुक्त, तृतीय पताकास्थानक है—सा० द० देखें। **प्रविश्यापटीक्षेपेण**—(पर्दा थोड़ा हटाकर प्रवेश करके)—With a toss of curtain.

अनसूया—यद्यपि नाम विषयपराङमुखस्य जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राजा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। (जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं।)

हिन्दी—अनसूया—यद्यपि विषयों से विमुख व्यक्ति को यह सब (भोगों के प्रति विचारों का ज्ञान) नहीं होता, तथापि (मैं समझती हूँ) उस राजा ने शकुन्तला के प्रति अनुचित आचरण किया है।

शिष्यः—यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः)

हिन्दी—शिष्य—हवन का समय उपस्थित है, यह बात गुरु को सूचित करता हूँ। (प्रस्थान)

नोट—अपटी-पर्दा, अपटीकाण्ड-टीका प्रतिसीरा यवनिका तिरस्कारिणी-हलायुधः।

अनसूया—प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि[1]। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु, येनासत्यसन्धे जने शुद्धहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य

१. करिष्ये—नि० सा० पाठः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्। (पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरन्ति। कामो दाणिं सकामो होदु, जेण असच्चसंधे जणे सुद्धहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससो सावो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि मन्तिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं पि ण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अङ्गुलीअअं तस्स विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्यवसिदा वि ण पारेमि पवासपडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं सउन्दलं णिवेदिदुं। इत्थंगदे अम्हेहिं किं करणिज्जं।)

हिन्दी—अनसूया—जागकर भी क्या करूँगी। करने योग्य दैनिक कार्यों में हाथ-पैर नहीं फैल रहे हैं। इस समय कामदेव सफल हो। जिसने असत्य प्रतिज्ञ दुष्यन्त में निर्मल[1] हृदयवाली शकुन्तला से प्रेम करवाया। अथवा दुर्वासा ऋषि का शाप ही यह विकार पैदा कर रहा है। नहीं तो वह राजर्षि उस तरह की मधुर बातें करके भी इतने समय तक एक पत्र भी न भेजता। तो यहाँ से परिचयात्मक यह मुद्रिका उस (दुष्यन्त) के पास भेज दें। कष्ट सहने वाले तपस्वियों में किससे प्रार्थना की जाय। हमारी सखी पर ही दोष आयेगा। इस तरह निश्चय करने पर भी मैं प्रवास से लौटे पूज्य कण्व से यह बात बताने में असमर्थ हूँ कि गान्धर्व रीति से शकुन्तला दुष्यन्त के साथ विवाहित एवं गर्भिणी है, ऐसी दशा में हम क्या करें।

प्रविश्य

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा-(सहर्षम्) सखि, त्वरस्व त्वरस्व[2] शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्। (सहि, तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थानकोदुअं णिव्वत्तिदुं।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(हर्ष के साथ) हे सखी, (अनसूया) शकुन्तला के प्रस्थान के समय मांगलिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जल्दी करो। जल्दी करो।

अनसूया—सखि, कथमेतत्। (सहि, कहं एदं।)

हिन्दी—अनसूया—हे सखी, यह कैसे?

प्रियंवदा—शृणु। इदानीं सुखशयितप्रच्छिका[3] शकुन्तलासकाशं गताऽस्मि। (सुणाहि। दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—सुनो, अभी सुखपूर्वक सोई कि नहीं—यह पूछने के लिए शकुन्तला के समीप गई थी।

अनसूया—ततस्ततः (तदो[4] तदो)

---

१. निष्कपट   २. त्वरस्व (तुवर) पाठ नहीं है—नि० सा०

३. शयन—नि० सा०   ४. तदो तदो—पाठ नहीं है—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—अनसूया—तब क्या हुआ।

टिप्पणी—कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयो: विश्वः। प्रच्छिका—प्रच्छ + ण्वुल् + टाप्। If she had comfortable sleep—Kale.

प्रियंवदा—तावदेनां[1] लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति। (दाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्ससजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणन्दिदं। दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जासि संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।)

हिन्दी—प्रियंवदा—तब इस मुख नीचे की हुई शकुन्तला को पिता कण्व ने गले लगाकर इस तरह (उसका) अभिनन्दन किया (greeted her) भाग्य से, धूम से दृष्टि मलिन होने पर भी यजमान की आहुति अग्नि में पड़ी। हे बेटी। योग्य पात्र को प्रदान की गई विद्या के समान तुम चिन्ता के योग्य नहीं हो। आज ही तपस्वियों से तुम्हें (तुम्हारे) स्वामी (पति) के पास भेज रहा हूँ।

नोट—यहाँ महाकवि की प्रतीकात्मक शैली से कण्व-यजमान, दुष्यन्त-अग्नि, शकुन्तला-आहुति रूप से स्वीकृत किए गए हैं। प्रो० ए० बी० गदकर यहाँ उपमा न मानकर अतिशयोक्ति मानते हैं। वस्तुतः सुपात्र को पाकर विद्या गौरवशालिनी होती है—क्रिया हिवस्तूपहिता प्रसीदति—रघुवंश, अशोच्या हि पितुः कन्या सदभर्तृप्रतिपादिता—कु० स०। विद्या ब्राह्मणमेत्याह-शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्—(म० स्मृ०, २-११४) अशोच०—unnegretted. —Kale.

अनसूया—अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः। (अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तन्तो।)

हिन्दी—अनसूया—तो पिता कण्व को यह समाचार किसने दिया?

प्रियंवदा—अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या। (अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईए वाणिआए।)

हिन्दी—प्रियंवदा—यज्ञशाला में प्रविष्ट उन्हें, छन्दोमयी वाणी से सूचित किया।

अनसूया—(सविस्मयम्) कथमिव[2]। (कहं विअ।)

हिन्दी—अनसूया—(आश्चर्य के साथ) कैसे?

प्रियंवदा—(संस्कृतमाश्रित्य)

हिन्दी—प्रियंवदा—(संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥ ४॥

---

१. यावदेनां—[illegible] २. कथमिव—[illegible] नहीं है [illegible]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—ब्रह्मन्, दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भा शमीमिव अवेहि।

हिन्दी—हे ब्रह्मन्! दुष्यन्त द्वारा स्थापित तेज को पृथ्वी का कल्याण करने के लिए धारण करती हुई पुत्री (शकुन्तला) को अन्तस्थ अग्नि से युक्त शमी (सेमर) वृक्ष की तरह समझो।

संस्कृत व्याख्या—हे महर्षे, दुष्यन्तेन—राज्ञा, आहितं—निहितं, तेजः—वीर्यं, भुवः—पृथिव्याः, भूतये—अभ्युदयाय उन्नतये, दधानां—धारयन्तीं, तनयाम्—पुत्रीं शकुन्तलाम्, अग्निगर्भाम्—वह्निगर्भां, शमीम्-शमीवृक्षं, इव—सदृशं, अवेहि—जानीहि। अत्रोपमा, अनुप्रासः चालंकाराः। अनुष्टुप छन्दः।

नोट—शमीमिवाभ्यन्त पावकरम्—रघुवंश। आहितं—आ + धा + क्त तेजःवलो शुक्रेऽपि च—अम० देवों की प्रार्थना पर अग्नि ने शिव के वीर्य को धारण किया, किन्तु शिव तेज को सह न पाने के कारण अग्नि ने पहले पीपल में पुनः शमी वृक्ष में प्रवेश किया। दे० महाभारत आदि पर्व, तथा शल्य पर्व यहाँ वास्तविक बात के प्रकाशन से मार्ग नामक गर्भ सन्धि का अंग है—तत्त्वार्थ कथनं मार्गः—सा० द०। (२) त, ह आदि वर्णों की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलं०, (३) शकुन्तला की तुलना शमी वृक्ष से करने के कारण उपमालंकार, (४) आहितं तेजः—अतिशयोक्ति अलं०, (५) छन्द—अनुष्टुप छन्द, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति। (६) भुवो भूतये—इससे यह अर्थ व्यंजित है कि शकुन्तला का पुत्र सौभाग्यशाली होगा।

अनसूया—(प्रियंवदामाश्लिष्य) सखि, प्रियं मे। किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि। (सहि, पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउन्दला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं परितोसं, अणुहोमि।)

हिन्दी—अनसूया—(प्रियंवदा को गले लगाकर) हे सखी, मैं प्रसन्न हूँ। परन्तु आज ही शकुन्तला पति के गृह जा रही है इसलिए मैं संतोष के साथ व्याकुलता का अनुभव कर रही हूँ। glad—प्रसन्न, I am feeling joy intended with sorrow—Kale.

प्रियंवदा—सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु। (सहि, वअं दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु।)

हिन्दी—प्रियंवदा—हे सखी, हम दोनों अपनी व्याकुलता को मिटालेंगे, परन्तु वह (शकुन्तला) बेचारी किसी तरह सुखी हो।

अनसूया—तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके[१] एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै गोरोचनां[२] तीर्थमृत्तिका दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि। (तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालान्तरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसंणिहिदं करेहि। जाव अहंपि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआणि त्ति मंगलसमालंभणाणि विरएमि।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. नालिकेर—नि०, का०, २. मृगरोचना (मिअरोअणं) (गोरोचन)—नि० का०

हिन्दी—अनसूया—इसलिए मैंने इस आम्र वृक्ष की शाखा में लटके हुए नारियल के डिब्बे में इसी अवसर के लिए अधिक समय तक (स्थिर) रहने वाली बबुल (मौलसिरी) की माला रखी है, तो इसे अपने हाथ में धारण करो। तब तक मैं भी गोरोचन, तीर्थ की मिट्टी तथा दूब के अंकुर आदि मांगलिक सामग्रियाँ तैयार करती हूँ।

नोट—Casket of palm leaves नारियल समुद्गके, कालान्तर क्षमा—Capable of lasting for period of time: मयाक्षिप्ता—Which has been deposited by me for this occasion. समालम्भानि—आभूषण, समालम्भनमालेपे—तिलकेऽलंकतावपि इति प्रकाशः समुद्गकः सम्पुटकः इति अम०।

प्रियंवदा—तथा क्रियताम्। (तह करीअदु।) **(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति।)**

हिन्दी—प्रियंवदा—ऐसा ही करो। (अनसूया निकल जाती है और प्रियंवदा पुष्प-चयन का अभिनय करती है।)

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

गौतमि, आदिश्यन्तां शार्ङ्गरव[1]मिश्राः शकुन्तलानयनाय।

हिन्दी—गौतमी, शार्ङ्गरव आदि को शकुन्तला को (पति समीप) ले जाने के लिए आदेश दो।

प्रियंवदा—(कर्णं दत्त्वा) अनसूये, त्वरस्व[2] त्वरस्य। एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दाय्यन्ते[3]। (अणसूए, तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(कान लगाकर) अनसूया तुम जल्दी करो, जल्दी करो, ये हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि बुलाये जा रहे हैं।

नोट—हस्तिनापुर-महाभारत के अनुसार भरत के प्रपौत्र हस्ती के द्वार यह नगर बसाया गया था। कालिदास ने अपने समय में विद्यमान हस्तिनापुर को दुष्यन्त की राजधानी माना है। यह दिल्ली से ५६ मील उत्तर पूर्व गंगा नदी के किनारे है। मोनियर विलियम्स दिल्ली को हस्तिनापुर मानते हैं परन्तु दिल्ली को इन्द्रप्रस्थ कहते हैं और हस्तिनापुर दिल्ली से भी दूर है।

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

(मांगलिक सामग्री हाथ में लेकर प्रवेश करके)

अनसूया—सखि, एहि। गच्छावः (सहि, एहि। गच्छम्ह।) **(इति परिक्रामतः।)**

हिन्दी—अनसूया—सखी, आओ, चलें। (अनसूया और प्रियंवदा दोनों चारों ओर घूमती हैं।)

---

१. शार्ङ्गरव, शारद्वत, गौतम आदि महर्षि कण्व के शिष्य हैं।
२. त्वरस्व—पाठ नहीं है—नि० सा०
३. आकार्यन्ते—बुलाये जा रहे हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रियंवदा—(विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्। (एसा सुज्जोदए एव सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवअणिकाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्दला चिट्ठइ। उपसप्पम्ह णं।) **(इत्युपसर्पतः ।)**

नोट--शार्ङ्गरवमिश्राः—मिश्रः प्रशंसा वचने—प्रशंसा अर्थ में मिश्र शब्द प्रयुक्त है।

हिन्दी—प्रियंवदा—यह (शकुन्तला) सूर्योदय के समय ही शिर से स्नान करके हाथ में नीवार लिये हुए एवं स्वस्तिवाचन करने वाली तपस्विनियों से अभिनन्दित की जाती हुई बैठी है। हम दोनों इसके पास चलती हैं। (दोनों शकुन्तला के पास पहुँचती हैं।)

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला)

(तदनन्तर पूर्वकथित रूप में आसन पर बैठी शकुन्तला प्रवेश करती है।)

तापसीनामन्यतमा—(शकुन्तलां प्रति) जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व। (जादे, भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसद्दं लहेहि।)

हिन्दी—एक तपस्विनी—(शकुन्तला के प्रति) पुत्री, पति के अधिक आदर सूचक 'महारानी' पद को प्राप्त करो।

द्वितीया—वत्से, वीरप्रसविनी भव। (वच्छे, वीरप्पसविणी होहि।)

हिन्दी—दूसरी—बेटी, वीर पुत्र को जन्म देने वाली बनो।

तृतीया—वत्से, भर्तुर्बहुमता भव। (वच्छे, भत्तुणो बहुमदा होहि।) **(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः ।)**

हिन्दी—तीसरी—पुत्री स्वामी से बहुत सम्मान पाने वाली बनो। (आशिर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर सभी तपस्विनियाँ निकल गईं।)

सख्यौ—(उपसृत्य) सखि, सुखमज्जनं ते भवतु। (सहि, सुहमज्जणं दे होदु।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(पास जाकर) हे सखी, तुम्हारा यह स्नान सुखदायक हो।

शकुन्तला—स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्। (साअदं मे सहीणं। इदो णिसीदह।)

हिन्दी—शकुन्तला—मेरी सखियों का स्वागत है, इधर बैठो।

उभे—(मङ्गलपात्राण्यादाय। उपविश्य) हला, सज्जा भव। यावत्ते मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः। (हला, सज्जा होहि। जाव दे मङ्गलसमालम्भणं विरएम।)

हिन्दी—दोनों—(मंगलपात्र को लेकर तथा बैठकर) हे सखी! सज जाओ। तुम्हारी मंगलिक सजावट हम करती हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला—इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति। (इदं पि बहु मन्तव्वं। दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि।)

हिन्दी—शकुन्तला—इस मांगलिक सजावट को भी बहुत समझना चाहिए। अब सखियों द्वारा मेरा अलंकृत होना दुर्लभ हो जायेगा।

(इति बाष्पं विसृजति।)

(इस तरह कहकर आँसू बहाती है।)

उभे—सखि, उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्। (सहि, उइणं दे ण मङ्गलकाले रोइदुं।) **(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।)**

हिन्दी—दोनों सखियाँ—इस मंगलकाल में तुम्हारा रोना उचित नहीं। (इस तरह आँसू पोंछकर अलंकृत करने का अभिनय करती हैं।)

प्रियंवदा—आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते। (आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—आभूषणों के योग्य तुम्हारा यह रूप आश्रम सुलभ अलंकरणों से विकृत किया जा रहा है।

नोट—वि + प्र + कृ + णिय् लट् कर्मणि तिरस्कार करना, Your beauty is being disfigured or (marred) by the decoration available in hermitage.—Kale.

(प्रविश्योपायनहस्तत्रृषिकुमारकौ[१])

(हाथ में उपहार लेकर दो ऋषिकुमारों का प्रवेश)

उभौ—इदमलंकरणम्। अलंक्रियतामत्रभवती।

हिन्दी—दोनों—ये आभूषण हैं। इनसे आप देवी (शकुन्तला) को सजायें।

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः।)

(सभी देखकर आश्चर्य युक्त होती हैं।)

गौतमी—वत्स नारद, कुत एतत्। (वच्छ णारअ, कुदो एदं।)

हिन्दी—गौतमी—पुत्र नारद, यह कहाँ से।

प्रथमः—तातकाश्यपप्रभावात्।

हिन्दी—पहला—पिता कण्व के प्रभाव से ।

गौतमी—किं मानसी सिद्धिः। (किं माणसी सिद्धिः।)

हिन्दी—गौतमी—क्या यह मानसिक संकल्प का फल है ?

द्वितीयः—न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीम्—

---

१. ऋषिकुमारकौ—पाठ नहीं—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—दूसरा—नहीं सुनिये, पूज्य तात ने यह आज्ञा दी थी कि शकुन्तला के लिए वृक्षों से फूल लाओ। तब तो—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो[1] लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥ ५ ॥

अन्वय—नः केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित् चरणोपरागसुभगः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः आपर्वभागोत्थितैः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

हिन्दी—किसी वृक्ष ने हमें चन्द्रमा के समान श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया, किसी (वृक्ष) ने पैर को रंगने के योग्य अलक्तक रस (महावर) प्रकट किया। अन्यों ने मणिबन्ध तक उठे हुए, सुन्दर नवीन पल्लव की स्पर्धा करने वाले अपने करतलों से आभूषण प्रदान किये।

विशेष—यहाँ महाकवि ने वन देवताओं एवं वनस्पतियों का मानवीकरण किया है। चेतन प्रकृति और जड़ प्रकृति में कालिदास ने भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करके अपने प्रकृति वर्णनीयता को विशेष बनाया है। कालिदास की प्रकृति सर्वत्र जीवन्त है।

नोट—मंगल + व्यम्—किसलयांग उद्भेदाः—ष० तत्पु० (१) वनदेवता द्वारा शकुन्तला को आभूषण प्राप्ति उसके आजन्म अवैधन्य तथा अखण्ड सौभाग्य को अभिव्यंजित करता है। (२) यहाँ पूर्व सिद्ध अर्थ का कथन होने से निरुक्ति नामक नाट्यालंकार है—पूर्व सिद्धार्थ कथनं निरुक्तिरिति कीर्त्यते—(सा० द०) (३) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द, (४) इन्दु-पाण्डु तथा किसलय आदि पदों से लुप्तोपमालंकार है।

प्रियंवदा—(शकुन्तलां विलोक्य) हला, अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः। (हला, इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छि।)

हिन्दी—प्रियंवदा—(शकुन्तला को देखकर) सभी वनस्पतियों के इस आग्रह से, सूचित होता है कि तुम्हें पति के घर पर राजलक्ष्मी का सुख अनुभव होगा।

(शकुन्तला व्रीडां रूपयति।)

(शकुन्तला लज्जा का अनुभव करती है।)

प्रथमः—गौतम, एह्येहि। अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

हिन्दी—पहला—गौतम, आओ, आओ। स्नान करके निकले हुए कण्व से वनस्पतियों की सेवा को बतायें।

द्वितीयः—तथा। (इति निष्क्रान्तौ।)

हिन्दी—दूसरा—अच्छा। (दोनों शिष्य निकल गये।)

---

१. णोपभोग सुल... नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सख्यौ—अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः। (अए, अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु द आहरणविणिओअं करेम्ह।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—ओह, हम लोगों ने कभी आभूषण का उपयोग नहीं किया, फिर भी चित्रकर्म से परिचित होने के कारण हम दोनों (अनसूया एवं प्रियंवदा) तुम्हारे अवयवों में (हाथ, कानादि में) आभूषण पहनाती हैं।

शकुन्तला—जाने वां नैपुणम्। (जाणे वो णेउणं।)

हिन्दी—शकुन्तला—मैं तुम दोनों की निपुणता को जानती हूँ।

(उभे नाट्येनालंकुरुतः।)

(दोनों सजाने का अभिनय करती हैं।)

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः।)

(तब स्नान करके कण्व प्रवेश करते हैं।)

काश्यपः—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ६ ॥

अन्वय—अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयम् उत्कण्ठया संस्पृष्टम्, कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः, दर्शनं चिन्ताजडम्। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् ईदृशम् इदं वैक्लव्यम्, गृहिणः नवैः तनयाविश्लेषदुःखैः कथं नु पीड्यन्ते।

हिन्दी—आज शकुन्तला (पति-गृह) जायेगी, इसलिए हृदय दुःख से भर गया है, गला आँसुओं को बहने से रोकने के कारण रुँध गया है, दृष्टि चिन्ता के कारण जड़ (निश्चेष्ट) हो गई है। वन में निवास करने वाले मुझ (विरागी कण्व) को स्नेहभाव के कारण इस प्रकार की विह्वलता (दुःख) होती है तब गृहस्थ लोग पहली बार कन्या वियोग दुःख से पीड़ित क्यों न होते होंगे।

संस्कृत व्याख्या—अद्य-अस्मिन् दिने. शकुन्तला मदीया पालिता पुत्री, यास्यति—पतिगृहं गमिष्यति, इति—एतस्य हेतोः, हृदयं—मनः, उत्कण्ठया—दुःखेन, चिन्तया वा, संस्पृष्टम्—परिपूर्णम्, कण्ठः—गलः, अश्रुजल—व्यापारा वस्वच्छ, दर्शनम्—नेत्रम्, चिन्ताजडम्—चिन्तया निश्चेष्टम् तावत्, स्नेहात्—वात्सल्यात्, अरण्यनिवासिनः—वन निवासिनः, ईदृशम—एतादृशं, वैक्लव्यं—कातरत्वं, दुःखं, तदा गृहिणः—गृहस्थाः, नवैः—नूतनैः, तनया विश्लेषदुःखैः—वियोगकष्टैः कथं न पीड्यन्ते—विलप्यन्ते॥

विशेष—महाकवि कालिदास के प्रस्तुत पद्य में महर्षि कण्व के मुख से उच्चरित प्रत्येक शब्द स्नेह एवं करुणा भाव के अभिव्यंजक हैं।

नोट—(१) यास्यति—या + लृट् प्र० पु० ए० व० संस्पृष्टं— सम + स्पृश + क्त + टाप्, तृ० ए० व०, रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः॥ दर्शनम्—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दृश् + ल्युट्, विश्लेष— वि + श्लिष् + धञ्, तनयायाः विश्लेषः— प्र० तत्पु० अरण्ये ओकः यस्य सः—ब० व्री०, यहाँ करुणरस का वर्णन है—इसमें महर्षि कण्व का शोक स्थायी भाव, शकुन्तला प्रस्थान—आलम्बन, शकुन्तला के गुणादि का स्मरण-उद्दीपन, वाष्प, स्वर-भङ्गादि आदि अनुभाव, चिन्ता, विषादादि व्यभिचारी भाव हैं, कुछ टीकाकार यहाँ अद्भुत रस मानते हैं। (२) गृहस्थ में मुनि की अपेक्षा अधिक दुःख अनुभूति होने के कारण व्यतिरेक अलंकार, (३) गृहिणः कथं न पीडयन्ते— में अर्थापत्ति अलंकार, (४) अनेक क्रियाओं का संयोग समुच्चय होने से समुच्चय अलंकार, (५) कुछ यहाँ काव्यलिंग अलंकार मानते हैं—पीड़ित होने का कारण स्नेह है। (६) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द, (७) भाषा एवं भाव दोनों दृष्टियों से यह सुन्दर श्लोक है। यह परम मार्मिक एवं कारुणिक है। अभिज्ञान के ४ श्लोकों में यह सर्वाधिक सुन्दर है कालिदासस्य सर्वस्व मभिज्ञानशाकुन्तलम। शेष ३ श्लोक ये हैं— शुश्रुषस्व० (४/१८), अभिजनवतो० (४/१९), या अस्मान् साधु विचित्त्य (४/१७), भूत्वा चिराय० (४/२०) उत्कण्ठया संस्पृष्टम्—My heart is smiten with grief, कण्ठः स्तम्भितः throat is choked owing to flow of tears, दर्शनं जडम्—my sight is heavy through anxiety, गृहिणः पीड्यन्ते howmuch then house holders must be tormented by the fresh pangs of separation from their daughters—Kale.

सख्यौ—हला शकुन्तले, अवसितमण्डनाऽसि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (हला सउन्दले, अवसिदमण्डणासि। परिधेहि संपदं खोमजुअलं।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—सखी शकुन्तले! तुम्हारा प्रसाधन कार्य पूर्ण हो गया है। अब (इन) दो रेशमी वस्त्रों को पहनो।

(शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते।)

(शकुन्तला उठकर वस्त्र पहनती है।)

गौतमी—जाते, एष ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व। (जादे, एसो दे आणन्दपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरु उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स।)

हिन्दी—गौतमी—हे बेटी, आनन्द के आँसुओं को बहाने वाली अपनी दृष्टि से मानो तुम्हारा आलिंगन करते हुए तुम्हारे पिता (कण्व) उपस्थित हैं। शिष्टाचार का पालन करो।

शकुन्तला—(सव्रीडम्) तात, वन्दे। (ताद, वन्दामि।)

हिन्दी—शकुन्तला—(लज्जा के साथ) पिताजी मैं प्रणाम करती हूँ।

परिधत्स्व—Wear silken garments. आचारं प्रतिपद्यस्व—observe the usual formalty.—Kale.

काश्यपः—वत्से,—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥७॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—वत्से, शर्मिष्ठा ययातेः इव, भर्तुः बहुमता भव। सा पूरुम् इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि।

हिन्दी—जिस प्रकार शर्मिष्ठा ययाति (चंद्रवंशी राजा) को अत्यधिक प्रिय थी, वैसे ही तुम भी अपने पति की प्रिय बनो। उसने जिस प्रकार पुरु को प्राप्त किया था, वैसे ही तुम भी चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करो।

नोट—(१) यहाँ शकुन्तला की तुलना शर्मिष्ठा से होने के कारण उपमालंकार, (२) अनुष्टुप छन्द, (३) इष्ट की उपलब्धि के कारण यहाँ 'क्रम्' नाम गर्भ सन्धि का अंग है। (४) सम्राट् पुत्र की प्राप्ति का आशीर्वाद होने से यहाँ 'आशीः' नामक नाट्यालंकार है। ''येनेष्टम राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः। शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट्॥'' अम० सर्वेभ्यः क्षितिपालेभ्यो नित्यं गृहणाति वैकरम्। स सम्राडिति विज्ञेयश्चक्रवर्ती स एव हि॥—राजनीति रत्नाकर। (५) अनुष्टुप छन्द। मत्स्यपुराण, विष्णु पुराण एवं महाभारत (आदि पर्व) के अनुसार ययाति चंद्रवंशी राजा थे। उनकी शर्मिष्ठा एवं देवयानी दो पत्नियाँ थीं। शर्मिष्ठा देवयानी की सेविका थी। परन्तु उसके रूप पर मुग्ध होकर ययाति ने उसके साथ गान्धर्व विवाह किया। इस शर्मिष्ठा से पुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब देवयानी के पिता शुक्राचार्य ने ययाति को वृद्ध होने का शाप दिया तो उसने पिता का वृद्धत्व स्वयं ले लिया। इस प्रकार पुरु पुरुवंश का संस्थापक था। इसी तरह दुष्यन्त ने शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करके भरत नामक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया।

गौतमी—भगवन्, वरः खल्वेषः। नाशीः। (भअवं, वरो क्खु एसो। ण आसिसा।)

हिन्दी—गौतमी—भगवन्, यह तो वरदान है, केवल आशीर्वाद नहीं।

काश्यपः—वत्से, इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

हिन्दी—काश्यप—बेटी, इधर अभी हवन की गई अग्नियों की परिक्रमा करो। (सभी परिक्रमा करते हैं।)

काश्यपः—(ऋग्वेदछन्दसाऽऽशास्ते)

हिन्दी—काश्यप—(ऋग्वेद के छन्द से आशीर्वाद देते हैं।)

वत्से—

बेटी

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
र्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु॥८॥

अन्वय—अमी समिद्वन्तः, वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः, प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः वैतानाः वह्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः त्वां पावयन्तु।

हिन्दी—ये समिधाओं से युक्त वेदी के चारों ओर यथास्थान स्थापित क़िनारे पर बिछे हुए कुशों से युक्त यज्ञ की अग्नियाँ, हवन की सुगन्ध से पाप को विनष्ट करती हुई तुमको पवित्र करें।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नोट—(१) अप्राप्तवस्तु की याचना के लिए आशीर्वाद होता है या दूसरे की अभीष्ट वस्तु का आदेश देना (आशीः) कहा जाता है—अप्राप्त प्रार्थनामाशीः परस्येष्टार्थ संशनं वा—व्याकरण तंत्र। अग्नीन, ३ अग्नियों के नाम हैं—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण। कण्व ब्रह्मचारी थे। अतः अग्निहोत्र करने का विधान न होने से उनके लिए अग्नि का आधान करना आवश्यक नहीं। प्रदक्षिणी कुरुष्व प्रदक्षिण + च्वि + कृ + लोट्—यहाँ भोज के अनुसार समास का अनौचित्य है। क्लृप्तानि धिष्ण्यानि येषां—ब० व्री०, जिन्होंने विधिपूर्वक अग्नि स्थापित की है, 'धिष्णं स्थाने गृहे अग्नौ।' वितान + अण—वैतान, अपघ्नन्तः अप + हन् + शतृ—ष० ए० व०। सम् + तृ + क्त, विशेषणों के अभिप्राय युक्त होने से परिकर अलं०, (२) वैदिक त्रिष्टुप छन्द है—इसके प्रत्येक चरण में ११ वर्ण होते हैं, यह छन्द प्रथम, तृतीय चरण में वातोर्मि तथा प्रथम, द्वितीय चरण में शालिनी छन्द से मिश्रित उपजाति छन्द है, ऐसा कुछ लोगों का मत है। प्रान्तेषु संस्तीर्णाः कुशा येषां ते—ब० व्री०, यज्ञकुण्ड के चारों ओर पवित्रता हेतु कुश बिछाये जाते थे—दे०—याज्ञ० स्मृ० अ० ३, अपघ्नन्तः— संस्कृत साहित्य में आहुतियों के धुएँ पाप विनाशक माने जाते हैं—दे० रघुवंश-सर्ग १/१३, प्रस्तुत श्लोक मुनि के हवन कार्य द्वारा, अग्नि शक्ति व्यंजित करता है। प्रो० मोनियर विलियम्स के अनुसार इस पद्य पर ऋग्वेद (१/५९/५७) का प्रभाव है।

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः।

(अब तुम प्रस्थान करो। (इधर-उधर दृष्टि डालकर) वे शार्ङ्गरवमिश्र आदि कहाँ है?)

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

शिष्य—भगवन्, इमे स्मः।

हिन्दी—शिष्य—भगवन्, हम लोग ये हैं।

काश्यपः—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

हिन्दी—काश्यप—अपनी बहिन को मार्ग दिखाओ।

शार्ङ्गरवः—इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

हिन्दी—शार्ङ्गरव—आप इधर आइये। (सभी घूमते हैं।)

काश्यपः—भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः।

हिन्दी—काश्यप—हे समीपस्थ आश्रमवृक्षों,

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु वा
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ ९॥

अन्वय—युष्मासु अपीतेषु या प्रथमं जलं पातुं न व्यवस्यति, भवतां स्नेहेन या प्रियमण्डना अपि पल्लवं न आदत्ते। वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः उत्सवः भवति। सा इयं शकुन्तला पतिगृहं याति, सर्वैः अनुज्ञायताम्।

हिन्दी—तुम लोगों को बिना जल पिलाये (बिना जल सेचन किये) जो (शकुन्तला) जल नहीं पीती थी, तुम्हारे प्रेम के कारण जो आभूषण प्रिय होने पर भी पल्लव नहीं तोड़ती थी, तुम्हारे प्रथम पुष्प निकलने के समय जिसका उत्सव होता था, वह यह शकुन्तला अपने पति के घर जा रही है, तुम सभी अनुमति दो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—युष्माषु भवत्सु, अपीतेषु—असिक्तेषु, या—शकुन्तला, जलं—सलिलं, पातुं—ग्रहीतुं, न व्यवस्यति—न वाञ्छति, प्रियमण्डना—आभूषण प्रियापि या, भवतां—युष्माकं—स्नेहेन, अनुरागेण, पल्लवं—किसलयं, न आदत्ते—न गृहणाति, वः—भवतां, आद्ये—प्रथमे, कुसुमप्रसूतिसये—पुष्पोद्भव काले यस्याः शकुन्तलायाः उत्सवः आनदः भवति, सा इयं—सैषा शकुन्तला, पतिगृहं—भर्तृभवनं, याति—गच्छति, सर्वैः—भवद्भिः, अनुज्ञायताम्—अनुमन्यताम्। अत्र समासोक्तिः, अनुप्रासः काव्यलिंग अलंकाराः, शार्दूलविक्रीड़ित छन्द।

विशेष—यहाँ महाकवि कालिदास का प्रकृति-वर्णन अत्यंत सजीव एवं मार्मिक है। वे बाह्य एवं मानव-प्रकृति के मध्य सामञ्जस्य एवं स्वाभाविक स्नेह स्थापित करते हैं। निसर्ग की गोद में पालित कन्या शकुन्तला को भी आश्रम वृक्षों से कितना स्नेह एवं लगाव था—इससे प्रमाणित है।

नोट—(१) इस श्लोक से शकुन्तला की आश्रम वृक्षों के प्रति स्नेहातिशयता व्यंजित होती है। (२) 'आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवति उत्सवः'—से यह व्यंजित होता है कि तपोवन के सभी वनस्पति शकुन्तला के सगे सम्बन्धी हैं। (३) अचेतन वृक्षों पर चेतन का व्यवहार होने के कारण समासोक्ति अलंकार, (४) किसलयों को न तोड़ने में स्नेह ही कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार, (५) त, न, प, स आदि वर्णों की 'आवृत्ति' से अनुप्रास अलंकार, (६) शकुन्तला के स्नेहाभिव्यक्ति में तीन कारणों का उल्लेख होने से समुच्चय अलंकार, (७) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द, (८) व्याकरण—अपीतेषु—पीत + अच् अर्श आदित्वात् अकारो मर्त्थीयः—पीत मेषामिति पीताः—महाभाष्य, प्रियाणि मण्डनानि यस्याः—ब० व्री०, शाकुन्तल के चार विख्यात श्लोकों में यह भी एक है। न व्यवस्यति—न never attempts पल्लवं नादत्ते—who never plucks leaves, यस्या उत्सवः—to whom it is a festivity. सेयं याति—She now departs, सर्वैरनुज्ञायताम्—let her be permitted by you all.—Kale.

(कोकिलरवं सूचयित्वा।)

(कोयल के शब्द को सूचित करके)

अनुमतगमना शकुन्तला
तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ १० ॥

अन्वय—इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना, यथा कलं परभृतविरुतम् एभिः ईदृशं प्रतिवचनीकृतम्।

हिन्दी—यह शकुन्तला तपोवन के सभी वृक्षों से जाने की अनुमति पा गई है, क्योंकि मधुर कोयल शब्द से इन्होंने इस तरह प्रत्युत्तर दिया है।

नोट—कोकिल-कोकते इति कुक आदने धातु + अच् प्रत्यय, परभृतं—परेण काकेन भृतः—तृ० त० कोयलें चतुर होती हैं जिससे वे बच्चों का पालन-पोषण कौओं से कराती हैं और कौये वर्ण में काला होने से उन्हें अपना बच्चा मानकर पालते पोसते रहते हैं, परन्तु बड़े होने पर ये कौवे उड़ जाते हैं। (१) कोयलें यात्रा के समाय शुभ शकुन सूचित करती हैं—वामे मधुर वाक् पक्षी पल्लवितोऽग्रवः अनुकूलो वहन वायुः प्रमाणे शुभशंसिनः॥ (२) वनवास बंधुभिः में तरुओं में बन्धुओं के आरोप होने से रूपकालंकार, (३) कोयलों की ध्वनि में वृक्षों का प्रत्युत्तर आरोपित है, जो शकुन्तला की यात्रा में उपयोगी है, अतः परिणामालंकार। छन्द—अपरवक्त्र—जिसके १, ३ चरणों में २ नगण, रगण, लघु, गुरु वर्ण, तथा २, ४ चरणों में नगण, जगण, जगण, रगण हैं। कोश-वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि—अम० यहाँ कालिदास की प्रकृति अत्यन्त जीवन्त है, अतः परभृत शब्द द्वारा शकुन्तला के प्रस्थान की अनुमति प्रदान कराती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(आकाशे)

(आकाश में)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः ।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥ ११ ॥

अन्वय—कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूखतापः, अस्याः पन्थाः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवः च भूयात्।

हिन्दी—कमलिनियों से हरे वर्ण के बनाये गये जलाशयों से मार्ग का मध्य भाग रमणीक हो, छायादार वृक्षों से सूर्य की किरणों का संताप दूर हो, इस (शकुन्तला) का मार्ग, कमल के पराग केसर की कोमल धूलि से युक्त हो, तथा मन्द एवं सुखदायक वायु से युक्त तथा कल्याणकारी हो।

विशेष—महाकवि कालिदास मानव-जीवन के शुभ-अशुभ में विश्वास करते हैं। अतः वे शकुन्तला के प्रस्थान के समय मन्द अनुकूल वायु तथा मंगलमय मार्ग की कामना करते हैं। प्रस्तुत पद्य वन देवता द्वारा कहा गया है।

नोट—आकाशे—दूरस्थाऽ भाषणं यत् स्यादशरीर निवेदनम्। परोक्षान्तरितं वाक्यं तदाकाशे निगद्यते। नाट्य शास्त्र, यह आकाशभाषित है। यहाँ शकुन्तला की सुखद यात्रा में पाँच बातें हैं। (१) मार्ग का मध्य भाग रम्य हो, (२) सूर्य संताप अवरुद्ध हो, (३) बीच की धूलि कोमल हो, (४) वायु शान्त एवं अनुकूल हो, (५) मार्ग सुखप्रद हो। नियमितार्क० पद से गमन में दुःख अभाव व्यंजित होता है, कुशेशय मृदुरेणुः—पद से मार्ग का मंगलमय, सुखप्रद होना व्यंजित है। यहाँ शिवका अर्थ सुख है। शिवं मोक्षे सुखे भद्रे—विश्वः। छाया प्रधाना द्रुमाः—मध्यमपदलोपी तत्पुरुष, कुशे जले शेते इति कुशेशयः—अलुक् तत्पु०, शान्तः अनुकूलः पवनः यस्मिन् स पन्थाः—ब० व्री०, यहाँ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु की तीन विशेषताओं का वर्णन है। तुलना—मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानु कूलो यथा त्वाम्—मेघदूत।

अलंकार—(१) मार्ग की धूलि की तुलना कमल से करने के कारण उपमालंकार, (२) वायु तथा मार्ग दोनों प्रकृत हैं, दोनों का सम्बन्ध शिव से करने के कारण तुल्ययोगिता अलं०, (३) कमलिनी हरितैः—आदि कारणों से काव्यलिंग अलं०, (४) यहाँ मार्ग के शिवत्व के प्रति अनेक कारणों का उल्लेख होने से समुच्चय अलंकार, (५) तालाब अपने स्वाभाविक गुण (शुक्लता) को छोड़कर कमलिनी का गुण (हरा) ग्रहण करता है, अतः तद्गुण अलंकार है। (६) शकुन्तला का भावी जीवन, निराशा की काली रात्रि से आच्छन्न होगा। उसमें अपमान का ग्रीष्म संताप आने वाला है, धरती पुत्र उसे प्रवञ्चित करने को है। अतः महर्षि कण्व अपनी दिव्य दृष्टि से इसे निहार कर शकुन्तला के भावी जीवन के सुखप्रद तथा मंगलमय होने का आशीर्वचन देते हैं। (७) वसन्ततिलका छन्द। may her path, charming at intervals. नियमितार्थ—mitigated by thick shade, कुशेशयरजो०—The pollen of lotuses, शान्ता० gentle favourable breeze and blissful—Kale.

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति।)

(सभी लोग आकाशवाणी आश्चर्य के साथ सुनते हैं।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गौतमी—जाते, ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनाऽसि तपोवन-देवताभिः। प्रणम भगवतीः। (जादे, ण्णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णाद-गमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीणं।)

हिन्दी—गौतमी—पुत्री! बन्धुजनों के समान स्नेह करने वाले तपोवन के देवताओं ने तुम्हें जाने की अनुमति दी है। इसलिए इन देवताओं को प्रणाम करो।

शकुन्तला—(सप्रणामं परिक्रम्य। जनान्तिकम्) हला प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते। (हला पिअंवदे, अज्जउणदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टन्ति।)

हिन्दी—शकुन्तला—(प्रणाम के साथ चारों ओर घूमकर हाथ की ओट में) सखी प्रियंवदे, आर्य पुत्र (दुष्यन्त) को देखने की उत्कण्ठा होने पर भी आश्रम को छोड़ते हुए मेरे पैर कठिनाई से आगे बढ़ रहे हैं।

प्रियंवदा—न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थित-वियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते। (ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीसइ।)

हिन्दी—प्रियंवदा—तपोवन के विरह से केवल सखी ही (तुम्हीं) व्याकुल नहीं दिखाई पड़ रही है। अपितु तुझसे विदाई का समय उपस्थित होने के कारण तपोवन की भी तेरे समान ही अवस्था दिखाई पड़ रही है।

नोट—समवस्था०—यह प्रयोग व्याकरण दृष्टि से अशुद्ध है, परन्तु 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' सूत्र से ठीक है।

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥ १२ ॥
उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा ।
ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ ॥)

अन्वय—मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः, मयूराः परित्यक्तनर्तनाः, लताः अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

हिन्दी—हरिणीनियों ने कुशों के ग्रास उगल दिये हैं मयूरों ने नाचना छोड़ दिया है। और लताएँ पीले पत्तों को गिराकर मानों आँसू बहा रही हैं।

संस्कृत व्याख्या—मृग्यः—हरिण्यः, उद्गलित—उद्गीर्णः, दर्भाणां: कवलः—ग्रासः याभिः तादृशाः, मयूराः—बर्हिणः, परित्यक्तनर्तनाः—परिवर्जितनृत्यव्यापाराः, लताः—वल्लयः, अपसृत पाण्डु पत्राणां—पतित पाण्डु पत्राणि, अश्रूणि—नेत्रजलानि, मुञ्चन्ति—त्यजन्ति इव।

नोट—परि + त्यज् + शतृ + ङीप्, ब० व०, (१) मृगी, मयूर, लताओं में मातृत्व का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार है। (२) अश्रूणीव लताः में उत्प्रेक्षा अलंकार, (३) गाथा छन्द।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला—(स्मृत्वा) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये। (ताद, लताबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(याद करके) पिताजी, मैं अपनी लता-बहिन वन-ज्योत्सना से (जरा) विदा ले लूँ।

काश्यपः—अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहम्। इयं तावद् दक्षिणेन।

हिन्दी—काश्यप—यह मैं जानता हूँ कि उस (वन-ज्योत्स्ना) पर तुम्हारा सगे जैसा प्रेम है। यह तो दक्षिण दिशा में है।

शकुन्तला—(उपेत्य लतामालिङ्गय) वनज्योत्स्ने, चूतसंगताऽपि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिः शाखाबाहुभिः। अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि। (वणजोसिणि, चूदसंगता वि मं पच्चालिंग इदोगदाहिं साहाबाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी द क्खु भविस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(समीप पहुँचकर लता का आलिंगन करके) हे वन ज्योत्स्ने! आम्रवृक्ष से संश्लिष्ट होने पर भी तुम मुझे इधर फैली हुई शाखारूपी बाहुओं से गले लगाओ, आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊँगी।

नोट—I will bid adieu to my creeper sister—Kale. लता भगिनीं तावदामन्त्रमिष्ये। सोदर्यायाः स्नेहः समाने उदरे शयिता सोदर्या-समान + उदार + य 'सोदराश्चः' से प्रत्यय तथा विभावापरे से विकल्प से रह को स आदेश आमाचूतो रसालः—अम० चूष् पाने + क्त = चूत—चूस कर खाने के कारण आम को चूत कहते हैं।

काश्यपः—

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रतिवीतचिन्तः॥ १३॥

अन्वय—मया तवार्थे प्रथमम् एव संकल्पितम् आत्मसदृशं भर्तारं त्वं सुकृतैः गता। इयं नवमालिका चूतेन संश्रितवती। सम्प्रति अहम् अस्यां त्वयि च वीतचिन्तः।

हिन्दी—(कण्व शकुन्तला से) मैंने तुम्हारे लिए पहले ही योग्य वर का संकल्प लिया था। अपने पुण्यों से तुमने अपने अनुकूल (योग्य) पति प्राप्त कर लिया है, यह नव मालिका (माधवी लता) सहकार से मिल गई है। अब मैं इस (नवमालिका लता) की ओर से तथा तुम्हारी ओर (शकुन्तला) से चिन्तामुक्त या रहित हो गया हूँ।

नोट—(१) आम्र और नवमालिका पर नायक-नायिका का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार, (२) नायिका और नवमल्लिका का प्रियमिलन रूप एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार, (३) पूर्व वाक्यार्थ अन्तिम वाक्यार्थ का हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार, (५) वसन्ततिलका छन्द, (६) यहाँ 'भाव ध्वनि' है।

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इधर से अपना मार्ग ग्रहण करो।

शकुन्तला—(सख्यौ प्रति) हला, एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः। (हला, एषा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो।)

हिन्दी—शकुन्तला—(दोनों सखियों के प्रति) सखियों, इस वन ज्योत्स्ना लता को तुम दोनों के हाथों में (धरोहर रूप में) सौंपती हूँ।

सख्यौ—अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः। (अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—इस जन को (अनसूया तथा प्रियंवदा) किसके हाथों में सौंप रही हो?

(इति बाष्पं विहरतः।)

(दोनों आँसू बहाती हैं।)

काश्यपः—अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।

हिन्दी—काश्यप—अनसूया, रोओ मत, निश्चित ही तुम दोनों से इस शकुन्तला को सान्त्वना दी जानी चाहिए।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

(सभी चलते हैं।)

शकुन्तला—तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ। (ताद, एषा उडअपज्जन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा अणघप्पसवा होइ, तदा मे कपिपिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह।)

हिन्दी—शकुन्तला—पिताजी, कुटी के समीप चरने वाली, गर्भ से शिथिल गति वाली यह हरिणी जब सुख से प्रसव करे तब किसी भी प्रिय समाचार कहने वाले को मेरे पास भेज दीजिएगा।

काश्यपः—नेदं विस्मरिष्यामः।

हिन्दी—काश्यप—हम इसे नहीं भूलेंगे।

शकुन्तला—(गतिर्भङ्गं रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। (को णु क्खु एसो णिवसणे मे सज्जइ।)

हिन्दी—शकुन्तला—(गमन में अवरोध का अभिनय करके) यह कौन मेरे वस्त्र में लिपट रहा है।

(इति परावर्तते)

(यह कहकर पीछे मुड़ती है।)

काश्यपः—वत्से,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ १४॥

अन्वय—यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपणम् इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत, सः अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगःते पदवीं न जहाति।

हिन्दी—जिसके कुश के अग्रभाग से चुभे मुख में तुमने घावों को भरनेवाला इंगुदी—तैल लगाया था, वह यह श्यामाक (सावाँ) की मुट्ठिओं से बढ़ाया गया तथा पुत्र के समान माना गया हरिण तुम्हारे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है।

विशेष—यह परम कारुणिक हृदयविदारक दृश्य है। इस पद्य में महाकवि कालिदास ने मातृभाव से ओत-प्रोत करुणा की जो पयस्विनी (धारा) प्रवाहित की है वह भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट वस्तु है। यह दृश्य मातृत्व-भाव तथा कवि की नाट्यकला को अपरिमित रूप से प्रतिष्ठित करने वाला है।

संस्कृत व्याख्या—त्वया—शकुन्तलया, यस्य—हरिणस्य, कुशसूचिविद्धे—कुशानां तीक्ष्णाग्रभागैः, विद्धे—आहते, मुखे—आनने, व्रणविरोषणं—क्षतं विरोषणं, इंगुदीनां—तदाख्यानां फलानां, तैलं—स्नेहः, न्यषिच्यत—निषिक्तम्, सः—पूर्वोक्तः, अयं—श्यामाकमुष्टिभिः—कवलैः परिवर्धितः परिपोषितः, पुत्रकृतकः—पुत्रवत् स्वीकृतः, मृगः—हरिणः, पदवीं—मार्गं, न जहाति—न परित्यजति।

नोट—त्वया—'अत्यन्त दयालु मातृतुल्य' तुमने यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। व्रणानां विरोपणं—ष० तत्पु०, वि + रुह् + णिच् + ल्युट्, 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' से विकल्प से रुह के हकार का 'प', नि + सिच् + लङ् (कर्मणि) प्र० पु० ए० व०, पुत्र कृतकः— कृत+कन् प्रत्यय, अनुकम्पा अर्थ में यहाँ 'भाव ध्वनि' है, (१) इसमें मृग के स्वभाव का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार, (२) मार्ग न छोड़ने के प्रति पूर्वोक्त, (३) कारण (तैल सिंचन, पोषण एवं पुत्र तुल्य मानना) है, अतः काव्यलिंग अलंकार, (४) वसन्ततिलका छन्द, (५) प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति। न्यषिच्यत—Applied the healing oil of Ingudi, पुत्रकृत्रक the fawn was regarded by you as your son.

शकुन्तला—वत्स, किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि। अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्। (वच्छ, किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणि पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहि दाव।)

हिन्दी—शकुन्तला—हे पुत्र (शावक), साथ छोड़कर जाने वाली मेरे पीछे क्यों आ रहे हो ? जन्म देने के शीघ्र पश्चात (मृत) माँ के बिना ही तुम मेरे द्वारा पोषित किये गये। इस समय भी मुझसे बिछुड़े हुए तुम्हारा पिता जी पालन करेगें। अतः लौट जाओ।

(इति रुदती प्रस्थिता)

(इस प्रकार रोती हुई चल देती है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काश्यपः—

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं
बाष्पं कुरु स्थिरतयाविरतानुबन्धम्[1] ।
अस्मिन्नलक्षिततनतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ॥ १५ ॥

अन्वय—उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरुद्धवृत्तिं बाष्पं स्थिरतया विरतानुबन्धं कुरु। अलक्षिततनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि खलु विषमी भवन्ति।

हिन्दी—ऊपर उठे हुए पलकों वाले नेत्रों के (दर्शन) कार्य को रोकने वाले आँसुओं को धैर्यपूर्वक रोको, क्योंकि न दिखाई देने वाले ऊँचे नीचे भू-भाग से युक्त इस मार्ग पर तुम्हारे पैर निश्चित ही लड़खड़ा रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—उद्गते पक्ष्माणि ययोस्तयोः नेत्रयोः, उपरुद्ध—उपगतदर्शन व्यापारं, वाष्पं—अश्रूजलं, स्थिरतया—धैर्येण, विरतानुबन्धम्—संरुद्धप्रसरणम्, कुरु—विधेहि, अलक्षित—अविदितसमविषमस्थले अस्मिन् मार्गे—पथि, तव—ते, पदानि—चरणानि, खलु—निश्चयेन, विषमीभवन्ति—स्खलन्ति।

नोट—उपरुद्धा वृत्तिः येन—ब० व्री०, विरतः अनुबन्धः यस्य—ब० व्री०, भोज ने शिथिलानुबन्धम् पाठ माना है। दे० सरस्वती कण्ठाभरण। अलक्षितः नतोन्नतः भागः यस्मिन्—ब० व्री० विषम + च्वि + भू + लट्—प्र० पु०, ब० व० पूर्वार्द्ध वाक्य उत्तरार्द्ध वाक्य के प्रति कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। छन्द—वसन्ततिलका।

विशेष—इस पद्य में कण्व शकुन्तला को जीवन के कठोर मार्ग पर दृढ़चरण रखने के लिए प्रेरित करते हैं और उसे भाव भंगिमा में प्रवाहित होने से रोकते हैं। विरतानुबन्धम्—Check the continuity of your tears, ते पदानि विषमी भवन्ति Your foot-steps are falling unevenly on the road.—Kale.

शार्ङ्गरवः[2]—भगवन्! ओदकान्तं[3] स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हति[4]।

हिन्दी—भगवन्! ऐसा सुना जाता है कि स्नेही व्यक्ति का जलाशय पर्यन्त अनुगमन करना चाहिए। तो यह जलाशय तट है। अतः आप यहाँ अपना संदेश देकर लौट जायँ।

काश्यपः—तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः।

हिन्दी—तो हम लोग इस पीपल वृक्ष की छाया में बैठते हैं।

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः)

(सभी लोग घूमकर बैठ जाते हैं।)

काश्यपः—(आत्मगतम्) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम्। (इति चिन्तयति।)

---

१. विहतानुबन्धम्—(रोको)—नि० सा० २. शार्ङ्गरव एवं शारद्वत—ये दो कण्व के शिष्य हैं।
३. उदकान्तं—नि० सा० ४. अर्हसि—(योग्य हो)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—काश्यप—(अपने मन में) माननीय दुष्यन्त के लिए उचित हमें क्या संदेश भेजना चाहिए।

शकुन्तला—(जनान्तिकम्) हला, पश्य। नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति, दुष्करमहं करोमीति। (हला, पेक्ख। णलिणीपत्तन्तरिदं वि सहअरं अदेक्खन्ती आदुरा चक्कवाई आरडदि, दुक्करं अहं करेमि त्ति।)

हिन्दी—शकुन्तला—(हाथ की ओट में) सखी, इधर देखो, कमलिनी के पत्तों की आड़ में होने पर अपनी सहचर को न देखती हुई, दुःखी यह चक्रवाकी चिल्ला रही है कि मैं दुष्कर कार्य कर रही हूँ।

अनसूया—सखि मैवं मन्त्रयस्व[1]। (सहि, मा एव्वं मन्तेहि।)

हिन्दी—अनसूया—सखी, ऐसा न कहो।

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम् ।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ॥ १६ ॥
(एसा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीहअरं ।
गरुअं पि विरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि ॥)

अन्वय—एषा अपि प्रियेण विना विषाददीर्घतरां रजनीं गमयति। आशाबन्धः गुरु अपि विरहदुःखं साहयति।

हिन्दी—यह चक्रवाकी अपने प्रिय बिना दुःख के कारण अधिक लम्बी प्रतीत होने वाली रात्रि को व्यतीत करती है। आशा का बन्धन वियोग के कठोर दुःख को भी सहन करा देता है।

नोट—अर्थान्तरन्यास अलंकार, आर्या छन्द, ओदकान्तं प्रियंप्रोथमनुव्रजेत्—याज्ञ० स्मृ०, क्षीरवृक्ष—इसे छाया की अधिकता तथा मंगलप्रद होने के कारण ग्रहण किया है। आशाबन्धः कुसुम सदृशं प्रायशोह्यङ्गनानां सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥—मेघदूत।

काश्यपः—शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।

हिन्दी—काश्यप—हे शार्ङ्गरव, तुम शकुन्तला को सामने करके मेरी तरफ से उस राजा से ऐसा कहना।

शार्ङ्गरव—आज्ञापयतु भवान्।[2]

हिन्दी—शार्ङ्गरव—आप आदेश दीजिए।

काश्यपः—

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।

---

१. मन्त्रय (कहो)—चि० स० २. भगवन्—का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ १७॥

अन्वय—संयमधनान् अस्मान्, आत्मनः उच्चैः कुलं च, त्वयि अस्याः कथमपि अबान्धवकृतां तां स्नेहप्रवृत्तिं च साधु विचिन्त्य, त्वया इयं दारेषु सामान्य-प्रतिपत्तिपूर्वकं दृश्या। अतः परं भाग्यायत्तम्, तत् खलु वधूबन्धुभिः न वाच्यम्।

हिन्दी—संयमरूपी धन वाले हम लोगों (तपस्वियों) का, अपने उच्च कुल का और तुम्हारी ओर इस (शकुन्तला) के बन्धुओं द्वारा न किये स्वाभाविक प्रणय-व्यवहार को भली भाँति सोचकर तुम इसको अपनी पत्नियों में सभी के समान गौरव के द्वारा देखना। इससे अधिक भाग्य के अधीन है, वह निश्चय ही हम वधू (कन्या) के सम्बन्धियों को नहीं कहना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—संयमधनान्— तपोधनान्, अस्मान्—तपस्विनः, आत्मनः—स्वस्य च, उच्चैः—उन्नतं, कुलं—वंशम्, त्वयि—भवति, अस्याः—शकुन्तलायाः, कथमपि—केनापि प्रकारेण, अबान्धवकृतां—बन्धुजनप्रयत्नं विनैव विहितां, तां—तादृशीं, अनुस्यूतां, स्नेह प्रवृत्तिं—प्रेम प्रवृत्तिं, च साधु—सम्यक, विचिन्त्य—विचार्य, त्वया—दुष्यन्तेन, इयं—शकुन्तला, दारेषु—स्वभार्यासु, सामान्य प्रति०—साधारणगौरवपूर्वकम्, त्वया दृश्या, दर्शनीया, अतः परम्—अस्मादधिकं, भाग्यायत्तं—दैवाधीनं, तत् खलु—निश्चयेन, वधूबन्धुभिः—कन्याः बन्धुजनैः, न वाच्यम्—न कथनीयम्।

विशेष—इस पद्य में भारतीय संस्कृति की गार्हस्थ्य पारस्परिक आचारसाधना प्रतिफलित होती है। इसमें कण्व अपने संदेश में दुष्यन्त से एक विनम्र मर्यादा का निवेदन करते हैं। वस्तुतः इस पद्य से निम्न बातें ध्वनित होती हैं। (१) हम तपस्वियों का धन तपस्या है, अतः आपको कोई दहेज देने में असमर्थ हैं, (२) हम तपस्वियों में गूढ़ात्मक तेज होता है, अतः अनुचित व्यवहार होने पर अनिष्ट भी कर सकते हैं।, (३) यद्यपि हमारी अनुपस्थिति में यह विवाह हुआ, तथापि हम अप्रसन्न नहीं है, (४) यद्यपि तुम्हारा यह विवाह गुरुजन सम्मत नहीं, अपितु प्रेम-विवाह (गान्धर्व विवाह) है तथापि तुम शकुन्तला को अपनी सभी रानियों में समान महत्त्व देना।

नोट—संयम एव धनं येषां ते—ब० व्री०, आत्मनः कुलं—अपने उच्च वंश का ध्यान देकर तुम शकुन्तला को उचित सम्मान देना। न वान्धवैः कृतां—त० तत्पु०, शकुन्तला का यह प्रेम बान्धवों द्वारा नहीं किया गया है अपितु स्वाभाविक है, भाग्यायत्तम-भाग्यवश सुख सुविधा मिलती है। न खलु वाच्यम्—हम कन्या पक्षीय लोगों को अपनी कन्याओं को महारानी बनाने की बात नहीं कहनी चाहिए।

अलंकार—(१) इस श्लोक में संयमधनान् अस्मान् में विशेष के लिए सामान्य का प्रयोग होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार, (२) 'विचिन्त्य' इस एक क्रिया के साथ संयमधनान् आदि अनेक कार्यों का सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार, (३) भाग्यायत्तम्—पूर्व पदार्थ (महारानी बनना या भवन, वाहन आदि प्राप्त होना) के प्रति भाग्य कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार, (४) शार्दूलविक्रीड़ित छन्द, (५) अभिज्ञान शा० के चतुर्थ अङ्क के चार सुन्दर श्लोकों में यह एक है। संयमधनान् Rich in self-restraint, उच्चै कुलं—Excellent family, दारेषु दृश्यात्वया—You should accept her as one of your wives, वधू बन्धुभिः न वाच्या—it indeed can not be stated by wife relatives.—Kale.

शार्ङ्गरवः—गृहीतः सन्देशः।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—मैंने (आपका) संदेश समझ लिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काश्यपः—वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयाऽसि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।

हिन्दी—काश्यप—बेटी, तुम इस समय (पति-गृह जाते समय) शिक्षा देने योग्य हो। कानन निवासी होने पर भी लौकिक व्यवहारों (आचारों) का हमें ज्ञान है।

शार्ङ्गरवः—न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—वस्तुतः विद्वानों के लिए कोई वस्तु अज्ञात नहीं होती।

काश्यपः—सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य—

हिन्दी—काश्यप—(शकुन्तला से) वह तुम यहाँ (मेरे आश्रम) से पतिगृह पहुँचकर—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधय ॥ १८॥

कथं वा गौतमी मन्यते।

अन्वय—गुरून् शुश्रूषस्व, सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिं कुरु, विप्रकृता अपि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव, भाग्येषु अनुत्सेकिनी (भव)। एवं युवतयः गृहिणीपदं यान्ति, वामाः कुलस्य आधयः।

हिन्दी—(काश्यप कहते हैं) श्वसुर आदि गुरुजनों की सेवा, सौतों के साथ प्रियसखी जैसा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के कारण पति के विपरीत न जाना। सेवकों के प्रति अधिक उदार रहना, और अपने भाग्य पर अभिमान न करना। इस प्रकार स्त्रियाँ 'गृहलक्ष्मी' पद प्राप्त करती हैं, इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ कुल के लिए मानसिक व्याधि होती हैं।

संस्कृत व्याख्या—गुरून्—पूज्यान्, शुश्रूषस्व—सेवस्व, सपत्नीजने—सपत्नी समूहे, प्रियसखीवृत्तिं—प्रियसखी व्यवहारं, कुरु—विधेहि, विप्रकृता—तिरस्कृताऽपि, रोषणतया—क्रोधेन, भर्तुः स्वामिनः—पत्युः, प्रतीपं—विरुद्धं, मा स्म गमः—न याहि। परिजने—सेवकजने, भूयिष्ठं—अतिशयं, दक्षिणा—अनुकूला भव, भाग्येषु—ऐश्वर्येषु, ऐश्वर्येषु—सम्पत्सु, अनुत्सेकिनी—अगर्विता भव, एवं—इत्थं, युवतयः—तरुण्यः, गृहिणीपदं—गृहिणी स्थानं, यान्ति—प्राप्नुवन्ति, वामाः—प्रतिकूला स्त्रियः, कुलस्य—वंशस्य, आधयः—मानसिक संतापाः भवन्ति।

विशेष—यह पद्य व्यावहारिक शिष्टाचार की शिक्षा देता है। इसमें पिता अपनी पुत्री को आदर्श गृहिणी बनने का उपदेश देता है।

नोट—वात्स्यायन के कामसूत्र में वधू के कर्तव्योपदेश निम्न हैं—गुरुषु भृत्यवर्गेषु नायक भगिनीषु तत्पतिषु च यथार्हं प्रतिपत्तिः। श्वश्रू श्वसुर परिचर्या॥ (सूत्र ३७) सपत्नीजने-समानः पतिः यासां ताः (ब० व्री०) 'नित्यसपत्न्यादिषु' सूत्र से समान को स आदेश, निपातन से पति के इ का 'न' आदेश ऋन्नेभ्यो से ङीप्। रोषणतया-रोषणस्य भावः तया। प्रतीपं—प्रति + अप् + अच्—अप् के अ को ईत्। उत् + सिच् + घञ्—उत्सेकः यस्याः ब० व्री०, वामा—प्रतीपदर्शिनी वामा विरुद्ध आचरण वाली स्त्रियों को वामा कहते हैं—वमति स्नेहम् इति वामः, वामः कामः यस्याः—ब० व्री०, आधिः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गौतमी—एतवान् वधूजनस्योपदेशः। जाते, एतत् खलु सर्वमवधारय। (एत्तिओ वहूजणस्स उवदेसो। जाते, एदं क्खु सव्वं ओधारेहि।)

हिन्दी—गौतमी—इतनी ही नववधुओं के लिए शिक्षाएँ हैं, पुत्री इन बातों को निश्चित ही स्मरण कर लो।

काश्यपः—वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च।

हिन्दी—काश्यप—बेटी, मुझसे और अपनी सखियों से गले मिल लो।

शकुन्तला—तात, इत एव किं प्रियंवदाऽनसूये सख्यौ निवर्तिष्येते[1]**।** (ताद, इदो एव्व किं पिअंवदाअणसूआओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति।)

हिन्दी—शकुन्तला—तात, क्या यहीं से प्रियंवदा और अनसूया—मेरी सखियाँ लौट जायेंगी?

काश्यपः—वत्से, इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।

हिन्दी—बेटी, ये दोनों भी विवाह योग्य हैं। अतः इनका वहाँ जाना उचित नहीं। तुम्हारे साथ गौतमी (वृद्धा तापसी) जायेगी।

शकुन्तला—(पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि[2]**।** (कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भट्टा मलअतडुम्मूलिआ चन्दणलदा विअ देसन्तरे जीविअं धारइस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(पिता कण्व से गले मिलकर) कैसे इस समय पिता की गोद से छूटी हुई मैं मलय पर्वत के तट से उखाड़ी गई चन्दन लता की भाँति अन्य स्थान में जीवित रहूँगी?

नोट—महाकवि ने शकुन्तला के साथ दोनों सखियों को न भेजकर नाटकीय संविधानक की रक्षा की है। यदि दोनों सखियों को भेजा होता, तो वे राजा को शकुन्तला विषयक प्रणय-वृत्तान्त तथा दुर्वासा शाप की कहानी सुना देतीं, जिससे शकुन्तला की कथा आगे बढ़ने से रुक जाती।

काश्यपः—वत्से, किमेवं कातराऽसि।

हिन्दी—काश्यप—बेटी, क्यों इस प्रकार व्याकुल हो रही हो?

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ १९ ॥

अन्वय—वत्से, त्वम् अभिजनवतः भर्तुः श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता, तस्य विभवगुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षणम् आकुला, अचिरात् प्राची इव अर्कं पावनं तनयं प्रसूय च मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि।

---

१. निवर्तिष्यन्ते—लौट जायेंगी—नि० सा० २. धारयिष्ये (धारइस्सं)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—बेटी! तुम कुलीन पति (दुष्यन्त) के प्रशंसनीय गृहस्वामिनी पद पर प्रतिष्ठित होकर पति के ऐश्वर्य के कारण सम्पूर्ण कार्यों में प्रतिक्षण व्यस्त रहती हुई, शीघ्र ही, जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है वैसे ही पवित्र (चक्रवर्ती) पुत्र को जन्म देकर मेरे विरह से उत्पन्न शोक को भूल जाओगी?

संस्कृत व्याख्या—वत्से—पुत्री, त्वं—शकुन्तला, अभिजनवतः—उत्तमकुलोत्पन्नस्य, भर्तुः—पत्युः, श्लाघ्ये—प्रशंसनीये, गृहिणीपदे—गृहलक्ष्मीपदे, स्थिता—अधिष्ठिता, तस्य—पत्युः, विभवगुरुभिः—ऐश्वर्यगुरुभिः, कृत्यैः—कार्यैः, प्रतिक्षणं—प्रतिपलं, आकुला—व्यस्ता, अचिरात्—शीघ्रमेव, प्राची इव—पूर्वा दिक्, अर्कम्—सूर्यमिव, पावनं—पवित्रं, तनयं—पुत्रं, प्रसूय—उत्पाद्य, मम—कण्वस्य, विरहजां—वियोगोत्पन्नां, शुचं—शोकं, न गणयिष्यसि—अनुभविष्यसि।

नोट—यहाँ तात कण्व का वात्सल्य भाव शकुन्तला के लिए अत्यन्त दुःखद है, अतः वह अपने वियोग जन्य दुःख को मिटाने का तीन उपाय बताते हैं। (१) दुष्यन्त का स्नेह, (२) ऐश्वर्य पूर्ण कर्तव्यलीनता, (३) अपने सुत के प्रति ममता (लगाव)। अभिजनवतः—अभिजनः प्रशस्तः जनः अभि + जन् + घञ्, 'जनिवध्योश्च' के कारण यहाँ वृद्धि नहीं हुई। अचिरात्—शीघ्र, क्योंकि दुष्यन्त को शकुन्तला से मिले पाँच माह हो गये हैं। गृहिणीपदे—(अभि० शा० ४/१८) में भी गृहिणी प्रशंसित है। महाभारत में गृह-गृह नहीं होता, अपितु गृहिणी ही गृह है—न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते। विरहजां—में कुछ टीकाकार अश्लीलत्व दोष मानते हैं, जैसे-चलन चामरचेष्टितः, पावन पद-राघवभट्ट ने 'पावन' पद को केवल सूर्य का विशेषण माना, परन्तु अनेक टीकाकारों जैसे मम्मट, विश्वनाथ ने इसे सूर्य तथा तनय दोनों का विशेषण माना। तनय की तुलना सूर्य से करने के कारण महाकवि ने निम्न अर्थ ध्वनित किया है, (१) यह अपने तेज से सभी लोगों को अभिभूत करके संसार भर में अपना यश फैला देगा, (२) यह संसार के द्वारा अभिवन्दनीय होगा। (३) पूरे संसार का एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट् होगा।

अलंकार—(१) पुत्र की सूर्य से तुलना होने के कारण उपमालंकार। (२) मेरे वियोग से उत्पन्न दुःख का अनुभव न होने के तीन कारण बताये गये अतः काव्यलिंग अलंकार, (३) 'च' पद से यहाँ समुच्चय अलंकार सूचित है। (४) यहाँ 'संग्रह' नामक गर्भ-सन्धि का अंग है। सामदानार्थ संयोगः संग्रहः परिकीर्तितः। —सा० द०। (५) हरिणी छन्द—जिसके प्रत्येक चरण में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण एक लघु, एक गुरु वर्ण हो। जिसके ६, ४, ७ वर्णों पर यति (विराम हो) उसे 'हरिणी छन्द' कहते हैं—'न सम रस लागः षडवेदैर्हयै हरिणी मता'

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति।)

हिन्दी—(शकुन्तला पिता के पैरों पर गिरती है।)

काश्यपः—यदिच्छामि ते तदस्तु।

हिन्दी—काश्यप—मैं तुम्हारे लिए जो चाहता हूं, वह सब पूर्ण हो।

शकुन्तला—(सख्यावुपेत्य) हला, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्। (हला, दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह।)

हिन्दी—शकुन्तला—(सखियों) तुम दोनों मुझसे एक साथ ही गले मिलो।

सख्यौ—(तथा कृत्वा) सखि, यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्, ततस्तस्मा इदमात्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय। (सहि, जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमन्थरो भवे, तदो से इमं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

अत्तणामहेअअंकिअं अंगुलीअअं दंसेहि।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(वैसा करके) सखी, यदि वह राजा (दुष्यन्त) तुम्हें पहचानने में शिथिल हो, तो तुम उसे उसके अपने नाम से अंकित मुद्रिका दिखाना।

शकुन्तला—अनेन सन्देहेन वामाकम्पिताऽस्मि। (इमिणा संदेहेण वो आकम्पिदम्हि।)

हिन्दी—शकुन्तला—तुम दोनों के इस सन्देह से मैं कम्पित हो गई हूँ।

सख्यौ—मा भैषीः। अतिस्नेहः[१] पापशंकी। (मा भाआहि। अदिसिणेहो पावसंकी।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—डरो मत। अत्यन्त स्नेह ही अनिष्ट की आशङ्का कराता है।

शार्ङ्गरवः—युगान्तरमारूढः सविता। त्वरतामत्रभवती।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—सूर्य दूसरे प्रहर में स्थित है, अतः आप शीघ्रता करें।

शकुन्तला—(आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात, कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये। (ताद, कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(आश्रम की ओर मुख करके) पिताजी कब मैं पुनः आश्रम का दर्शन करूँगी।

काश्यपः—श्रूयताम्

हिन्दी—काश्यप—सुनो,

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥ २०॥

अन्वय—चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा, अप्रतिरथं तनयं दौषयन्तिं निवेश्य, तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धं शान्ते अस्मिन् आश्रमे पुनः पदं करिष्यसि।

हिन्दी—चिरकाल तक चारों समुद्रों तक व्याप्त पृथिवी की सौत बनकर, अद्वितीय महारथी पुत्र दौष्यन्ति (भरत) को राज सिंहासन पर बैठाकर और उस पुत्र को अपने कुटुम्ब का भार सौंप देने वाले पति के साथ इस शान्त आश्रम में पुनः निवास बनाओगी।

संस्कृत व्याख्या—चिरं—चिरकालपर्यन्तं, चतुरन्तमहीसपत्नी—समग्रपृथिवीसमान भर्तृका भूत्वा, अप्रतिरथम्—अद्वितीयवीरं, तनयं—पुत्रं, दौष्यन्तिं—भरतनामकं, निवेश्य—राज्ये, अभिसिच्य, तस्मिन पुत्रे निवेशितपरिवार भारणे, भर्त्रा—पत्या सह, शान्तेऽस्मिन्—निरुपद्रवेऽस्मिने, आश्रमे—तपोवने, पुनः—भूयः, पदं—स्थानम्, करिष्यसि—आगमिष्यसि।

नोट—चत्वारः समुद्राः अन्ताः यस्याः तस्याः मह्याः सपत्नी—ष० तत्पु०, दौष्यन्ति—दुष्यन्तस्य अपत्यं पुमान्, दुष्यन्त + इञ् दुष्यन्त का पुत्र भरत, न विप्द्यते प्रतिरथः (वीरः) यस्य—ब० व्री०, निवेश्य—नि + विश् + णिच् ल्यप्। गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मानः। अपत्यस्यैव चापत्यं

१. णि सिणेहो—(प्रेम)। The Affection suspects evil.—Kale.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तदारण्यं समाश्रयेत्॥ म० स्मृ०, वयः परिणतौ राजन्! कृतकृत्यौ गृहाश्रमी, पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा॥ **अलंकार**—(१) यहाँ पृथ्वी पर सपत्नी का आरोप पृथ्वी पर पुत्र-प्रतिष्ठा तथा पुत्र पर कुटुम्ब भार का आरोप करने के कारण 'माला दीपकं' अलं०—तन्मालादीपकं पुनः धर्मिणामनेक धर्मेण सम्बन्धो यद् तथोत्तरम्। छन्द—वसन्ततिलका प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति।

गौतमी—जाते परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्। (जादे, परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मन्तइस्सदि। णिवत्तदु भवं।)

हिन्दी—गौतमी—बेटी, प्रस्थान का समय निकलता जा रहा है। पिता को लौटा दो अथवा बहुत देर तक बार-बार यह तो इसी प्रकार बात करती रहेगी। आप ही लौटें।

काश्यपः—वत्से, उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।

हिन्दी—काश्यप—बेटी, मेरे तप का अनुष्ठान रुक रहा है।

शकुन्तला—(भूयः पितरमाश्लिष्य) तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्। तन्माऽतिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व[1]। (तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं। ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कण्ठस्स।)

हिन्दी—शकुन्तला—(फिर पिता से लिपट कर) पिता जी, तपस्या से आपका शरीर दुर्बल हो रहा है। अतः मेरे लिए आप अधिक उत्सुक न होइये।

काश्यपः—(सनिःश्वासम्)

हिन्दी—काश्यप—(दीर्घ निश्वास के साथ)

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ॥ २१ ॥

अन्वय—वत्से, त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम् एष्यति।

हिन्दी—बेटी! तुम्हारे द्वारा पहले पूजा के रूप में डाले गये और अब कुटी के द्वार पर उगे नीवार के उपहार को देखते हुए मेरा दुःख कैसे दूर हो पायेगा।

काश्यपः—गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु।

हिन्दी—काश्यप—जाओ, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।

(निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च।)

(शकुन्तला और उसके साथ जाने वालों का प्रस्थान)

सख्यौ—(शकुन्तलां विलोक्य) हा धिक्, हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या। (हद्धी, हद्धी। अन्तलिहिदा सउन्दला वणराईए।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(शकुन्तला की ओर देखकर) हाय, हाय, वन-पंक्ति से

१. उत्कण्ठितुम् [उक्कण्ठिदुं] (पुस्तिका ...)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला ओझल हो गई।

काश्यपः—(सनिःश्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

हिन्दी—काश्यप—(लम्बी साँस लेकर) अनसूये, तुम्हारी सहेली चली गई। शोक रोककर प्रस्थान किये हुए मेरे पीछे चलो।

उभे—तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः। (ताद, सउन्दलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसामो।)

हिन्दी—दोनों—तात, शकुन्तला से रहित, सूने तपोवन में कैसे प्रवेश करें।

काश्यपः—स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः, शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः—

हिन्दी—काश्यप—स्नेह भाव ही ऐसा दिखाता है। (विचार में लीन होकर चारों ओर घूमकर) अहा, शकुन्तला को अपने पतिगृह भेजकर मैंने शान्ति प्राप्त कर ली है।

अर्थोहि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ २२ ॥

अन्वय—कन्या हि परकीयः एव अर्थः, अद्य तां परिग्रहीतुः संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यासः इव प्रकामं विशदः जातः।

हिन्दी—निश्चय ही पुत्री, पराया धन होती है, आज उसको पति के घर भेज कर मेरी अन्तरात्मा धरोहर लौटा देने वाले की भाँति अत्यन्त निर्मल हो गई है।

नोट—परि + गृह + ल्यप्, पति कन्या का हाथ पकड़कर अग्नि की प्रदक्षिणा करता है, अतः उसे परिग्रहीता कहते हैं। प्रत्यर्पितः न्यासः येन, ब० व्री०। कहने का अर्थ है कि जिस प्रकार धरोहर लौटाने वाले का मन हल्का होता है, वैसे ही कन्या रूप धन जो दूसरे का होता है, उसे उसके प्राप्तकर्ता को सौंप कर मेरा अन्तःकरण प्रसन्न होगया है। उत्प्रेक्षा अलंकार। कण्व की सम्भावना धरोहर लौटाने वाले पुरुष के रूप में की गई है अतः उत्प्रेक्षा। छन्द—इन्द्रवज्रा।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

(इस प्रकार सभी पात्र निकल जाते हैं।)

(इति चतुर्थोऽङ्कः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च)

(तत्पश्चात आसन पर आसीन राजा एवं विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(कर्णं दत्त्वा) भो वयस्य, संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति। (भो वअस्स, संगीतसालन्तरे अवधाणं देहि। कलविसुद्धाए गीदीए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसवदिआ वण्णपरिअअं करेदि त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—(कान देकर (लगाकर) हे मित्र! संगीतशाला की ओर ध्यान दीजिए। कर्णप्रिय एवं सुन्दर गायन का अभ्यास सुनाई पड़ रहा है। ऐसा लगता है कि आदरणीया हंसपदिका गायन का अभ्यास कर रही हैं।

राजा—तूष्णीं भव। यावदाकर्णयामि।

हिन्दी—राजा—शान्त रहिये। मैं सुन रहा हूँ।

(आकाशे गीयते।)

अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥ १ ॥

अन्वय—मधुकर, अभिनवमधुलोलुपः त्वं चूतमंजरीं तथा परिचुम्ब्य कमलवसतिमात्रनिर्वृतः एनां कथं विस्मृतः असि।

(आकाश में गाया जाता है)

हिन्दी—हे भ्रमर! नूतन मधु के लालची तुमने आम्र के बौर (मञ्जरी) को उस प्रकार (अर्थात् संतुष्टि पर्यन्त, चुम्बन करके (सम्प्रति) कमल में निवास मात्र से संतुष्ट (होकर) इस आम्रमञ्जरी को कैसे भुला दिया है।

संस्कृत व्याख्या—मधुकर—हे भ्रमर, अभिनव०—अभिनवे नूतने मधुनि पुष्परसे लोलुपः—लुब्धः, त्वम्—भवान्, आम्रमञ्जरीम्—रसालस्य मञ्जरीं वल्लरीम्, तथा—तेन प्रकारेण यथा ते मनस्तुष्टिर्भवेदिति शेषः, परिचुम्ब्य—सर्वतश्चुम्बित्वा, (साम्प्रतम्) कमल०—कमले जलजे या वसतिः निवासः तन्मात्रेण न तु पुष्परसस्य आस्वादनेन निर्वृतः—सन्तुष्टः सन्, कथं—केन प्रकारेण, विस्मृतः असि—न स्मरसि। यतोहि चिरं चुम्बनादिना यथारूचिमुपभुक्ताया अतएव जातस्नेहाया अस्या विस्मरणं सर्वथा तवानुचितं वर्तते। अत्र क्षिप्तिर्नाम गर्भाङ्ग तृतीयं पताकास्थानकञ्च स्तः। श्लोकेऽस्मिन् काव्यलिङ्ग अलंकारः, अपरवक्त्रं छन्दः ॥ १ ॥

टिप्पणी—कलविशुद्धायाः—कर्णप्रिय एवं सुन्दर (निर्दोष) यह पद 'गीतेः' का विशेषण है। स्वरसंयोगः—स्वरालाप। वर्णपरिचयम्—अभ्यास। अभिन०—अभिनवे मधूनि लोलुपः—तत्पु०। लोलुप—लोलुप् + अच् प्रत्यय। इस श्लोक में राजा दुष्यन्त की रानी हंसपदिका ने बड़े मनोहर ढंग से अप्रस्तुत प्रशंसा के माध्यम से राजा को उलाहना दिया है। यहाँ दुष्यन्त भ्रमर, शकुन्तला आम्रमंजरी और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्तःपुर की रानियाँ कमल रूप हैं। इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है क्योंकि यहाँ आम्रमंजरी के विस्मरण के कारण के रूप में 'कमलवसति' पद का उपन्यास किया गया है। काव्यलिंग का लक्षण— काव्यलिंग हेतोर्वाक्यपदार्थता॥ का० प्र०॥ यहाँ क्षिप्ति नामक गर्भाङ्ग तथा तृतीय पताका स्थातक है। इनका लक्षण—रहस्यार्थस्य तद्भेदः क्षिप्तिः स्यात्॥ सा० द०॥ अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्। शिलष्ट प्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते॥ सा० द०॥ छन्द अपरवक्त्र है। इसका लक्षण—अयुजि ननरला गुरुः समे। तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ। अभिनव मधु लोलुपः—Longing for fresh honey. परिचुम्ब्य चूत०—Having kissed the mango-blossom. एनां कथम् How is it ?—काले।

राजा—अहो, रागपरिवाहिणी गीतिः।

हिन्दी—राजा—अरे, क्या ही अनुराग को प्रवाहित करने वाली गीति है।

विदूषकः—किं तावद् गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः। (किं दाव गीदीए अवगओ अक्खरत्थो।)

हिन्दी—विदूषक—क्या आपने गाने के अर्थ को समझ लिया?

राजा—(स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि। सखे माधव्य, मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका। निपुणमुपालब्धोऽस्मीति।[१]

हिन्दी—राजा—(मुस्कराकर) इस व्यक्ति (हंसपदिका) के साथ एक ही बार प्रेम किया गया है। इसीलिए देवी वसुमती के विषय में इसकी महती उलाहना को (मैं) प्राप्त हुआ हूँ। मित्र माधव्य, मेरी आज्ञानुसार हंसपदिका से कहो कि उसने बड़ी चतुराई से मुझे उलाहना दिया है।

विदूषकः—यद् भवानाज्ञापयति। (उत्थाय) भो वयस्य, गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः। (जं भवं आणवेदि। भो वअस्स, गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए ताडीअमाणस्स अच्छराए वीदराअस्स विअ णत्थि दाणिं मे मोक्खो।)

हिन्दी—विदूषक—जो आपका आदेश। (उठकर) हे मित्र, उसके द्वारा दूसरी (दासियों) के हाथ चोटी पकड़वाकर ताडित होने वाले मेरे अप्सरागृहीत विरागी व्यक्ति की भाँति अब उद्धार (बचाव) नहीं होगा।

राजा—गच्छ। नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्।

हिन्दी—राजा—जाओ। शिष्ट की भाँति इसको समझाओ।

विदूषकः—का गतिः। (का गई।)

हिन्दी—विदूषक—अब बचाव ही क्या है।

(इति निष्क्रान्तः।)

(प्रस्थान)

१. माढव्य (नि०), उपालब्धाः स्म इति।—काले

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(आत्मगतम्) किं नु खलु गीतमेवंविधार्थमाकर्ण्येष्ट-जनविरहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) क्या कारण है कि इस प्रकार के अर्थवाले गीत को सुनकर प्रिय व्यक्ति के विरह के बिना भी अत्यधिक उद्विग्न हो गया हूँ।

अथवा

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ २ ॥

(इति पर्याकुलस्तिष्ठति।)

अन्वय—रम्याणि वीक्ष्य, मधुरान् शब्दान् निशम्य च, सुखितः अपि जन्तुः यत् पर्युत्सुकः भवति, तत् नूनं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि अबोधपूर्वं चेतसा स्मरति।

अथवा

हिन्दी—सुन्दर वस्तुओं को देखकर या मनोरम शब्दों को सुनकर एक प्रसन्नचित्त व्यक्ति भी जब उद्विग्न हो जाता है तब वह निश्चित रूप से (अपने अन्तस्थल में) संस्कार रूप में विद्यमान पूर्वजन्मों के प्रणयव्यापारों को ठीक-ठीक न जानते हुए भी अपने मन में स्मरण करता है ॥ २ ॥

(खिन्न अवस्था में बैठता है)

संस्कृत व्याख्या—रम्याणि—मनोहराणि वस्तूनि, वीक्ष्य—दृष्ट्वा, मधुरान्—श्रुतिसुखदान्, शब्दान्—संगीतादीन्, निशम्य—आकर्ण्य, सुखितः अपि—प्रियादिजनसंगतोऽपि, जन्तुः—प्राणिमात्रम्, यत्—यदा, पर्युत्सुकः—उत्कण्ठी, भवति—जायते, तद्—तदा, नूनम्—निश्चितरूपेण, भाव०—भावैः वासनाभिः स्थिराणि आत्मनिष्ठा नीति भावः, जन०—जननान्तराणाम् अन्यजन्मना सौहृदानि, अबोधपूर्वम्—अज्ञानपूर्वम्, चेतसा—मनसा, स्मरति—स्मरणं करोति। अत्र अप्रस्तुत प्रशंसा विभावना काव्यलिंग चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी—शिखण्डक—चोटी। का गतिः—यह मुहावरा है। इसका आशय—कोई चारा नहीं है, कोई बचाव नहीं ही है। कभी-कभी व्यक्ति बिना किसी कारण के अकस्मात् प्रसन्नता या दीनता का अनुभव करता है। लोक में बिना कारण के कार्य होना असम्भव है अतः अनुभूयमान सुख या दुःख का प्रत्यक्ष कारण दृष्टिगत न होने पर पूर्वजन्मकृत या पूर्वघटित सत्कर्म एवं असत्कर्म कारण के रूप में स्वीकार किया जाता है। यहाँ राजा के उपर्युक्त कथन से दुर्वासा शापाच्छादित जननान्तरीय अनुराग ध्वनित होता है। इस पद्य में पूर्वार्ध विशेष के द्वारा उत्तरार्ध सामान्य अर्थ के समर्थन के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा, बोधरूपी कारण के अभाव में भी स्मरण रूपी कार्य होने से विभावना तथा पूर्वार्ध में उत्तरार्द्ध के कारण होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है। इनका लक्षण—(१) अप्रस्तुत प्रशंसा स्यात्सा यत्र प्रस्तुतानुगा—चन्द्रलोक, (२) विभावना विनाऽपि स्यात् कारणं कार्यजन्मचेत् ॥ (३) स्यात् काव्यलिङ्ग वागर्थो नूतनार्थमर्पकः ॥ छन्द वसन्ततिलका है। लक्षण—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ वीक्ष्य मधुरां—Seeing charming objects, निशम्य शब्दान्—hearing agreeable sounds, चेतसा स्मरति—mentaly remembers, अबोधपूर्व—Without being conscious of the associating of past lives, जननान्त—remaining permanently impressed on the mind —Kale.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ततः प्रविशति कञ्चुकी।)

कञ्चुकी (क)—अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था॥ ३॥

अन्वय—राज्ञः अवरोधगृहेषु आचार इति अवहितेन मया या वेत्रयष्टिः गृहीता, सा एव बहुतिथे काले गते प्रस्थानविक्लवगतेः मम अवलम्बनार्था जाता।

(तदनन्तर कञ्चुकी प्रवेश करता है।)

हिन्दी—कञ्चुकी—अरे, मैं इस अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ।

राजा के अन्तःपुर में (यह) परम्परा है (ऐसा सोचकर) शक्तिसम्पन्न मेरे द्वारा जो बेंत की छड़ी ग्रहण की गयी थी, वहीं (बेंत की छड़ी) बहुत समय व्यतीत हो जाने पर चलने में लड़खड़ाती गति वाले मेरे लिए सहारे की वस्तु बन गयी है।

संस्कृत व्याख्या—राज्ञः—भूपतेः, अवरोधागृहेषु—अन्तःपुरेषु, आचार इति—कर्त्तव्यमिति मनसि विचार्य, अवहितेन—शक्तिसम्पन्नेन, मया—कञ्चुकिना, या वेत्रयष्टिः—वेत्रदण्डः, गृहीता—धृता, सा एव—आचार रूपेण गृहीता सैव वेत्रयष्टिः, बहुतिथे काले—बहूनांपूरणे बहुतिथे बहुसंख्यके काले आयुर्लक्षणे, गते—व्यतीते सति, प्रस्थान०—प्रस्थाने सञ्चारे विक्लवा वार्धक्यात् कम्पेन विह्वला गतिः गमनं यस्य तथा भूतस्य, मम—मादृशः कंचुकिनः, अवलम्बनार्था—अवलम्बनम् आश्रयः-अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा, जाता—अभूत्। काव्यलिंङ्ग विशेषः समाधिश्चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्। वेत्रयष्टिः—staff, अवरोध गृहे०—in the harem of the king, काले गते—after the lapse of considerable time, सैव जाता—serves me as a support, प्रस्थान विक्ल०—Whose gait falters while walking.—Kale.

टिप्पणी—कञ्चुकी—यह नाट्यशास्त्र का पारिभाषिक है। यह राजा के अन्तःपुर की रानियों के अंगरक्षक के रूप में कार्य करता है। कञ्चुक (लम्बा चोंगा (कुर्ता))धारण करने के कारण इसका नाम कञ्चुकी है। यह सात्त्विक तथा वृद्धब्राह्मण होता है। इसका लक्षण—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणाम्वितः।
सर्वकार्यार्थ कुशलः कंचुकीत्यमिन्धीयते॥ नाट्यशास्त्र॥

आचार इति—इस शब्द से परम्परा की ओर संकेत किया गया है। राजा के अन्तःपुर में कंचुकी के पद पर नियुक्त होने वाले व्यक्ति को छड़ी धारण करनी पड़ती है। चाहे वह पूर्णस्वस्थ ही क्यों न हो। **अवरोध०**—अवरुध्यन्ते राजदाराः यत्र इति अवरोधगृहेषु। **बहुतिथे**—बहु शब्द से पूरण (पूर्ति) अर्थ में बहुपूगगण० (५/५/५२) सूत्र से 'तिथुक्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न है। इस श्लोक में अधिक समय का बीतना लड़खड़ाने का कारण होने से, एक वेत्रयष्टि के अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होने से तथा वृद्धावस्था में छड़ी के सहायक होने से क्रमशः काव्यलिंङ्ग, विशेष एवं समाधि अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

(ख) भोः, कामं धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निवेदयितुम्। अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। कुतः—

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव, रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति ।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥४॥

अन्वय—भानुः सकृद्युक्ततुरङ्गः एव। गन्धवहः रात्रिदिवं प्रयाति। शेषः सदैव आहितभूमिभारः। षष्ठांशवृत्तेः अपि एष धर्मः।

हिन्दी—(ख) अरे, माना कि महाराज को धार्मिक कर्तव्यों में विलम्ब नहीं करना चाहिए तथापि अभी-अभी धर्मासन से उठे हुए महाराज से (विश्रामकार्य में) विघ्नकारी कण्व के शिष्यों के आगमन को बताने में मैं समर्थ नहीं हूँ। अथवा यह प्रजापालन रूप कर्म विश्राम रहित है। क्योंकि—

सूर्य एक ही बार रथ में घोड़ों को (सदैव गतिशील रहने के लिए) नाधता (संयुक्त करता) है। वायु दिन रात चलती रहती है। शेषनाग सदैव पृथिवी का भार वहन किये रहता है। (प्रजा से कर के रूप में उपज का) छठाँ भाग लेने वाले राजा का भी यही धर्म है (कि वह सदा प्रजा के कार्य में लगा रहे)।

संस्कृत व्याख्या—भानुः—सूर्यः, सकृत्—एकबारमेव, युक्त०—युक्ताः रथे योजिताः तुरङ्गाः येन तथाभूतः, गन्धवहः—वायुः, रात्रिदिवं—नक्तन्दिवम्, प्रयाति—प्रवहति, शेषः—सर्पराजः, सदैव—सततम्, आहित०—आहितः निहितः भूमि भारो येन तथाभूतः धृतवसुन्धरा भारः, षष्ठांश०—षष्ठांशः रक्षाशुल्कषड्भागः वृत्तिर्जीवनं यस्य तथा भूतस्य राज्ञः, एषःलोकतन्त्राधिकारे विश्रमाभावः, धर्मः—कर्तव्यमस्ति। अथ मालाप्रतिवस्तूपमालङ्कारः, दुष्यन्तस्येति विशेषे वक्तव्ये सामान्येनाभिधानादप्रस्तुत प्रशंसाच, इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

टिप्पणी—अनतिपात्यम्—न + अति + पत् + णिच् + यत् विलम्ब नहीं करना चाहिए। **अविश्रमः**—वि + श्रम् + घञ्, नोदात्तोपदेशस्य० (७/३/३४) से श्रम के अ को वृद्धि का निषेध। फलतः अविश्रमः रूप ही पाणिनि के अनुसार शुद्ध है न कि अविश्राम। **सकृद०**—सकृद् युक्ताः अश्वाः येन सः—बहु०। **आहित०**—आहितः भूमिभारः येन सः—बहु०। **षष्ठांश०**—षष्ठांशः वृत्तिः यस्य सः—बहु०। इस श्लोक में सकृद्युक्त, रात्रिन्दिव एवं सदैव से अविश्रमः का ही भाव व्यक्त किया गया है अतः मालाप्रतिवस्तूपमा अलंकार है। इसके अतिरिक्त यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा भाव क्योंकि विशेष दुष्यन्त के स्थान पर यहाँ सामान्य राजा का उल्लेख किया गया है। छन्द इन्द्रवज्रा है। सकृद्युक्त तुरंग—The sun has his courses yaked once for all, शेषः सदैव—Se sha unintermittently bears the burden of the Earth, षष्ठांशवृत्तेरपि—This is the duty of him who claims the sixth part.—Kale.

(ग) यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एष देवः—

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते श्रान्तमना विविक्तम् ।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः
शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy Kathmandu Collection

(उपगम्य) जयतु जयतु देव! एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसन्देशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः। श्रुत्वा दवः प्रणाम्।

अन्वय—स्वाः प्रजाः इव प्रजाः तन्त्रयित्वा श्रान्तमनाः, दिवा यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः द्विपेन्द्रः शीतं स्थानम् इव विविक्तं निषेवते।

हिन्दी—मैं अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ। (घूमकर और देखकर) यह महाराज—

अपनी सन्तति की तरह प्रजाजनों को अनुशासित करके थकानयुक्त मन वाले होकर उसी प्रकार एकान्त का सेवन कर रहे हैं जिस प्रकार दिन में अपने समूह को इधर-उधर (विभिन्न दिशाओं में) भेजकर धूप संतप्त गजराज शीतल स्थान का सेवन करता है।

(पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो। ये हिमालय की तराई के जंगल में निवास करने वाले तपस्वी लोग स्त्रियों के साथ कण्व का संदेश लेकर आए हैं। सुनकर आप ही प्रमाण है (अर्थात् आगे क्या करना इस आशय का आदेश देने में समर्थ हैं)।

संस्कृत व्याख्या—स्वाः प्रजाः इव—स्वकीयाः सन्ततयः इव, प्रजाः—प्रजाजनान्, तन्त्रयित्वा—अनुशासने कृत्वा, सम्यक् व्यवस्थाप्य इत्यर्थः, श्रान्तमनाः—क्लान्तमनाः, दिवा—दिवसे, यूथानि—गजसमूहान्, संचार्य—इतस्ततःसंप्रेष्य, रवि प्रतप्तः—सूर्यसंतप्तः, शीतं—शीतलम्, स्थानम्—प्रदेशम्, इव—यथा, विविक्तम्—निर्जनम् एकान्तमित्यर्थः, निषेवते—सेवते। अत्र यमकउपमा चालंकारौ। उपजाति वृत्तम्।

टिप्पणी—**श्रान्तमनाः**—श्रान्तं मनः यस्य सः—बहु०। **रविप्रतप्तः**—रविणः प्रतप्तः—तत्पु०। **द्विपेन्द्रः**—द्विपानाम् इन्द्रः—तत्पु०। **देवःप्रमाणम्**—यह मुहावरा है। इस विषय में आप प्रमाण है अर्थात् आप ही बताइए कि आगे क्या करणीय है। यहाँ 'प्रजाः प्रजाः' में यमक अलंकार तथा 'इव' पद के कारण उपमा अलंकार है क्योंकि यहाँ राजा की उपमा गजराज से दी गयी है। इस श्लोक में पाठभेद भी मिलता है। श्रान्तमनाः के स्थान पर निर्णयसागर संस्करण में 'अशान्तमनाः' मिलता है। उपेन्द्रवज्रा एवं इन्द्रवज्रा के मिश्रण से यहाँ उपजाति नामक छन्द है। निषेवते—Enjoying solitude, शान्तमना—with a wearied soul, प्रजा तन्त्रयित्वा—governed his subjects as if they were his children, द्विपेन्द्रः—elephant-lord, संचार्य—reposing in a cool place, having led his herds during day-time.—Kale.

राजा—(सादरम्) किं काश्यपसन्देशहारिणः।

हिन्दी—राजा(आदरपूर्वक) क्या काश्यप का सन्देश लाए हैं?

कञ्चुकी—अथ किम्।

हिन्दी—कञ्चुकी—जी हाँ।

राजा—तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः। अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसीति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

हिन्दी—राजा—तो मेरे कथनानुसार उपाध्याय सोमरात से कहना कि इन आश्रमवासियों का वैदिक विधि से सत्कार करके स्वयं मेरे पास लावें। मैं भी तपस्वियों के दर्शन के लिए उपयुक्त इस स्थान पर स्थित होकर प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान)

राजा—(उत्थाय) वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय।

हिन्दी—राजा—(उठकर) वेत्रवति, अग्निशाला का मार्ग निर्देशित करो।

प्रतीहारी—इत इतो देवः। (इदो इदो देवो।)

हिन्दी—प्रतीहारी—महाराज इधर से (जाइए) इधर से।

राजा—(परिक्रामति। अधिकारखेदं निरूप्य।) सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव।

हिन्दी—राजा—(चारो ओर घूमता है। अपने अधिकार के दुःख का अभिनय करता हुआ) सभी प्राणी अपनी मनोवाञ्छित वस्तु को प्राप्त करके सुखी हो जाते हैं। परन्तु राजा की सफलता दुःखप्रधान ही होती है।

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ६ ॥

अन्वय—प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् अवसाययति। लब्धपरिपालनवृत्तिः क्लिश्नाति एव। राज्यम् इव स्वहस्तधृतदण्डम् आतपत्रम् अतिश्रमापनयनाय न, यथा श्रमाय।

हिन्दी—प्रतिष्ठा (बड़े पद की प्राप्ति) केवल उत्कण्ठा को समाप्त करती है। प्राप्त प्रतिष्ठा की रक्षा इसको (राजा आदि व्यक्ति को) क्लेशित करती है। अपने हाथ में धारण किए गए दण्डवाले छाते की तरह राज्य न तो आत्यन्तिक श्रमनिवृत्ति के लिए होता है और न ही श्रम के लिए (होता है)।

संस्कृत व्याख्या—प्रतिष्ठा—उच्चपद प्राप्तिः, औत्सुक्यमात्रम्—उत्कण्ठामात्रम्, अवसाययति—समापयति, लब्ध०—लब्धस्य प्राप्तस्य परिपालने रक्षणे या वृत्तिः व्यापारः तच्चिन्तया सर्वरात्रिजागरणमित्यर्थः, एनं राजानाम्, क्लिश्नाति—दुःखी करोति, अतः राज्यम्—प्रजारञ्जनकार्यम्, स्वहस्त०—स्वहस्ते स्वकीये हस्ते धृतो दण्डो यस्य तथाविधम्, आतपत्रमिव—छत्रमिव, न अतिश्रमापनयनाय—अति अत्यन्तं य श्रमः तस्य अपनयनाय दूरीकरणाय न प्रभवति, अहर्निशम अखिल प्रजा विषयक विनयाधान रक्षाभरण चिन्तायां जागरूकत्या विद्यमानत्वादिति भावः, श्रमाय अपि न—राज्य लाभोत्कण्ठायाः निवृत्तेरिति भावः, अतः यथा वर्षातपस्पर्शजनित दुःखनिरसनाय आतपत्रधारणे वहन परिश्रमो वर्षातपादिस्पर्श रहित सुखञ्च भवति तथैव राज्यलाभेऽपि असाधारण—सुखानुभवः, तद्ररक्षणचिन्तया च सर्वरात्रजागरणादि—रूप दुःखानुभवश्च भवतीत्यर्थः। अत्र उपमानुमानयोः अङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः विरोधाभासः श्लेषः काव्यलिङ्गश्चालंकाराः। वसन्ततिलकं छन्दः। प्रतिष्ठा—Supreme power, अवसाययति—relieve fervent longing, क्लिश०—The task of protecting harasses, स्वहस्तधृतदण्ड—A kingdom, like an umbrella is not so much for removal of fatigue, as for fatigue—Kale.

टिप्पणी—प्रतिहारी—द्वारपालिका, प्रस्तुत श्लोक में बड़े सहज ढंग से यह बताया गया है कि उच्चपद प्राप्ति केवल व्यक्ति की उच्च पद पाने की महत्त्वाकांक्षा को समाप्त करती है। प्राप्त पद या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अधिकार को बनाये रखने में व्यक्ति को कष्ट उठाना पड़ता है। राज्य प्राप्ति भी एक महत्त्वाकांक्षा है। इसके मिल जाने पर व्यक्ति की राज्य को पाने की इच्छा तो समाप्त हो जाती है परन्तु राज्य को बनाये रखने में उसको कष्ट उठाना पड़ता है इसलिए कवि ने राज्य की उपमा अपने हाथ में धारण किये गए दण्ड वाले छाते से दी है। इससे जहाँ एक ओर व्यक्ति को धूप वर्षादि से राहत मिलती है वहीं हाथ में पकड़े रहने से कष्ट भी होता है। प्रस्तुत श्लोक का पाठ निर्णय सागर संस्करणानुसार है। कहीं-कहीं तृतीय पंक्ति-नातिश्रमापनाप यथा श्रमाय के रूप में प्राप्त होती है। यहाँ राज्य के श्रमापनय तथा श्रमजनक होने के कारण अनुमानालंकार है। राज्य की उपमा स्वहस्तधृत छत्र से दी गयी है। अतः उपमालंकार ही यहाँ इन दोनों का अंगागिभाव है। फलतः सङ्कर अलंकार है। इसी प्रकार यहाँ प्रतिष्ठा दण्ड आदि शब्द के श्लिष्ट होने के कारण श्लेष अलंकार है। लब्धपरिपालनवृत्ति क्लेश का कारण है। इसलिए काव्यलिंग अलंकार है राज्य न तो श्रम दूर करने वाला है और न ही श्रम देने वाला है। अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है। इस प्रकार 'नातिश्रमापनयनाय न श्रमाय' में अनुप्रास अलंकार भी है। छन्द वसन्ततिलका है।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

वैतालिकौ—विजयतां देवः।

हिन्दी—दो स्तुतिपाठक—महाराज की जय हो।

प्रथमः—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥ ७ ॥

अन्वय—स्वसुखनिरभिलाषः लोकहेतोः प्रतिदिनं खिद्यसे। अथवा ते वृत्तिः एवंविधा एव। हि पादपः मूर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति, छायया संश्रितानां परितापं शमयति।

हिन्दी—पहला—अपने सुख की इच्छा न करते हुए (आप) प्रतिदिन प्रजा के लिए कष्ट उठाते हैं। अथवा आपकी कार्यप्रणाली ऐसी ही है। क्योंकि वृक्ष सिर से प्रचण्ड धूप का अनुभव करता है, परन्तु छाया द्वारा अपने आश्रम में (पेड़ के नीचे) बैठे हुए लोगों के सन्ताप को रोकता है।

संस्कृत व्याख्या—स्वसुख०—स्वस्य स्वकीयस्य सुखेषु आनन्देषु निरभिलाषः निर्गता अभिलाषा यस्य तथाभूतः, लोकहेतोः—प्रजाहेतोः, प्रतिदिनम्—दिनं दिनम्, खिद्यसे—खेदमनुभवसि, अथवा ते—स्वार्थरहितस्य तवराज्ञः, वृत्तिः—कार्यव्यापारः, एवंविधाएव—ईदृश्येव अर्थात् परतापशमनार्थमेव ते जीवनं न स्वार्थसाधनायेति भावः। हि—यतः, पादपः—वृक्षः, मूर्ध्ना—शिरोभागेन, तीव्रम्—प्रचण्डम्, उष्णम्—सूर्यातपम्, अनुभवति—स्वयं सहते, किन्तु छायया—आतपाभावेन परिपालनेन च, संश्रितानाम्—आश्रितानाम्, परितापम्—सूर्यसन्तापम्, कष्टं शमयति—निवारयति। समासोक्तिः काव्यलिङ्गमाक्षेपो दृष्टान्तश्चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी—इस श्लोक में राजा की उपमा अप्रकट रूप से वृक्ष से दी गयी है। क्योंकि जैसे वृक्ष सूर्य की किरणों को सहन करते हुए आश्रितों की रक्षा करता है वैसे राजा भी अपने सुख की चिन्ता न करते हुए प्रजाजनों को क्लेश रहित करने में लगा रहता है। इसमें उसे हर प्रकार के कष्टों को भोगना पड़ता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वैतालिक ने इस भाव को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। वैतालिक चारण या भाट को कहते हैं। इनका कार्य समय-समय पर राजा की प्रशंसा या स्तुति करना होता है। इससे राजा में एक नवीन चेतना का संचार हो जाता है। वैतालिक शब्द 'विताल' शब्द से निष्पन्न है। विताल एक गान विद्या है। इस प्रकार वितालगान जिनका शिल्प है या विताल जिनका प्रयोजन है, उसे वैतालिक कहते हैं। यह शब्द विताल + ठक् प्रत्यय से निष्पन्न है। **स्वसुख०**—स्वसुखे निरभिलाषः इति स्वसुखनिरभिलाषः—तत्पु०। **खिद्यसे**—यह दिवादिगणी आत्मनेपदी धातु है लट्लकार म० पु० एक० का रूप है। इस श्लोक में वृक्ष पर सज्जन का आरोप होने से समासोक्ति, छाया के तापशान्ति का कारण होने से काव्यलिङ्ग, अथवा शब्द से पूर्व बात का निषेध जैसा होने से आक्षेपतया उत्तरार्ध में बिम्बप्रति बिम्बभाव होने से दृष्टान्त अलंकार। मालिनी छन्द है। स्वसुखनिरभिलाषः—regardless of personal comfort, खिद्यते—toil, वृत्तिरेवं—it is your daily course, पादपः—the tree suffers burning heat, उष्णमनुभवति शमयति परितापं—by its shade, it allays the pain of those who resorting to it.—Kale.

द्वितीय :—

नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥८॥

अन्वय—आत्तदण्डः विमार्गप्रस्थितान् नियमयसि, विवादं प्रशमयसि, रक्षणाय कल्पसे। अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम, प्रजानां बन्धुकृत्यं तु त्वयि परिसमाप्तम्।

हिन्दी—दूसरा—राजदण्ड को ग्रहण करके आप कुमार्ग पर चलने वालों को रोकते हैं, विवाद को शान्त करते हैं, (प्रजाजनों की) रक्षा करते हैं। प्रभूत समृद्धि से युक्त हो जाने पर भले ही (प्रजाजनों के) अनेक सगे सम्बन्धी बन जायें परन्तु प्रजा का बन्धुकार्य (सचमुच) आप में ही पूर्ण होता है।

संस्कृत व्याख्या—आत्तदण्डः—आत्तः धृतः दण्डः राजदण्डः येन सः, कुमार्ग—कुत्सितः मार्गः कुमार्गः तत्र प्रस्थिताः तान्—अन्यायपथ वर्त्तिन इत्यर्थः, नियमयसि—नियमनं करोषि, विवादम्—परस्परकलहम्, प्रशमयसि—शमं नयसि, रक्षणाय—परिपालनाय, कल्पसे—समर्थो भवसि, अतनुषु—प्रचुरेषु, विभवेषु—ऐश्वर्येषु, ज्ञातयः—स्वसम्बन्धिनः, सन्तु—भवन्तुनाम, तु—परन्तु, प्रजानाम्—प्रकृतिजनानाम्, बन्धुकृत्यम्—बन्धूनां ज्येष्ठबन्धूनांकृत्यं कुमार्ग नियमनमिष्टप्रापणादिकं कर्म, त्वयि—भवति एव, परिसमाप्तम्—पूर्णतया सम्पन्नं भवति। व्यतिरेकः काव्यलिङ्ग दीपकं चालंकाराः। मालनी वृत्तम्।

टिप्पणी—प्रस्तुत श्लोक में राजा के कर्तव्य पर प्रकाश डाला गया है। उसका प्रथम कार्य शास्त्र विरुद्ध मार्ग पर चलने वालों को रोकना है। दूसरा कार्य प्रजाजनों का विवाद समाप्त करना है। तीसरा कार्य प्रजाओं की रक्षा करना है। इन सबसे बड़ा उसका बान्धव कार्य है क्योंकि अमीर गरीब सभी के प्रति राजा का समान दायित्व होता है। सगे सम्बन्धी तो सम्पत्ति आने पर साथ देते हैं विपत्ति आने पर कोई दिखलाई नहीं पड़ता है। राजा सम्पत्ति-विपत्ति सभी में बराबर प्रजाजनों के साथ रहता है इसलिए प्रजाओं का वास्तविक बन्धु राजा ही होता है। भृगुसंहिता में कहा भी गया है—

तदर्थं सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मते जो भयं दण्डमसृजत्परमेश्वरः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस श्लोक में निजी बन्धुओं की तुलना में राजा को श्रेष्ठ बन्धु कहने से, उत्तरार्द्ध के प्रति पूर्वार्ध के कारण रूप होने से तथा नियमयसि, प्रशमयसि, कल्पसे क्रियाओं का कर्ता त्वम् होने से क्रमशः व्यतिरेक, काव्यलिंग एवं दीपक अलंकार है। मालिनी छन्द है। नियमयसि—you restrain those who follow the wrong path, प्रशमयसि—put down, कल्पसे रक्षणाय—you are competent to protect, अतनुषु—plentiful, ज्ञातम—relations, परिसमाप्तं—in you are consummated the duties of the kinsmen of the subjects.—Kale.

राजा—एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः।
(इति परिक्रामति।)

हिन्दी—राजा—खिन्न मन वाला मैं पुनः उत्साहित हो गया हूँ। (चारों ओर घूमता है।)

प्रतीहारी—एषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः। (एसो अहिणवसम्मज्जणसस्सिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दो। आरोहदु देवो।)

हिन्दी—प्रतीहारी—तत्काल लीपे जाने से सुन्दर एवं होमधेनु से युक्त यह अग्निशाला का चबूतरा (आलिन्द) है। महाराज (इसपर) चढ़िये।

राजा—(आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति।) वेत्रवति, किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः।

हिन्दी—राजा—(अग्निशाला के चबूतरे पर चढ़कर सेविका के कन्धे का सहारा लेकर) वेत्रवति, किसलिए भगवान् काश्यप ने ऋषियों को मेरे पास भेजा होगा।

किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ ९॥

अन्वय—किं तावद् उपोढतपसां व्रतिनां तपः विघ्नैः दूषितम्। उत धर्मारण्यचरेषु प्राणिषु केनचित् असत् चेष्टितम्। आहोस्वित् मम अपचरितैः वीरुधां प्रसवः विष्टम्भितः, इति आरूढबहुप्रतर्कं मे मनः अपरिच्छेदाकुलम्।

हिन्दी—क्या उग्रतपस्या वाले ऋषियों की तपस्या विघ्नों से दूषित हो गयी है ? अथवा आश्रम में विचरण करने वाले प्राणियों के प्रति किसी ने अभद्र व्यवहार किया है ? अथवा मेरे असदाचरण से लताओं में फल-पुष्प (आना) बन्द हो गया है ? इस प्रकार अनेक शंकाओं से ग्रस्त मेरा मन (तपस्वियों के आगमन के कारण का) निर्णय न कर पाने के कारण क्षुब्ध हो रहा है।

संस्कृत व्याख्या—किं तावत्—किमिति वितर्के, उपो०—उपोढम् अत्यूढम् अधिकम् इत्यर्थः तपो येषां सम्प्राप्त तपसामित्यर्थः, व्रतिनाम्-तपस्विनाम्, तपः—नियमप्रतिबन्धकाः तैः, दूषितम्—विनाशितम्, उत—अथवा, धर्मा०—तपोवन विहारिषु, प्राणिषु—जन्तुषु, केनचित्—केनचिज्जनेन, असत्—अभद्र व्यवहारम्, चेष्टितम्—कृतम् (किम्), आहोस्वित्—उत, मम—गम राज्ञः दुष्यन्तस्येत्यर्थः, अपचरितैः—दुराचरणैः, विरुधाम्—लतानाम् आश्रम वनस्पतीनामित्यर्थः, प्रसवः—पुष्पफलादिः, विष्टम्भितः—निरुद्धः इति—एवं प्रकारेण, आरूढ०—आरूढः उत्पन्नः बहवः अनेक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विधः प्रतर्कः विचारः यस्मिन् तथा भूतम्, मे मनः—मदीयं मनः, अपरि०—अपरिच्छेदेन अनिर्णयेन आकुलं क्षुब्धं भवतीति शेषः। अत्र छेकानुवृत्तिश्रुत्यनुप्रास काव्यलिङ्गमलंकाराः। शार्दूल विक्रीडितं वृत्तम्। व्रतीनां—ascetics अपचरितैः—has been withheld by my misdeeds, आकुलं मे मनः—my mind is perplexed through its inability to decide.—Kale.

टिप्पणी—अपचरितैः—दुराचरण से। पहले राज्य में जो कुछ शुभ एवं अशुभ घटित होता था उसका कारण राजा का आचरण माना जाता था। इस सम्बन्ध में शास्त्र वचन है—राज्ञोऽपचारात्पृथिवी स्वल्पसस्या भवेत्किल। अल्पायुषः प्रजाः सर्वाः दरिद्राः व्याधिपीडिताः॥ **वीरुधाम्**—लताओं का अमरकोष में वीरुध् के लिए वीरुत् शब्द का प्रयोग किया गया है (द्र० अमरकोष—२/४/६)। **प्रसवः**—फलपुष्पोद्भव पुष्पं फलं च पत्रं च वृक्षाणां प्रसवः विदुः इति धरणिः। **आरूढ०**—आरूढः बहुः प्रतर्कः यस्मिन् तत्-बहु०। **अपरि०**—न परिच्छेदः इति अपरिच्छेदः तेन आकुलम्-तत्पु०, निश्चय न कर पाने से व्याकुल। इस श्लोक में 'तपो विघ्नैः दूषितम्' में साध्यवसाना लक्षणा है। राक्षसादैः—इससे यहाँ विघ्नातिशय व्यक्त होता है। यहाँ तप तप इति (उपोढतपसां.......तपो) तथा स्विसवः (आहोस्वित्.......प्रसवः) में छेकवृत्तिश्रुत्यनुप्रास है। इसी प्रकार उत्पन्न अनेक विचार व्याकुलता के कारण है अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है। लक्षण निम्नवत् हैं—

१. छेको व्यञ्जन संघस्य सकृत्साम्यमनेकधा
२. अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदप्येव वृत्त्यनुप्रास उच्यते ॥
३. उच्चार्य त्वाछदेकच स्थाने तालुरदादिके ।
सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ॥
४. हेतोर्वाक्य पदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते ॥ सा० द० ॥

प्रतीहारी—सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि। (सुचरिदणन्दिणो इसीओ देवं सभाजइदुं आअदेत्ति तक्केमि।)

हिन्दी—प्रतीहारी—सदाचार की प्रशंसा करने वाले ऋषिगण देव को सम्मानित करने आए हैं—ऐसा मैं समझती हूँ।

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः। पुरश्चैषां कञ्चुकी पुरोहितश्च।)

(तदनन्तर शकुन्तला को आगे करके गौतमी सहित मुनि लोग प्रवेश करते हैं। उनके आगे कञ्चुकी और पुरोहित (चलते हैं)।)

कञ्चुकी—इत इतो भवन्तः।

हिन्दी—कञ्चुकी—आप लोग इधर से, इधर से (आइये)।

शार्ङ्गरवः—शारद्वत,
महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद् वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते ।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ॥१०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—कामम् अभिन्नस्थितिः असौ नरपतिः महाभागः, वर्णानाम् अपकृष्टः अपि कश्चिद् अपथं न भजते। तथापि शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा जनाकीर्णम् इदं हुतवहपरीतं गृहम् इव मन्ये।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—शारद्वत्

भले ही मर्यादापालक ये राजा (दुष्यन्त) महाभाग्यशाली हैं, (इनके राज्य में) वर्णों में (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र संज्ञक वर्णों में) कोई निकृष्ट (निम्न कोटि का) प्राणी भी शास्त्र विपरीत मार्ग का अनुसरण नहीं करता है तथापि निरन्तर एकान्त का अभ्यास करने वाले मन से मैं लोगों से भरे हुए इस राजभवन को अग्नि से घिरा हुआ समझता हूँ।

संस्कृत व्याख्या—कामम्—यद्यपि, मतमेतत् मयाइत्यर्थः, अभिन्न स्थितिः—न भिन्न न त्यक्ता स्थितिः मर्यादा येन सः, असौ—पुरो दृष्यमानः, नरपतिः—राजा दुष्यन्तः, महाभागः—महाभाग्य श्रेष्ठः इत्यर्थः, (तथाअस्यशासने राज्ये वा) वर्णानाम्—ब्राह्मणादिवर्णानां मध्ये, अपकृष्टः अपि—दीनः अपि, कश्चित्—कस्चिज्जनः अपथम्—शास्त्रविपरीतमार्गम्, नभजते—न आश्रयति तथापि—एवं मर्यादापालके राजनि सत्यपि, शश्वतः—शश्वत् निरन्तरं परिचितम् अभ्यस्तं, विविक्तम्—एकान्तं येन तथोक्तेन मनसा चित्तेन उपलक्षितः, अहम्—शार्ङ्गरवः, जनाकीर्णम्—जनैः विविधसेवकाधिकारिभिः आकीर्णं व्याप्तम्, इदम्—राजभवनम्, हुतवहपरीतम्—हुतवहेन अग्निना परीतं परिगतम्, गृहमिव—भवनमिव, मन्ये—जानामि। सदा एकान्ते वसनेयं अकस्मात् प्रजासङ्कुलं राजगृहमवलोक्य विस्मितोऽभवदित्यर्थः। अत्र उपमा विभावना विशेषोक्तिः सन्देहसङ्करश्चालंकाराः शिखरिणीवृत्तम्।

टिप्पणी—इस श्लोक में वक्ता का वैराग्य ध्वनित होता है। अभिन्न स्थितिः—मर्यादारक्षक। न भिन्ना स्थितिः येन सः—बहु०। शश्वत्०—निरन्तर एकान्त का अभ्यस्त। शश्वत् परिचितं विविक्तं येन तथोक्तेन—बहु०। जनाकीर्णम्—जनैः आकीर्णम्—तत्पु०। इस पद्य में हुतवहपरीतं गृहमिव में उपमा, हुतवहपरीतत्त्व रूप कार्य का कारण न होने से विभावना, हुतवहपरीतत्त्व अप कार्य के विपरीत कारण सामग्री के होने से तादृशकार्याभाव से विशेषोक्ति तथा साधक बाधक प्रमाण होने से संदेहसङ्कर अलंकार है। शिखरिणी वृत्त है। 'इव' से उत्प्रेक्षा नहीं मानना चाहिए क्योंकि यहाँ 'इव' शब्द संभावना अर्थ में नहीं अपितु 'वितर्क' अर्थ में है।

शारद्वतः—स्थाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि ॥ ११ ॥

अन्वय—सुखसङ्गिनं जनं स्नातः अभ्यक्तम् इव, शुचिः अशुचिम् इव, प्रबुद्धः सुप्तम् इव, स्वैरगतिः बद्धम् इव, अवैमि।

हिन्दी—शारद्वत—मैं मानता हूँ कि आप नगर में प्रवेश करने से ऐसे हो गए हैं। मैं भी—यहाँ सुखासक्त लोगों को उसी प्रकार मानता हूँ जैसे स्नान किया हुआ व्यक्ति तेल लगाये हुए (व्यक्ति) को, पवित्र अपवित्र को, जागा हुआ व्यक्ति सुप्त व्यक्ति को तथा स्वच्छन्दगामी व्यक्ति बद्ध व्यक्ति को समझता है।

संस्कृत व्याख्या—इह—राजभवने नगर्यां वा, सुख०—विषयोपभोगनिरतम्, जनम्—जनसमूहम्, स्नातः—कृतस्नानः जनः, अभ्यक्तमिव—तैलाभ्यक्तं जनमिव, शुचिः—सद्वृत्तः, अशुचिमिव—अपवित्रमिव, प्रबुद्धः—जागरितः, सुप्तमिव—शयितमिव, स्वैरगतिः—स्वच्छन्दगतिः, बद्धमिव—कारागृहवासिनमिव, अवैमि—जानामि मन्ये इत्यर्थः। मालोपमालंकारः। आर्या जातिः।

टिप्पणी—इस श्लोक में ध्वनि की प्रधानता है। स्नातः अभ्यक्तमिव से पापसम्बन्ध, शुचिः अशुचिमिव से पत्न्यादि में स्नेहातिशय, प्रबुद्धः सुप्तमिव से अज्ञान पूर्णता तथा स्वैरगतिः बद्धमिव से मोक्षपथ प्राप्ति विरतत्व ध्वनित होता है। यह शारद्वत् का नगरवासियों के प्रति व्यक्त किया गया विचार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। इससे यह ज्ञात होता है कि एकान्त का अभ्यस्त व्यक्ति जब भीड़भाड़ में पहुँच जाता है तो उसे अजीब सा लगता है। एक सुखसंगी के अनेक उपमान होने से यहाँ मालोपमा अलंकार है। आर्या छन्द है। लक्षण—मालोपमा यदेकस्योपमानं बहुदृश्यते। सा० द०।

शकुन्तला—(निमित्तं सूचयित्वा) अहो, किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति (अम्महे, किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि)

हिन्दी—शकुन्तला—(निमित्त को सूचितकर) अरे, मेरा दायाँ नेत्र क्यों फड़क रहा है?

गौतमी—जाते, प्रतिहतममङ्गलम्। सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु। (जादे, पडिहदं अमंगलं। सुहाई दे भत्तुकुलदेवदाओ वितरन्दु।) **(इति परिक्रामति।)**

हिन्दी—गौतमी—पुत्रि! अमङ्गल दूर हो। पतिकुल देवता तुम्हें सुख प्रदान करें। (चारों ओर घूमती है।)

पुरोहितः—(राजानं निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विनः, असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

हिन्दी—पुरोहित—(राजा को लक्ष्य करके) हे हे तपस्वियों! वर्णाश्रमव्यवस्था के रक्षक एवं पूज्य ये (दुष्यन्त) अपना आसन छोड़कर पहले से ही आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप लोग इन्हें देखिये।

शार्ङ्गरवः—भो महाब्राह्मण, काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ १२ ॥

अन्वय—तरवः फलागमैः नम्राः भवन्ति। घनाः नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति)। सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति)। एषः परोपकारिणां स्वभावः एव।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—हे पुरोहित! भले ही (राजा का) यह, (आचरण) प्रशंसा के योग्य है परन्तु हम इस विषय में उदासीन हैं। क्योंकि—

वृक्ष फल के आगमन से झुक जाते हैं। मेघ नूतन जल से लटक जाते हैं। सज्जन समृद्धि से विनम्र हो जाते हैं। (क्योंकि) परोपकारियों का यह स्वभाव ही होता है।

संस्कृत व्याख्या—तरवः—वृक्षाः, फलागमैः—फलप्राप्तिभिः, नम्राः—विनीताः, भवन्ति। घनाः—पयोधराः, नवाम्बुभिः—नूतनजलकणैः, दूरविलम्बिनः—दूरं पृथिवीसमीपं यावत् विलम्बन्ते अधो गच्छन्तीति तच्छीलाः अतिशय वर्षुकाः भवन्ति। सत्पुरुषाः—सज्जनाः, समृद्धिभिः—धनधान्यैः, अनुद्धताः—अतिशय विनम्राः भवन्ति। (यतः) परोपकारिणाम्—परोपकारनिरतानाम्, स्वभावः—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकृतिः, एष एव—अयमेव भवतीतिशेषः। अतिशयोक्ति, दीपक, माला प्रतिवस्तूपमाऽप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

टिप्पणी—इस पद्य में परोपकारियों के स्वभाव का वर्णन किया गया है। फलागमैः—फलानाम् आ समन्तात् गमः प्राप्ति : तैः—तत्पु०। दूरलम्बिनः—दूरं विलम्बन्ते इति, दूर + वि + लम्ब + णिनि—प्र० बहु०। परोपकारिणाम्—परेषां उपकुवन्तीति, पर + उप + कृ + णिनि—ष० बहु०। यहाँ फलागमैः से वृक्षों की समृद्धि पराकाष्ठा तथा 'दूरविलम्बिनः' से वर्षारम्भ ध्वनित होता है। अचेतन वृक्ष एवं मेघ में चेतन धर्म नम्रता एवं अधोगमन के अभेदरूप से वर्णन होने से अतिशयोक्ति, 'भवन्ति' रूप एक क्रिया से वृक्षादि का सम्बन्ध होने से दीपक (क्रिया दीपक), विनय रूप धर्म का नम्रता, दूरविलम्बित एवं अनुद्धत शब्द के कथन होने से मालाप्रतिवस्तूपमा, दुष्यन्त रूप विशेष के स्थान पर सामान्य सज्जन के वर्णन से अप्रस्तुतप्रशंसा तथा चतुर्थ पंक्ति से पूर्व तीन पंक्तियों का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। छन्द वंशस्थ है। फलागमैः—with rising of fruit, दूरविलम्बिनो—clouds hang very low, अनुद्धता०—good men do not become arrogant by the riches, स्वभाव ऐक्ष—This is but the nature of those who are benevolent into others.—Kale.

प्रतिहारी—देव, प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः। (देव, पसण्णमुहवण्णा दीसन्ति। जाणामि विस्सद्धकज्जा इसीओ।)

हिन्दी—प्रतीहारी—राजन्! (ऋषि लोग) प्रसन्न मुख दिखलायी दे रहे हैं। मुझे लगता है कि ऋषिलोग (किसी) शान्त-कार्य से पधारे हैं।

राजा—(शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥ १३ ॥

अन्वय—पाण्डुपत्राणां मध्ये किसलयम् इव, तपोधनानां मध्ये अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या का स्वित्?

हिन्दी—राजा—(शकुन्तला को देखकर) और यह आदरणीया?

पीले पत्तों के बीच नवीन किसलय (कपोल) की भाँति तपस्विजनों के बीच में घूँघट वाली तथा शारीरिक सौन्दर्य को अधिक प्रकट न करने वाली (यह स्त्री) कौन है?

संस्कृत व्याख्या—पाण्डुपत्राणाम्—पीतपर्णानाम्, मध्ये—अन्तराले, किसलयम् इव—नवजात पत्रमिव, तपोधनानाम्—तप एव धनं येषां ते तेषाम् तपस्विजनानाम्, मध्ये—मध्यगते, अवगुण्ठनवती—अवगुण्ठनं सशिरोमुखप्रावरणं तद्वती, नातिस्फुट शरीरं लावण्या—नातिस्फुटे शरीरलावण्ये यस्याः सा इदम, का स्वित्—का भवितुमर्हति इति वितर्के। उपमा काव्यलिङ्गचालंकारौ। आर्याजातिः।

टिप्पणी—अवगुण्ठनवती—घूँघट वाली। इससे तत्कालीन समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन ज्ञात होता है। नाति स्फुट०—घूँघट के कारण जिसका शरीर एवं लावण्य या शारीरिक सौन्दर्य ठीक से प्रकट नहीं हो रहा था। लावण्य का लक्षण इस प्रकार है—मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥ सुधाकर॥ यहाँ अवगुण्ठनवती स्त्री की उपमा कोमल पल्लव से की गयी है। उपमा में लिङ्ग वैषम्य होने पर भी मनोहारित्व एवं मृदित्व है। अतः उपमा अलंकार है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरीर सौन्दर्य के प्रकट न होने में अवगुण्ठनवती होना कारण है फलतः काव्यलिङ्ग अलंकार भी है। आर्या जाति है।

अपरिस्फुटलावण्या—With the charm of her person, तपोधनानां मध्ये—midst of anchorites.

प्रतीहारी—देव, कुतूहलगर्भः प्रहितो न मे तर्कः प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते। (देव, कुतूहलगब्भो पहिदो ण मे तक्को पसरदि। णं दंसणीआ उण से आकिदी लक्खीअदि।)

हिन्दी—प्रतीहारी—राजन्! जिज्ञासापरिपूर्ण मेरा विचार इस विषय में प्रकट नहीं हो रहा है। परन्तु इसकी आकृति दर्शनीय है।

राजा—भवतु। अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।

हिन्दी—राजा—ठीक है (किन्तु) पराई स्त्री दर्शनीय नहीं होती।

शकुन्तला—(हस्तमुरसि कृत्वा। आत्मगतम्) हृदय, किमेवं वेपसे आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद् भव। (हिअअ, किं एव्वं वेवसि अज्जउत्तस्स भावं ओहारिअ धीरं दाव होहि।)

हिन्दी—शकुन्तला—(हाथ सीने पर रखकर अपने मन में) हृदय! क्यों इस प्रकार काँप रहे हो? आर्यपुत्र (दुष्यन्त) की (पूर्व) भावना को हृदय में धारण कर धैर्य धारण करो।

पुरोहितः—(पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः। तं देवः श्रोतुमर्हति।

हिन्दी—पुरोहित—(आगे जाकर) ये विधिवत् सत्कृत तपस्वी लोग हैं। इनके गुरु का कोई सन्देश है। उसको आप सुनिये।

राजा—अवहितोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—मैं सावधान हूँ।

ऋषयः—(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्।

हिन्दी—ऋषिगण—(हाथ उठाकर) राजन्! विजयी बनें।

राजा—सर्वानभिवादये।

हिन्दी—राजा—सभी को प्रणाम करता हूँ।

ऋषयः—इष्टेन युज्यस्व।

हिन्दी—ऋषिगण—अभीष्ट प्राप्त करें।

राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः?

हिन्दी—राजा—क्या मुनिजनों की तपस्या निर्विघ्न सम्पन्न हो रही है?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऋषयः—

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ? ॥ १४ ॥

अन्वय—सतां रक्षितरि त्वयि धर्मक्रियाविघ्नः कुतः ? घर्मांशौ तपति तमः कथम् आविर्भविष्यति ।

हिन्दी—ऋषिगण—सज्जनों के रक्षक आप के होते (हमारी) धार्मिक क्रियाओं में विघ्न कैसे हो सकता है ? सूर्य के (आकाश में) तपते रहने पर अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है ? अर्थात् जैसे सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्धकार का अस्तित्व असम्भव है उसी प्रकार आपके शासन करते धार्मिक क्रियाओं में विघ्न-बाधा असम्भव है ।

संस्कृत व्याख्या—सताम्—सद्वृत्तानाम्, रक्षितरि—गोपके पालके वा, त्वयि—भवति राजनि, धर्मक्रिया विघ्नः—धर्मक्रियायां यज्ञकर्मणि विघ्नः, बाधा, यज्ञकर्मबाधा इत्यर्थः, कुतः—कस्मात् कारणात् सम्भाव्यते अर्थात् कदापि न सम्भवतीत्यर्थः । घर्मांशौ—भास्करे, तपति—आकाशे प्रकाशमाने सति, तमः—अन्धकारः, कथम्—केन प्रकारेण, अविर्भविष्यति—प्रादुर्भविष्यति न कथमपि सम्भविष्यति तीत्यर्थः । अत्र दृष्टान्तोऽर्थापत्तिश्चालंकारौ । उदाहरणं नाम नाट्यलक्षणः, श्लोको वृत्तम् ।

धर्मविघ्न—Obstacle to religious observances, तत्रः-कथं—how can darkness make itself manifest when the sun is shining ?—Kale.

टिप्पणी—इस श्लोक से महाराज दुष्यन्त का पराक्रम ज्ञात होता है । यहाँ राजा को सूर्यवत् बताने से बिम्बप्रतिबिम्बभाव है अतः दृष्टान्त अलंकार है । कुतः एवं कथम् शब्द से अर्थापत्ति अलंकार है । इसके अतिरिक्त उदाहरण नामक नाट्य लक्षण भी इस पद्य में दृष्टिगत होता है । लक्षण इस प्रकार है—

यत्र तुल्यार्थयुक्तेन वाक्येनाभि प्रदर्शनात् ।
साध्यतेऽभिमतश्चार्थस्तदुदाहरणं मतम् ॥ सा० द० ॥

राजा—अर्थवान् खलु मे राजशब्दः । अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः ?

हिन्दी—राजा—मेरा राजशब्द सफल हुआ । क्या भगवान् काश्यप लोक कल्याणर्थ सकुशल हैं ?

शार्ङ्गरवः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः । स भवन्तमनामय-प्रश्नपूर्वकमिदमाह ।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—तपस्वीजन अपने अधीन कुशलता वाले होते हैं (अर्थात् ऋषि काश्यप कुशल से हैं ।) आपकी कुशलता को पूछते हुए उन्होंने कहा है ।

राजा—किमाज्ञापयति भगवान् ?

हिन्दी—राजा—भगवान् काश्यप ने क्या कहा है ?

शार्ङ्गरवः—यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम् । कुतः—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः
शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥ १५ ॥

अन्वय—त्वं नः अर्हतां प्राग्रसरः स्मृतः असि। शकुन्तला च मूर्तिमती सत्क्रिया। तुल्यगुणं वधूवरं समानयन् प्रजापतिः चिरस्य वाच्यं न गतः।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—एकान्त में जो आपने प्रतिज्ञापूर्वक मेरी पुत्री को पत्नी रूप में चुना है, तुम दोनों का वह कार्य प्रसन्नचित मेरे द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। क्योंकि—

चूँकि तुम पूजनीयों में अग्रगण्य माने गये हो तथा शकुन्तला शरीर धारिणी सत्क्रिया (सत्कार विधि) है। इस प्रकार के समान गुण वाले वधू-वर को (शकुन्तला एवं दुष्यन्त को) दाम्पत्य सूत्र में बाँधने वाले प्रजापति अपनी पुरानी निन्दा को नहीं प्राप्त हुए हैं। (प्रजापति के विषय में प्राय: यह कहा जाता है कि ये समानगुण वाले वरकन्या का मेल नहीं कराते हैं। परन्तु इस बार इनके विषय में ऐसा नहीं कहा जाएगा।)

संस्कृति व्याख्या—यत्—यस्मात् कारणात्, त्वम्—भवान् राजा दुष्यन्तः अर्हताम्—पूज्यानां, प्राग्रसरः—अग्रगण्यः, स्मृतः असि—स्वीकृतः असि, शकुन्तला—मम कण्वस्य दुहिता, मूर्तिमती—शरीर धारिणी, सत्क्रिया—सत्कार विद्या अस्तीतिशेषः, एवं—एतादृशं, तुल्यगुणम्—समानगुणम्, वधूवरम्—शकुन्तला दुष्यन्तम्, समानयन्—परिणय सूत्रे विदधन्, प्रजापतिः—ब्रह्मा, चिरस्य—चिरकालादागतस्य, वाच्यम्—निन्दाम्, न गतः—न प्राप्तः। अत्रोत्प्रेक्षा समं काव्यलिङ्गञ्चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

टिप्पणी—मिथः समयात्—एकान्त में शपथपूर्वक, उपायंस्त—विवाह किया। उप + यम्—लुङ् प्र० पु० एक०। प्राग्रसरः—अग्रगण्य। वधूवरम्—वधूश्च वरश्च तयोः समाहारः—द्वन्द्व। सत्क्रिया में उत्प्रेक्षा अलंकार है क्योंकि यहाँ सत्क्रिया का प्रयोग में 'सत्क्रिया इव' अर्थ में है। सत्क्रिया से शकुन्तला की सर्वजनपूज्यता ध्वनित हो रही है। योग्य का योग्य से मेल होने से सम अलंकार तथा तृतीय चरण के चतुर्थ चरण का कारण होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है। यहाँ अभंग दोष के परिहार के लिए—स्मृतोऽसि सत्क्रियेव यन्मूर्तिमती। शकुन्तला पढना चाहिए। वंशस्थ छन्द है। सम अलंकार का लक्षण—समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा योग्यस्य वस्तुना—सा० द० है। इस श्लोक में 'यत्' के स्थान पर 'नः' पाठ भेद भी प्राप्त होता है।

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतो—You are known to us as the foremost of the worthy, शकुन्तला मूर्ति०—Shakuntala is virtue incarnate, प्रजापति—Creator is bring up together a bride and a bridegroom of equal merit, वाच्यं नगतः—has not incurred censure.—Kale.

तदिदानीमापन्नसत्त्वेयं प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।

तो अब इस गर्भिणी को अपनी सहधर्मचारिणी के रूप में स्वीकार कीजिए।

गौतमी—आर्य, किमपि वक्तुकामास्मि। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति।

नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न खलु पृष्टश्च बन्धुजनः ।
परस्परस्मिनैव चरिते भणामि किमेकैकम् ॥ १६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(अज्ज, किंपि वत्तुकाम म्हि। ण मे वअणावसरो अत्थि। कहंत्ति।
णावेक्खिओ गुरुअणो इमाइ ण हु पुच्छिदो अ बन्धुअणो ।
एक्कक्कस्सेव चरिए भणामि किं एक्कमेकस्स ॥)

अन्वय—अनया गुरुजनः न अपेक्षितः न खलु बन्धुजनः च पृष्टः। परस्परस्मिन् एव चरिते एकैकं किं भणामि।

हिन्दी—गौतमी—महाराज! मैं कुछ कहना चाहती हूँ। यद्यपि यहाँ, मेरे कथन का कोई अवसर नहीं है क्योंकि—

शकुन्तला ने (विवाह के सन्दर्भ में) न तो गुरुजनों की अपेक्षा की और न ही बन्धुओं से पूछा। इस प्रकार आपस में (आप और शकुन्तला के मध्य) सम्पन्न हुए विवाह रूप, आचरण के विषय में प्रत्येक को क्या कहें।

संस्कृत व्याख्या—अनया—शकुन्तला, गुरुजनः—काश्यपः, न अपेक्षितः—न परिगणितः, न खलु—न च, बन्धुजनः—स्वसम्बन्धिवर्गः, पृष्टः—विज्ञापितः, परस्परस्मिन्नेव चरिते—पारस्परिकाचरणे, एकैकम्—शकुन्तला भवन्तं दुष्यन्तञ्च, किं भणामि—किं कथयामि। अत्र अर्थापत्तिरलंकारः। आर्या जातिः।

टिप्पणी—इस श्लोक में पाठभेद भी प्राप्त होता है यथा—न खलु के स्थान पर त्वया पाठ अन्यत्र उपलब्ध होता है। इसी प्रकार परस्परस्मिन्नेव के स्थान पर एकैकस्य पाठ मिलता है परन्तु अर्थ की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं आता। यहाँ अर्थापत्ति अलंकार है। क्योंकि यहाँ अवसर न होने पर कहना अनुपपद्यमान अर्थ है। इसकी संगति अर्थापत्ति से ही बैठती है आर्या जाति है। अर्थापत्ति अलंकार का लक्षण निम्नलिखित है—दण्डपूपिकया न्यार्थागमोऽर्थापत्तिरण्यते॥ सा० द०॥

नापेक्षितो—Elders were not referred to, न पृष्टः—Your relatives were not consulted, एकैक०—When the affair has been transacted solely.—Kale.

शकुन्तला—(आत्मगतम्) किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति (किं णु क्खु अज्जउत्तो भणादि?)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) (देखें) आर्यपुत्र क्या कहते हैं?

राजा—किमिदमुपन्यस्तम्?

हिन्दी—राजा—यह क्या उपस्थित कर दिया है?

शकुन्तला—(आत्मगतम्) पावकः खलु वचनोपन्यास (पावओ क्खु वअणोवण्णासो।)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) इनके कथन का प्रारम्भ ही आग (जैसा कष्टकारी) है।

शार्ङ्गरवः—कथमिदं नाम? भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्त-निष्णाताः।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—यह क्या है (इस प्रकार कहते हैं)? आप स्वयं ही लोकव्यवहार में निष्णात हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ १७ ॥

अन्वय—भर्तृमतीं ज्ञातिकुलैकसंश्रयां सतीम् अपि जनः अन्यथा विशङ्कते। अतः स्वबन्धुभिः प्रमदा प्रिया अप्रिया वा परिणेतुः समीपे इष्यते।

हिन्दी—विवाहिता स्त्री (जीवत्पतिका) यदि सदा पिता के घर में ही रहती है तो वह भले ही सती साध्वी हो, लोग (उसके विषय में) अन्यथा सोचते हैं (अर्थात् उसे पुंश्चली, समझते हैं) इसलिए स्त्री के बन्धुजन उसे पति के पास ही रखना चाहते है चाहे उसका पति उसे चाहता हो या न चाहता हो।

संस्कृत व्याख्या—भर्तृमतीं—भर्ता विद्यते यस्याः तथोक्ताम्, ज्ञाति०—ज्ञातीनां पितृणां कुलं एकः केवलं संश्रयः आश्रयः यस्या तथा भूताम्, सतीम् अपि—साध्वीमपि, जनः—लोकः, अन्यथा—अन्य प्रकारेण असतीमित्यर्थः, विशङ्कते—शङ्कां कुरुते। अतः—अस्मात् कारणात्, स्वबन्धुभिः—निजबान्धवैः, प्रमदा—तरुणी, प्रिया—भर्तुः प्रियकारिणी, अप्रिया वा—अप्रियकारिणी वा, परिणेतुः—पत्युः, समीपे—पार्श्वे, इष्यते—अभिलष्यते। अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकारः। वंशस्थं वृत्तम्।

टिप्पणी—इस श्लोक जीवत्भर्तृका पितृकुलाश्रयणी स्त्री की दशा समाज में क्या होती है इस पर बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला गया है। यहाँ शकुन्तला रूप विशेष कथन के स्थान पर स्त्री सामान्य कथन के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। वंशस्थ छन्द है।

जनः वि शङ्कते—People suspect a woman, भर्तृमतीं—with her husband, ज्ञातिकुलैक—When exclusively residing in her kinsmen's family, अतः—Hence a young woman is desired by her relatives to be with her husband whether she is loved by him or not.—Kale.

राजा—किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा ?

हिन्दी—राजा—क्या मैंने इस भद्रा (स्त्री) से पहले विवाह किया है ?

शकुन्तला—(सविषादम्। आत्मगतम्) हृदय, साम्प्रतं ते आशङ्का। (हिअअ, संपदं दे आसङ्का।)

हिन्दी—शकुन्तला—(कष्ट के साथ, अपने मन में) हृदय, तुम्हारी आशङ्का पूर्णतः सत्य है।

शार्ङ्गरवः—किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा ?

अन्वय—किं कृतकार्यद्वेषः धर्मं प्रति विमुखता, कृतावज्ञा ?

हिन्दी—शार्ङ्गरव—क्या आप अपने किये गए कार्य से द्वेष करते हैं, अथवा धर्म के प्रति उदासीन हैं या किये गए कार्य की उपेक्षा कर रहे हैं ?

राजा—कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः ?

हिन्दी—राजा—यह असत्य कल्पना वाला प्रश्न क्यों करते हैं ?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शार्ङ्गरवः—मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ॥ १८ ॥

अन्वय—ऐश्वर्यमत्तेषु प्रायेण अमी विकाराः मूर्च्छन्ति।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—धनधान्य से मत्त लोगों में प्रायः यह (मानसिक) विकार वृद्धि को प्राप्त होता है।

संस्कृत व्याख्या—किम्—किमिति, कृत०—कृतं यत् कार्यं गान्धर्वविवाहलक्षणं तत्र, द्वेषः—असहनत्वम्, धर्मं प्रति—स्वकर्तव्यं प्रति, विमुखता—पराङ्मुखत्वम्, कृतावज्ञा—कृते प्रणयरूपकर्मणि अवज्ञा तिरस्कारः। ऐश्वर्यमत्तेषु—धनधान्य मत्तेषु, प्रायेण—बहुधा, अमी विकाराः—कृतकार्य द्वेषादयः, मूर्च्छन्ति—वर्धन्ते। अत्र अर्थान्तरन्यासालंकारः। आर्या जातिः।

टिप्पणी—मूर्च्छन्ति—बढ़ते हैं। मूर्च्छ धातु का मूर्च्छित होना तथा बढ़ना दो अर्थ होता है। लट् प्र० पु० बहु०। यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। आर्या छन्द है। इसमें राजा पर तीक्ष्ण आक्षेप किया गया है यहाँ त्रोटक नामक अङ्ग उपक्षिप्त है। लक्षण—सम्भववचनप्रायं त्रोटकं त्विह संज्ञितम्॥

राजा—विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—(आपके द्वारा) मेरा अधिक तिरस्कार किया जा रहा है।

गौतमी—जाते, मुहूर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति। (जादे. मुहुत्तअं मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे ओउण्ठणं। तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि।) **(इति यथोक्तं करोति।)**

हिन्दी—गौतमी—पुत्री, क्षणभर लज्जा का परित्याग करो। अभी (मैं) तुम्हारा घूँघट हटाती हूँ। तभी (तुम्हारे) पति तुम्हें पहचानेंगे। (वैसा करती है।)

राजा—(शकुन्तलां निर्वर्ण्य। आत्मगतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यव्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥ १९ ॥

अन्वय—एवम् उपनतम् इदम् अक्लिष्टकान्ति रूपं प्रथमपरिगृहीतं स्यात् न वा इति अव्यवस्यन्, विभाते भ्रमरः अन्तस्तुषारं कुन्दम् इव न च खलु परिभोक्तुं नैव हातुं शक्नोमि।

(इति विचारयन् स्थितः।)

हिन्दी—राजा—(शकुन्तला को देखकर, अपने मन में)

इस प्रकार (अनायास) प्राप्त इस नूतनकान्ति सम्पन्न रूप को (शकुन्तला को) (मैंने) पहले (पत्नी रूप में) स्वीकार किया था या नहीं—इस विषय में निश्चय न कर पाता हुआ मैं प्रातः काल ओस कणों से परिपूर्ण कुन्दपुष्प को (स्वीकार करने या परित्याग करने में असमर्थ) भौंरें की भाँति न तो स्वीकार कर सकता हूँ और न ही छोड़ सकता हूँ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ऐसा सोचता हुआ (वह) रुक जाता है।)

संस्कृत व्याख्या—एवम्—परिश्रमेण बिना, उपनतम्—उपलब्धम् अग्रे उपस्थितमित्यर्थः, अक्लि०—अक्लिष्टा अमर्दिता कान्तिः प्रभा यस्य तत्, इदं रूपम्—इदं शकुन्तला रूप रूपम्, प्रथम०—पुरा पत्नीत्वेन गृहीतम्, न वा—न वा गृहीतम्, इति अव्यवस्यन्—इत्यविचारयन्, विभाते—प्रातः, अन्तस्तुषारम्—अन्तः अन्तर्गतः तुषारः हिमं यस्य तत्, कुन्दम्—कुन्दपुष्पम्, भ्रमर इव—मधुकर इव, (अहम्) नखलु भोक्तुम्—सेवितुम्, न वा—नापे हातुम्—अस्वीकर्तुम्, शक्नोमि—पारयामि। अत्र उपमासंशयनामकं नाट्यलक्षणञ्च प्रदर्शितमस्ति। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी—इस श्लोक में शकुन्तला को देखकर राजा दुष्यन्त के मन में उत्पन्न मनोभावों का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है। टीकाकार राघवभट्ट के अनुसार—अक्लिष्टकान्ति से यहाँ तारुण्य तथा न च परिभोक्तुं नैव हातुंशक्नोमि से रति का अनुसंधान (इति भावना) ध्वनित हो रही है। इसी प्रकार अन्तस्तुषारम् में आच्छादक तुषार का आशय आच्छादक शाप है। यहाँ त्यागाभाव ध्वनित है। '*विभाते*' शब्द से बाद में मिलन ध्वनित होता है, क्योंकि जैसे प्रातः में ही कुन्द पर ओस कण छाया रहता है बाद में सूर्य के किरण के प्रखर हो जाने से वह समाप्त हो जाता है और भ्रमर कुन्दपुष्य का उपभोग करता है उसी प्रकार शकुन्तला विषयक स्मरण से दुर्वासा के शाप के समाप्त हो जाने पर शकुन्तला दुष्यन्त का मिलन निश्चितप्राय है। द्रष्टव्य उपर्युक्त श्लोक की टीका। यहाँ राजा अपने को भ्रमर जैसा कह रहा है अतः उपमा अलंकार। यह श्लोक अनिश्चयान्त है अतः संशय नामक नाट्यलक्षण है—अनिश्चयान्तं यद्वाक्यं संशयः स निगद्यते। मालिनी छन्द है।

रूपम—her beauty, अक्लिष्ट कान्तिः—unblemished loveliness, अपरिगृहीतं—was not accepted, भ्रमर इव—I am not able to enjoy or abandon like the bee at the dawn, a kunda flower saturated with dew.—Kale.

प्रतीहारी—(स्वगतम्) अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति? (अहो धम्मावेक्खिआ भट्टिणो। ईदिसंणाम सुहोवणदं रूवं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि?)

हिन्दी—प्रतीहारी—(मन में) स्वामी की धर्मावलम्बिता विलक्षण है। इस प्रकार के सुखोपलब्ध रूप को देखकर दूसरा कौन विचार करेगा।

शार्ङ्गरवः—भो राजन्, किमिति जोषमास्यते?

हिन्दी—शार्ङ्गरव—हे राजन्! आप क्यों चुप हैं?

राजा—भोस्तपोधनाः, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये?

हिन्दी—राजा—हे तपस्वियों। विचार करता हुआ भी मैं इस महोदया का पाणिग्रहण नहीं याद कर पा रहा हूँ। तो प्रकट गर्भलक्षण वाली इसके प्रति अपने को क्षेत्री (पति) समझता हुआ मैं इसे कैसे स्वीकार करूँ?

शकुन्तला—(अपवार्य) आर्यस्य परिणय एव सन्देहः। कुतः इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा? (अज्जस्स परिणए एव्व संदेहो। कुदो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दाणिं में दूराहिरोहिणी आसा?)

हिन्दी—शकुन्तला—(एक ओर मुख करके) आर्य को परिणय में ही सन्देह है। अब मेरी दूर तक बढ़ी हुई आशा का क्या होगा?

शार्ङ्गरवः—मा तावत्।

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः
सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः ।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं
पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥ २० ॥

अन्वय—कृताभिमर्शां सुताम् अनुमन्यमानः मुनिः त्वया विमान्यः नाम। येन मुष्टं स्वम् अर्थं प्रतिग्राहयता दस्युः इव पात्रीकृतः असि।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—ऐसा न कहें—

बलात् उपभुक्त पुत्री को अनुमति देने वाले मुनि (कण्व) तुम्हारे द्वारा अपमान के योग्य हैं (अर्थात् अपमानीय नहीं हैं)। चुराये गये अपने धन को लौटाने वाले जिस मुनि द्वारा, चोर की भाँति तुम सत्पात्र बनाये गए हो।

संस्कृत व्याख्या—कृताभि०—कृतः अभिमर्षः बलादुपभोगः यस्याः तथा विधाम्, सुताम्—स्वदुहितरं शकुन्तलामित्यर्थः, अनुमन्यमानः—अनुमोदमनः, मुनिः—कण्वः, त्वया—भवता राज्ञा दुष्यन्तेन, विमान्यः नाम—मा विमान्यः, मुष्टम्—चोरितम्, स्वमर्थम्—स्वधनम्, प्रतिग्राह्यता—चौराधीनं कुर्वता, येन—काश्यपेन, त्वम्—भवान्, दस्युरिव—चौर इव, पात्रीकृतोऽसि—दानार्हीकृतोऽसि। अत्र विषमोलङ्कारः। उपजाति वृत्तम्।

विमान्यः—his daughter is seduced by you, पात्रीकृतः—has adjudged you worthy of the gift.—Kale.

टिप्पणी—यहाँ 'मुनिर्विमान्यः' का अर्थ मा तावत् विमान्यः है। इससे यह ध्वनित होता है कि मुनि का अपमान बार-बार सुखकर नहीं होता है। आशय यह है कि शार्ङ्गरव राजा से कहता है कि आपने महर्षि की संमति बिना उनकी पुत्री शकुन्तला से विवाह कर लिया। यह उनकी प्रथम अवमानना है। अब दुबारा उसको पत्नी रूप में नहीं स्वीकार कर रहे है यह द्वितीय अवमानना है। इसलिए राजा से कहता है कि ऐसा मुनि का आपको अपमान करना चाहिए अर्थात् कदापि नहीं करना चाहिए। यह व्यंग्यार्थ निकलता है। टीकाकार राघवभट्ट ने यहाँ विधेयमुखी अर्थ 'अपितु विमाननीय एव' किया है। कृता०—कृतः अभिमर्शः यस्याः सा ताम्—बहु०। यहाँ कण्व ने अपराधी राजा को संतोष के लिए कन्या प्रदान कर दी परन्तु संतोष के स्थान पर उसे अपमान मिला। फलतः यहाँ विषम अलंकार है। इन्द्र वज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से यहाँ उपजाति छन्द है।

शारद्वतः—शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्य-मुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवानेवमाह। दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्।

हिन्दी—शारद्वत—शार्ङ्गरव, अब तुम रुको। शकुन्तला, हमें जो कहना था, कह दिया। इस विषय में ये राजा इस प्रकार कह रहे हैं। इनको विश्वास दिलाने वाला कोई जवाब दो।

शकुन्तला—(अपवार्य) इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

वा स्मारितेन? आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्। (प्रकाशम्) आर्यपुत्र—(इत्यर्धोक्ते) संशयित इदानीं परिणये नैष समुदाचारः।—पौरव, न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्। (इमं अवत्थन्तरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण? अत्ता दाणिं मे सोअणीओ त्ति ववसिदं एदं। अज्जउत्त—संसइदे दाणिं परिणए ण एसो समुदाआरो।—पोरव, ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणं समअपुव्वं पतारिअ ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(एक ओर मुँह करके) वैसे (पारस्परिक) प्रेम के इस अवस्था को प्राप्त हो जाने पर अब स्मरण दिलाने से क्या लाभ? अब यह निश्चित हो गया है कि मैं स्वयं के लिए चिन्ता का विषय बन गयी हूँ। (प्रकट रूप में) आर्यपुत्र, (बीच में ही रुककर) अभी विवाह ही संशयित है अतः यह सम्बोधन उचित नहीं है। पौरव, आपके लिए यह उचित नहीं है कि पहले आश्रम में स्वभाव से सरल हृदय वाले इस व्यक्ति (शकुन्तला) को शपथ पूर्वक ठगकर ऐसे वाक्यों से उसका अपमान करें।

राजा—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्।

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च॥२१॥

अन्वय—किं व्यपदेशम् आविलयितुम् इमं जनं पातयितुं च ईहसे। कूलंकषा सिन्धुः प्रसन्नम् अम्भः तटतरुं च इव।

हिन्दी—राजा—(कानों को ढककर) अमंगल दूर हो।

क्या (तुम) अपने कुल को और इस व्यक्ति (दुष्यन्त) को पथभ्रष्ट करना चाहती हो, जिस प्रकार किनारों को गिराने वाली नदी स्वच्छ जल को और तटवर्ती वृक्ष को (नष्ट कर देती है।)

संस्कृत व्याख्या—किं—किमिति, व्यपदेशम्—कुलम्, आविलयितुम्—मलिनीकर्तुम्, इमं जनं च—माम् दुष्यन्तञ्च, पातयितुम्—पतितं कर्तुम्, ईहसे—वाञ्छसि, चेष्टसे इत्यर्थः कूलंकषा—तटसंघर्षिणी, सिन्धुः—नदी, प्रसन्नम्—निर्मलम्, अम्भः—जलम्, तटतरुम्—तटोपरूढवृक्षम्, च पात यति तदिति उपमा। अत्र समुच्चय उपमा चालंकारौ। आर्या जातिः।

टिप्पणी—इस श्लोक में शकुन्तला को तटघातिनी नदी जैसा कहा गया है। इसलिए उपमा अलंकार है। पूर्वार्ध में गुण क्रिया के समुच्चय से समुच्चय अलंकार है। आर्या जाति है।

आविलपितुं—to sully your family, पातयितुम्—to degrade this person, किमीहसे—who do you seek, कूलंकष०—as a river washing away its banks, does, to make its clear water turbid and to uproot the tree on its bank.—Kale.

शकुन्तला—भवतु। यदि परमार्थतः परपरिग्रहशङ्किना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तवाशङ्कामपनेष्यामि। (होदु। जइ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परमत्थतो परपरिग्गहसंकिणा तुए एव्वं वत्तुं पउत्तं ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसंकं अवणइस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—अच्छा। यदि परस्त्री की शंका करने वाले आपने ऐसा कहा है तो इस आभूषण से तुम्हारी आशंका को मैं दूर करती हूँ।

राजा—उदारः कल्पः।

हिन्दी—राजा—उत्तम विचार है।

शकुन्तला—(मुद्रास्थानं परामृश्य) हा धिक्। अङ्गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः। (हद्धी। अंगुलीअअसुण्णा मे अंगुली।) **(इति सविषादं गौतमीमवेक्षते।)**

हिन्दी—शकुन्तला—(अँगूठी के स्थान को छूकर) अरे, मेरी अंगुली में अँगूठी नहीं है। (खेदपूर्वक गौतमी को देखती है।)

गौतमी—नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम्। (णूणं दे सक्कावदारब्भन्तरे सचीतित्थसलिलं वन्दमाणाए पब्भट्टं अंगुलीअअं।)

हिन्दी—गौतमी—निश्चित रूप से शक्रावतार तीर्थ में शचीतीर्थ के जल की वन्दना करते समय अँगूठी तुम्हारे हाथ से गिर गयी है।

राजा—(सस्मितम्) इदं तत् प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते।

हिन्दी—राजा—(मुस्कराकर) यही वह कारण है जिसके लिए स्त्रियों को प्रत्युत्पन्नमति कहा जाता है।

शकुन्तला—अत्र तावद् विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि। (एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहिस्सं।)

हिन्दी—शकुन्तला—इस सन्दर्भ में भाग्य ने अपनी प्रभुता दिखा दिया है। अब आप से बात बताती हूँ।

राजा—श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्।

हिन्दी—राजा—अब तो सुनना ही रह गया है।

शकुन्तला—नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तब हस्ते संनिहितमासीत्। (णं एक्कस्सिं दिअहे णोमालिआमण्डवे णलिणीपत्तभाअणगअं उअअं तुह हत्थे सण्णिहिदं आसि।)

हिन्दी—शकुन्तला—एक दिन नवमालिका लताकुंज में आपके हाथ में कमलिनी के पत्ते के दोने में स्थित जल स्थित था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—शृणुमस्तावत्।

हिन्दी—राजा—सुन रहा हूँ।

शकुन्तला—तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याशमुपगतः। पश्चात् तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि। सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति। (तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापंगो णाम मिअपोदओ उवट्ठिओ। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुअम्पिणा उवच्छन्दिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिदे सलिले णेण किदो पणओ। तदा तुमं इत्थं पहसिदो सि। सव्वो सगन्धेसु विस्ससिदि। दुवेवि एत्थ आरण्णआ त्ति।)

हिन्दी—शकुन्तला—तत्क्षण मेरे द्वारा पुत्रवत् पालित वह दीर्घापांग नामक मृगशिशु उपस्थित हुआ। तब आपने 'यह पहले जलपान करे' इस आशय से दयापूर्वक उसे जलपानार्थ आमंत्रित किया। परन्तु आपसे अपरिचित होने के कारण वह आपके हाथ के नजदीक नहीं आया। बाद में वही जल मैंने अपने हाथ में लिया तो उसने जलग्रहण कर लिया। तब आपने इस प्रकार उपहास किया—'सभी अपने साथियों पर विश्वास करते हैं, यहाँ तुम दोनों ही जंगली हो'।

राजा—एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।

हिन्दी—राजा—अपने स्वार्थ की पूर्ति करने वाली स्त्रियों के इस प्रकार के असत्यमय एवं मधुर वचनों से कामी लोग ही आकृष्ट होते हैं।

गौतमी—महाभाग, नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य। (महाभाअ, ण अरुहसि एव्वं मन्तिदुं। तवोवणसंवड्ढिदो अणभिण्णो अअं जणो कइदवस्स।)

हिन्दी—गौतमी—महोदय, आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। तपोवन में पालित पोषित यह व्यक्ति (शकुन्तला) छलकपट से दूर है।

राजा—तापसवृद्धे,

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ २२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—स्त्रीणाम् अमानुषीषु (अपि) अशिक्षितपटुत्वं संदृश्यते, याः प्रतिबोधवत्यः (तासां) किमुत। परभृताः खलु अन्तरिक्षगमनात् प्राक् स्वम् अपत्यजातम् अन्यैः द्विजैः पोषयन्ति।

हिन्दी—राजा—हे वृद्ध तापसी,

स्त्रियों में जो मानवजाति से भिन्न स्त्रियाँ हैं उनमें (भी) बिना शिक्षा के पटुता देखी जाती है। जो ज्ञानवती हैं उनका तो कहना ही क्या? (अर्थात् वे कितनी पटु होंगी इस विषय में कुछ कहा ही नहीं जा सकता।) कोयल अन्तरिक्ष में उड़ने की सामर्थ्य होने तक अपने शिशुओं का पालन पोषण अन्य पक्षियों (कौओं) से ही करवाती है।

संस्कृत व्याख्या—स्त्रीणाम्—नारीणां मंध्ये, अमानुषीषु—मानवभिन्नासु तिर्यग्योनिषु इतिभावः, अशिक्षित०—अनुपदिष्टवञ्चनापाटवं, सन्दृश्यते—लक्ष्यते। याः—कामिन्यः, प्रतिबोधवत्यः—वागादि व्यवहारदक्षाः, ताः किमुत—तासां वञ्चन नैपुण्यं किमु वक्तव्यमित्यर्थः, परभृताः—परैः भ्रियन्ते पुष्यन्त इति ताः परभृताः कोकिलाः, खलु—निश्चयेन, अन्तरिक्ष०—अन्तरिक्षे गगने गमनं उड्डयनं तस्मात् गगनोड्डयनात्, प्राक्—पूर्वम्, स्वम्—स्वकीयम्, अपत्यजातम्—सन्ततिसमूहम्, अन्यैः—स्वमित्रैः, द्विजैः—खगैः काकैरित्यर्थः, पोषयन्ति—वर्धयन्ते। अत्र प्रस्तुत प्रशंसा व्यतिरेकः अर्थान्तरन्यासश्च अलंकाराः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

टिप्पणी—इस श्लोक में स्त्रीजाति पर आक्षेप किया गया है। अशिक्षित०—अशिक्षितं च तत् पटुत्वम्—कर्म०। परभृताः—कोयल। ऐसी जनश्रुति है कि कोयल अपने बच्चों को कौए के घोंसले में छोड़ देती है। कौआ अपनी सन्तान समझकर उसका पालन पोषण करता है। इसीलिए कोयल को परभृत कहा जाता है। परैःभृताः इति परभृताः—तत्पु०। वनप्रियः परभृतः इत्यमरः। यहाँ किमुत के द्वारा आधिक्य वर्णन, शकुन्तला रूप विशेष के स्थान पर स्त्री सामान्य के कथन एवं पूर्वार्ध सामान्य का उत्तरार्ध विशेष से समर्थन होने से क्रमशः व्यतिरेक, अप्रस्तुतप्रशंसा एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार है। वसन्ततिलका वृत्त है। इसके अतिरिक्त यहाँ हेत्ववधारणा नामक सन्ध्यन्तरांग उपक्षिप्त है। लक्षण—निश्चयो हेतुनार्थस्य मतं हेत्ववधारणम्।

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्—Intuitive cunningness of womankind is—seen, अमानुषीषु—in females other than human, प्रतिबोधवत्यः—those that posses power of understanding, अन्यैः द्विजैः—female cuckoos, indeed, cause their offspring be reared by other birds, प्रागन्तरिक्ष—before flying into the sky.—Kale.

शकुन्तला—(सरोषम्) अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते? (अणज्ज, अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि? को दाणिं अण्णो धम्मकञ्चुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुकिदिं पडिवदिस्सदि?)

हिन्दी—शकुन्तला—(क्रोध के साथ) दुष्ट, तू अपने हृदय की ही तरह सबको समझता है। धर्मरूपी लम्बे चोंगे को धारण करने वाले तृण से ढके हुए कूप सदृश प्रतीत होने वाला तुझ जैसा कौन दूसरा हो सकता है जो तेरा अनुकरण करे।

राजा—(आत्मगतम्) सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने ।
भेदाद् भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ॥ २३ ॥

(प्रकाशम्) भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये।

अन्वय—विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ मयि एव रहः वृत्तं प्रणयम् अप्रतिपद्यमाने अतिरुषा अतिलोहिताक्ष्या अनया कुटिलयोः भ्रुवोः भेदात् स्मरस्य शरासनं भग्नम् इव।

हिन्दी—राजा—(अपने मन में) मुझे संशय में डालने वाला इसका क्रोध स्वाभाविक लग रहा है। क्योंकि—

विस्मरण के कारण कठोर चित्तवृत्ति वाले मेरे द्वारा ही एकान्त में घटित प्रणय को स्वीकार न करने पर, क्रोधाधिक्य से अतिशय लाल नेत्रों वाली इसने (शकुन्तला ने) अपनी तिरछी भौहों को तानकर मानों कामदेव का धनुष ही भग्न कर दिया है।

(प्रकट रूप में) महोदये, दुष्यन्त का आचरण सर्वत्र प्रसिद्ध है। फिर भी (किसी प्रकार से) यह (धूर्तता) मैं (अपने आचरण में) नहीं देख पाता हूँ।

संस्कृत व्याख्या—विस्मरण०—विस्मरणेन अस्मरणेन दारुणा क्रूरा चित्तस्य मनसः वृत्तिर्व्यापारो यस्य तथाभूते, रहः—एकान्ते, वृत्तम्—घटितम्, प्रणयम्—विवाहम्, अप्रतिपद्यमाने—अस्वीकरणे, मयि एव—मयि दुष्यन्ते, अतिरुषा—अधिक क्रोधया अतएव, अतिलोहिताक्ष्या—अतिलोहिते अतिरक्ते अक्षिणी नेत्रे यस्याः सा तयाभूतया, अनया—शकुन्तलया, कुटिलयोः—वक्रयोः, भ्रुवोः भेदात्—भ्रूभङ्गात्, स्मरस्य—कामस्य, शरासनम्—बाणासनम्, भग्नमिव—त्रोटितमिव जातमित्यर्थः। काव्यलिङ्गमुत्प्रेक्षालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

भग्नं शरासनमिव—The bow of the god of love was snapped, भेदाद्भ्रुवोः कुटिल०—owing to the knitting of her curved eye-brows, मय्येव विस्मरण—I was dreadful from forgetfulness, प्रणयमप्रतिपद्यमाने—I did not admit the affection, वृत्तं रहः—That was formed in private.—Kale.

टिप्पणी—विस्मरण—विस्मरणेन दारुणा चित्त वृत्तिः यस्य तस्मिन्—बहु०। इस पद्य में अतिरुषा अतिलोहिताक्ष्या का कारण है अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है। भग्नशरासनमिव में उत्प्रेक्षा अलंकार है, वसन्त तिलका वृत्त है। शकुन्तला—सरोषम् से लेकर यहाँ तक संकेत नामक विमर्श सन्ध्यंग उपक्षिप्त है। लक्षण—सम्फेटो रोषभाषणम्—सा० द०॥

शकुन्तला—सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि। याऽहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता। (सुट्ठु दाव अत्त सच्छन्दचारिणी किदम्हि। जा अहं इमस्स पुरुवंसप्पच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिविसस्स हत्थब्भासं उवगदा।) **(इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।)**

हिन्दी—शकुन्तला—अच्छा, इस सन्दर्भ में मैं स्वच्छन्दचारिणी बना दी गयी हूँ, जो मैं पुरुवंश के विश्वास से मुख में मधु तथा हृदय में स्थित विष वाले इसके (दुष्यन्त के) हाथ में आ गयी। (आँचल से मुख ढककर रोती है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शार्ङ्गरवः—इत्थमात्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ २४॥

अन्वय—अतः रहः संगतं विशेषात् परीक्ष्य कर्तव्यम्। अज्ञातहृदयेषु सौहृदम् एवं वैरीभवति।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—इस प्रकार स्वयं की गयी अनिरुद्ध चंचलता दुखदायी होती है।

इसलिए एकान्त मैत्री विशेषरूप से परीक्षण करके करनी चाहिए। (क्योंकि) अपरिचित हृदयवाले व्यक्तियों में सम्पन्न (ऐसी) मैत्री इसी प्रकार दुखदायी हो जाती है।

संस्कृत व्याख्या—अतः—अस्मात् हेतोः, रहः—एकान्ते, संगतम्—मैत्रीम्, विशेषात्—विशेष विवेचना पुरस्सरम्, परीक्ष्य—परीक्षणंकृत्वा, कर्तव्यम्—विधातव्यम्, अज्ञातहृदयेषु—अपरिचितचित्तेषु जनेषु, सौहृदम्—एकान्ते सम्पन्नं सख्यम्, एवम्—अनेन प्रकारेण, वैरी भवति—दुःखदायी जायते। अत्र वैधर्म्येण सामान्येन विशेष समर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासालङ्कारः। पथ्यावक्त्रं वृत्तम्।

टिप्पणी—निर्णयसागर प्रकाशन में—'प्रतिहतं चापलं दहति' पाठ प्राप्त होता है परन्तु अर्थौचित्य की दृष्टि से अप्रतिहतं चापलं दहति पाठ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इसमें विवाहरूप मैत्री विशेष परीक्षण के बाद करना चाहिए—वाक्यांश से इस कार्य में माता-पिता तथा अन्य लोगों की सहभागिता की आवश्यकता अपरिहार्य प्रतीत होती है। इस श्लोक में पूर्वार्ध विशेष अर्थ का उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा वैधर्म्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है इसके अतिरिक्त यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा तथा काव्यलिङ्ग अलंकार भी दृष्टिगत होता है अतः यहाँ शकुन्तला दुष्यंत रूप विशेष के प्रेम के स्थान पर सामान्य नायक नायिका के प्रेम का कथन किया गया है तथा उत्तरार्ध के प्रति पूर्वार्ध कारण रूप में उपन्यस्त है। छन्द पथ्यावक्त्र है।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं संगतं रहः—Therefore one should form a union, particularly in private, after a crucial examination, अज्ञातहृद येष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्—Friendship turns into enmity in those whose hearts are unknown.—Kale.

राजा—अयि भोः, किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ?

हिन्दी—राजा—महानुभावो, इस (शकुन्तला) पर विश्वस्त होने के कारण ही दोषयुक्त वाक्यों से हमें क्यों खिन्न कर रहे हैं?

शार्ङ्गरवः—(सासूयम्) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्।

आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो य-
स्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसन्धानमधीयते यै-
र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ २५॥

अन्वय—यः आ जन्मनः शाठ्यम् अशिक्षितः तस्य जनस्य वचनम् अप्रमाणम्। यैः परातिसन्धानं विद्या इति अधीयते ते किल आप्तवाचः सन्तु।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—(ईर्ष्या के साथ) आप लोगों ने यह अनर्गल उत्तर सुना।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जिस व्यक्ति ने (शकुन्तला ने) जन्म से शठता नहीं सीखी उस व्यक्ति का कथन असत्य है और जिसके द्वारा (राजा के द्वारा) दूसरों को ठगना विद्या के रूप में सीखी जाती है वही लोग आप्तवाक् बने हैं। (अर्थात् उन्हीं का कथन प्रामाणिक माना जाता है।)

संस्कृत व्याख्या—यः—यः शकुन्तलादिरूप जनः, आजन्मनः—जन्मन आरभ्य, शाठ्यम्—धौर्त्यम्, अशिक्षितः—न शिक्षितवान्, तस्य जनस्य—एवं विधस्य जनस्य, वचनम्—कथनम्, अप्रमाणम्—न प्रमाणमिति अप्रमाणं असत्यमित्यर्थः भवतीतिशेषः। यैः—राजादिभिः, परातिसन्धानम्—परेषाम् अतिरुध्यानं परवञ्चन्, विद्या इति—विद्यारूपेण, अधीयते—पठ्यते, ते—तादृशाः जनाः, किल्—निश्चयेन संभावना—यां वा, आप्तवाचः—आप्ता सन्देहादिदोष रहिता वाक् येषां तथाभूताः सत्यवचना इत्यर्थः, सन्तु—भवन्तु। अप्रस्तुतप्रशंसा रूपकं चालंकारौ। ''शकुन्तला-सुष्ठु तावत्'' इत्यादिना एतदन्तेन द्रवो नाम विमर्शसन्ध्यङ्गमस्ति। उपजातिर्वृत्तम्।

अप्रमाणं वचनं—his words are unworthy of belief, परातिसंधानं—who practise deceit upon others.—Kale.

टिप्पणी—इस पद्य में आश्रम जीवन एवं राजकीय जीवन पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला गया है। सामान्यतः आश्रमवासी सत्यवादी तथा वञ्चना शून्य होते हैं और नगरवासी असत्यवादी एवं परवञ्चना निष्णात होते हैं परन्तु शार्ङ्गरव को राजदरबार में इसके विपरीत ही दिखाई पड़ता है इसीलिए वह राजा पर व्यंग्य करता है। परातिसन्धानम्-परेषां अतिसन्धानम् इति परातिसन्धानम्—तत्पु०। यहाँ शकुन्तला का कथन सत्य है और दुष्यन्त का कथन असत्य है—इस प्रकार प्रस्तुत विशेष के रहते सामान्य कथन होने से अप्रस्तुतप्रशंसा, परातिसन्धान पर विद्या का आरोप होने से रूपक तथा सामान्यतः अनुप्रास अलंकार है। शकुन्तला—सुष्ठु—शकुन्तला के इस कथन से लेकर इस श्लोक तक क्रोधयुक्त कथन होने के कारण द्रव नामक विमर्श सन्ध्यंग है। लक्षण—द्रवो गुरुव्यतिक्रान्तिः शोकावेगादिसंभवा॥ सा० द०॥ छन्द उपजाति है।

राजा—भोः सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामतिसन्धाय लभ्यते?

हिन्दी—राजा—हे सत्यवादी! मैंने माना कि ऐसा ही हूँ। (जैसा कि आप कह रहे हैं।) परन्तु इन्हें ठगकर मुझे क्या मिलेगा?

शार्ङ्गरवः—विनिपातः।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—विनाश (मिलेगा)।

राजा—विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयमेतत्।

हिन्दी—राजा—विनाश की पुरुवंशी प्रार्थना करें—यह (बात) श्रद्धा के योग्य नहीं है।

शारद्वतः—शार्ङ्गरव, किमुत्तरेण। अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। (राजानं प्रति)

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ २६॥

गौतमि, गच्छाग्रतः। (इति प्रस्थिताः।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—तत् एषा भवतः कान्ता, एनां त्यज वा गृहाण वा। हि दारेषु सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना।

हिन्दी—शारद्वत—शार्ङ्गरव! उत्तर प्रत्युत्तर से कोई लाभ नहीं है। गुरु का सन्देश पूरा हो गया। अब लौटते हैं (राजा से।)

तो यह आपकी पत्नी है, इसको (आप) छोड़ें या अपनायें (यह आप पर है।) क्योंकि स्त्री पर (पति की) सब प्रकार की प्रभुता स्वीकार की गयी है। गौतमी, आगे-आगे चलो।

(सबका प्रस्थान।)

संस्कृत व्याख्या—तत्—इत्युपसंहारे, एषा—शकुन्तला, भवतः—राज्ञः तव दुष्यन्तस्य, कान्ता—एकान्ते समयपूर्वक परिणीता पत्नी अस्तीतिशेषः, एनाम्—शकुन्तला रूपां पत्नीम्, त्यज—परित्यागं कुरु, गृहाण वा—अथवा स्वीकुरु इदं भवदुपरि वर्तते। हि—यतो हि, दारेषु—कान्तासु (पत्युः) सर्वतोमुखी—सर्वविधा, प्रभुता—आधिपत्यम्, उपपन्ना—स्वीकृतास्ति। अर्थान्तर न्यासोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी—इस पद्य से तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति क्या थी, इसका ज्ञान होता है। स्त्रियों पर पति की सर्वतोमुखी प्रभुता होती है। इसका उल्लेख अग्नि पुराण में किया गया है—

भर्ता हि दैवतं स्त्रीणां स्त्रीणां भर्ता हि गतिरुच्यते।

यहाँ पूर्वार्द्ध विशेष का समर्थन उत्तरार्ध सामान्य से किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है श्लोक छन्द है।

तदेषा भवतः कान्ता—Then, this is your wife, receive her or forsake her, उपपन्ना हि दारेषु०—authority over a wife is admitted to be all-reaching.—Kale.

शकुन्तला—कथमनेन कितवेन विप्रलब्धाऽस्मि? यूयमपि मां परित्यजथ? (कहं इमिणा किदवेण विप्पलद्धम्हि? तुम्हे वि मं परिच्चअह?) **(इत्यनुप्रतिष्ठते)**

हिन्दी—शकुन्तला—क्या करूँ? इस धूर्त ने मुझे धोखा दिया है। आप लोग भी (ऐसी स्थिति में) मुझे छोड़ रहे हैं। (पीछे-पीछे चल पड़ती है।)

गौतमी—(स्थित्वा) वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु? (वच्छ संगरव, अणुगच्छदि इअं क्खु णो करुणपरिदेविणी सउन्दला। पच्चादेसपरुसे भत्तुणि किं वा मे पुत्तिआ करेदु?)

हिन्दी—गौतमी—(रुककर) वत्स शार्ङ्गरव, करुण विलाप करने वाली यह शकुन्तला हम लोगों का अनुसरण कर रही है। तिरस्कार करने से कठोर हुए पति के प्रति बेचारी मेरी पुत्री क्या करे?

शार्ङ्गरवः—(सरोषं निवृत्य) किं पुरोभागे, स्वातन्त्र्यमवलम्बसे?

(शकुन्तला भीता वेपते।)

हिन्दी—शार्ङ्गरव—(क्रोधपूर्वक मुड़कर) अरे दुष्टा, क्या तू स्वतन्त्रता का सहारा ले रही है।

(शकुन्तला भय से काँपती है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शार्ङ्गरवः—शकुन्तले,

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा
त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः
पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥ २७॥

तिष्ठ। साधयामो वयम्।

अन्वय--क्षितिपः यथा वदति, यदि त्वं तथा असि, उत्कुलया त्वया पितुः किम्? अथ तु आत्मनः व्रतं शुचि वेत्सि, पतिकुले तब दास्यम् अपि क्षमम्।

हिन्दी—शार्ङ्गरव—शकुन्तले,

राजा जैसा कहता है यदि तुम वैसी हो तो तुझ कुल-कलंकिनी से पिता को क्या लेना-देना? (अर्थात् कुल-कलंकिनी कन्या से पिता का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।) परन्तु यदि तुम अपने आचरण को पवित्र समझती हो तो पतिकुल में तुम्हारी दासता (दासीकर्म) भी (बन्धुओं के लिए) क्षम्य है।

(तुम यहीं) रुको। हम लोग चलते हैं।

संस्कृत व्याख्या— क्षितिपः—भूपतिः, यथा वदति—इयं मम परिणीता नास्ति इत्थं वदति, यदि त्वं तथा असि—तादृशी एवासि तर्हि, उत्कुलया—अतिक्रान्त कुल मर्यादया, त्वया—शकुन्तलया, किम्—पितुः कण्वस्य कि प्रयोजनमस्ति अर्थात् नास्तीत्यर्थः। अथ तु आत्मनः—परन्तु यदि त्वं स्वस्य, व्रतम्—आचरणम्, शुचिः—पवित्रम्, वेत्सि—स्वीकरोषि, तदा, पतिकुले-पतिगृहे, तव—तव शकुन्तलायाः, दास्यम्अपि—दासत्वमपि, क्षमम्—योग्यम्, बन्धुभिः क्षन्तव्यमित्यर्थः। काव्यलिङ्ग अलंकारः। प्ररोचना नामकं विमर्शसन्ध्यङ्गं द्रुतविलम्बितं वृत्तञ्च स्तः।

टिप्पणी—यहाँ प्ररोचना नामक विमर्श सन्ध्यंग है। लक्षण—प्ररोचना तु विज्ञेया संहारार्थ प्रदर्शिनी ॥ सा० द०॥ यहाँ परिणीता के लिए पतिगृह ही एकमात्र निवास स्थान है—इस बात पर प्रकाश डाला गया है। इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलंकार है क्योंकि प्रथम एवं तृतीय चरण द्वितीय एवं चतुर्थ चरण का कारण है द्रुतविलम्बित छन्द है।

अथ तु वेत्सि शुचि........दास्यमपि क्षमम्। If you believe the conduct to be irreproachable even the servitude in husband's family is proper for you.—Kale.

राजा—भोस्तपस्विन्, किमत्रभवती विप्रलभसे।

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव ।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ २८॥

अन्वय—शशाङ्कः कुमुदानि एव सविता पङ्कजानि एव बोधयति। हि वशिनां वृत्तिः परिपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी।

हिन्दी—राजा—हे तपस्वी, इस स्त्री को आप क्यों धोखा दे रहे हैं?

चन्द्रमा कुमुदों को ही तथा सूर्य कमलों को ही विकसित करता है क्योंकि जितेन्द्रियों की मनोवृत्ति पराई स्त्री के सम्पर्क से विमुख रहती है।

संस्कृत व्याख्या—शशाङ्कः—निशाकरः, कुमुदानि एव—एकसरस्थितान्यपि कुमुदान्येव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बोधयत न तु पङ्कजानीत्येवकारार्थः, तथा, सविता—सूर्यः, पङ्कजानि एव—कुमुदानां पङ्कजानामेक भावस्थानेऽपि सरसिजानि एव, बोधयति—विकासयति, हि—यतो हि वशिनां—जितेन्द्रियाणाम्, वृत्तिः—मनोवृत्तिः आचरणं वा, परपरि०—परस्य स्वभिन्नस्य परिग्रहः कलत्र तस्य संश्लेषः सम्पर्कः तस्मात्पराङमुखी निवर्तनशीला अन्य कलत्र संगमपराङ्मुखी भवतीति भावः। अत्र अप्रस्तुत प्रशंसामालादृष्टान्तार्थान्तरन्यास श्चालंकाराः। आर्या जातिः।

टिप्पणी—राजा का कथन—हे तपस्वी, इस महिला को आप क्यों धोखा दे रहे हैं।—व्यंग्यार्थवाचक है। इसका आशय यह है कि यदि इस आशा से इसे यहाँ छोड़कर जा रहे है कि बाद में मैं इसे स्वीकार कर लूँगा तो यह आपका भ्रम है क्योंकि मैं एक जितेन्द्रिय व्यक्ति हूँ जिसके लिए पराई स्त्री देखना भी पाप है। परि०—परेषां परिग्रहाणां संश्लेषे पराङ्मुखी—तत्पु० यहाँ पर प्रस्तुत शकुन्तला एवं दुष्यन्त के स्थान पर अप्रस्तुत कुमुद एवं शशाङ्क आदि का उल्लेख होने से अप्रस्तुतप्रशंसालंकार, जितेन्द्रयत्व की पुष्टि के लिए अनेक अनेक दृष्टान्तों का कथन होने दृष्टान्त अलंकार, शशाङ्क एवं सविता दोनों अप्रस्तुत पदार्थों का 'बोधयति' इस एक क्रिया से सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता तथा उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा।

कुमुदान्येव शशाङ्कः—The moon causes only the moon-lotuses to bloom, सविता बोधयति—the sun only the sun lotuses, वशिनां पराङ्मुखीवृत्तिः—the inclination of self restrained persons is averse to embrace another man's wife.—Kale.

शार्ङ्गरवः—यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसङ्गाद् विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरुः ?

हिन्दी—शार्ङ्गरव—यदि पूर्व वृत्तान्त (घटना) को आप अन्य (स्त्री) में आसक्त होने के कारण भूल गए हैं तो अधर्म से डरने वाले कैसे हो सकते हैं?

राजा—(पुरोहितं प्रति) भवन्तमेवात्र गुरुलाघवं पृच्छामि।

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ॥ २९ ॥

अन्वय—अहं मूढः स्याम्, वा एषा मिथ्या वदेत्, इति संशये दारत्यागी भवामि, आहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः (भवामि)।

हिन्दी—राजा—(पुरोहित से) आपसे ही इस विषय में गुरुलाघव (गुणदोष) पूछता हूँ। (अर्थात् ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—बताइए।)

मैं भ्रमित हो गया हूँ अथवा यह (शकुन्तला) असत्य बोल रही है—इस दुविधा में स्त्री परित्यागी बनूँ या परस्त्री सम्पर्क से अपवित्र बनूँ।

संस्कृत व्याख्या—अहम्—पुरुवंशीयोऽहम्, मूढः स्याम्—भ्रमितो भवेयम्, वा—अथवा, एषा—शकुन्तला, मिथ्या—असत्यम्, वदेत्—कथयेत्, इति संशये—सन्देहे, दारत्यागी—पत्नी त्यागी, भवामि, आहो—उत, परस्त्री०—परस्य स्वभिन्नस्य स्त्रियः भार्याः स्पर्शेन सम्पर्केण पांसुलः अपवित्रम्, भवामि। अत्रानुप्रासोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी—यहाँ राजा पुरोहित के शरणागत हो गया है। उसकी स्थिति कुरुक्षेत्र के अर्जुन जैसी हो गयी है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि राजा का मन शकुन्तला से पूर्णतः उदासीन नहीं है। उसे अपने पर पूर्ण विश्वास नहीं है कि वह ठीक कर रहा है। यहाँ अनुप्रास अलंकार तथा श्लोक छन्द है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ भी ''राजा—भोः सत्यवादिन् से लेकर यहाँ तक विरोध नामक नाट्यांग है। इसका लक्षण— उत्तरोत्तर वाक्यं तु विरोध इति संज्ञितः ॥''

मूढः स्यामहम—I have been infatuated or there is a doubt or this lady is uttering falsehood, दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः—shall I be the repudiator of a wife or polluted by the touch of another man's wife ?—Kale.

पुरोहितः—(विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्।

हिन्दी—पुरोहित—(विचार कर) यदि ऐसा किया जाय।

राजा—अनुशास्तु मां भवान्।

हिन्दी—राजा—आप मुझे आदेश दीजिए।

पुरोहितः—अत्रभवती तावदा प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यते इति चेत्—त्वं साधुभिरादिष्टपूर्वः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव।

हिन्दी—पुरोहित—यह महोदया सन्तानोत्पत्ति तक मेरे घर रहें। मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ यदि (आप यह जानना चाहते है) तो सुनिये—ज्योतिर्विदों के द्वारा आपको पहले ही बतलाया गया है कि सर्वप्रथम आपके चक्रवर्ती पुत्र होगा। यदि वह मुनि (कण्व) का नाती उस (चक्रवर्ती) लक्षण से युक्त होगा तो इसका (शकुन्तला का) सत्कार करके आप इसे अन्तःपुर में प्रवेश कराइएगा। विपरीत होने पर तो पिता के पास इसका जाना निश्चित ही है।

राजा—यथा गुरुभ्यो रोचते।

हिन्दी—राजा—जैसा आपको अच्छा लगे।

पुरोहितः—वत्स, अनुगच्छ माम्।

हिन्दी—पुरोहित—पुत्री, मेरा अनुसरण करो।

शकुन्तला—भगवति, वसुधे, देहि मे विवरम्। (भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं।)

(इति रुदती प्रस्थिता। निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च)

(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति।)

हिन्दी—शकुन्तला—भगवती पृथिवी, मुझे स्थान दीजिए। (अर्थात् अब मातृकुल तथा पतिकुल में मेरा कोई साथी नहीं है अब आप ही मुझे अपने अन्दर समाहित कर लीजिए।)

(शकुन्तला विलाप करती हुई प्रस्थान करती है। पुरोहित एवं तपस्वियों के साथ वह निकल जाती है।)

(शाप से अवरुद्ध स्मृति वाला राजा शकुन्तला के विषय में ही सोचता है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(नेपथ्ये)

आश्चर्यमाश्चर्यम्।

(नेपथ्य में)

हिन्दी—आश्चर्य है! आश्चर्य है!

राजा—(आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात्?

हिन्दी—राजा—(सुनकर) क्या हुआ?

(प्रविश्य)

पुरोहितः—(सविस्मयम्) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम्।

हिन्दी—पुरोहित—(आश्चर्य के साथ) महाराज, गज़ब हो गया।

राजा—किमिव?

हिन्दी—राजा—क्या हुआ?

पुरोहितः—देव, परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला

बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।

हिन्दी—पुरोहित—महाराज, कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर-अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई वह बाला (शकुन्तला) हाथ उठाकर रोने लगी।

राजा—किं च?

हिन्दी—राजा—फिर क्या हुआ?

पुरोहितः— स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारा-

दुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ ३० ॥

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति)

अन्वय—सा बाला स्वानि भाग्यानि निन्दन्ती बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं प्रवृत्ता च। अप्सरस्तीर्थम् आरात् स्त्रीसंस्थानम् एकं ज्योतिः एनाम् उत्क्षिप्य जगाम च।

हिन्दी—पुरोहित—अप्सरातीर्थ के समीप स्त्री जैसी स्वरूप वाली अद्भुत ज्योति (प्रकाशमयी मूर्ति) इसको (शकुन्तला का) उठाकर चली गई।

(सब लोग आश्चर्य का अभिनय करते हैं।)

संस्कृत व्याख्या—सा बाला—शकुन्तला, स्वानि—स्वकीयानि, भाग्यानि—भागधेयानि, निन्दन्ती—धिक्कुर्वती, बाहूत्क्षेपम्—बाहू उत्क्षिप्य यथा स्यात्तथा, क्रन्दितुम्—रोदितुम्, प्रवृत्ता च—प्रारब्धवती च। अप्सरस्तीर्थम्—अप्सरसः यत्र स्नानादिकं कुर्वन्ति तत् अप्सरसां तीर्थम्, आरात्—समीपात्, स्त्रीसंस्थानम्—स्त्रियाः इव संस्थानम् आकृतिर्यस्य तथा भूतम्, एकम् ज्योतिः—तेजोमयत्वेन स्पष्टयाप्रतीयमानम् एकं केवलं ज्योतिः, एनाम्—शकुन्तलाम्, उत्क्षिप्य—क्रोडे निधाय, जगाम—अन्तरिक्षं जगामित्यर्थः। अत्र समुच्चयालङ्कारः। शालिनी वृत्तम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी—स्त्री संस्थानम्—स्त्रियाः इव संस्थानम् यस्य तत्—बहु०। स्त्री स्वरूप वाली। इस पद्य के उत्तरार्ध का अर्थ विभिन्न टीकाकारों ने विविध प्रकार से किया है। प्राचीन टीकाकार राघव भट्ट ने—स्त्री संस्थानं ललनाकारम्। ....एकं केवलं ज्योतिरे नामाराद्दूरादुत्क्षिप्याप्सरस्तीर्थं शचीतीर्थं जगामेति संबन्धः, के रूप में इस उत्तरार्ध की टीका की है। इसका आशय यह है कि स्त्री रूप ज्योति शकुन्तला को दूर से उठाकर अप्सरस्तीर्थ को चली गयी। परवर्ती टीकाकारों में डा० कपिलदेव द्विवेदी ने इसका अर्थ—अप्सरस्तीर्थम् आरात्ः—शचीतीर्थस्य समीप एव स्त्रीसंस्थानम्—स्त्रियाः संस्थानम् आकृतिरिव संस्थानं यस्य तत् ललनाकारमित्यर्थः। एकं ज्योतिः—एका तेजोमयी मूर्तिः, एवां—शकुन्तलाम्, उत्क्षिप्य—उत्थाय, जगाम च—तिरोबभूव किया है। इसका आशय यह है कि अप्सरस्तीर्थ के समीप में ही एक तेजोमयी मूर्ति शकुन्तला को उठाकर तिरोहित हो गयी। ये दोनों अर्थ ग्रन्थकार के भाव को पूर्णतः व्यक्त नहीं कर रहे हैं। अतः मैंने इसका अर्थ—अप्सरस्तीर्थ के समीप से एक तेजोमयी ज्योति प्रकट होकर शकुन्तला को उठाकर अन्तरिक्ष में ओझल हो गयी। यह अर्थ इसलिए सटीक है क्योंकि शकुन्तला एवं दुष्यन्त का मिलन वायु लोक में होता है जो अन्तरिक्ष का ही भाग है। इस पद्य में 'च' के द्वारा जगाम एवं प्रवृत्ता क्रियाओं का संग्रह किया गया है अतः समुच्चय अलंकार है। छन्द शालिनी है। इसका लक्षण—मातौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः। नेपथ्ये से लेकर यहाँ तक विरोध की शक्ति होने से शक्ति नामक विमर्श सन्धि का अङ्ग है। साहित्य दर्पणकार ने इसका लक्षण—शक्तिः पुनर्भवेद्। विरोधस्य प्रशमनय् किया है।

भाग्यानि निन्दन्ती—reproaching her stars, क्रन्दितुं च प्रवृत्ता—starts to cry aloud. वाहूत्क्षेपं—tossing her hands, चाप्सरस्तीर्थ—ज्योतिरेकं जगाम—in the vicinity of, अप्सरतीर्थ—a flash of light in a female form lifted her up and vanished.--Kale.

राजा—भगवन्, प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्यते। विश्राम्यतु भवान्।

हिन्दी—राजा—भगवन्, मैंने पहले ही उस वस्तु (शकुन्तला) का परित्याग कर दिया है। अब व्यर्थ के तर्क से क्या मिलेगा? आप विश्राम करें।

पुरोहितः—(विलोक्य) विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—पुरोहित—(देखकर) विजयी बनिये। (प्रस्थान)

राजा—वेत्रवति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय।

हिन्दी—राजा—वेत्रवती, मैं उद्विग्न हो रहा हूँ। शयनकक्ष का मार्ग बताओ।

प्रतीहारी—इत इतो देवः। (इदो, इदो देवो।) (इति प्रस्थिता।)

हिन्दी—प्रतीहारी—महाराज, इधर से, इधर से (आइए) (प्रस्थान)

राजा—

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मां हृदयम्॥ ३१॥

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

पञ्चमोऽङ्कः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—कामं प्रत्यादिष्टां मुनेः तनयां परिग्रहं न स्मरामि। तु बलवत् दूयमानं हृदयं मां प्रत्याययति इव।

हिन्दी—राजा—भले ही तिरस्कृत मुनि कन्या (शकुन्तला) को पत्नी रूप में स्मरण नहीं करता हूँ, परन्तु अतिशय खिन्न मन मुझे मानों विश्वास दिला रहा है (कि यह मेरी पत्नी है।)

संस्कृत व्याख्या—कामम्—मतमेतद् यद्, प्रत्यादिष्टाम्-तिरस्कृताम्, मुनेः—कण्वस्य, तनयाम्—पुत्रीम्, परिग्रहं—पत्नीत्वेन, न स्मरामि—स्मरणं न करोमि, तु—परन्तु, बलवत्—अत्यधिकम्, दूयमानम्—खिन्नम्, मे—मम, हृदयम्—चेतः, प्रत्याययतीइव—विश्वासमुत्पादयतीव, अनया स्थापिन्या रतेरनुसंधानं ध्वनितम्। अत्रोत्प्रेक्षाविभावनानुमानंचालंकाराः। आर्या जातिः।

(सबका प्रस्थान)

(पंचम अङ्क समाप्त)

टिप्पणी—राघवभट्ट ने कामम् का अर्थ अतिशय किया है तथा परवर्ती टीकाकारों ने इसका अर्थ 'माना कि' 'भले ही' किया है। दोनों अर्थ की संगति उचित है। यहाँ प्रत्याययतीव में उत्प्रेक्षा अलंकार है। खिन्नता का कारण न होने पर राजा का मन खिन्न है अतः विभावना अलंकार भी है। इसी प्रकार विश्वास उत्पन्न करने का कारण हृदय की पीड़ा है अतः अनुमान अलंकार की भी छटा दर्शनीय है। आर्या छन्द है। यहाँ नामक विमर्श संधि का अंग है। इसका लक्षण—प्रसंगो गुरुकीर्तनम्। (सा० द०)। क्योंकि यहाँ—मुनेः तनयाम्—मुनि कण्व की पुत्री रूप से गुरु कण्व का उल्लेख होता है।

कामं न स्मरामि—I do not remember, प्रत्यादिष्टां—the daughter of the sage repudiated, परिग्रहं—as having been married by me, बलवत् दूयमान हृदयं मां प्रत्याययतीव—aching poignantly my heart makes me believe as it were.—Kale.

(इति पञ्चमोऽङ्कः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नागरिकः[1] श्यालः पश्चाद् बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च।)

(तब राजा के साले कोतवाल तथा उसके पीछे बँधे हुए पुरुष को लेकर दो सिपाहियों का प्रवेश होता है।)

रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम्? (अले कुम्भीलआ, कहेहि कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीअए अंगुलीअए शमाशादिए?)

हिन्दी—दोनों सिपाही—अरे चोर, बताओ, मणिजटित तथा राजा के खुदे नाम से युक्त यह अँगूठी तुमने कहाँ पाई?

बद्ध पुरुष—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी[2]। (पशीदन्तु भावमिश्शे। हगे ण ईदिशकम्मकाली।)

हिन्दी—बृद्ध पुरुष—(भय का अभिनय करते हुए) आप सभी प्रसन्न हों, मैं ऐसा कर्म (चोरी) करने वाला नहीं।

प्रथमः—किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः? (किं शोहणे बम्हणेत्ति कलिअ रण्णा पडिग्गहे दिण्णे?)

हिन्दी—प्रथम—क्या तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण हो, ऐसा समझकर राजा द्वारा उपहार में दिया गया है।

पुरुषः—शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः। (शुणध दाणिं। हगे शक्कावदालब्भंतरालवाशी धीवले।)

हिन्दी—पुरुष—सुनिये, मैं शक्रावतार (नामक तीर्थ) में रहने वाला मल्लाह हूँ।

द्वितीयः—पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिः पृष्टा? (पाडच्चला, किं अम्हेहिं जादी पुच्छिंदा?)

हिन्दी—द्वितीय—चोर, क्या हमने तुम्हारी जाति पूछी है?

नोट—कुम्भीर+कन् = कुम्भी स्वल्पम् कुम्भं धनपूर्णं सति गृह्णाति असौ कुम्भीरः, कु+भिद् = पृथ्वी या दीवार तोड़ कर घुसने वाला चोर।

श्यालः—सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनमन्तरा प्रतिबधान। (सूअअ, कहेदु शव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तरा पडिबन्धह।)

---

१. नागरिक—नगरं रक्षति या नगरैर्नियुक्त इति नागरिकः, नगर + ठक् (इक)। संस्कृत नाट्य साहित्य में खलनायक के रूप में इसका विधान है।

२. नाहमीदृश० (ण हगे ईदिश०)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—श्याल—सूचक, इसे सबकुछ क्रम से बताने दो। इसे बात के बीच में मत रोको।

पूर्वाभास

एक दिन शक्रावतार निवासी एक केवट ऐसी मछली पकड़ता है जिसके उदर से दुष्यन्त नामांकित मुद्रिका मिलती है। केवट विक्रय के लिए बाजार जाता है। वहाँ उसे राजपुरुष पकड़ते हैं तथा राजा के पास ले जाते हैं। अँगूठी पर दृष्टि पड़ते ही दुर्वासा के शाप से ग्रस्त राजा को शकुन्तला की याद आती है और वह शोक में निमग्न हो जाता है। पुनः धैर्य धारण कर वह केवट को मुक्त करके उपहार देकर विदा कर देता है।

उभौ—यदावुत्त आज्ञापयति। कथय। (जं आवुत्ते आणवेदि। कहेहि।)

हिन्दी—दोनों सिपाही—जो आप आज्ञा देते हैं। (तुम धीवर) अपनी बात कहो।

पुरुषः—अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैःकुटुम्बभरणं करोमि। (अहके जालुग्गालादिहिं मच्छबन्धनोवाएहिं कुटुम्बभलणं कलेमि।)

हिन्दी—पुरुष—मैं जाल, काँटा आदि मछली फँसाने के उपायों से अपने परिवार का पोषण करता हूँ।

श्यालः—(विहस्य) विशुद्ध इदानीमाजीवः। (विसुद्धो दाणिं आजीवो।)

हिन्दी—श्याल—(मुस्कराकर) तुम्हारी जीविका अत्यंत शुद्ध है।

पुरुषः—

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पाभृदुरेव श्रोत्रियः ॥ १ ॥

(शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए ॥)

अन्वय—विनिन्दितं यत् कर्म किल सहजम्, तत् खलु न विवर्जनीयम्। पशुमारणकर्मदारुणः श्रोत्रियः अनुकम्पामृदुः एव।

हिन्दी—निन्दित होने पर भी जो कर्म स्वाभाविक है, निश्चित ही जन्म या वंश परम्परा से प्राप्त उस कर्म को त्यागना नहीं चाहिए। यज्ञों में विद्वान ब्राह्मण जो पशु-हिंसा में क्रूर होता है वह दया करने में मृदु हृदय वाला होता है।

नोट—प्रस्तुत श्लोक बौद्ध धर्म (अहिंसा) का खण्डन करता है तथा वैदिक कर्मकाण्ड का रामर्थक है। कालिदास ने कहीं भी ब्राह्मण धर्म का विरोध नहीं किया। यहाँ अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, अप्रस्तुतप्रशंसालंकार है। छन्द—सुन्दरी जिसके प्रथम, तृतीय चरण में २ सगण, १ जगण, एक गुरु वर्ण हो तथा दूसरे चौथे चरण में सगण, भगण, रगण, १ लघु, १ गुरु वर्ण हो।

श्यालः—ततस्ततः ? (तदो तदो ?)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—श्याल—हाँ तो आगे क्या हुआ ?

पुरुषः—एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत्। तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। मारयत वा मुञ्च वा। अयमस्यागमवृत्तान्तः (एक्कश्शिं दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव। तश्श उदलब्भन्तले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ[1] पच्छा अहके शे विक्कआअ दंशअंते गहिदे भावमिश्शेहिं। मालेह वा मुंचेह वा। अअं शे आअमवुत्तंते।)

हिन्दी—पुरुष—एक दिन मैंने रोहू मछली के टुकड़े किये। उसके पेट के अन्दर मैंने रत्नों से चमकती अँगूठी को देखकर, बाद में मैं उसे बेचने के लिए दिखाता हुआ आप लोगों से पकड़ा गया, चाहे मुझे मारिए या छोड़िए।

श्यालः—जानुक[2], विस्त्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्। अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः। (जाणुअ, विस्सगन्धी गोहादी मच्छबन्धो एव्व णिस्संअअं। अंगुलीअअदंसणं से विमरिसिदव्वं। राअउलं एव्व गच्छामो।)

हिन्दी—श्याल—जानुक, कच्चे मांस की गंध वाला, गोह का मांस खाने वाला, यह निःसन्देह (मछुआरा) है। अँगूठी कैसे मिली यह विचारणीय है, राजकुल में चलो।

रक्षिणौ—तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक! (तह। गच्छ अले गंडभेदअ।) **(सर्वे परिक्रामन्ति।)**

हिन्दी—दोनों सिपाही—जैसी आपकी आज्ञा। अरे गिरहकट (चोर) चल। (सभी घूमते हैं।)

श्यालः—सूचक,[3] इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य[4] ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रामामि। (सूअअ, इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिवालह जाव इमं अंगुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि।)

हिन्दी—श्याल—हे सूचक, नगर द्वार पर इस धीवर को सावधान होकर देखते रहना जबतक मैं महाराज को इस अँगूठी के आगमन का समाचार बताकर उनकी आज्ञा पाकर आता हूँ।

उभौ—प्रविशत्वावुतः स्वामिप्रसादाय। (पविशदु आवुत्ते शामिपशादश्श।)

---

१. प्रेक्षे दावदिदं (देखो तो)—का०

२-३. सूचक और जानुक राजकुल के दो सिपाही हैं।

४. भर्त्रे (महाराज को)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—दोनों सिपाही—स्वामी की कृपा के लिए आप प्रवेश करें।

(इति निष्क्रान्तः श्यालः)

(इस प्रकार कोतवाल निकल जाता है।)

प्रथमः—जानुक, चिरायते खल्वावुत्तः। (जाणुअ, चिलाअदि क्खु आवुत्ते।)

हिन्दी—प्रथम सिपाही—जानुक, कोतवाल जी देर लगा रहे हैं।

द्वितीयः—नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः। (णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो।)

हिन्दी—द्वितीय—निश्चित ही, राजाओं के पास अवसर पाकर पहुँचा जाता है।

प्रथमः—जानुक, स्फुरतो मम हस्तावस्य वधार्थं[1] सुमनसः पिनद्धुम्। (जाउण, फुल्लन्ति मे हत्था इमश्श वहश्श शुमणा पिणद्धुं)

हिन्दी—पहला सिपाही—जानुक, मेरे हाथ इसके वध के लिए इसको पुष्पों का हार पहनाने के लिए फड़क रहे हैं।

पुरुषः—नार्हति भावोऽकारणमारणं भावयितुम्। (ण अलुहदि भावे अकालणमालणं[2] भविदुं)

हिन्दी—पुरुष—महानुभाव को बिना कारण के ही मेरे वध का विचार करना ठीक नहीं।

द्वितीयः—(विलोक्य) एष नः स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो[3] दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि, शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि। (एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देखीअदि। गिद्धबली भविश्शशि, शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि।)

हिन्दी—द्वितीय सिपाही—यह मेरे स्वामी हाथ में पत्र लेकर, राजाज्ञा प्राप्त करके इधर की ओर मुख किये हुए दिखाई पड़ रहे हैं। अब या तो, तू गिद्धों की बलि होगा या कुत्तों का मुख देखेगा अर्थात् गिद्धों का भोजन होगा या कुत्तों द्वारा खाया जायेगा।

नोट—प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि प्राण दण्ड वाले व्यक्ति को माला पहिनाई जाती थी— अस्य वधार्थं सुमनसः पिनद्धुं, दत्तकरवीरदामा—मृच्छकटिकम्

प्रविश्य

(प्रवेश करके)

श्यालः—सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः खल्वस्याङ्गुलीयकस्यागमः। (सुअअ, मुंचेदु एसो जालोअजीवी।

---

१. वधस्य (वध के) —का०

२. अकारणमारणो भवितुम् —का०

३. प्रतीष्य (प्राप्त करके) —का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उववण्णो क्खु से अंगुलीअअस्स आअमो।)

हिन्दी—श्याल—जाल से जीविका चलाने वाले इस (धीवर) को छोड़ दो। इस अंगूठी को प्राप्त करने का वृत्तान्त सत्य है।

सूचकः—यथावुत्तो भणति। (जह आवुत्ते भणादि।)

हिन्दी—सूचक—जैसा आप कहते हैं।

द्वितीय—एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः (एशे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते।)

हिन्दी—दूसरा—यह धीवर तो यमलोक में पहुँच कर लौट आया।

(इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति।)

(इस तरह दूसरा सिपाही धीवर को बन्धन मुक्त करता है।)

पुरुषः—(श्यालं प्रणम्य) भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः? (भट्टा, अह कीलिशे मे आजीवे?)

हिन्दी—पुरुष—(कोतवाल को प्रणाम करके) स्वामी, अब बताइये मेरी जीविका कैसी है?

श्यालः—एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः। (एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो।) **(इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति।)**

हिन्दी—श्याल—स्वामी ने अँगूठी के मूल्य के बराबर यह उपहार भी दिलाया है। (धीवर को धन देता है।)

पुरुषः—(सप्रणामं प्रतिगृह्य) भर्तः, अनुगृहीतोऽस्मि। (भट्टा, अणुग्गहिद म्हि।)

हिन्दी—पुरुष—(प्रणामपूर्वक स्वीकार करके) स्वामी, मैं अनुग्रहीत हूँ।

सूचकः—एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः। (एशे णाम अणुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कन्धे पडिट्ठाविदे।)

हिन्दी—सूचक—यह महाराज की कृपा है कि इसे शूली से उतारकर हाथी की पीठ पर बैठाया गया है।

जानुकः—आवुत्त, पारितोषिकं[१] कथयति, तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यम्। (आवुत्त, पालिदोशिअं कहेदि, तेण अंगुलीअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं।)

---

१. परितोषं कथय (पुरस्कार के विषय में कहो) —नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—जानुक—इस उपहार से सूचित है कि यह अंगूठी महाराज को अत्यधिक रुचिकर है।

श्यालः—न तस्मिन् महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन आसीत्। (ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो। मुहुत्तअं पकिदिगम्भीरो वि पज्जस्सुणअणो आसि।)

हिन्दी—श्याल (कोतवाल)—मेरा विचार है कि अँगूठी का बहुमूल्य रत्न राजा को प्रिय नहीं है बल्कि उस रत्न को देखने से राजा को किसी प्रिय जन का स्मरण हो आया है। स्वभाव से गम्भीर होने पर भी राजा के नेत्र क्षण भर के लिए आँसुओं से भर गये।

सूचकः—सेवितं नामावुत्तेन। (शेविदं णाम आवुत्तेण।)

हिन्दी—सूचक—आपने तो वस्तुतः महाराज की सेवा की है।

जानुकः—ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकर्भतुरिति। (णं भणाहि। इमश्श कए मच्छिआभत्तुणो त्ति।)

हिन्दी—जानुक—ऐसा कहो कि इस मल्लाह के लिए आपने स्वामी की सेवा की है।

(इति पुरुषमसूयया पश्यति।)

(मल्लाह को ईर्ष्या से देखता है।)

पुरुष—भट्टारक, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु। (भट्टालक, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु।)

हिन्दी—पुरुष—स्वामी इसमें से आधा अंश आप सबके फूलों के लिए मूल्य रूप हो जाय।

जानुकः—एतावद् युज्यते। (एत्तके जुज्जइ।)

हिन्दी—जानुक—इतना ठीक है।

श्यालः—धीवर, महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः। कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः। (धीवर, महत्तरो तुमं पिअवअस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पढमसोहिदं इच्छीअदि। ता सोण्डिआपणं एव्व गच्छामो।)

हिन्दी—श्याल—मछुआरे, इस समय तुम हमारे प्रिय मित्र बन गये हो। हम लोगों की प्रथम मैत्री मदिरा को साक्षी करके होनी चाहिए। अतः मदिरा की दूकान पर चलते हैं।

नोट—शुण्डा सुरा पण्या अस्य—ब० व्री०

शुण्डा—मधुशाला, शुण्डा पानगृहे मता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति निष्क्रान्ताः सर्वे (सबका प्रस्थान)

इति प्रवेशकः (प्रवेशक समाप्त)

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती नामाप्सराः ।)

(तब आकाश मार्ग से सानुमती नामक अप्सरा प्रवेश करती है।)

सानुमती—निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सर स्तीर्थसांनिध्यं यावत् साधुजनस्याभिषेककाल इति। साम्प्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। मेनकासंबन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वाऽस्मि। (समन्तादवलोक्य) किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम्। किन्तु सख्या आदरो मया मानयितव्यः। भवतु, अनयोरेवोद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये। (णिव्वत्तिदं मए पज्जाअणिव्वत्तिणिज्जं अच्छरातित्थ-सण्णिज्झं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति। संपदं इमस्स राएसिणो उदन्तं पच्चक्खीकरिस्सं। मेणआसंबन्धेण सरीरभूदा मे सउन्दला। ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठापुव्व म्हि। किं णु क्खु उदुच्छवे वि णिरुच्छवारम्भं विअ राअउलं दीसइ। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं। किं दु सहीए आदरो मए माणइदव्वो। होदु, इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सवत्तिणी भविअ उवलहिस्सं।)

हिन्दी—सानुमती—सज्जनों के स्नान करने तक अप्सर तीर्थ पर उपस्थित होने का कार्य, जो हम लोगों द्वारा बारी-बारी किया जाता है, उसे मैंने सम्पन्न कर लिया। अब इस राजार्षि की दशा को मैं स्वयं देखूँगी। मेनका (अप्सरा) से संबन्धित होने के कारण शकुन्तला मुझे मेरे शरीर की भाँति प्रिय हो गई है। और उस मेनका ने अपनी पुत्री के लिए मुझे पहले ही कहा है (चतुर्दिक देखकर) ऋतु-उत्सव का दिन होने पर भी राजकुल निश्चित ही उत्सव रहित क्यों दिखाई दे रहा है। मैं सब कुछ ध्यान से जानने में समर्थ हूँ किन्तु सखी के सादर अनुरोध की रक्षा मुझे करनी है। ठीक है, इन उद्यान-रक्षिकाओं के पास जाकर तिरस्कारणी विद्या के प्रभाव से राजा का समाचार जानूँगी।

(इति नाट्येनावतीर्य स्थिता।)

(इस प्रकार अभिनय के द्वारा उतरकर स्थित होती है।)

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटीः अपरा च पृष्ठस्तस्याः।)

(तब आम्रमञ्जरी को देखती हुई एक दासी तथा उसके पीछे दूसरी दासी प्रवेश करती है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथमा—

आताम्रहरितपाण्डुर जीवित[1] सत्यं वसन्तमासस्य ।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि ॥ २ ॥
(आतम्महरिअपंडुर जीविद सत्तं वसन्तमासस्स ।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि ॥ २ ॥)

अन्वय—आताम्रहरितपाण्डुर, वसन्तमासस्य सत्यं जीवित, चूतकोरक दृष्टः असि। ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि।

हिन्दी—ईषत् ताम्रवर्ण, हरे और श्वेत वर्ण वाले वसन्त मास के प्राण-स्वरूप हे आम्र की कली (बौर या मंजरी) तुम आज (मुझे) दिखाई पड़े हो। अतः वसन्त के मंगल स्वरूप मैं तुमको प्रसन्न कर रही हूँ।

नोट—हरितश्चासौ पाण्डुरञ्च—कर्मधा० समा०, ताम्रश्चासौ हरितश्च—कर्मधा० (१) आम्रमञ्जरी को वसन्त के प्राणरूप में आरोप करने के कारण रूपक अलंकार, (२) वसन्त को प्राण रूप में कल्पित करने के कारण उत्प्रेक्षालंकार, (३) आर्या छन्द, (४) अम० पलाशो हरितो हरित् मधु माधव ये नाम वसन्त ऋतु के लिए आते हैं। मधु—माधश्च वासन्तिकावृत (यजुर्वेद) आवाम्रहरित वाण्डुर—The mango blossom of reddish-green & grey, जीवितं—all-in-all of the life of spring प्रसादयामि—I propitiate you, ऋतुमंगल auspicious of the season.—Kale.

द्वितीया—परभृतिके, किमेकाकिनी मन्त्रयसे? (परहुदिए, किं एआइणी मन्तेसि?)

हिन्दी—दूसरी—परभृतिका, अकेली तुम क्या गुनगुना रही हो?

प्रथमा—मधुकरिके, चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति। (महुअरिए, चूदकलिअं देक्खिअ उन्मत्तिआ परहुदिआ होदि।)

हिन्दी—पहली—हे मधुकारिका, आम्रमञ्जरी को देखकर कोयल (परभृतिका) मतवाली हो जाती है।

द्वितीया—(सहर्ष त्वरयोपगम्य) कथमुपस्थितो मधुमासः? (कहं उवट्ठिदो महुमासो?)

हिन्दी—दूसरी—(सहर्ष तेजी से समीप जाकर) क्या मधुमास उपस्थित हो गया है?

प्रथमा—मधुकरिके, तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम्। (महुअरिए, तव दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं।)

हिन्दी—पहली—हे मधुकारिका, मद सम्पन्न विलासों एवं गीतों का तुम्हारा यही समय है।

द्वितीया—सखि, अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि। (सहि, अवलम्ब मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवच्चणं करेमि।)

---

१. जीवित सर्व—का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—दूसरी—सखी, मुझे सहारा दो, जिससे मैं पैर के अग्रभाग पर खड़ी होकर आम्रमञ्जरी तोड़कर कामदेव की पूजा करूँ।

प्रथमा—यदि ममापि खल्वर्धमर्चनफलस्य। (जइ मम वि क्खु अद्धं अच्चणफलस्स।)

हिन्दी—पहली—यदि मुझे भी उस पूजन का आधा फल मिले।

द्वितीया—अकथितेऽप्येतत् संपद्यते। यत एकमेव नौ जीवितं द्विधास्थितं शरीरम्। (सखीमवलम्ब्य स्थिता चूताङ्कुरं गृह्णाति।) अये अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति। (अकहिदे वि एदं संपज्जइ। जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुधाट्ठिदं शरीरं। अए, अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बन्धणभंगसुरभी होदि।)

हिन्दी—दूसरी—तुम्हारे न बताने पर भी ऐसा ही होता। क्योंकि हम दोनों के दो शरीरों में एक ही प्राण स्थित है (सखी का सहारा लेकर आम्र मञ्जरी को तोड़ती है।) अरे, पूर्णतः विकसित न होने पर भी यह आम्रबौर वृन्त (बन्धन) से अलग होने पर सुगन्ध फैला रहा है।

(इति कपोतहस्तकं कृत्वा)

(इस तरह कपोत के आकार में हाथों को जोड़कर या अंजलि बाँधकर)

त्वमसि मया चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे ।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव ॥ ३॥
(तुमं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स गहीदधणुअस्स ।
पहिअजणजुवइलक्खो पंचाब्भहिओ सरो होहि ॥ ३ ॥)

अन्वय—हे चूतांकुर, त्वं मया गृहीतधनुषे कामाय दत्तः असि। पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्याधिकः शरः भव।

हिन्दी—हे आम्र बौर, मैंने तुम्हे धनुष धारण किये हुए कामदेव के लिए प्रदान किया है। तुम विरही जनों की युवतियों के लक्ष्य (वाले) एवं कामदेव के पाँच बाणों में श्रेष्ठ होओ।

नोट—संगीत रत्नाकर में भी हाथों को जोड़कर कपोत आकार में बनाने का निर्देश है। पञ्चाभ्यधिकः—अरविन्दम शोकञ्च चूतश्च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः। पञ्चसु अधिकः—सप्त० तत्पु०। आर्या छन्द, प्रसादगुण एवं वैदर्भी रीति।

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति)

(आम्र मञ्जरी को फेंकती है)

(प्रविश्यापटीक्षेपेण कुपितः।)

(पर्दा हटाकर सक्रोध प्रवेश करके)

कञ्चुकी—मा तावत् अनात्मज्ञे! देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभङ्गं किमारभसे?

हिन्दी—कञ्चुकी—हे मूर्ख! महाराज दुष्यन्त द्वारा रोके जाने पर भी तुम वसन्तोत्सव में आम्र मञ्जरी को क्यों तोड़ रही हो?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उभे—(भीते) प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थे आवाम्। (पसीददु अज्जो। अग्गहीदत्थाओ वअं।)

हिन्दी—दोनों सखियाँ—(डरकर) श्रीमान् प्रसन्न होइये, हमें यह बात मालूम नहीं थी।

कञ्चुकी—न किल श्रुतं युवाभ्यां यद् वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथाहि—

हिन्दी—कञ्चुकी—तुम दोनों ने वस्तुतः क्या नहीं सुना कि वसन्त ऋतु के वृक्षों और उन पर रहने वाले पक्षियों द्वारा भी राजा का आदेश पालन किया गया है।

नोट—वसन्तोत्सवः—इसमें कामदेव की पूजा का विधान है। यह चैत्र मास में सम्पन्न होता है। इसे 'मदन महोत्सव' भी कहते हैं—दे० हर्षदेव कृत रत्नावली, अङ्क-१, वसन्त+हञ् (इक) वासन्तिक। वैदिक प्रयोग वसन्त + अण् = वासन्तः—लौकिक सं०।

चूतानां चिरनिर्गताऽपि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत् कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ॥४॥

अन्वय—चूतानां चिरनिर्गता अपि कलिका स्वं रजः न बध्नाति। कुरबकं यदपि संनद्धं तत् कोरकावस्थया स्थितम्। शिशिरे गते अपि पुंस्कोकिलानां रुतं कण्ठेषु स्खलितम्। शङ्के स्मरः अपि चकितः तूणार्धकृष्टं शरं संहरति।

हिन्दी—आम्रो के देर से निकले हुए मुकुल भी पराग केसर नहीं धारण करते, कुरबक की अवस्था में होने पर भी, खिलने को तैयार होने पर भी कली की अवस्था में स्थित हैं। शीतकाल बीतने पर भी पुरुष जातीय कोयलों की ध्वनि गले में अटक (रुक) गई है। मैं सोचता हूँ कि मदन ने भी भयभीत होकर तरकश से आधे निकले हुए बाण को रोक लिया है।

नोट—जिस तरह प्रौढ़ा स्त्री रजो दर्शन को प्राप्त नहीं होती, वैसे ही आम्र कलिका पराग केसर धारण नहीं करती। (१) मुकुल होने पर भी पराग न धारण करना आदि कारण होने पर भी कार्य न होने से विशेषोक्ति अलं०, (२) चौथे चरण के प्रति ३ चरणों को हेतु मानने से काव्यलिंग अलंकार, (३) प्रो० रे के अनुसार यहाँ 'शंके' पद से उत्प्रेक्षा अलंकार, (४) अचेतन काम पर चेतनत्व का आरोप करने से समासोक्ति अलंकार, (५) शार्दूल विक्रीड़ित छन्द

वध्नाति न स्वं रजः—does not form its pollen, कण्ठेषु स्खलितं रुतं—The cooing of male-cuckoos falters in their throat, तूर्णार्द्ध कृष्टं शरः—his arrow half drawn out of the quiver.—Kale.

प्रस्तुत पद्य में कवि प्रकृति पर मानवीय—भावों का आरोप करता है।

उभे—नास्ति सन्देहः। महाप्रभावो राजर्षिः। (णत्थि संदेहो। महाप्पहाओ राएसी।)

हिन्दी—दोनों—इस विषय में कोई सन्देह नहीं। राजर्षि (दुष्यन्त) का महान प्रभाव है।

प्रथमा—आर्य, कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः। इत्थं[1] च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म

---

१. अत्र (एत्थ)—क०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समर्पितम्। तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः। (अज्ज, कदि दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं। इत्थं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं। ता आअन्तुअदाए अस्सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो।)

हिन्दी—पहली (दासी)—कई दिन हुए हैं राजश्यालक मित्रावसु ने हम दोनों को महारानी की चरण-सेवा के लिए भेजा था। हमें अभी इस बगीचे का पालन कर्म सौंपा है। अतः नवागन्तुक होने से हम दोनों ने पहले यह बात नहीं सुनी थी।

कञ्चुकी—भवतु। न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्।

हिन्दी—कञ्चुकी—ठीक है। फिर ऐसा न करना।

उभे—आर्य, कौतूहलं नौ। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं कथयत्वार्यः किंनिमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः (अज्ज, कोदूहलं णो। जइ इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु अज्जो किंणिमित्तं भट्टिणा वसन्तुस्सवो पडिसिद्धो।)

हिन्दी—दोनों दासियाँ—आर्य, हम दोनों को कौतूहल है। यदि हम दोनों के सुनने योग्य हो, तो आर्य बतायें कि किस कारण से राजा ने ऋतूत्सव को रोका है?

सानुमती—उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्। (उस्सवप्पिआ क्खु मणुस्सा। गुरुणा कारणेण होदव्वं।)

हिन्दी—सानुमती—मनुष्यों को तो उत्सव प्रिय होते हैं। अतः इसमें (मना करने में) कोई महान् कारण होगा।

कञ्चुकी—बहुलीभूतमेतत् किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्?

हिन्दी—कञ्चुकी—यह बात बहुतों में फैल गई। तो क्यों न बता दूँ। क्या शकुन्तला के परित्याग के कलंक की बात तुम दोनों के कानों में नहीं पहुँची?

नोट—कुले भवः, कुल + ख (ईन), कुलीन + अण् = कौलीन, स्यात्कौलीनं लोकवादः अण्०। कौलीन—लोक में निन्दा। मित्रावसु राजा का साला है।

उभे—श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावदङ्गुलीयकदर्शनम्। (सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अंगुलीअदंसणं।)

हिन्दी—दोनों दासियाँ—हमने अँगूठी प्राप्त होने तक का समाचार राजस्यालक के मुख से सुना है।

कञ्चुकी—तेन ह्यल्पं कथयितव्यम्। यदैव खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मे तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात् प्रत्यादिष्टेति तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः। तथाहि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—कञ्चुकी—तब तो कम ही बताना होगा। अभी महाराज ने अपनी अँगूठी देखी है, तभी से उन्हें याद आई है कि वस्तुतः मैंने माननीया शकुन्तला से एकान्त में विवाह किया था और अज्ञान के कारण उसका परित्याग किया है, तभी से महाराज पश्चात्ताप को प्राप्त हुए हैं। क्योंकि (for —Kale.)

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ॥ ५॥

अन्वय—रम्यं द्वेष्टि। यथा पुरा प्रकृतिभिः प्रत्यहं न सेव्यते। उन्निद्रः एव शय्याप्रान्तविवर्तनैः क्षपाः विगमयति। यदा दाक्षिण्येन अन्तःपुरेभ्यः उचितां वाचं ददाति, तदा गोत्रेषु स्खलितः चिरं व्रीडाविलक्षः च भवति।

हिन्दी—(राजा दुष्यन्त) सुन्दर वस्तुओं से द्वेष करते हैं, पहले की भाँति मंत्रियों या प्रजाओं से प्रतिदिन नहीं मिलते। जागने पर शय्या के किनारों पर करवटें बदलकर रात्रियाँ बिताते हैं। जब उदारता के कारण अन्तःपुर की स्त्रियों को कोई उत्तर देते हैं तो उस समय जब शकुन्तला का नाम उनके मुख से निकल जाता है, तो वे देर तक लज्जा के कारण व्याकुल हो जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—रम्यं वस्तु—मनोहरं वस्तु, स्रक चन्दनादिकं, द्वेष्टि—न वाञ्छेति, यथा पुरा पूर्वम्, प्रकृतिभिः—मन्त्रिप्रजादिभिः, प्रत्यहं—प्रतिदिनं, न सेव्यते—आश्रीयते, उन्निद्रः—निद्रारहितः एव, शय्याप्रान्त०—शयनीय पर्यन्तभाग लुण्ठनादिभिः, क्षपाः—रात्रिकालं, विगमयति—यापयति, यदा दाक्षिण्येन—उदारतया, अन्तःपुरेभ्यः—अवरोधराज्ञीभ्यः, वाचं—वचनं, ददाति—प्रयच्छति, तदा गोत्रेषु—नामसु, स्खलितः—भ्रष्टः, व्रीडा०—लज्जया, अवनतमुखी भवति, अत्र पर्यायोक्तं, काव्यलिङ्गं चालंकाराः। छन्दश्च शार्दूलविक्रीडितम्।

नोट—रम्यम्—स्रक, चन्दन आदि रमणीय पदार्थ जो मानव-मन को सहज ही लुभाते हैं, रम् + यत् प्र० ए० व०, विगमयति—वि + गम् + इ (गमनार्थक) + णिच् + लट् प्र० पु० ए० व०, णौ गमिरबोधने से इ, को गम् आदेश, अनेक महिलाओं के साथ अनुरक्त होने वाला नायक 'दक्षिण' नायक है—एषु त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः—सा० द०। गोत्रस्खलित—नामोच्चारण में भूल से शकुन्तला का नाम लेना। अन्य ग्रन्थों में भी इसका संकेत है—जगाद गोत्रस्खलितं—(नैषध) उद्गता निद्रा यस्मात्—ब० व्री०, अन्तःपुरः—लक्षणा से अन्तःपुर का अर्थ रानियाँ है, विगतं लक्षं यस्य—ब० व्री०, अलंकार—(१) पश्चात्ताप के समर्थक अनेक कारणों का उल्लेख होने से उल्लेखालंकार, (२) व्रीडा विलक्ष होने का कारण गोत्रस्खलन है, अतः काव्यलिङ्ग, (३) शार्दूलविक्रीडित छन्द, (४) विविध अनुभावों एवं चिन्तादि भावों से विप्रलभ श्रृंगार व्यंजित होता है।

सानुमती—प्रियं मे। (पिअं मे।)

हिन्दी—सानुमती—यह समाचार मुझे अच्छा लगा।

कञ्चुकी—अस्मात् प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः।

हिन्दी—कञ्चुकी—इस महान् मानसिक अशान्ति के कारण उन्होंने उत्सव बन्द कर दिया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उभे—युज्मते। (जुज्जइ।)

हिन्दी—दोनों दासियाँ—ठीक ही है।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

एतु एतु भवान्। (एदु एदु भवं।)

हिन्दी—आप महाराज, (इधर से) आइये, आइये।

कञ्चुकी—(कर्णं दत्त्वा) अये, इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्।

हिन्दी—कञ्चुकी—(कान लगाकर) अरे, महाराज तो इधर ही आ रहे हैं। अपने कर्म में लग जाओ।

उभे—तथा। (तह।)

हिन्दी—दोनों दासियाँ—ठीक है।

(इति निष्क्रान्ते।)

(दोनों दासियाँ चली जाती हैं।)

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च।)

(तब पश्चात्ताप के अनुकूल वेषधारी राजा दुष्यन्त, विदूषक तथा द्वारपाल प्रवेश करते हैं)

कञ्चुकी—(राजानमवलोक्य) अहो, सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः। तथा हि—

हिन्दी—कञ्चुकी—(राजा को देखकर) अहो, विशेष आकृति वाले लोगों का सौन्दर्य सभी अवस्थाओं में सुन्दर होता है। इस तरह (शकुन्तला के वियोग से) व्याकुल होने पर भी महाराज सुन्दर लगते हैं।

नोट—वैमनस्यात्—विकृतं मनः यस्य, तस्य भावः तस्मात्— हेतौ पञ्चमी, प्रत्याख्यात प्रति + आ + चक्ष + क्त, कंचुकी—स्वकर्मानुष्ठीयताम् तक विमर्श सन्धि का अंग है। The loveliness of excellent forms in all conditions— सर्वास्वा०............ विशेषाणाम्। Pining he is charming to look at. —प्रियंदर्शनो देवः।

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठर्पितं
बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥ ६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिः वामप्रकोष्ठार्पितम् एकम् एव काञ्चनं वलयं बिभ्रत्, श्वासोपरक्ताधरः चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनः संस्कारोल्लिखितः महामणिः इव क्षीणः अपि आत्मनः तेजोगुणात् न आलक्ष्यते।

हिन्दी—(महाराज दुष्यन्त ने) विशेष प्रकार के अलंकार-धारण करना बन्द कर दिया है, उन्होंने बाईं कलाई में एक ही स्वर्ण निर्मित कंगन धारण किया है, उनके अधर निःश्वासों से अधिक लाल हो गये हैं। वे चिन्ता के कारण जागने से थकी हुई आँखों वाले हो गये हैं, कसौटी पर घिसे बहुमूल्य मणि के समान दुर्बल होने पर भी वे अपने शरीर की तेजस्विता से दुर्बल नहीं दिखाई पड़ रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—परित्यक्त प्रसाधन विधिः—एकमणिबन्धन मध्यार्पितं काञ्चनं-स्वर्णनिर्मितं, वलयम्—एकं हस्तकङ्गणम्, चिन्ताजागरण०—शकुन्तला चिन्तया जागरणं खिन्ननेत्रः, संस्कारात्—शाणोत्लीढ़ महामणिरिव क्षीणः—स्वकीय सहज प्रभाजालैः स राजा दुष्यन्त न दृश्यते।

नोट—प्रत्यादिष्ट—त्याग करना, श्वासैः उपरक्तः अधरः यस्य—ब० व०, चिन्तया प्रतान्ते नयनानि यस्य—ब० व०, संस्कारो हि नाम कार्यान्त योग्यताकरणम्।

अलंकार—(१) राजा के शरीर का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार, (२) विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार, (३) राजा के शरीर की दुर्बलता कसौटी पर घिसे मणि के समान बताये जाने से उपमालंकार, (४) काम की दश[1] अवस्थाओं में से ५ का वर्णन यहाँ है। संकल्प (चिन्ता) जागरण, क्षीणता, निवृत्ति, उन्माद, (५) यहाँ राजा के सात्विक गुणों में माधुर्य का उल्लेख है—तन्माधुर्यम् यात्र दृष्टयादेः स्पृहणीयता सर्वावस्थासु सर्वत्र। (६) शार्दूलविक्रीडित छन्द।

प्रत्यादिष्ट—discarded, special decoration, मण्डन विधिः, चिन्ताजागरण०—his eyes distressed owing to wakefulness due to anxious thought. क्षीणः—reduced, न दृश्यते—does not appear to be so—Kale.

सानुमती—(राजानं दृष्ट्वा) स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताऽप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति। (ठाणे क्खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमंस्स किदे सउन्दला किलम्मदि त्ति।[2])

हिन्दी—सानुमती—(राजा को देखकर) उस प्रकार अपमानपूर्वक त्यागी हुई शकुन्तला जो इनके लिए छटपटा रही है, वह उचित है।

राजा—(ध्यानमन्दं परिक्रम्य)

हिन्दी—राजा—(चिन्ता के कारण धीरे-धीरे चलकर)

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम्॥७॥

अन्वय—प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानम् अपि सुप्तम्, इदं हतहृदयं सम्प्रति अनुशयदुःखाय विबुद्धम्।

---

१. हङ्मनः। राजः संकल्यो जागरणः कृतशतारतिः।
हीत्यागोन्धार मूर्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश॥

२. त्ति (इति) पाठ नहीं है क्वचित्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—पहले तो उस मृगनयनी प्रिया (शकुन्तला) के द्वारा जगाये जाने पर भी सोता रहा और अब यह नीच हृदय पश्चात्ताप रूप दु:ख के (भोगने के) लिए जाग गया है।

नोट—(१) पूर्वार्द्ध में कारण होने पर भी कार्य न होना विशेषोक्ति अलं०, (२) उत्तरार्द्ध में कारण न होने पर भी कार्य होने से विभावना अलंकार, (३) यहाँ राजा के निर्वेद एवं चिन्तादि भाव व्यंजित है। (४) आर्या छन्द।

सानुमती—नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि। (णं ईदिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि।)

हिन्दी—सानुमती—उस बेचारी का भाग्य ही ऐसा है।

विदूषकः—(अपवार्य) लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति। (लंघिदो एषो भूओ वि सउन्दलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—(दूसरी ओर होकर) शकुन्तला रूपी बीमारी से यह (राजर्षि दुष्यन्त) पुनः ग्रस्त हो गये हैं, न जाने इनकी चिकित्सा कैसे होगी ?

कञ्चुकी—(उपगम्य) जयतु जयतु देवः। महाराज, प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः।

हिन्दी—कञ्चुकी—(समीप में जाकर) महाराज की जय हो, जय हो। महाराज, प्रमदवन के सभी स्थानों को मैंने देख लिया है। महाराज, अब स्वेच्छा से मनोरंजन के स्थान पर बैठिए।

राजा—वेत्रवति, मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधान्न संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम्। यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति।

हिन्दी—राजा—हे वेत्रवती, मेरे आदेश से मंत्री आर्य पिशुन से कहो कि देर से जागने के कारण मैं आज धर्मासन पर बैठने में असमर्थ हूँ। अतः आप नगर का जो कार्य देखें, उसे पत्र में लिखकर भेज दीजिएगा।

प्रतीहारी—यद्देव आज्ञापयति (जं देवो आणवेदि।)

हिन्दी—प्रतीहारी—जैसी महाराज की आज्ञा।

(इति निष्क्रान्ता)

(प्रस्थान)

राजा—वातायन, त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु।

हिन्दी—राजा—वातायन, तुम भी अपने कार्य में लगो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (यह कहकर चला गया)

विदूषकः—कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरातपच्छेदरमणीयेऽस्मिन् प्रमदवनोद्देश आत्मानं रमयिष्यसि। (किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं सिसिरातवच्छेअरमणीए इमस्सिं पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि।)

हिन्दी—विदूषक—आपने सब मक्खियाँ उड़ा दीं (अर्थात् आपने स्थान निर्जन कर दिया) अब शीतकाल बीत जाने पर सुन्दर इस प्रमदवन के स्थान पर मनोविनोद कीजिए।

राजा—वयस्य, रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि वचः। कुतः—

हिन्दी—राजा—मित्र जो यह कहा जाता है कि विपत्तियाँ छिद्र पाकर ही उपस्थित होती हैं, वह सर्वथा उचित ही है। क्योंकि—

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना
मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता
धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ ८॥

अन्वय—सखे, मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना तमसा मम इदं मनः मुक्तं च। प्रहरिष्यता मनसिजेन धनुषि चूतशरः निवेशितः च।

हिन्दी—हे मित्र, महर्षि कण्व की पुत्री (शकुन्तला) के प्रति प्रेम की स्मृति में बाधा पहुँचाने वाले अज्ञान ने मेरे इस मन को मुक्त कर दिया है। और (इधर) प्रहार करने के इच्छुक कामदेव ने भी अपने धनुष पर आम्रमञ्जरी रूप बाण आरोपित किया (चढ़ाया) है।

संस्कृत व्याख्या— दुष्यन्तः कञ्चुकीय सम्बुध्य कथयति—हे सखे, मुनेः कण्वस्य पुत्री—शकुन्तलायां यत् प्रेम तस्य स्मृति आवृणोति इति, तमसा मोहेन इदं मम मनः मुक्तं—परित्यक्तं, प्रहर्तुमिच्छता मनसिज़ेन कामेन धनुषि—धनुर्दण्डे, चूतशरः—आम्रमंजरी बाणः निवेशितः—आरोपितः।

नोट—'मुनि सुक्ता' शब्द से ध्वनित होता है कि तपोवन एवं शकुन्तला से सम्बन्धित सारी घटनाएँ दुष्यन्त की स्मृति में व्याप्त हैं। मनसिजेन—सप्तमी अलुक्, प्रहरिण्यता—प्र + हृ + लट् शतृ—ए० व०। शकुन्तला की याद आना और तत्क्षण काम का प्रभावी होना—कारण-कार्य के एक साथ होने से अतिशयोक्ति अलंकार, द्रुतविलम्बित छन्द। प्रस्तुत पद्य में वियोगावस्था में अत्यन्त उद्दीपक वसन्त का वर्णन है।

सरस्वती कण्ठाभरण के अनुसार स्मरण अलंकार और कुछ लोंग 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार मानते हैं।

विदूषकः—तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयिष्यामि। (चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डकट्ठेण कन्दप्पबाणं णासइस्सं।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—विदूषक—आप ठहरिये! इस काष्ठ के दण्ड से कामदेव को नष्ट करता हूँ।

(इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति।)

(इस प्रकार लाठी उठाकर आम्रमञ्जरी को गिराना चाहता है।)

राजा—(सस्मितम्) भवतु। दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि।

हिन्दी—राजा (मुस्कराने के साथ) अच्छा मैंने (तुम्हारा) ब्रह्मतेज देख लिया। मित्र, कहाँ बैठकर मैं प्रिया (शकुन्तला) का कुछ अनुकरण करने वाली (मिलती-जुलती रूप वाली) लताओं को देखकर अपने नेत्रों को आनन्दित करूँ?

विदूषकः—नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता सन्दिष्टा। माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति। (णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा। माहवीमण्डवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउन्दलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—अपने पास रहने वाली दासी चतुरिका को आपने आज्ञा दी है कि यह काल मैं माधवी मण्डप में बिताऊँगा। वहाँ तुम मेरे हाथों द्वारा चित्रपट पर खींचे गये उस शकुन्तला के चित्र को लेकर आना।

राजा—ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तत्तमेव मार्गमादेशय।

हिन्दी—राजा—इसी तरह मनोरंजन करना होगा, तो वही मार्ग बताओ।

नोट—संस्कृत विद्वान् विरहीजनों के मनोविनोद के ४ प्रकार बताते हैं। (१) प्रियजनों के समान अनुभव करना, (२) उनके चित्रों की रचना करना, (३) स्वप्न में उनका दर्शन करना, (४) उनके अङ्गों का स्पर्श प्राप्त करना। वि + लुभ् + णिच् + लट् उ० पु० ए० व०।

विदूषकः—इत इतो भवान्। (इदो इदो भवं।)

(उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति।)

हिन्दी—विदूषक—आप इधर से आयें (दोनों (राजा एवं विदूषक) चलते हैं, सानुमती अनुगमन करती है।)

विदूषकः—एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत् प्रविश्य निषीदतु भवान्। (एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमण्डवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसीददु भवं।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—विदूषक—मणिजटित शिलापट्ट से युक्त यह माधवी मण्डप पुष्पों के उपहार से सुन्दर होने के कारण निश्चित ही स्वागत द्वारा हम दोनों (राजा एवं विदूषक) की प्रतीक्षा कर रहा है। तो आप यहाँ प्रवेश करके बैठिए।

(उभौ प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ)

(दोनों प्रवेश करके बैठते हैं)

सानुमती—लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत् सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्या[1] भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि। (लदासंस्सिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं।)

हिन्दी—सानुमती—तब तक इस माधवी लता का सहारा लेकर मैं सखी (शकुन्तला) का चित्र देखती हूँ। तत्पश्चात् उसके स्वामी के बहुमुखी अनुराग को उससे बताऊँगी।

(इति तथा कृत्वा स्थिता।)

(इस प्रकार वृक्ष के सहारे सानुमती खड़ी होती है)

राजा—सखे, सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते च। स भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित् संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम्।

हिन्दी—राजा—मित्र, शकुन्तला के प्रथम मिलन का सम्पूर्ण वृत्तान्त इस समय मुझे याद आ रहा है जो मैंने तुमसे पहले कहा था। शकुन्तला-परित्याग के समय तुम मेरे पास नहीं थे। और इससे पूर्व तुमने किसी समय उसका नाम नहीं लिया था। क्या मेरी तरह तुम भी भूल गये थे।

विदूषकः—न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एष न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयाऽपि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता खलु बलवती। (ण विसुमरामि। किंतु सव्वं कहिअ अवसाणे उण तुए परिहासविअप्पओ एसो ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं। मए वि मिप्पिण्डबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वदा क्खु बलवदी।)

हिन्दी—विदूषक—मैं भूला तो नहीं था। परन्तु सब कुछ कहकर अन्त में आपने कहा था कि यह सब मैंने परिहास की बात कही है, सत्य में नहीं। मिट्टी के पिण्ड के समान मूर्ख बुद्धि वाले मुझ विदूषक ने भी वैसे ही मान लिया था। अथवा होनहार बलवान् होता है।

नोट—भवितव्य...........बलवती—or verily, fate is all powerful —Kale.

सानुमती—एवमेवैतत्[2]। (एव्वं णेदं।)

हिन्दी—सानुमती—यही ठीक है।

---

१. ततस्तस्यै—(फिर उस शकुन्तला को) —का० २. एवं न्विदम्—का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(ध्यात्वा) सखे, त्रायस्व, माम्।

हिन्दी—राजा—(चिंतन करके) मित्र, मेरी रक्षा करो।

विदूषक—भोः, किमेतत्। अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि। कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः। (भो, किं एदं। अणुववण्णं क्खु ईदिसं तुइ। कदा वि सप्पुरिसा सोअवत्तव्वा ण होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा गिरीओ।)

हिन्दी—विदूषक—मित्र, यह क्या? आपके लिए इस अवस्था को प्राप्त करना उचित नहीं। कभी भी सज्जन लोग शोक के पात्र नहीं होते। निश्चय ही आँधी के आने पर भी पर्वत चलायमान नहीं होते।

राजा—वयस्य, निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि—

हिन्दी—राजा—मित्र, तिरस्कार के कारण व्याकुल (दुःखी) प्रिया की उस अवस्था को याद करके मैं अपने को अत्यन्त असहाय अनुभव कर रहा हूँ। क्योंकि वह (शकुन्तला)—

नोट—मृत्पिण्डवत् बुद्धिर्यस्य—ब० वी०, भू + तव्य + ता—भवितव्यता, "सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव"—मालती माधव। What is this my friend? Such conduct is indeed unbecoming in you. Good (Noble) men never allow themselves to become the abode of sorrow. Surely, mountains stand unshaken even in a gale. (आँधी) —Kale.

इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥ ९॥

अन्वय—इतः प्रत्यादेशात् स्वजनम् अनुगन्तुं व्यवसिता, गुरुसमे गुरुशिष्ये तिष्ठ इति उच्चैः वदति (सति) स्थिता। वाष्पप्रसरकलुषां दृष्टि पुनः मयि क्रूरे अर्पितवती (इति) यत् तत् सविषं शल्यम् इव मां दहति।

हिन्दी—यहाँ मेरे द्वारा परित्यक्त होने के कारण अपने बन्धुओं के पीछे-पीछे जाने लगी, पिता सदृश कण्व के शिष्य शार्ङ्गरव ने ऊँचे स्वर में कहा—'रुक जाओ' इस पर उसने रुक कर मुझ निष्ठुर प्रकृति वाले पति की ओर अपनी जो अश्रु-प्रवाह से मलिन दृष्टि डाली, वह विषैले बाण के समान मुझे जला रही है।

संस्कृत व्याख्या—इतः—अस्मात् स्थानात्, प्रत्यादेशात्—निराकरणहेतोः, स्वजनम्—स्वकुलजनम्, अनुगन्तुं—अनुयातुं, व्यवसिता—प्रवृत्ता, गुरुसमे—पितृवत्मान्ये, गुरुशिष्ये—काश्यपस्य शिष्ये, तिष्ठइति, उच्चैः—तारस्वरेण वदति—कथयति, स्थिता—गमनात् निवृत्ता, वाष्पप्रसरं कलुषां—अश्रु प्रवाहेण मलिनां, दृष्टिं—नेत्रं, पुनः—भूयोऽपि, मयि—नृशंसे दुष्यन्ते, अर्पितवती—पतितवती, यत् तत्—तत्सर्वं, सविषं—विषलिप्तं शल्यम् इव—बाण इव, मां दुष्यन्तं, दहति—सन्तापयति। अत्रोपमालङ्कारः, शिखरिणी वृत्तम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नोट—प्रत्यादेशात्—प्रति + आ + दिश् + घञ्—हेतौ पञ्चमी—व्यवसिता—वि + अव + सो + क्त, 'क्रूर' शब्द से राजा का—निर्वेद व्यंजित है। दहति से अत्यन्त तिरस्कार भाव प्रकट है, इसमें अर्थान्तर संक्रमितवाच्य ध्वनि है। दृष्टिम् अर्पितवती—पद से नायिकागत दुःखातिशय व्यंजित है। यहाँ नायकगत चिन्ता, विषाद और औत्सुक्य आदि भाव व्यंजित हैं। अलंकार—(१) न, ग, र, ष आदि वर्णों के साम्य से यहाँ अनुप्रासालंकार, (२) दृष्टि की तुलना विषयुक्त बाण करने के कारण उपमालंकार, (३) दृष्टि विशेष को पुरुष-विशेष पर डालने से समालंकार, (४) शिखरिणी वृत्तम्। कुछ आचार्य इसे अति मनोहर श्लोक मानते हैं।

सानुमती—अहो, ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य सन्तापेनाहं रमे। (अम्महे, ईदिसी स्वकज्जपरदा। इमस्स संदावेण अहं रमामि।)

हिन्दी—सानुमती—अहो, ऐसी स्वार्थपरता कि मुझे इसके संताप से आनन्द प्राप्त हो रहा है।

विदूषकः—भोः, अस्ति मे तर्कः केनापि तत्रभवत्याकाशचारिणा नीतेति। (भो, अत्थि मे तक्को केण वि तत्तहोदी आआसचारिणा णीदे त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—हे मित्र, मेरा विचार है कि किसी गगन संचारी व्यक्ति द्वारा वह माननीया (शकुन्तला) ले जाई गई है।

राजा—कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहेत? मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचारिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते।

हिन्दी—राजा—उस पतिव्रता को कौन स्पर्श कर सकता है। मेनका तुम्हारी सखी की माता है यह मैंने सुना था। ऐसी मेरे हृदय में आशङ्का है कि उसकी सहचरियों में से कोई तुम्हारी सखी (शकुन्तला) को ले गई है।

सानुमती—संमोहः खलु विस्मयनीयो न प्रतिबोधः। (संमोहो क्खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो।)

हिन्दी—सानुमती—निश्चय ही भूलना आश्चर्यजनक है, स्मरण नहीं।

विदूषकः—यद्येवमस्ति खलु समागमः कालेन तत्रभवत्या। (जइं एव्वं अत्थि क्खु समाअमो कालेण तत्तहोदीए।)

हिन्दी—विदूषक—यदि ऐसा है तो यथासमय अवश्य उस शकुन्तला से आपकी भेंट होगी।

राजा—कथमिव?

हिन्दी—राजा—कैसे?

विदूषकः—न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः। (ण क्खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं चिरं देक्खिदुं पारेन्ति।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—विदूषक—पति-वियोग से दुःखी कन्या को माता-पिता चिरकाल (देर) तक नहीं देख पाते।

नोट—न खलु—यहाँ तक कवि ने हिन्दू-समाज की प्रचलित भावनाओं का निवेश किया है। स्वकार्यपरता—राजा के दुःख से सानुमती प्रसन्न है क्योंकि वह शीघ्र ही शकुन्तला से मिलने आयेंगे। पतिः देवता यस्याः स्त्र तां—ब० व्री०

राजा—वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु
क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम् ।
असन्निवृत्यै तदतीतमेते
मनोरथा नाम तटप्रपाताः ॥ १० ॥

अन्वय—तत् स्वप्नः नु, माया नु, मतिभ्रमः नु, तावत्फलमेव क्लिष्टं पुण्यं नु, असन्निवृत्यै अतीतम्। एते मनोरथाः नाम तटप्रपाताः।

हिन्दी—(राजा दुष्यन्त विदूषक से कहते हैं) हे मित्र, वह शकुन्तला का समागम क्या स्वप्न था अथवा माया थी या मेरी बुद्धि का भ्रम था या पूर्वजन्मार्जित पुण्य का अल्प फल था, जो पुनः न लौटने के लिए चला गया था। ये मेरी मनकामनाएँ नदी के तट की भाँति थीं।

संस्कृत व्याख्या—तत्—सः शकुन्तलासमागमः, स्वप्नं—स्वप्नकाले अनुभूतं किम्, माया नु—मिथ्या कल्पना, किं मतिभ्रमः—शुक्ति रजतवत विपर्ययः, तावत्फलं—तावत्कालमात्र भोग्यं, अतीतं—व्यतीतम्, एते—इमे, मनोरथाः—मनोकामनाः, तटप्रपाताः—तट पतनाः। अत्र सन्देहः काव्यलिङ्गश्चालंकारौ स्तः। उपजाति छन्दः।

नोट—यहाँ राजा ४ कल्पनाएँ करता है। (१) क्या वह समागम स्वप्न था। ऐसा नहीं क्योंकि स्वप्न जागने पर मिथ्या हो जाता है, परन्तु मैंने तो मिलन का सुखद अनुभव किया था। (२) क्या वह माया थी, नहीं, क्योंकि अँगूठी मिलने पर मुझे स्मरण हो आया, फिर मेरे प्रति कौन माया करेगा। (३) क्या वह बुद्धि भ्रम था, ऐसा नहीं, क्योंकि मुझे अतीत की घटनाओं का स्मरण है। अतः मेरी बुद्धि सामान्य थी। (४) अन्ततोगत्वा राजा निश्चय करता है कि वह मेरे पूर्वजन्म के स्वल्प पुण्य का परिणाम था जिससे मैंने प्रिया के सुखद मिलन का अल्पकालिक अनुभव किया है। महाराज दुष्यन्त कहते हैं कि मनोरथ नदी के गिरते हुए उस कगार या तट की भाँति हैं जो टूटकर गिरने पर पुनः नहीं जुड़ते। अतः शकुन्तला के साथ मेरे मिलन के सभी विचार मिथ्या हैं। मुझे अब उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अलंकार—(१) मनोरथों की सम्भावना नदी-तटों के रूप में करने से उत्प्रेक्षालंकार, (२) सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार, (३) असन्निवृत्यै के प्रति पूर्व वाच्य कारण है, अतः काव्यलिङ्ग अलंकार, (४) पुनरुक्त वदाभास अलंकार, (५) 'यदि एवं' से यहाँ तक 'पुरोचना' नामक 'विमर्श' सन्धि का अंग है—सिद्धामन्त्रणतो भावि दर्शिका स्यात् प्ररोचना-दश रूपक। (६) संदेह होने के कारण यहाँ संशय नामक नाटकीय लक्षण है—संशयो अज्ञात तत्त्वस्य वाक्ये स्यात् यदनिश्चयः—सा० द०, (७) उपजाति छन्द, (८) प्रो० पाटङ्कर—मनोरथानाम् अतटप्रपातः—पाठ प्राचीन मानते हैं एवं प्रो० काले 'अतट प्रवाहाः' पाठ सुन्दर मानते हैं। माया—Illusion of magic,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मतिभ्रम—an infatuation, अंसन्निवृत्यै—no more to return, मनोरथा प्रपाता:—fales hopes are like the crumblings of a river bank.—Kale.

विदूषकः—मैवम्। नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवतीति। (मा एव्वं। णं अंगुलीअअं एव्वं णिदंसणं अवस्संभावी अचिन्तणिज्जो समाअमो होदि त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—ऐसा, न कहें (कि प्रिया-समागम नहीं होगा) यह अँगूठी इस बात का प्रमाण है कि अवशयम्भावी समागम अकस्मात होता है।

राजा—(अङ्गुलीयकं विलोक्य) अये, इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्।

हिन्दी—राजा— (अँगूठी देखकर) अरे, दुर्लभ स्थान से गिरने वाली यह अँगूठी शोक के योग्य हो गई है।

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं
प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन।
अरुणनखमनोहरासु तस्या-
श्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु ॥ ११ ॥

अन्वय—हे अंगुलीय, तव सुचरितं मम इव नूनं प्रतनु, फलेन विभाव्यते। यत् अरुणनखमनोहरासु तस्याः अङ्गुलीषु लब्धपदं च्युतम् असि।

हिन्दी—हे अँगूठी, तेरा पुण्य भी मुझ दुष्यन्त की भाँति अल्पफल वाला परिणाम से ज्ञात होता है जो कि लाल नाखूनों से मनोहर उस शकुन्तला की अङ्गुलियों में स्थान पाकर गिर पड़ी हो।

संस्कृत व्याख्या—हे मुद्रिके, तव—त्वदीयं, सुचरितं—पुण्यं, मम—दुष्यन्तस्य इव, प्रतनु—अत्यल्पमेव, फलेन—परिणामेन, विभाव्यते—ज्ञायते, यत् आरक्तन खमनोहरासु तस्याः शकुन्तलायाः अंगुलीषु, लब्धपदं—स्थानं प्राप्य, च्युतमसि—पतितमसि।

नोट—अरुणैः नखैः मनोहरासु—तत्पुरुष समा०, सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार सरल, लाल नखों वाली कोमल, न छोटी न लम्बी, न पतली अँगुली वाली स्त्री राजरानी होती है। लब्धं पदं येन—ब० व्री०। अंगुलीषु—राघव् भट्ट के अनुसार शकुन्तला अँगूठी को अँगुलियों में बदल बदल कर पहनती थी, अतः वहुवचन प्रयोग है। अलंकार—(१) प्रत्य ज्ञान के लिए अल्प हेतु रखने से अनुमान अलं०, (२) मुद्रिका पर स्वर्गच्युत व्यक्ति के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार, (३) स्वल्प सुवृत का कारण होने से काव्यलिङ्ग अलंकार, (४) 'ममेव' में अँगूठी की तुलना दुष्यन्त से करने के कारण उपमालंकार। (५) पुष्पिताग्रा छन्द।

सानुमती—यद्यन्यहस्तगतं भवेत् सत्यमेव शोचनीयं भवेत्। (जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे।)

हिन्दी—सानुमती—यदि यह अँगूठी किसी अन्य व्यक्ति के हाथ लग जाती, तो अवश्य ही शोक का कारण बन जाती।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषकः—भोः, इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याशं प्रापिता? (भो, इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थाब्भासं पाविदा?)

हिन्दी—विदूषक—मित्र, यह नाम से अंकित अँगूठी आपने उस पूज्या (शकुन्तला) के हाथों में किस प्रसंग में पहनाई थी?

सानुमती—ममापिं कौतूहलेनाकारित एषः। (मम वि कोदूहलेण आआरिदो एसो।)

हिन्दी—सानुमती—मेरे ही कुतहल से यह भी प्रेरित हुआ है।

राजा—श्रूयताम्। स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति।

हिन्दी—राजा—सुनिये, अपने नगर की ओर प्रस्थान करते समय मुझसे प्रिया (शकुन्तला) ने (आँखों में) आँसू भर कर कहा था—''हे आर्यपुत्र, कितने समय बाद आप मुझे समाचार देंगे?''

विदूषकः—ततस्ततः? (तदो तदो?)

हिन्दी—विदूषक—तब क्या हुआ?

राजा—पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता—

हिन्दी—राजा—तदनन्तर उसकी अँगुली में इस अँगूठी को पहनाते हुए मैंने कहा था—

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय गच्छसि[1] यावदन्तम्।
तावत् प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं
नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ॥ १२ ॥

तच्च दारुणात्मना मया मोहान्नानुष्ठितम्।

अन्वय—हे प्रिये, दिवसे दिवसे एकैकं मदीयं नामाक्षरं गणय। यावत् अन्तं गच्छसि, तावत् मदवरोधगृहप्रवेशं नेता जनः तव समीपम् उपैष्यति इति।

हिन्दी—हे प्रिये, तुम प्रतिदिन हमारे नाम के एक-एक अक्षर को गिनते रहना, इस प्रकार जब तक तुम अन्तिम अक्षर पर पहुँचोगी, तब तक मेरे अन्तःपुर में प्रवेश कराने वाला तुम्हें ले जाने वाला कोई व्यक्ति तुम्हारे पास आयेगा।

हिन्दी—और यह कार्य मुझ क्रूर हृदय ने अज्ञानवश नहीं किया।

नोट—अवरोध—अवरुध्यंते जनाः अस्मिन, इति—जिसमें सामान्य लोगों को जाने से रोका जाय। (१) नामाक्षर संख्या से दिन संख्या का कथन करने से पर्यायोक्ति अलंकार, (२) वसन्ततिलका

---

१. गच्छति (गणना जब तक समाप्त होती है) —का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छन्द। मदीय—अस्मद+छ (ईष), नेतामी + तृच्, उप + इ + लृट् प्र० पु० ए० व०, कुछ टीकाकार 'काव्यलिङ्ग' अलंकार मानते हैं। प्रो० गदकर 'वर्तमान सामीप्ये' से वर्तमान अर्थ में लट् लकार मानते हैं।

सानुमती—रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः। (रमणीओ क्खु अवही विहिणा विसंवादिदो।)

हिन्दी—सानुमती—यह अविधि बहुत सुन्दर थी, परन्तु भाग्य ने इसे बिगाड़ दिया।

विदूषकः—कथं[१] धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत्? (कहं धीवलकप्पिअस्स लोहिअमच्छस्स उदलब्भन्तले आसि?)

हिन्दी—विदूषक—मछुआरे द्वारा काटी गई रोहू मछली के उरक के अन्दर यह कैसे गई?

राजा—शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्त्रोतसि परिभ्रष्टम्।

हिन्दी—राजा—शची तीर्थ की वन्दना करती हुई तुम्हारी सखी के हाथ से गंगा की धारा में गिर पड़ी थी।

विदूषकः—युज्यते। (जुज्जइ।)

हिन्दी—विदूषक—ठीक है।

सानुमती—अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये सन्देह आसीत्। अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते। कथमिवैतत्? (अदो एव्व तवस्सिंणीए सउन्दलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए संदेहो आसि। अहवा ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि। कहं विअ एदं?)

हिन्दी—सानुमती—इसीलिए अधर्मभीरु राजर्षि को शकुन्तला के साथ विवाह में सन्देह हो गया था अथवा इस प्रकार के प्रगाढ़ अनुराग को भी अभिज्ञान की अपेक्षा होती है।

राजा—उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम्।

हिन्दी—राजा—तो मैं इस अँगूठी को उलाहना देता हूँ।

विदूषकः—(आत्मगतम्) गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम्। (गहीदो णेण पन्था उम्मत्तआणं।)

हिन्दी—विदूषक—(अपने मन में) इन्होंने (राजा ने) अब पागलों का मार्ग अपना लिया है।

राजा—(अङ्गुलीयकं विलोक्य) मुद्रिके,
कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं
करं विहायासि निमग्नमम्भसि?

---

१. अथ कथं (कैसे)। —ला०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथवा—

अचेतनं नाम गुणं न लक्षये-
न्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥ १३ ॥

अन्वय—बन्धुरकोमलाङ्गुलिं तं करं विहाय कथं नु अम्भसि निमग्नम् असि। अथवा अचेतनं गुणं नाम न लक्षयेत्, मया एव कस्मात् प्रिया अवधीरिता।

हिन्दी—राजा—(अँगूठी को देखकर) हे मुद्रिके, सुन्दर और कोमल अँगुली वाले उस हाथ को छोड़कर तुम जल में क्यों डूब गईं? अथवा अचेतन (अँगूठी) गुणों को भले ही न देखे, परन्तु मैंने ही उस प्रियतमा को क्यो अपमानित किया?

नोट—बन्धुराः कोमलाः अंगुलयः यस्मिन्—ब० व्री०, बन्धुरं सुन्दरं रम्य—विश्वः बन्ध+उरच्, (१) तृतीय चरण में सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलं०, (२) अपमान का कारण न होने पर भी कार्य होने से विभावना अलंकार, (३) अँगुली में चेतन व्यवहार का आरोप करने से समासोक्ति अलंकार, (४) वंशस्थ छन्द, (५) दुष्यन्त चेतन होकर भी गुण ग्रहण क्यों नहीं करता क्योंकि वह काम भाव से पीड़ित होकर अविवेकग्रस्त है।

विदूषकः—(आत्मगतम्) कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। (कहं बुभुक्खाए खादिदव्वो म्हि।)

हिन्दी—विदूषक—(अपने मन में) क्यों ऐसा लगता है मानो भूख मुझे खा जायेगी।

राजा—प्रिये, अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन।

हिन्दी—राजा—प्रिये, निष्कारण परित्याग के कारण हुए संताप से संतप्त हृदय वाले इस व्यक्ति को पुनः दर्शन से अनुगृहीत करो।

(प्रविश्यापटीक्षेपेण चित्रफलकहस्ता)

(चित्रपट्ट हाथ में लिये चतुरिका पर्दा हटा कर प्रवेश करती है।)

चतुरिका[1]—इयं चित्रगता भट्टिनी। (इअं चित्तगदा भट्टिणी।) **(इति चित्रफलकं दर्शयति।)**

हिन्दी—चतुरिका—ये चित्र में खिंची महारानी हैं। (यह कहकर चित्रफलक दिखाती है।)

विदूषकः—(विलोक्य) साधु वयस्य। मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु। (साहु वअस्स। महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो। क्खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु।)

हिन्दी—विदूषक—मित्र, बहुत अच्छा है। मनोहर विलास (अवस्थान) के कारण भावों की अभिव्यक्ति देखने योग्य है। इसके ऊँचे नीचे स्थानों में मानो मेरी दृष्टि फिसल रही है।

---

१. राजा की सेविका

Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सानुमती—अहो, एषा राजर्षेर्निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति। (अम्मो, एसा राएसिणो णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति।)

हिन्दी—सानुमती—अहो, यह राजर्षि की निपुणता है। ऐसा लगता है मानो सखी मेरे सामने स्थित है।

राजा— यद्यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत्तदन्यथा ।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ॥ १४॥

अन्वय—चित्रे यत् साधु न स्यात्, तत् तत् अन्यथा क्रियते। तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचित् अन्वितम्।

हिन्दी—राजा (दुष्यन्त)—चित्र में जो भाग सुन्दर नहीं लगता उसे भी सुन्दर बनाया जा रहा है, तथापि उस शकुन्तला का सौन्दर्य रेखाओं द्वारा कुछ ही स्पष्ट हो पाया है।

नोट—यहाँ शकुन्तला का सौन्दर्याधिक्य व्यंजित है। अनुष्टुप् छन्द—शिर, नेत्र, हाथ आदि अंगों के मेल में जो नेत्रों को आकृष्ट करने वाली हो उसे रेखा या लेखा कहते हैं—सङ्गीत रत्नाकर। रेखया—Her beauty is partially represented —Kale.

सानुमती—सदृशमेतत् पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च। (सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ।)

हिन्दी—सानुमती—पश्चात्ताप से बढ़े हुए अनुराग और निरभिमान के लिए तो यह होना उचित ही है।

विदूषकः—भोः, इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो[१] दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमाऽत्र तत्रभवती शकुन्तला? (भो, दाणिं तिण्हिअ तत्तहोदीओ दीसन्ति। सव्वाओ अ दंसणीआओ। कदमा एत्थ तत्तहोदी सउन्दला?)

हिन्दी—विदूषक—इस चित्र में तीन मान्य देवियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। वे सभी दर्शनीय हैं। इसमें कौन सी पूज्या शकुन्तला है?

सानुमती—अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः। (अणभिण्णो क्खु ईदिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो।)

हिन्दी—सानुमती—इस प्रकार के सौन्दर्य से अनभिज्ञ इस व्यक्ति की दृष्टि व्यर्थ है।

राजा—त्वं तावत् कतमां तर्कयसि?

हिन्दी—राजा—तो तुम किसको शकुन्तला समझते हो?

विदूषकः—तर्कयामि यैषा शिथिलबन्धनोद्वान्तकुसुमेन[२] केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्या-

---

१. तिण्णि (तीन) —का०

२. शिथिल केश बन्धने —वि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्ते-वालिखिता सा शकुन्तला। इतरे सख्याविति। (तक्केमि जा एसा सिढिलबन्धणुव्वन्तकुसुमेण केसन्तेण उब्भिण्णस्सेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे इसिपरिस्सन्ता विअ आलिहिदा सा सउन्दला। इदराओ सहीओ त्ति।)

हिन्दी—विदूषक—मैं यह समझता हूँ कि चोटी की गाँठ ढीले हो जाने के कारण जिसके पुष्प गिर गये हैं, ऐसे केशपाश वाली पसीने की बूँदों से युक्त मुख वाली, विशेष रूप से झुकी हुई भुजाओं वाली, जल सींचने से हरे-भरे नवीन पल्लवों से युक्त आम्रवृक्ष के समीप कुछ थकी हुई सी, जो चित्रित है, वह शकुन्तला है, दूसरी दोनों सखियाँ है।

राजा—निपुणो भवान्। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्।

हिन्दी—राजा—आप कुशल हैं। इसमें मेरे भावों का संकेत है।

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्णिकोच्छ्वासात्[1] ॥ १५॥

अन्वय—रेखा प्रान्तेषु मलिनः स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशः दृश्यते। इदं च कपोल पतितं अश्रु वर्तिकोच्छ्वासात् दृश्यम्।

हिन्दी—चित्र की रेखाओं के किनारे पर पसीने से भींगे अँगुलियों का मैला चिह्न दिखाई पड़ रहा है और यह कपोलों पर गिरा आँसू रंग के फैल जाने से दिखाई पड़ रहा है।

नोट—उद्भिन्नाः स्वेदविन्दवः यस्मिन्—ब० व०, उद्वान्तानि कुसुमानि यस्मात् उद्वान्तकुसुमेन—ब० व्री०, flowers have been dropped down with a frail of hair. —Kale. पसीने से युक्त अँगुलियों से राजा दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति भाव विह्वलता अनुमित होने से अनुमानालंकार, छन्द—आर्या, वर्तिका चित्रपटे लेप विशेषः रा० भ०, ८ सात्त्विक भावों में से गीला होना (स्विन्न) भी एक है। स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गो वेपथुः वैवार्यअश्रु प्रलयं इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः। —सा० द०

चतुरिके, अर्धलिखितमेतद् विनोदस्थानम्। गच्छ, वर्तिकां तावदानय।

हिन्दी—राजा—हे चतुरिके, मनोरंजन का साधन यह चित्र अभी अधूरा है। तो जाओ, वर्तिका (कूची) ले आओ।

चतुरिका—आर्य माध्व्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदा-गच्छामि। (अज्ज माढव्व चित्तफलअं जाव आअच्छामि।)

हिन्दी—चतुरिका—आर्य माधव्य, चित्रपट्ट को पकड़िए, जब तक मैं लौट कर आती हूँ।

राजा—अहमेवैतदवलम्बे। (इति यथोक्तं करोति)। (निष्क्रान्ता चेटी)।

---

१. वर्णिकोच्छ्वासात्—का० (रंग के घुल जाने से)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—राजा—मैं ही इस चित्रपट को पकड़ता हूँ। (इस प्रकार चित्रपट पकड़ता है। चेटी चली जाती है।)

राजा—(निःश्वस्य[१]) अहं हि—

हिन्दी—राजा—(दीर्घ साँस लेकर) मैं तो—

साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः ।
स्त्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥१६॥

अन्वय—सखे, पूर्वं साक्षात् उपगताम् प्रियाम् अपहाय, पुनः चित्रार्पिताम् इमां बहुमन्यमानः, पथि निकामजलां स्त्रोतोवहाम् अतीत्य मृगतृष्णिकायां प्रणयवान् जातः।

हिन्दी—(दुष्यन्त कहते हैं) हे मित्र, पहले साक्षात् समीप आई हुई प्रिया शकुन्तला को त्याग कर पुनः चित्र में स्थित इस (शकुन्तला) को अत्यधिक आदर देता हुआ (मैं मानो) मार्ग में पर्याप्त जल वाली नदी को लाँघकर (मानो) मृगमरीचिका में प्रेम वाला हो गया हूँ।

संस्कृत व्याख्या—हे मित्र, पूर्वं—प्रथमं, साक्षात्—प्रत्यक्षरूपेण, उपगतां—समीपे आगतां, प्रियां—शकुन्तलाम्, अपहाय—परित्यज्य, पुनः—अधुना, चित्रार्पितां—चित्रलिखितां, निकामजलां—पर्याप्तजलां, स्तोवहां-निर्झरिणीम्, अतीत्य-उल्लंघ्य मृगतृष्णाकायां प्रणयवान्—अनुरक्तः जातः संवृत्तोऽस्मि। अत्र निदर्शना, काव्यलिङ्गालंकारौ, वसन्ततिलका छन्दः।

नोट—स्त्रोतसां वहा—ष० तत्पु०, निकामं जलं यस्यां ताम्—ब० व्री०, अतीत्य, अति—इ+ल्यप्, प्रणयवान्—वैदिक पद, मृगतृष्णा-मरीचिका—अम०, अलंकार—(१) मृगतृष्णिका में जल न होने से जल का सम्बन्ध बताने से निदर्शनालंकार, (२) य, म वर्णों की आवृत्ति से अनुप्रासालंकार, (३) वसन्त- तिलका छन्द, अपहाय—तिरस्कार करके —रा० भ० क्योंकि तिरस्कृत वस्तु का त्याग करके पुनः उसे स्वीकार करने से अनौचित्य दोष लगता है। स्त्रोतोवहाँ—उपमान, शकुन्तला के लिए प्रयुक्त है जिससे उसके प्रेम पिपासु को संतुष्ट करने वाले माधुर्य, अनुराग और सौकुमार्य आदि गुण व्यंजित होते हैं।

विदूषकः—(आत्मगतम्) एषोऽत्रभवान् नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः। (प्रकाशम्) भोः, अपरं किमत्र लेखितव्यम् ? (एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिआं संकन्तो। भो, अवरं किं एत्थ लिहिदव्वम् ?)

हिन्दी—विदूषक—(अपने मन में) यह महाराज नदी पार करके मृगतृष्णा में पहुँच गये हैं। (प्रकट रूप में) हे महाराज! इस चित्र में और क्या बनाना है ?

सानुमती—यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपस्तं तमालेखितुकामो भवेत्। (जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे।)

हिन्दी—सानुमती—मेरी सखी को जो-जो स्थल अच्छे लगते हैं, ये उन्हें बनाने के इच्छुक लगते हैं।

---

१. निःश्वस्य —यह पाठ नहीं है — नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—श्रूयताम्,

हिन्दी—राजा दुष्यन्त (विदूषक से कहते हैं) सुनो,

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥१७॥

अन्वय—सैकतलीनंहसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी कार्या। ताम् अभितः निषण्णहरिणाः गौरीगुरोः पावनाः पादाः (कार्याः)। शाखालम्बितवल्कलस्य तरोः अधः कृष्णमृगस्य शृङ्गे वामनयनं कण्डूयमानां मृगीं च निर्मातुम् इच्छामि।

हिन्दी—राजा दुष्यन्त कहते हैं, ऐसी मालिनी नदी बनानी है जिसके बालुकामय तट पर हंस का जोड़ा बैठा हो। उसके दोनों किनारों पर बैठे हुए हरिणों वाले हिमालय के प्रत्यन्त पर्वत बनाने हैं, और शाखाओं पर लटके वल्कल वस्त्र वाले वृक्ष के नीचे कृष्ण मृग की सींग से अपने बायें नेत्र को खुजलाने वाली हरिणी को बनाना चाहता हूँ।

संस्कृत व्याख्या—सैकतलीन०—बालुकामय तटोपविष्टा हंसद्वन्द्वा, एतद्—नाम्नी, स्रोतो वहा—नदी, कार्या—लेखनीया, तां—नदीम्, अभितः—उभयतः, निषण्हरिणा—उपविष्टमृगाः, गौरी गुरोः—हिमालयस्य, पावनाः—पवित्राः, पादाः—प्रत्यन्तपर्वताः, कार्या—आलेख्याः, शाखा वलम्बित—वृक्षशाखावसक्तवल्कलस्य, तरोरधः—वृक्षाणाम् अधस्तात् कृष्ण मृगस्य, शृङ्गे—विषाणे, वामनयनं—सव्यनेत्रं, कण्डूयमानां—घर्षयन्तीम्, मृगीं—हरिणीं, निर्मातुं—आलेखितुं चित्रयितुम्, इच्छामि—वाञ्छामि। अत्र, स्वभावोक्ति, तुल्योगिता श्चालंकारौ, शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्।

विशेष—कवि ने यहाँ कुशल चित्रकार की भाँति प्रकृति का सुकुमार मधुर पक्ष प्रस्तुत किया है। यह कवि की श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक कल्पना है। यहाँ पर्वतराज (हिमालय) (हिमालयो नाम नगाधिराजः—कु० सं०) गुरुता, पवित्रता, तथा शोभा का प्रतीक है, कृष्ण मृग पवित्रता तथा समृद्धि का प्रतीक है तथा मृगी का आँख खुजलाना शृंगारिक भाव का प्रतीक है : 'स्त्रोतोवहा' शब्द से रमणीयता, गौरी गुरोः से निर्वाधविहारता, निषण्ण से एकान्तता तथा सुरतक्षमता, शाखावलम्बित से 'शालीनता' अर्थ व्यंजित है।

नोट—सैकते लीनानि हंस मिथुनानि यत्र—ब० व०, निषण्णाहरिणा येषु—ब० व०, गौर्या गुरोः—ष० तत्पु०, कृष्णश्चासौ मृगः—कर्मधा० समा०, वामं च यत् नयनं कर्मधा० समा०, यहाँ के सभी दृश्य उद्दीपन का काम करते हैं। काम शास्त्र के अनुसार जब हरिणी को रमणेच्छा होती है, तो वह अपने नेत्र को खुजलाना चाहती है। "रिरंसा यत्र जायेत कण्डूतिस्तत्र जायते। मृगीणां वामनयने योषितां मदनालये॥" पादाः प्रत्यन्त पर्वताः—अम०, तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयं—अम०।

अलंकार—(१) अप्रस्तुत मालिनी नदी तथा प्रत्यन्त पर्वत का 'कार्या' इस प्रस्तुत एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलं०, (२) मृग, नदी, पर्वत आदि प्राकृतिक वस्तुओं का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलं०, (३) शार्दूलविक्रीडित छन्द, (४) प्रस्तुत पद्य में वर्णित पदार्थ शृंगार रस के उपक्रम में उपसंहार हैं। अपहाय—repudiated, बहुमन्यमानाम्—Thinking highly of her, प्रणयवान् जातः—I have entertained a loveing for mirage, अतीत्य—crossing over, a stream having abendant water, कार्या—this is to be drawn, गौरी गुरोः—the father of Gauri, निषण्णहरिणा—deers seated on them, I want to point a doe rubbing

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

her left eye against the horn of a black buck (मृग) —Kale.

विदूषकः—(आत्मगतम्) यथाहं पश्यामि पूरितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः। (जह अहं देक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लम्बकुच्चाणं तावसाणं कदम्बेहिं।)

हिन्दी—विदूषक—(अपने मन में) जैसा मैं देखता हूँ कि ये चित्रफलक को लम्बी दाढ़ी वाले तपस्वियों के समूहों से भर देंगे।

राजा—वयस्य, अन्यच्च। शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्र[1] विस्मृतमस्माभिः।

हिन्दी—राजा—हे मित्र, और क्या बनाना है? शकुन्तला की सजावट जो अभीष्ट था, उसे तो यहाँ हम भूल गये हैं।

विदूषकः—किमिव? (किं विअ?)

हिन्दी—विदूषक—वह क्या?

सानुमती—वनवासस्य सौकुमार्यस्य विनयस्य[2] च यत्सदृशं भविष्यति। (वणवासस्स सोउमारस्स विणअस्स अ जं सरिसं भविस्सदि।)

हिन्दी—सानुमती—जो कुछ उसके वन-निवास, सुकुमारता तथा शील के अनुकूल होगा।

राजा—

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥ १८ ॥

अन्वय—हे सखे, कर्णार्पितबन्धनम् आगण्डविलम्बिकेसरं शिरीषं न कृतम्। स्तनान्तरे शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं न वा रचितम्।

हिन्दी—हे मित्र, जिसका वृन्त (डण्ठल) कानों में फँसा रहता है (और) जिसका केसर कपोल तक फैला रहता है, ऐसा शिरीष पुष्प चित्रित नहीं किया गया। और शरत् कालीन चन्द्रमा की किरणों जैसे कोमल मृणाल का एक हार दोनों स्तनों के बीच नहीं बनाया गया।

संस्कृत व्याख्या—हे वयस्य, कर्णा०—कर्णन्यस्त वृन्त भागं, आगण्ड०—कपोलपर्यन्तं, लम्बमान—किञ्जल्कं, शिरीषं—शिरीष पुष्पं, न कृतम्—न चित्रितम्, स्तनान्तरे—कुचमध्यभागे, शरच्चन्द्र०—शरच्चन्द्र किरणवत् सुन्दरं, मृणालसूत्रं—विसतन्तुसमूहं, न रचितं—मया न अर्पितम्। उपमा समुच्चयश्चालंकारौ, वंशस्थ वृत्तम्।

विशेष—'शिरीष' पद से शकुन्तला की शारीरिक कोमलता एवं सुन्दरता व्यंजित है। 'मृणाल सूत्र' से नायिका के स्तनों की अतिपीवरता व्यंजित है। अलंकार—(१) कृतं, रचितं—इन दो क्रियाओं

---

१. अत्र विस्मृतम्—पाठ नहीं है —नि० सा०
२. अविनयस्य — नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के समुच्चय से समुच्चय अलंकार, (२) मृणाल सूत्र की तुलना चन्द्र मरीचि से करने के कारण उपमालंकार, (३) वंशस्थ छन्द।

विदूषकः—भोः, किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयपल्लवशोभिनाऽग्रहस्तेन मुखमावार्य चकितचकितेव स्थिता। (सावधानं निरूप्य दृष्ट्वा) आः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनकमलमभिलङ्घते मधुकरः। (भो, किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं आवारिअ चइदचइदा विअ ट्ठिआ। आ, एसो दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणकमलं अहिलङ्घेदि महुअरो।)

हिन्दी—विदूषक—श्रीमन्, ऐसा क्यों है कि पूज्या शकुन्तला लाल कमल के पल्लव की भाँति सुन्दर हाथों से अपना मुख छिपाकर भयभीत सी खड़ी हैं ? (अच्छी तरह देखकर) अरे यह दासी का पुत्र (नीच) कुसुमरस (मकरन्द) का चोर भौंरा इन पूज्या के मुख कमल पर आक्रमण करना चाहता है।

राजा—ननु वार्यतामेष धृष्टः।

हिन्दी—राजा—तो इस ढींठ को रोको।

विदूषकः—भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति। (भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि।)

हिन्दी—विदूषक—आप ही दुष्टों का दमन करने वाले हैं, अतः आप ही इसे रोकने में समर्थ हैं।

राजा—युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे, किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि ?

हिन्दी—राजा—ठीक है। हे पुष्पित लता के प्रिय अतिथि, तुम इस (शकुन्तला) के मुख पर चारों ओर मँडराने का कष्ट क्यों कर रहे हो ?

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता ।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति ॥ १९ ॥

अन्वय—अनुरक्ता एषा मधुकरी तृषिता कुसुमनिषण्णा सती अपि भवन्तं प्रतिपालयति। त्वया विना न खलु मधु पिबति।

हिन्दी—तुम पर आसक्त यह भ्रमरी प्यासी होने पर भी फूलों पर बैठी हुई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, तुम्हारे बिना निश्चय ही मधुपान नहीं कर रही है।

संस्कृत व्याख्या—अनुरक्ता—प्रेमयुक्ता, एषा मधुकरी—भ्रमरी, तृषिता—पिपासिता अपि, कुसुम०—पुष्पे आसीना, सत्यपि—भवन्त्यपि, भवन्तं—भ्रमरं, प्रतिपालयति—प्रतीक्षते, त्वया—पत्या विना, खलु—निश्चयेन, मधु—पुष्परसं, न पिवति—न गृह्णाति। अत्र अनुप्रास समासोक्तिश्चालंकारौ। आर्या छन्दः।

नोट—कुसुमेषु निषण्णा—तत्पु०, प्रसूनं कुसुमं सुमन—अ० को०, प्रति+पाल्+णिच्+लट्, भवन्तम्—भवत् का द्वि० ए० व०, अलंकार—भ्रमर-भ्रमरी पर नायक-नायिका के व्यवहार का आरोप

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होने से समासोक्ति अलंकार, कुसुमनिषण्णा से स्थान की साध्यता, अनुरक्ता से सुगम्यता और प्रतिपालयति से प्रेम की अतिशयता अर्थ व्यंजित है। एषा भ्रमरी त्वां विना न पिबति—से पातिव्रत्य और विशेष अनुराग प्रतीत होता है। यहाँ कालिदास की प्रतिभा ने प्रकृति में मानवीय भावों को आरोपित किया है। आर्या छन्द। अनुरक्ता प्रतिपालयति—awaits you being attached to you.—Kale.

सानुमती—अद्याभिजातं खल्वेष वारितः। (अज्ज अभिजादं क्खु एसो वारिदो।)

हिन्दी—सानुमती—इस समय भ्रमर को इन्होंने साधु ढंग से रोका है।

विदूषकः—प्रतिषिद्धाऽपि वामैषा जातिः। (पडिसिद्धा वि वामा एसा जादी।)

हिन्दी—विदूषक—रोके जाने पर भी यह जाति उल्टा ही काम करती है।

राजा—एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि ? श्रूयतां तर्हि सम्प्रति—

हिन्दी—राजा—अरे, मेरे आदेश का पालन नहीं करता ? तो अब सुन—

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर प्रियाया-
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम् ॥ २० ॥

अन्वय—हे भ्रमर, अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं मया रतोत्सवेषु सदयम् एव पीतं प्रियायाः बिम्बाधरं चेत् स्पृशसि, त्वां कमलोदरबन्धनस्थं कारयामि।

हिन्दी—न मुरझाए हुए कोमल वृक्ष के पल्लव के समान सुन्दर तथा मेरे द्वारा जिनका रति-क्रिया के अवसर पर दया पूर्वक पान किया गया है, ऐसी प्रिया (शकुन्तला) के बिम्ब फल के समान अधर का, हे भ्रमर, यदि तुम स्पर्श करोगे तो, मैं तुम्हें कमल-सम्पुट के कारागार में बन्द करा दूँगा।

संस्कृत व्याख्या—अक्लिष्ट०—अम्लान नवीनवृक्षपत्रमनोहरं, मया—दुष्यन्तेन, रतोत्सवेषु—रति क्रियासु, सदयं—दया पूर्वकं, मल्प अधरं पीतं—चुम्बितं, तत् प्रियायाः शकुन्तलायाः बिम्बाधरं—बिम्ब फल सदृशं (अधरं), चेत्—यदि, स्पृशसि—स्पर्शकलुषितं (दन्तक्षतं) करोषि, तर्हि-त्वाम् अहं, कमलोदर०—कमलोदर कुहर कारागार निबद्धं कारयामि।

नोट—अक्लिष्टश्चासौ बालश्च यः तरुपल्लवः, कर्मधा० समा०, बिम्बाधरं—बिम्ब इव अधरं—कर्मधा०, सदयं—दयया सहितं इति यथा स्यात् तथा क्रिया विशेषण, कारयामि—कृ+णिच्+लट्, उ० पु० ए० व०। अलंकार—(१) 'लोभनीयम्' में लुप्तोपमालंकार, (२) भ्रमर में नायक के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार, (३) यहाँ 'व्यवसाय' नामक विमर्श सन्धि का अंग है 'व्यवसायश्च विज्ञेयः प्रतिज्ञा हेतु सम्भवः।' (४) वसन्त तिलका छन्द, (५) कमल के सम्पुट पर कारागार का आरोप करने से रूपकालंकार, (६) 'लोभनीयम्' पद से नायिका के अधर की कोमलता व्यंजित है, (७)यहाँ राजा दुष्यन्त का सौजन्य भाव दर्शनीय है क्योंकि वह अपनी प्रिया को भ्रमर से बचाना चाहते हैं।

Bimba like lower lip of my beloved which, charming like uninjured tender leaf of a young tree, which was kissed by me tenderly in humeneal sports. I will put you in confinement in interior of a lotus. —Kale

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदूषकः—एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति? (प्रहस्य। आत्मगतम्) एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवर्ण इव संवृत्तः। (प्रकाशम्) भोः, चित्रं खल्वेतत्। (एव्वं तिक्खणदण्डस्स किं ण भाइस्सदि? एसो दाव उम्मत्तो। अहं पि एदस्स संगेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। भो, चित्तं क्खु एदं।)

हिन्दी—विदूषक—इस प्रकार कठोर दण्ड वाले (तुमसे) क्यों नहीं डरेगा। (हँस कर अपने मन में) ये (राजा) तो पागल हो गये हैं। इनके साथ में मैं भी पागल हो गया हूँ। (प्रकट रूप में) अरे मित्र, यह तो चित्र है।

राजा—कथं चित्रम्?

हिन्दी—राजा—क्या यह चित्र है?

सानुमती—अहमपीदानीमवगतार्था। किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः। (अहं पि दाणिं अवगदत्था। किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो।)

हिन्दी—सानुमती—मैं भी अब यह बात समझ पाई हूँ। फिर चित्र के अनुसार अनुभव करने वाले राजा का क्या कहना?

राजा—वयस्य, किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम्[1]?

हिन्दी—राजा—तुमने यह कौन सी मूर्खता की?

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥ २१॥

अन्वय—तन्मयेन हृदयेन साक्षात् इव दर्शनसुखम् अनुभवतः मे स्मृतिकारिणा त्वया कान्ता पुनरपि चित्रीकृता।

हिन्दी—तल्लीन हृदय से मुझे प्रत्यक्ष दर्शन सुख का अनुभव कराते हुए मुझ (दुष्यन्त) को तुमने स्मरण करा कर प्रिया को पुनः चित्र बना दिया है।

संस्कृत व्याख्या—तन्मयेन—प्रियामयेन, हृदयेन—चित्तेन, साक्षात्—प्रत्यक्षतः इव, दर्शनसुखम्—प्रियादर्शनानन्दं, अनुभवतः—भावयतः, ये—मम, स्मृतिकारिणा—स्मृति कारितवता, त्वया—विदूषकेण, कान्ता—स्त्री (शकुन्तला), पुनरपि—भूयोऽपि, चित्रीकृता—चित्रावस्थां कृता।

नोट—साक्षादिव—उत्प्रेक्षालंकार। भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में इसे स्मरणालंकार का उदाहरण माना है। यहाँ विप्रलम्भ शृंगार की अंगभूत भावसन्धि है। स्मृति+कृ+णिनि, तृ० ए० व०, यहाँ प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति है। इस पद्य के पूर्वभाग में हर्ष तथा उत्तरार्द्ध में विषाद दोनों हैं। आर्या छन्द।

(इति बाष्पं विहरति।)

(इस तरह आँसू बहाने लगता है।)

सानुमती—पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विरहमार्गः। (पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विरहमग्गो।)

---

१. दौषैकदृक् पुरोभागी—अ० को०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—सानुमती—पहले तथा बाद की घटना का विरोधी यह विरह मार्ग विचित्र है।

राजा—वयस्य, कथमेवमविश्रान्तदुःखमनुभवामि ?

हिन्दी—राजा—मित्र, मैं इस तरह निरन्तर दुःख का अनुभव क्यों कर रहा हूँ।

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः ।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥ २२॥

अन्वय—प्रजागरात् तस्याः स्वप्ने समागमः खिलीभूतः। बाष्पः तु चित्रगताम् अपि एनां द्रष्टुं न ददाति।

हिन्दी—रात्रि में अधिक जागने से उस (शकुन्तला) का स्वप्न में भी समागम रुक गया है, और आँसू तो चित्रित की गई इस (शकुन्तला) को भी देखने नहीं देते।

संस्कृत व्याख्या—प्रजागरात्—प्रकर्षेण जागरणात्, स्वप्ने—निद्रायाम्, तस्याः—शकुन्तलायाः, समागमः—संगमः, खिलीभूतः—निरुद्धः, बाष्पस्तु—अश्रुप्रवाहस्तु, चित्रगताम्—आलेख्यगताम्, अपि एनां—शकुन्तलां, द्रष्टुं—विलोकयितुं, न ददाति—दर्शनयोग्यां न करोति।

नोट—पूर्वश्च अपरश्च—कर्मधा०, तस्य विरोधी—तत्पु० (१) यहाँ कारण तथा कर्म का अभेद होने से 'हेतु' अलंकार, (२) 'विरोध' नाम विमर्श सन्धि का अंग है, (३) पथ्यावक्त्रं छन्द। Tears do not permit me to see her even drawn in a picture--Kale.

तुलनाः अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे—तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः—मेघदूत २, मत्संभोगः नयन सलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्—मेघदूत १,

सानुमती—सर्वथा, प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः।
(सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउन्दलाए।)

हिन्दी—सानुमती—तुमने शकुन्तला के परित्याग का सम्पूर्ण दुःख दूर कर दिया।

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

चतुरिका[१]—जयतु जयतु भर्ता। वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थितास्मि। (जेदु जेदु भट्टा। वट्टिआकरण्डअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिदम्हि।)

हिन्दी—चतुरिका—महाराज की जय हो, जय हो। तूलिका पेटी लेकर मैं इधर ही आ रही थी।

राजा—किं च ?

हिन्दी—राजा—फिर क्या हुआ ?

चतुरिका—स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्योपनेष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः। (सो मे हत्थादो अन्तरा तरलिआदुदीआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो।)

---

१. राजा दुष्यन्त की परिचारिका

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—चतुरिका—उस पेटी को मेरे हाथों से तरलिका (दासी) के साथ महारानी वसुमती ने यह कह कर बलपूर्वक छीन लिया कि मैं ही इसे महाराज के पास पहुँचाऊँगी।

विदूषकः—दिष्ट्या त्वं मुक्ता (दिट्ठिआ तुमं मुक्का।)

हिन्दी—विदूषक—सौभाग्य से तुम बच गई।

चतुरिका—यावद् देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा। (जाव देवीए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता।)

हिन्दी—चतुरिका—जब तक वृक्ष में उलझे महारानी के उत्तरीय को तरलिका छुड़ाने लगी, तब तक मैंने अपने को छिपा लिया।

राजा—वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु।

हिन्दी—राजा—(विदूषक से) मित्र, अतिमान से गर्वित महारानी इधर ही आ रही हैं। आप इस चित्र की रक्षा करें।

विदूषकः—आत्मानमिति भण। (चित्रफलकमादायोत्थाय च) यदि भवानन्तःपुरकूटवागुरातो मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दायय। (अत्ताणं त्ति भणाहि। जइ भवं अन्तेउलकूडवागुरादो मुञ्चीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छन्दे पासादे सद्दावहि।)

हिन्दी—विदूषक—'मेरी रक्षा करो' यह कहो, (चित्रफलक को लेकर और उठाकर) यदि आप को अन्तःपुर के जाल से छूटना है, तो आप मुझे मेघ प्रतिच्छन्द नामक भवन में पुकारना।

(इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः।)

(इस प्रकार तेजी से कदम बढ़ाकर चला जाता है।)

सानुमती—अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते शिथिलसौहार्द[1] इदानीमेषः। (अण्णसंकन्तहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि सिढिलसोहदो दाणिं एसो।)

हिन्दी—सानुमती—अन्य नायिका से प्रेम करने वाला होने पर भी (वसुमती के प्रति) शिथिल प्रेम वाला भी यह अपने प्रथम प्रेम की अपेक्षा करता है।

(प्रविश्य पत्रहस्ता)

(हाथ में पत्र लिए हुए प्रवेश करके)

प्रतीहारी—जयतु जयतु देवः। (जेदु जेदु देवो।

हिन्दी—प्रतीहारी—महाराज की जय हो, जय हो।

---

१. अतिशिथिल—का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—वेत्रवति, न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी।

हिन्दी—राजा—प्रतीहारी, मार्ग में तुमने महारानी (वसुमती) को तो नहीं देखा?

प्रतीहारी—अथ किम्? पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता। (अह इं? पत्तहत्थं मं देक्खिअ पडिणिउत्ता।)

हिन्दी—प्रतीहारी—और क्या? हाथ में पत्र लिए हुए मुझे देखकर वे लौट गईं।

राजा—कार्यज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति।

हिन्दी—राजा—कार्यों को समझने वाली महारानी मेरे कार्यों में रूकावट नहीं करतीं।

प्रतीहारी—देव, अमात्यो विज्ञापयति—अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितं तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु—इति। (देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति।)

हिन्दी—प्रतीहारी—महाराज, मंत्रीजी सूचित करते हैं कि—धनराशि की गिनती के कार्य की अधिकता के कारण नगरवासियों का केवल एक ही कार्य देखा गया है, पत्र पर लिखित उस कार्य को आप देख लें।

राजा—इतः पत्रं दर्शय। (प्रतिहार्युपनयति।)

हिन्दी—राजा—इधर पत्र मुझे दिखाओ। (प्रतिहारी पत्र पास में लाती है।)

राजा—(अनुवाच्य) कथम्? समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्नः। अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसंचय इत्येतदमात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। वेत्रवति, बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।

हिन्दी—राजा—(पढ़कर) क्या? समुद्र से व्यापार करने वाला धनमित्र नामक कोई सेठ नौका के टूटने पर मर गया। वह बेचारा निःसन्तान था। उसकी धनराशि राजकीय होगी, ऐसा मंत्री ने पत्र में लिखा है। सन्तानहीनता निश्चित ही कष्टदायिनी होती है। वेत्रवती, धनाधिक्य के कारण उसकी बहुत सी पत्नियाँ होंगी। ज्ञात करो कि उसकी पत्नियों में कोई गर्भिणी तो नहीं है।

प्रतीहारी—देव, इदानीमेव साकेतकस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते। (देव, दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिआ णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदि।)

सार्थवाह—the chief merchant, प्रत्यक्षीकरोतु—please look into the same, विचार्यताम्—Let it be inquired if any of his wives be with child. —Kale.

हिन्दी—प्रतीहारा—महाराज, मैंने सुना है कि इस समय साकेत के किसी वणिक की पुत्री, उस धनी की पत्नी है और उसका पुंसवन संस्कार भी हो चुका है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ। एवममात्यं ब्रूहि।

हिन्दी—राजा—गर्भ में स्थित बालक पिता के धन का अधिकारी है। जाओ, ऐसा अमात्य से कह दो।

प्रतीहारी—यद् देव आज्ञापयति। (जं देवो आणवेदि।) **(इति प्रस्थिता)**

हिन्दी—प्रतीहारी—जैसी महाराज की आज्ञा। (चल पड़ती है।)

राजा—एहि तावत्।

हिन्दी—राजा—यहाँ आओ।

प्रतिहारी—इयमस्मि (इअं म्हि)

हिन्दी—प्रतिहारी—यह मैं हूँ।

राजा—किमनेन सन्ततिरस्ति नास्तीति।

हिन्दी—राजा—उसके सन्तान है या नहीं—इससे क्या प्रयोजन?

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥ २३ ॥

अन्वय—प्रजाः येन येन स्निग्धेन बन्धुना वियुज्यन्ते, पापाद् ऋते दुष्यन्तः तासां स स इति घुष्यताम्।

हिन्दी—प्रजा में जो भी जिस जिस स्नेही व्यक्ति से वियुक्त होता है, पाप के अतिरिक्त दुष्यन्त उनका वह सब सम्बन्धी है, ऐसा घोषणा करो।

नोट—साकेत+वुञ् (अक), रिक्थ मृक्थं धनं वसु—अ० को०, यहाँ 'साहाय्य' नामक नाट्यालंकार है—साहय्यं संकटे यत् स्यात् आनुकूल्यं परस्य च—सा० द०। इस पद्य से नायकगत उत्कर्ष व्यंजित होता है। रूपकालंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति। इस पद्य से राजा का प्रजा-प्रेम सूचित होता है। पुंसवन—१६ संस्कारों में एक है, जो पुत्रोत्पत्ति के लिए ही किया जाता है।

प्रतीहारी—एवं नाम घोषयितव्यम्। (निष्क्रम्य। पुनः प्रविश्य) काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम्। (एव्वं णाम घोसइदव्वं। काले पवुट्ठं विअ अहिणन्दिदं देवस्स सासणम्।)

हिन्दी—प्रतीहारी—हाँ, ऐसी ही घोषणा करनी चाहिए। (निकलकर) (पुनः प्रवेश करके) समय पर वृष्टि के समान राजा की आज्ञा अभिनन्दनीय है।

राजा—(दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य) एवं भोः, संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने सम्पदः परमुपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः।

हिन्दी—राजा—(लम्बी गर्म साँस लेकर) हाय, सन्तानहीन आश्रय रहित कुलों के प्रधान पुरुष की मृत्यु होने पर सम्पत्तियाँ दूसरों के पास चली जाती हैं। मेरे अन्त होने पर पुरुवंश की सम्पत्ति की भी यही दशा होगी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रतीहारी—प्रतिहतममङ्गलम्। (पडिहदं अमंगलं।)

हिन्दी—प्रतीहारी—अमंगल का नाश हो।

राजा—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्।

हिन्दी—राजा—स्वयं आये हुए मंगल का तिरस्कार करने वाले मुझे धिक्कार है।

सानुमती—असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा। (असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिन्दिदो णेण अप्पा।)

हिन्दी—सानुमती—निसन्देह सखी (शकुन्तला) को अपने हृदय में रखकर अपनी निन्दा कर रहे हैं।

राजा— संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ॥ २४॥

अन्वय—काले उप्तबीजा महते फलाय कल्पिष्यमाणा वसुन्धरा इव कुलप्रतिष्ठा धर्मपत्नी आत्मनि संरोपिते अपि मया त्यक्ता नाम।

हिन्दी—जिसमें समय पर बीज बोया गया है, जो महान फलदायी है, ऐसी पृथ्वी के समान वंश की प्रतिष्ठा स्वरूप अपनी धर्मपत्नी शकुन्तला का स्वरूप पुत्र (गर्भरूप में) स्थापित करने पर भी मैंने परित्याग किया है।

संस्कृत व्याख्या—काले—अनुकूलसमये, उप्तबीजा—कृतबीज वपना, महतेफलाय—विपुलशस्याय, कल्पिष्यमाणा—प्रभविष्यन्ती, वसुन्धरा इव—पृथिवी इव, कुलप्रतिष्ठा—वंशमर्यादा, स्वरूपा, धर्मपत्नी—मम धर्मस्त्री शकुन्तला, स्वस्मिने संरोपिते—गर्भरूपेण आहितेऽपि, मया त्यक्ता—तिरस्कृता। उपमाकाव्यलिङ्गचालंकारौ, उपजाति वृत्तम्।

नोट—उप्तंबीजं यस्यां सा—ब० व्री०, वप्+क्त, व का सम्प्रसारण 'उ', सं+रुह्+णिच्+क्त। पति र्भार्यां सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते—म० स्मृ०। कल्प+लृट्+शानच्+टाप्। अलंकार—(१) समय पर बीज डालना महान् फल का हेतु है, काव्यलिङ्ग अलंकार, (२) शकुन्तला की पृथ्वी से तुलना करने के कारण उपमालंकार, (३) साभिप्राय विशेषण से विशेष्य का कथन होने से परिकर अलंकार, आत्मात्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः—महाभारत; अन्तर्गूढं क्षितिरिव नभो बीज मुष्टिम् दधाना। —रघुः। इस पद्य में दुष्यन्त का अतिशय शोक व्यंजित है।

सानुमती—अपरिच्छिन्नेदानीं ते सन्ततिर्भविष्यति। (अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि।)

हिन्दी—सानुमती—अब तुम्हारी वंश-परम्परा अविच्छिन्न (अटूट) रहेगी।

चतुरिका—(जनान्तिकम्) अये, अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यं माधव्यं गृहीत्वागच्छ। (अए, इमिणा सत्थवाहवुत्तन्तेण दिउणुव्वेओ भट्टा। णं अस्सासिदुं मेहप्पडिच्छन्दादो अज्जं माढव्वं गेण्हिअ आअच्छेहि।)

हिन्दी—चतुरिका—(धीरे से) इस व्यापारी के वृत्तान्त से महाराज दुगुने दुःखी हो गये हैं। इनको आश्वस्त करने के लिए आर्य माधव्य को मेघप्रतिच्छन्द नामक भवन से बुलाकर लाओ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रतीहारी—सुष्ठु भणसि। (सुट्ठु भणासि।) (इति निष्क्रान्ता।)

हिन्दी—प्रतीहारी—ठीक कहती हो। (इस तरह निकल जाती है।)

राजा—अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः। कुतः—

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि
को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥ २५ ॥

अन्वय—बत अस्मात् परं नः कुले यथाश्रुति संभृतानि निवपनानि कः नियच्छति इति नूनं पितरः प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तम् उदकं धौताश्रुशेषं पिबन्ति।

हिन्दी—राजा—ओह, दुष्यन्त के पिण्डभागी पितृगण संशय को प्राप्त हो गए हैं क्योंकि—दुःख की बात है कि इस (दुष्यन्त) के बाद हमारे कुल में शास्त्रानुसार श्राद्धादि कौन देगा? ऐसा सोचकर पितरजन मुझ सन्तानविहीन प्राणी द्वारा दिये गये, आँसुओं को धोने से बचे हुए तर्पणजल को पीयेंगे।

संस्कृत व्याख्या—बत—खेदे, अस्मात्—दुष्यन्तात्, परं—पश्चात्, नः—अस्माकं, कुले—पुरुवंशे, यथाश्रुति—वेद परम्परया, संभृतानि—सञ्चितानि, निवपनानि—पितृतर्पणादिकर्माणि कः पुरुषः, नियच्छति—करिष्यति, नूनं—निश्चयेन, पितरः—पूर्व पौरवाः, प्रसूतिविकलेन—सन्तानरहितेन, मया—दुष्यन्तेन, प्रसिक्तं—दत्तम्, उदकं—जलम्, धौताश्रु०—प्रक्षालित बाष्पजलावशिष्टं, पिबन्ति—पानं कुर्वन्ति। उत्प्रेक्षा काव्यलिङ्गश्चालंकारौ, वसन्ततिलका वृत्तम्।

नोट—(१) कालिदास के युग में वैदिक धार्मिक श्राद्धादि की परम्परायें चलती थीं। (२) इस पद्य में निस्संतान व्यक्ति के दुःख का अतिसुन्दरता से वर्णन किया गया है। निवपनानि—श्राद्ध एवं तर्पण, विगताः कलाः अस्याः—ब० व्री०, धौतानि अश्रूणि येन—ब० व्री०, धौताश्रु च तत् शेषश्चेति—कर्मधा०—रा० म०, पितृदामं निवापः स्यात्—अ० को०, अलंकार—(१) श्लोक का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध का कारण होने से काव्यलिङ्ग अलंकार, (२) 'नूनं' पद से उत्प्रेक्षालंकार, (३) दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य से लेकर यहाँ तक विमर्श सन्धि का 'छलन' नामक अंग है। आत्माद्ध सादनंयत्तुछलनं तदुदाहृतम्—सा० द०। वसन्त तिलका छन्द। निवपनानि निगच्छति—Who will offer obsequial offering, संभृतानि—prepared, यथाश्रुति—according to vedic rites, धौताश्रुशेषमुदकं—my ancestors will drink water destitute of issue, as remains after washing their tears. —Kale.

(इति मोहमुपगतः।)

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाता है।)

चतुरिका—(ससंभ्रममवलोक्य) समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता। (समस्ससदु समस्ससदु भट्टा।)

हिन्दी—चतुरिका—(घबड़ाहट के साथ देखकर) महाराज, धैर्य रक्खें, धैर्य रक्खें।

सानुमती—हा धिक् हा धिक्। सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति। अहमिदानीमेव निर्वृतं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखाद् यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथाऽनुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

भर्ताभिनन्दिष्यतीति। तद् युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुम्। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। (हद्धी हद्धी। सदि क्खु दीवे ववधाणदोसेण एसो अन्धआरदोसं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि। अहवा सुदं मए सउन्दलं समस्सासअन्तीए महेन्दजणणीए मुहादो जण्णभाओस्सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्सन्ति जह अइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणन्दिस्सदि त्ति। ता जुत्तं एदं कालं पडिपालिदुं। जाव इमिणा वुत्तन्तेण पिअसहिं समस्सासेमि।) **(इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता।)**

हिन्दी—सानुमती—हाय धिक्कार है, हा धिक्कार है। दीपक (पुत्र) के होने पर भी बीच में पर्दा पड़ने के कारण ये राजर्षि अन्धकार दोष का अनुभव कर रहे हैं। मैं इनको इसी समय शान्त करती हूँ। अथवा शकुन्तला को धैर्य बँधाती हुई इन्द्र की माता (अदिति) के मुख से मैंने सुना है कि यज्ञभाग के उत्सुक देवता ही ऐसा करेंगे जिससे स्वामी शीघ्र ही धर्मपत्नी का अभिनन्दन करेंगे (उसे स्वीकार करेंगे)। अतः इस समय प्रतीक्षा करना उचित ही है। तब तक इस समाचार द्वारा अपनी प्रिय सखी को धैर्य बँधाती हूँ। (इस प्रकार उदभ्रान्तक नृत्य के साथ चली जाती है।)

नोट—उद्भ्रान्तक-नृत्य—जिसमें पहिले दाहिने पैर को उठाकर सिकोड़ना और पुनः तेजी से बायें पैर को घुमाना होता है—पूर्वं ''दक्षिणमुत्थाप्य........उद्भ्रान्तकं विदुः''—संगीत सुधानिधि। 'उद्भ्रान्तक' पद का अर्थ है—आकाश में पैर को उछाल कर।

(नेपथ्ये)

(पर्दे की आड़ में)

अब्रह्मण्यम्। (अब्बम्हणं।)

हिन्दी—अनर्थ हो गया।

राजा—(प्रत्यागतचेतनः[1], कर्णं दत्त्वा) अये माधव्यस्येवार्तस्वरः। कः कोऽत्र भोः ?

हिन्दी—राजा—(होश में आकर) सुनकर, अरे यह तो माधव्य का आर्त्तनाद है। कौन है यहाँ ?

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—(ससंभ्रमम्) परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्। (परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सम्।)

हिन्दी—प्रतीहारी—(घबड़ाकर) महाराज संशय में पड़े मित्र की रक्षा कीजिए।

राजा—केनात्तगन्धो माणवकः ?

हिन्दी—राजा—माणवक को किसने अपमानित (अभिभूत) किया है ?

प्रतीहारी—अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः। (अदिट्ठरूवेण केन वि सत्तेण

१. प्रत्यागतः (होश में आकर)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स पासादस्स अग्गभूमिं आरोहिदो)

हिन्दी—प्रतीहारी—न दिखाई पड़ने (परोक्ष) वाले किसी भूत के द्वारा पकड़ा जाकर उस मेघप्रतिच्छन्द महल की चारदीवारी की भूमि पर उसे रख दिया गया है।

राजा—(उत्थाय) मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा—

हिन्दी—राजा—(उठकर) ऐसा न हो। क्या मेरे घर को भी भूत आक्रमित कर रहे हैं। अथवा—

अहन्यहन्यात्मन एव ताव-
ज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम् ।
प्रजासु कः केन पथा प्रयाती-
त्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः ॥ २६ ॥

अन्वय—अहनि अहनि आत्मन एव प्रमादस्खलितं तावत् ज्ञातुं न शक्यम्। प्रजासु कः केन पथा प्रयाति इति अशेषतो वेदितुं शक्तिः अस्ति।

हिन्दी—प्रत्येक दिन मनुष्य अपनी ही प्रमादजन्य त्रुटियों को जान नहीं पाता फिर प्रजाओं में कौन किस रास्ते जा रहा है, इसे पूर्ण रूप से जानने की शक्ति किस (राजा) में हो सकती है ?

संस्कृत व्याख्या—अहनि—प्रत्येक दिवसम्, आत्मनः प्रमाद स्खलितं—स्वकीयानवधान वशात् जनः त्रुटिं करोति, पुनः प्रजासु—लोकानां मध्ये, कः—पुरुषः केन मार्गेण—पथा, प्रयाति—गच्छति, इति अशेषतो—सम्पूर्णतः, वेदितुं—ज्ञातुं, शक्तिः—सामर्थ्य कस्मिन् राजनि अस्ति? अत्रार्थापत्तिः अप्रस्तुतप्रशंसा अनुप्रासालंकाराः, उपजातिः छन्दः।

नोट—विद्+तुमुन्, (१) चतुर्थ चरण में काक ध्वनि है, काक ध्वनि होने से अर्थापत्ति अलंकार, (२) सामान्य से विशेष अर्थ की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार, प्रजाओं के धर्म-अधर्म में राजा का छठाँ भाग होता है—''सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञा भवति रक्षतः। अधर्मादपि षड्भागो भवेन्यस्य ह्यरक्षतः ॥'' —म० स्मृ०।

(नेपथ्ये)

(पर्दे की आड़ में)

भो वयस्य, अविहा अविहा। (भो वअस्स, अविहा अविहा।)

हिन्दी—हे मित्र, बचाओ, बचाओ।

राजा—(गतिभेदेन परिक्रामन्) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम्।

हिन्दी—राजा—(गति बदलकर चलते हुए) हे मित्र, डरो मत, डरो मत।

(नेपथ्ये)

(पर्दे की आड़ में)

(पुनस्तदेव पठित्वा) कथं न भेष्यामि? एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति। (कहं ण भाइस्सं? एस मं को वि पच्चवणदसिरोहरं इक्खुं विअ तिण्णभंगं करेदि।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—(फिर उसी बात को दुहराकर) कैसे न डरूँ। यह कोई मेरी गर्दन झुकाकर गन्ने की भाँति तीन टुकड़े में कर रहा है।

राजा—(सदृष्टिक्षेपम्) धनुस्तावत्।

हिन्दी—राजा—(दृष्टिपात करते हुए) जरा मेरा धनुष लाओ।

(प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता)

(हाथ में धनुष लिए प्रवेश करके)

यवनी—भर्तः, एतद् हस्तावापसहितं शरासनम्। (भट्टा, एदं हत्थावावसहिदं सरासणं।)

हिन्दी—यवन स्त्री—यह दस्ताना एवं धनुष है।

नोट--अविहा—अव्ययं खेदे, शार्ङ्गधरा-शृंगस्य विकारः शार्ङ्गम् हस्ते यस्याः—ब० व्रीं० हस्तावापः—हस्तम् आ वपति, या हस्तम् अवाप्नोति, शराः अस्यन्ते अनेन इति, शर+अस्+ल्युट्।

(राजा सशरं धनुरादत्ते)

(राजा बाण सहित धनुष ग्रहण करता है।)

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी
शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम् ।
आर्त्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा
दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम् ॥ २७॥

अन्वय—अभिनवकण्ठशोणितार्थी (अहं) शार्दूलः पशुम् इव चेष्टमानं त्वाम् एष हन्मि। आर्त्तानां भयम् अपनेतुम् आत्तधन्वा दुष्यन्तः इदानीं तव शरणं भवतु।

हिन्दी—नवीन कण्ठ के रक्त का इच्छुक यह मैं तुमको वैसे ही मारता हूँ जिस प्रकार व्याघ्र छटपटाते हुए पशु को मारता है। दुःखियों के भय को दूर करने के लिए धनुष धारण करने वाला दुष्यन्त अब तुम्हारी रक्षा करे।

संस्कृत व्याख्या—अभिनव०—नूतन कण्ठरक्तपिपासुः, अहं—मातलिः, शार्दूलः—व्याघ्रः, पशुमिव—हरिणादिनाम् इव, चेष्टमानं—स्फुरन्तं, त्वां—माधव्यं, एषः—मातलिः, हन्मि—मारयामि, आर्त्तानां—पीडितानां, भयम्—भीतिम्, अपनेतुं—निवारयितुं, आत्तधन्वा—गृहीतधनुः, दुष्यन्तः, इदानीं—सम्प्रति, तव माधव्यस्य शरणं—भवतु, रक्षतु। अत्र उपमानुप्रासौ अलंकारौ, प्रहर्षिणी छन्दः।

नोट—आत्ते धनुः येन—ब० व्री०, यहाँ वीभत्स रस ध्वनित होता है, इसमें उपमा एवं अनुप्रास अलं०, प्रहर्षिणी छन्द, आर्त्तानां—पद से दुष्यन्त का स्वाभाविक क्रोधावेश व्यंजित होता हैं, इसमें ओज नाम सन्ध्यन्तराङ्ग सूचित है—ओजस्तु निज शक्ति प्रकाशकः। कुछ टीकाकारों के विचार से 'भग्न प्रक्रमता' दोष है।

राजा—(सरोषम्) कथं मामेवोद्दिशति? तिष्ठ कुणपाशन! त्वमिदानीं न भविष्यसि। (शार्ङ्गमारोप्य) वेत्रवति, सोपानमार्गमादेशय।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—राजा—(क्रोध के साथ) क्या यह मुझे ही लक्षित कर रहा है? हे शवभक्षी, अब तू नहीं बचेगा (धनुष चढ़ाकर) हे वेत्रवती, मुझे सीढ़ी का मार्ग बताओ।

प्रतीहारी—इत इतो देवः। (इदो इदो देवो।

हिन्दी—प्रतीहारी—महाराज, इधर से आइए।

(सर्वे सत्वमुपसर्पन्ति)

(सभी लोग शीघ्रता से पास जाते हैं।)

अविहा अविहा। अहमत्रभवन्तं पश्यामि। त्वं मां न पश्यसि? बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः। (अविहा अविहा। अहं अत्तभवन्तं पेक्खामि? तुमं मं ण पेक्खसि। बिडालग्गहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो।)

हिन्दी—मुझे बचाओ, बचाओ। मैं आप को देख रहा हूँ। परन्तु तुम मुझे नहीं देख रहे हो। बिल्ली द्वारा पकड़े गये चूहे के समान मैं जीवन से निराश हो गया हूँ।

राजा—भोस्तिरस्करिणीगर्वित, मदीयमस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति। एष तमिषुं सन्दधे—

हिन्दी—राजा—हे तिरस्करिणी विद्या से गर्व पूर्ण, मेरा अस्त्र तुझे देख लेगा, यह मैं (दुष्यन्त) उस बाण को चढ़ा रहा हूँ—

नोट— 'कुणपः शवमस्त्रियाम्' अ० को०, तिरस्करिणी—इस विद्या के प्रभाव से व्यक्ति अपने को अन्यों की दृष्टि से छिपा लेता है।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति[1] द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २८ ॥

अन्वय—यः वध्यं त्वां हनिष्यति, रक्ष्यं द्विजं रक्षिष्यति। हि हंसः क्षीरम् आदत्ते, तन्मिश्राः अपः वर्जयति।

हिन्दी—जो (बाण) वध करने योग्य तुम्हें मार डालेगा, और रक्षा के योग्य ब्राह्मण (माधव्य) की रक्षा करेगा। क्योंकि हंस दूध को ग्रहण कर लेता है और उस (दूध) में मिले जल को त्याग देता है।

संस्कृत व्याख्या—यः बाणः वध्यं—वध योग्यं, त्वां—राक्षसं, हनिष्यति—मारयिष्यति, रक्ष्यं—रक्षणीयं, द्विजं—ब्राह्मणं, माधव्यं, रक्षिष्यति—त्रास्यते, हि—यतः, हंसः जलमध्यात्, क्षीरं—दुग्धं आदत्ते, तन्मिश्राः—दुग्ध मिश्रिताः, अपः—जलानि वर्जयति—परित्यजति अत्र दृष्टान्तः उपमाचालंकारौ, श्लोको वृत्तम्।

नोट—वध्यम्—वधम् अर्हति, हन्+यत् 'हनश्च वधः' से 'हन्' को वध आदेश, उपमालंकार नेपथ्य से लेकर यहाँ तक रौद्र रस है, क्रोध स्थायी भाव है, अनुष्टुप् छन्द। दृष्टान्त अलंकार। यहाँ भोः से लेकर २८ श्लोक तक 'व्यवसाय' नामक 'अवमर्श' सन्धि का अंग है। कुछ टीकाकारों का मत है कि हंस को नीर-क्षीर-विवेक का गुण कमल नाल का दुग्ध पान करने के कारण प्राप्त होता है। 'हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्'।

---

१. रक्षति च (अधिक पाठ मिलता है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(इत्यस्त्रं सन्धत्ते।)

(ऐसा कहकर राजा अस्त्र चढ़ाता है।)

(ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः।)

(तब विदूषक को छोड़कर मातलि प्रवेश करता है।)

मातलिः—राजन्,

कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः
शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने
पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ॥ २९ ॥

अन्वय—हरिणा असुराः तव शरव्यं कृताः, तेषु इदं शराशनं विकृष्यताम्। सतां सुहृज्जने प्रसादसौम्यानि चक्षूंषि पतन्ति, दारुणाः शराः न।

हिन्दी—मातलि (इन्द्र का सारथि महाराज दुष्यन्त से कहता है)—हे राजन्! देवराज इन्द्र ने राक्षसों को आपके बाण का लक्ष्य बनाया है, अतः उन राक्षसों पर ही यह धनुष चढ़ायें। सज्जन लोग अपने बन्धुओं पर प्रसन्नता से दृष्टिपात करते हैं, भयंकर बाण नहीं चलाते।

संस्कृत व्याख्या—हरिणा—इन्द्रेण, असुराः—राक्षसाः, तव—ते (दुष्यन्तस्य), शरव्यं कृताः—लक्ष्यं कृताः, तेषु—असुरेषु, इदं शरासनं—एतत् धनुः, विकृष्यताम्—आकृष्यताम्, यतो हि-सतां—सज्जनानां, सुहृज्जने—मित्रमण्डले, प्रसाद सौम्यानि—अनुग्रहेण मनोहराणि, चक्षूंषि—नेत्राणि दृष्टयः वा, पतन्ति—निपतन्ति, दारुणाः—भीषणाः सायकाः बाणाः न। अत्र अर्थान्तरन्यासः अप्रस्तुत प्रशंसा, काव्यलिङ्गश्चालंकाराः, वंशस्थं वृत्तम्।

नोट—यहाँ मातलि मित्र पर बाण न छोड़ने एवं शत्रु पर बाण छोड़ने का परामर्श देता है। शरव्यम्-शृणाति इति शरुः, तस्मै हितम्, शृ+यत्—लक्ष्य, सौम्यस्तु सुन्दरे सोमदैवते—अम०, सौम्य—सुन्दर, (१) तृतीय पंक्ति में समालंकार, (२) चतुर्थ में व्यतिरेक अलंकार, (३) सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास, (४) प्रथम पंक्ति के प्रति उत्तरार्द्ध की पंक्तियाँ हेतु हैं, अतः काव्यलिङ्ग अलं०, (५) वंशस्थ वृत्त।

राजा—(ससंभ्रममस्त्रमुपसंहरन्) अये मातलिः। स्वागतं महेन्द्रसारथे!

हिन्दी—राजा—(घबड़ाकर बाण उतारते हुए) अरे मातलि, (इन्द्र के सारथि) तुम्हारा स्वागत है।

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

विदूषकः—अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः, सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते। (अहं जेण इट्टिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणन्दीअदि।)

हिन्दी—विदूषक—मैं जिसके द्वारा यज्ञ पशु-मार से मारा जा रहा हूँ, उसी का आप स्वागत द्वारा अभिनन्दन कर रहे हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मातलिः—(सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः।

हिन्दी—मातलि—(मुस्कान के साथ) हे महाराज, सुनिए, जिस प्रयोजन से इन्द्र ने मुझे आपके पास भेजा है।

राजा—अवहितोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—मैं सावधान हूँ।

मातलिः—अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः।

हिन्दी—मातलि—कालनेमि के वंशज 'दुर्जय' नामक दानवों का समूह है।

राजा—अस्ति। श्रुतपूर्वं मया नारदात्।

हिन्दी—राजा—(दानवगण हैं) ऐसा मैंने पहले नारद से सुना था।

नोट—कालनेमि—एक ऐसा राक्षस था जिसके अनेक शिर तथा सौ हाथ थे। यह हिरण्यकशिपु का पुत्र था, इसकी मृत्यु विष्णु के हाथों हुई थी। दानव—दनु दक्ष की पुत्री और कश्यप की स्त्री थी, उसके पुत्र दानव कहलाये। नारद—ये विष्णु के भक्त हैं, ये ब्रह्मा के मानस पुत्र तथा दक्ष प्रजापतियों में एक हैं।

मातलिः—

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्य-
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्ति-
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥ ३० ॥

अन्वय—स किल ते सख्युः शतक्रतोः अजय्यः, त्वं रणशिरसि तस्य निहन्ता स्मृतः। सप्तसप्तिः यत् नैशं तिमिरम् उच्छेत्तुं न प्रभवति, तत् चन्द्रः अपाकरोति।

हिन्दी—(मातलि राजा दुष्यन्त से) वह दानव गण तुम्हारे मित्र इन्द्र द्वारा जीता नहीं जा सकता। युद्ध के अग्रभाग में आप उसका वध करने वाले हैं, ऐसा उन्होंने स्मरण किया है। क्योंकि सात रंगों वाला सूर्य जिस रात्रि के अँधेरे को नष्ट करने में असमर्थ है, उसे चन्द्रमा दूर कर देता है।

नोट—न जेतुं शक्यः—नञ् तत्पु०, जि+यत्, स्मृ+क्त, नि+हन्+तृच्—निहन्ता, निशा+अण्—नैशं, उत्+छिद्+तुमुन्, शतं[१] क्रतपो यस्य—ब० व०, क्रतु—संकल्प या शक्ति, प्रस्तुत पद्य में दुष्यन्त चन्द्रमा एवं इन्द्र सूर्य कहा गया है। यहाँ दृष्टान्तालंकार, उपमालंकार, छन्द—प्रहर्षिणी।

रणशिरसि निहन्ता—Slays in the van of battle, उच्छेत्तुं न प्रभवति—The Sun is not able to chase away —Kale.

स भवानात्तशस्त्र एव इदानीमैन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्।

हिन्दी—वह आप अस्त्र ग्रहण करके इन्द्र के रथ पर चढ़कर विजय के लिए प्रस्थान कीजिए।

---

१. सौ अश्वमेध यज्ञ करने के कारण इन्द्र को यह नाम मिला।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माधव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्?

हिन्दी—राजा—इन्द्र के इस आदर से मैं अनुगृहीत हूँ। लेकिन आपने माधव्य के प्रति ऐसा क्यों किया?

मातलिः—तदपि कथ्यते। किंचिन्निमित्तादपि मनःसन्तापादायुष्यमान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात् कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः—

हिन्दी—मातलि—वह भी बता रहा हूँ। किसी कारण से मन के दुःख से दुःखी आपको मैंने देखा तब मैंने आपको क्रोध दिलाने के लिए वैसा किया था। क्योंकि—

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ॥ ३१ ॥

अन्वय—अग्निः चलितेन्धनः ज्वलति, पन्नगः विप्रकृतः फणां कुरुते। हि जनः प्रायः क्षोभात् स्वं महिमानं प्रतिपद्यते।

हिन्दी—इन्धन के हिलाये जाने से अग्नि जलती है, साँप छेड़ने पर फण फैलाता है, इसी प्रकार मनुष्य प्रायः उत्तेजित होने पर ही अपनी महिमा (प्रभाव) को प्राप्त होते हैं।

संस्कृत व्याख्या—अग्निः—वह्निः, चलिते०—प्रचलितेन्धनः प्रदीप्तो भवति, पन्नगः—सर्पः, विप्रकृतः—उद्वेलितः सन्, फणां—फटां कुरुते—विस्तारयति, हि—यतो हि, जनः नरः, प्रायः बाहुल्यात् क्षोभात्—अभिघातात्, स्वं महिमानं—आत्मीयं प्रभावम्, पराक्रमम् वा, प्रतिपद्यते—आसादयति। अत्र अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यासः, दृष्टान्तालंकाराः। आर्या छन्दः।

नोट—चलितानि इन्धनानि यस्य—ब० व्री०, चल्+णिच्+क्त—चालित, फणाम्—फण तथा फणा—दोनों साधु शब्द हैं—द्वि० ए० व०, (१) यहाँ प्रस्तुत विषय से अप्रस्तुत विषय (अग्नि पन्नग) का समर्थन होने से अप्रस्तुतप्रशंसालंकार, (२) 'भवान्' विशेष के स्थान पर 'जनः' सामान्य कथन होने से दृष्टान्तालंकार, (३) 'तेज' क्रिया का पृथक् निर्देश होने से कुछ लोग प्रतिवस्तूपमालंकार मानते हैं, (४) आर्या छन्द।

राजा—(जनान्तिकम्) वयस्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि।

हिन्दी—राजा—(धीरे से विदूषक से)—हे मित्र, इन्द्र की आज्ञा उल्लंघन योग्य नहीं है। इसलिए इस वृत्तान्त से अवगत करा कर मेरी तरफ से मंत्री पिशुन से कहो।

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयतु प्रजाः ।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥ ३२ ॥

अन्वय—केवला त्वन्मतिः तावत् प्रजाः परिपालयतु। इदम् अधिज्यं धनुः अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतम्।

हिन्दी—तुम्हारी बुद्धि अकेली ही प्रजा का तब तक पालन करे, जब तक प्रत्यञ्चा चढ़ा मेरा यह धनुष दूसरे काम में संलग्न है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत व्याख्या—केवला—एकमात्रा, त्वन्मतिः—भवद्बुद्धिः, तावत्—मदागमनपर्यन्तं, प्रजाः—राज्यस्थान् जनान्, परिपाल०—परिरक्षतु, इदं—एतद्, अधिज्यं धनुः—प्रत्यञ्चायुक्तं चापं, अन्यस्मिन् कर्मणि—दानवहननरूप कार्ये, व्यावृतं—संयोजितम्। अनुष्टुप छन्दः।

नोट—अकेले प्रजा पालन का हेतु राजा द्वारा अन्य कार्य में लगना है, अतः काव्यलिङ्ग अलं०, अनुष्टुप छन्द।

विदूषकः—यद् भवानाज्ञापयति। (जं भवं आणवेदि।)

हिन्दी—विदूषक—जो आप आज्ञा देते हैं।

(इति निष्क्रान्तः)

(यह कहकर विदूषक निकल गया।)

मातलिः—आयुष्मान् रथमारोहतु।

हिन्दी—मातलिः—(राजा से) आप रथ पर बैठें।

(राजा रथाधिरोहणं[१] नाटयति।)

(राजा रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(इस प्रकार सभी निकल जाते हैं।)

षष्ठोऽङ्कः

नोट—यहाँ 'शक्ति' नामक 'विमर्श' सन्धि का अंग है। 'शक्तिः पुनर्भवेत विरोधस्य प्रशमनं', यहाँ वीर रस की प्रधानता है।

---

१. रथारोहणं (रथ पर चढ़ने का) —का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च।)

(तब आकाश मार्ग से रथारूढ़ मातलि और राजा दुष्यन्त प्रवेश करते हैं।)

राजा—मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषाद-नुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये।

हिन्दी—राजा—हे मातलि, यद्यपि मैंने देवराज की आज्ञा का पालन किया है फिर भी मैं सोचता हूँ कि उन्होंने जो सम्मान मुझे दिया है, मैं उसके योग्य नहीं हूँ।

नोट—अनुष्ठित निदेश—executed Indra's mission, अनुपयुक्त०—I have been little service to him. —Kale.

संकेत—जब आकाश में राजा दुष्यन्त मातलि के साथ दिखाई देते हैं, तब वे हेमकूट पर्वत को देखकर इन्द्र के पिता-माता कश्यप और अदिति के निवास को जानकर वे उनका अभिनन्दन करने के लिए कुछ समय वहाँ ठहरना चाहते हैं। इस समय कश्यप के आश्रम में ही शकुन्तला अपने पुत्र भरत के साथ निवास कर रही है।

मातलिः—(सस्मितम्) आयुष्मन्, उभयमप्यपरितोषं समर्थये।

हिन्दी—मातलि—(मुस्कान के साथ) महाराज, मैं यह समझता हूँ कि असंतोष आप दोनों में है।

नोट—(१) अंक समाप्ति तक निर्वहण सन्धि है—बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथा यथम्। एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्॥—सा० द०। इस सन्धि में १४ अंक होते हैं। (२) यहाँ शकुन्तला की प्राप्ति रूप कार्य अर्थ-प्रकृति है। (३) दुष्यन्त को पुत्र के साथ पत्नी की प्राप्ति होती है। अतः 'फलागम' नामक कार्यावस्था है। 'अभिप्रेतं समर्थं च प्रतिरूपं क्रियाफलम्'। इति वृत्तं भवेदस्मिन् फलायोगः स कथ्यते—द० रू०।

प्रथममोपकृतं मरुत्वतः
प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान्।
गणयत्यवदानविस्मितो
भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान्॥ १॥

अन्वय—भवान् मरुत्वतः प्रतिपत्त्या प्रथमोपकृतं लघु मन्यते। सोऽपि भवतः अवदानविस्मितः सत्क्रियागुणान् न गणयति।

हिन्दी—आप इन्द्र के सत्कार के कारण पहले किये गये (राक्षसवध रूपी) उपकार को तुच्छ मानते हैं, वह इन्द्र भी आपके पराक्रम से आश्चर्य युक्त होकर सम्मान की महत्ता को नहीं गिनता (समझता)।

नोट—प्रथमं यत् उपकृतम्—कर्मधा० समा०, मरुत्वत्—वेद में मरुत् के साथ इन्द्र वृत्तासुर का वध करता है। यह मरुत् झंझा का देवता माना जाता है।

अलंकार—(१) सत्कार रूपी हेतु होने पर भी गणना न होने से विशेषोक्ति अलंकार है, (२) बिना किसी कारण गणना कार्य होने से विभावनालंकार, (३) सुन्दरी छन्द—जिसमें प्रथम, तृतीय पादों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में २ सगण+१ जगण+१ गुरु हो तथा द्वितीय, चतुर्थ पादों में सगण, भगण, रगण+१ लघु+१ गुरु वर्ण हों।

इस पद्य में दुष्यन्त के चरित्र की पराक्रम अतिशयता एवं गुण ग्राहकत्व—ये दो गुण व्यंजित हैं।

राजा—मातले, मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य—

हिन्दी—राजा—मातलि, ऐसा मत कहो। मेरी विदाई के समय उन्होंने मेरा सम्मान किया है, जो मनोरथों का भी विषय नहीं हो सकता। क्योंकि देवों के समक्ष उन्होंने मुझे आधे आसन पर बैठाया था।

नोट—अक्ष्णोः समीपे—अव्ययी भाव० सम्+अक्षि+अच्।

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं
जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का
मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा॥ २॥

अन्वय—अन्तिकस्थम् अन्तर्गतप्रार्थनं जयन्तम् उद्वीक्ष्य कृतस्मितेन हरिणा आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला पिनद्धा।

प्रसंग—इसमें इन्द्र के प्रति दुष्यन्त के हृदय में उपजे कृतज्ञता के भाव व्यक्त किये गये हैं।

हिन्दी—इन्द्र के पास स्थित, मन्दार माला के इच्छुक जयन्त (इन्द्र पुत्र) को देखकर मुस्कराते हुए इन्द्र द्वारा वक्षस्थल में लिप्त श्रीखण्ड चन्दन से अंकित मन्दारमाला मुझे (दुष्यन्त को) पहना दी गयी है।

नोट—पद्म पुराण के अनुसार, तुलसी की लकड़ी को कपूर, अगुरु या केसर के साथ रगड़ने से 'हरिचन्दन' बनता है। हरिचन्दन ५ स्वर्गीय वृक्षों में एक है—मन्दार, पारिजातक, सन्तान, कल्पवृक्ष, हरिचन्दन।—पञ्चैते देवतारवो मन्दारः परिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्॥ —अ० को०। **अलंकार**—इन्द्र का दुष्यन्त के प्रति गौरव भाव होने के कारण उदात्तालंकार, परिकर अलं०, उपजाति छन्द। पिनद्धा—was fastened —Kale.

मातलि—किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति? पश्य—

हिन्दी—मातलि—(राजा दुष्यन्त से)—आप इन्द्र से कौन सी वस्तु पाने के योग्य नहीं हैं? देखिए—

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं
त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः
पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ ३॥

अन्वय—अधुना नतपर्वभिः तव शरैः, पुरा च नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणः नखैः, उभयैः सुखपरस्य हरेः त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकं कृतम्।

हिन्दी—इस समय झुकी हुई गाँठों वाले आप के बाणों ने और प्राचीन काल में नृसिंह रूप धारी भगवान् (विष्णु) के नखों—दोनों ने सुखोपभोग में आसक्त इन्द्र के स्वर्ग को (राज्य को) दानव रूपी काँटों से रहित कर दिया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नोट—पुरुषश्चासौ केसरी च—कर्मधा० समा०। यह विष्णु के २४ अवतारों में चतुर्थ है। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु को मारने के लिए विष्णु ने यह रूप धारण किया था।

अलंकार—यहाँ दुष्यन्त के बाण तथा नृसिंह के नख—दोनों का 'कृतं'—इस एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से दीपकालंकार, छन्द—द्रुतविलम्बित। इस श्लोक में महाकवि दुष्यन्त के बाण की प्रशंसा कर रहे हैं। मातलि दुष्यन्त के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है।

राजा—अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्त्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥४॥

अन्वय—महत्सु अपि कर्मसु नियोज्याः सिध्यन्ति (इति) यत् तम् ईश्वराणां संभावनागुणम् अवेहि। किं वा अरुणः तमसां विभेत्ता अभविष्यत् चेत् सहस्त्रकिरणः तं धुरि न अकरिष्यत्।

हिन्दी—राजा—(स्वर्ग को राक्षसों से रहित होने के) इस विषय में इन्द्र की महिमा प्रशंसनीय है।

महान् कार्यों में भी जो सेवक लोग सफल होते हैं, उसे उनके स्वामियों का आदर गुण समझो। यदि सूर्य अरुण को आगे न करता तो क्या वह अन्धकार का विनाशक हो सकता था अर्थात् नहीं।

संस्कृत व्याख्या—महत्सु अपि—गुरुतरेषु अपि, कर्मसु—कार्येषु, नियोज्याः—सेवकाः, सिध्यन्ति—सफला भवन्ति, इति यत् तम् ईश्वराणां—प्रभूणाम्, संभावनागुणम्—गौरव गुणम्, अवेहि—जानीहि, अरुणः—सूर्यसारथिः, तमसां—अन्धकारां, विभेत्ता—विनाशक, अभविष्यत्—न अभविष्यदित्यर्थः, चेत्—यदि, सहस्त्रकिरणः—सूर्यः, तम्—अरुणं, धुरि—अग्रे, न करिष्यत्—न अयोजयिष्यत्। अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

नोट—सहस्त्रंकिरणाः यस्य—ब० व्रीं०, सभावना—गौरवं—रा० भ०, संभावना वासनायां गौरवे ध्यात्र कर्मणि—अजयः। विभेत्ता=वि+भिद्+तृच्, नि+युज्+ण्यत् (१) अन्धकारनाशकः—रा० भ० Dispeller —Kale. अप्रस्तुत सामान्य से प्रस्तुत राजा (विशेष) की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशंसालंकार, (२) सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, (३) यहाँ राजा दुष्यन्त की महिमा एवं विनय सूचित होने से उदात्तालंकार, (४) छन्द—वसन्ततिलका छन्द। प्रस्तुत पद्य से दुष्यन्त की विनम्रता एवं अहंकार शून्यता व्यंजित है।

मातलिः—सदृशमेवैतत्। (स्तोकमन्तरमतीत्य) आयुष्मन्, इतः पश्य नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः।

हिन्दी—मातलि—आप से इसी प्रकार उत्तर मिलना उचित है। (थोड़ी दूर जाकर) महाराज, इधर देखिए, स्वर्ग पर स्थित आपका यश कितना सुन्दर है?

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां
वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु।
विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं
दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—अमी दिवौकसः गीतक्षमम् अर्थजातं विचिन्त्य सुरसुन्दरीणां विच्छित्तिशेषैः वर्णैः कल्पलतांशुकेषु त्वच्चरितं लिखन्ति।

हिन्दी—ये देवता लोग गाये जाने योग्य अर्थसमूहों को सोचकर देवाङ्गनाओं के अङ्गराग से अवशिष्ट रंगों से कल्पलता रूपी रेशमी वस्त्रों पर आप (दुष्यन्त) का चरित्र लिख रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—अमी—एते देवाः, गीतक्षमं—गेयं, अर्थजातं—पदार्थ समूहं, विचिन्त्य—चिन्तनं कृत्वा, सुरसुन्दरीणां—देवललनानां, विच्छित्तिशेषैः—अंगरागावशेषैः, वर्णैः—रागैः, कल्पलता-शुंकेषु—कल्पवृक्ष कौशेयवस्त्रेषु, त्वच्चरितं—त्वदीयम् आचरणं लिखन्ति।

नोट—विच्छित्याः शेषैः—ष० तत्पु० सुराणां सुन्दर्यः (ष० तत्पु०), गीतस्य क्षयमं (ष० तत्पु०) दिवः ओकः येषां ते—ब० व्री०, वि+चिन्त्+ल्यप्।

अलंकार—(१) विशिष्ट पदार्थों का वर्णन करने से उदात्तालंकार, (२) विच्छित्ति (अंगराग) से अवशिष्ट, अंगराग को लिखने में उपयोगी होने से परिणामालंकार, (३) कल्पलता में अंशुक (रेशमी) का आरोप होने से रूपकालंकार, (४) छन्द—उपजाति। विच्छित्तिरङ्ग रागैऽपि हारविच्छेदयोरपि—विश्वः। कल्पलता०—कल्पवल्ली वस्त्रेषु—रा० भ०

राजा—मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता मया न लक्षितः स्वर्गमार्गः। कतमस्मिन्[1] मरुतां पथि वर्तामहे ?

हिन्दी—राजा—हे मातलि, असुरों पर आक्रमण करने के इच्छुक मैंने पहले पूर्व दिवसों में स्वर्ग को जाते समय यह नहीं जाना कि हम लोग वायु के किस मार्ग से चल रहे हैं ?

मातलिः—

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः ।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं
वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥ ६ ॥

अन्वय—यः गगनप्रतिष्ठां त्रिस्रोतसं वहति, प्रविभक्तरश्मिः ज्योतींषि वर्तयति च। तस्य परिवहस्य वायोः द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कम् इमं मार्गं वदन्ति।

हिन्दी—मातलि—जो वायुमार्ग आकाश में स्थित गंगा को धारण करता है, जो वायु रूपी किरणों को विभक्त करके नक्षत्रों को घुमाता रहता है, उस परिवह नामक वायु का वामन रूप धारी विष्णु के द्वितीय चरण चिह्न से पुनीत, यह मार्ग कहलाता है।

संस्कृत व्याख्या—यः वायुमार्गः, गगन प्रतिष्ठा—गगनस्थिता, त्रिस्रोतसं—मन्दाकिनीं, वहति—धारयति, प्रविभक्तरश्मिः—प्रविभक्तवायुरूपकिरणः, ज्यो०—नक्षत्राणि वर्तयति—भ्रमयति, तस्य परिवहस्य—परिवहरूप, वायोः—पवनस्य, द्वितीयहरि०—द्वितीय विष्णुपादक्षेप निर्मलम्, इमं मार्गं—परिवहस्य मार्गं वदन्ति—कथयन्ति।

नोट—आकाश के ७ भागों में ७ वायु स्थित हैं। (१) पृथ्वी से बादलों तक आवह वायु, (२) प्रवह वायु में सूर्य, (३) संवह वायु में चन्द्रमा, (४) उद्वह वायु में नक्षत्र, (५) विवह में ग्रह, (६) परिवह में सप्तर्षि, (७) परावह में 'ध्रुव' है। आकाश गंगा परिवह वायु में स्थित है, वामनावतार—

१. कतरस्मिन् (कौन से)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भगवान् विष्णु ने बलि दैत्य को मारने के लिए वामन रूप धारण किया। वामन रूप में जाकर उन्होंने बलि से तीन पैर जमीन माँगी। भगवान् वामन ने अपने एक पैर से पृथ्वी, दूसरे से आकाश तथा तीसरा पैर उसके शिर पर रखकर उसे पाताल लोक में पहुँचा दिया। वैदिक साहित्य में उदय, मध्य एवं अस्त—ये तीन कदम विष्णु के हैं, जिनसे वह तीन लोकों को नापता है।

राजा—मातले, अतः खलु सबाह्यान्तःकरणो[1] ममान्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गमवलोक्य) मेघपदवीमवतीर्णौ स्वः।

हिन्दी—राजा—हे मातलि, बाह्य (चक्षु आदि) तथा अन्तरिन्द्रियों के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। (पहिये की ओर देखकर) हम लोग मेघ मार्ग पर उतर रहे हैं।

मातलिः—कथमवगम्यते ?

हिन्दी—मातलि—आपने यह कैसे जाना ?

राजा—

अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-
र्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः ॥ ७॥

अन्वय—शीकरक्लिन्ननेमिः अयं ते रथः अरविवरेभ्यः निष्पतद्भिः चातकैः अचिरभासां तेजसा अनुलिप्तैः हरिभिः च, वारिगर्भोदराणां घनानाम् उपरि गतं पिशुनयति।

हिन्दी—जलकणों से भींगे किनारे के भाग वाला आपका रथ अरों के छिद्रों से निकलते हुए चातक पक्षियों और विद्युत-प्रकाश से रंजित, अश्वों से जल से पूर्ण मेघों के ऊपर गमन करना सूचित कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या—शीकर०—शीकरैः, जल विन्दुभिः क्लिन्ना आर्द्रा नेमयः चक्रप्रान्तभागाः यस्य सः, अयं ते—तव मातलेः, रथः—स्यन्दनः, अर०—अराणां विवरेभ्यः छिद्रेभ्यः, निष्पतद्भिः—बहिरागच्छद्भिः, चातकैः—चातकपक्षिभिः, अचिरभासां—विद्युतानां, तेजसा—कान्तिभिः, अनुलिप्तैः—रंजितैः, हरिभिः च—अश्वैः, वारि०—जलपरिपूर्णानि उदराणि येषां ते तेषां, घनानां—मेघानां, उपरि—ऊर्ध्वभागे, गतं—गमनं, पिशुनयति—सूचयति। अत्र समुच्चयः काव्यलिङ्गमनुमानं चालंकाराः, मालिनी वृत्तम्।

नोट—वारि गर्भे येषां तानि—ब० व्री० शीकरैः—तृ० ब० व्री० क्लिन्नाः नेमयः यस्य सः, ब० व्री० पिशुनयति—पिशुन+लट् 'पिशुनौ खल सूचकौ' निष्ट+पत्+शतृ—तृ० ब० व्री०।

अलंकार—(१) मेघ मार्ग सूचित करने के कारण हैं, अतः अनुमानालंकार, (२) मेघ मार्ग गमन का अनेक हेतुओं द्वारा अनुमान होने से अनुमानालंकार है, (३) छन्द—मालिनी।

मातलिः—क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते।

हिन्दी—मातलि—(राजा से) क्षण में ही आप अपनी अधिकार भूमि पर पहुँच जायेंगे।

राजा—(अधोऽवलोक्य) वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः। तथा हि—

---

१. सबाह्यकरणो—पा० [illegible]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—राजा—(आकाश से नीचे भूमि पर देखकर) रथ के वेग से नीचे उतरने के कारण यह मानवलोक विस्मयपूर्ण दिखाई दे रहा है। जैसा कि— (for Kale)

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां[१] विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः ।
सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥ ७॥

अन्वय—मेदिनी उन्मज्जतां शैलानां शिखरात् अवरोहति इव। पादपाः स्कन्धोदयात् पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति। तनुभावनष्टसलिलाः आपगाः सन्तानैः व्यक्तिं भजन्ति। पश्य, उत्क्षिपता केनापि भुवनं मत्पार्श्वम् आनीयते इव।

हिन्दी—पृथिवी मानो प्रकट होते हुए पर्वतों की चोटियों से नीचे उतर रही है, वृक्ष अपनी शाखाओं के दिखाई पड़ने के कारण पत्तियों के अन्दर लीन होना त्याग रहे हैं। क्षीणता के कारण जिनका जल दिखाई नहीं पड़ता था, वे नदियाँ अब विस्तार के कारण प्रकट हो रही हैं, देखो, किसी के द्वारा ऊपर उछालते हुए मानव लोक मानो मेरे पास लाया जा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—मेदिनी—पृथिवी, उन्मज्जतां—प्रकटीभवताम्, शैलानां—पर्वतानाम्, शिखरात्—शृंगात्, अवरोहतीव—अधोगच्छतीव, पादपाः—वृक्षाः, तरवः, स्कन्धोदयात्—प्रकाण्ड प्रकाशात्, पर्णा०—पत्रान्तरलीनतां, विजहति—परित्यजन्ति, तनुभावनष्टसलिला—क्षीणतया नष्ट जलाः, आपगाः—नद्यः, सन्तानैः—विस्तरैः, व्यक्तिं—प्रकटताम, भजन्ति—प्राप्नुवन्ति, पश्य—विलोकय, उत्क्षिप०—ऊर्ध्वं निक्षिप्ततेव, केनापि भुवनं—मानव लोकः, मत्पार्श्वं—मत्समीपं, आनीयते—प्राप्यते इव। अत्रोत्प्रेक्षा, स्वभावोक्तिः, काव्यलिङ्ग अनुप्रासश्च अलंकाराः शार्दूल विक्रीडितम् वृत्तम्।

नोट—मेदिनी—मेदस् (चर्वी)+इनि—मार्कण्डेय एवं विष्णु पुराण में वर्णित है कि विष्णु द्वारा मारे गये मधु कैटभ—दोनों राक्षसों की चर्वी (मेदस्) से पृथिवी व्याप्त हो गई थी, अतः इसे 'मेदिनी' कहते हैं। पर्णानाम् अभ्यन्तराणि—ष० तत्पु०, तेषु प्रलीनतां—(सप्त० तत्पु०) उत्+मज्ज्+शतृ—ष० ब० व०, उत्+क्षिप्+शतृ तृ० ए० व०, सन्तानैः—सम्+तन् विस्तारे+घञ्—तृ० ब० व०, विस्तार के कारण प्रथम पंक्ति में प्रक्रमभंग दोष है—जिसे मज्जनात् पाठ करके दूर किया जा सकता है। रेल या वायुयान से यात्रा करने पर प्रत्येक वस्तु चलती-फिरती, घूमती दिखाई पड़ती है अतः कालिदास का यह वर्णन अत्यंत स्वाभाविक है। यह पद्य कालिदास की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है।

अलंकार—(१) अवरोहतीव—पृथिवी के नीचे उतरने की कल्पना के कारण उत्प्रेक्षालं०, (२) उत्क्षिप्तेव—मानव लोक को ऊपर उठा लेने की कल्पना के कारण उत्प्रेक्षालं०, (३) स्वभावोक्ति अलं०, (४) चतुर्थ चरण पूर्व तीन चरणों के प्रति हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलं०। शार्दूल विक्रीडित छन्द। पर्णा०—lose their state of being enveloped, व्यक्तिं भजन्ति—Rivers assume magnitude, उत्क्षिपतेव—ऊर्ध्वीकुर्वता— रा० भ० as if by some one flings it upwards. —Kale

मातलिः—साधु दृष्टम्। (सबहुमानमवलोक्य) अहो, उदाररमणीया पृथ्वी।

हिन्दी—मातलि—आपने भली भाँति देखा। (अति आदर के साथ देखकर) अहो, पृथ्वी अधिक सुन्दर लग रही है।

Note—How majestic & charming does the earth look?

---

१. पर्णस्वान्तर— (पत्तों के बीच में अपने छिपे रहने को)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरस-निस्यन्दी[1] सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते ?

हिन्दी—राजा—हे मातलि, पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तक व्याप्त, स्वर्ण रस को प्रवाहित करने वाला सान्ध्यकालीन मेघ की अर्गला के समान यह कौन-सा पर्वत दिखाई दे रहा है ?

मातलिः—आयुष्मन्, एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्। पश्य—

हिन्दी—मातलि—महाराज, किंपुरुषों का हेमकूट नामक पर्वत तपस्या की सिद्धि का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। देखिए—

नोट—उदारा चासौ रमणीया—कर्मधा० समा० 'उदारो दातृमहतोः'—अम० उदारमहान, पृथ्वी को राजा पृथु ने समतल (प्रथनः) बनाया, अतः पृथ्वी कहते हैं—पृथ्वी प्रथनात्। हेमकूट—इसे स्वर्ण-शिखर कहते हैं। यह हिमालय के उत्तर में कैलास के पास है। किंपुरुष—इन्हें गन्धर्व कहते हैं। ये संगीत विद्या में पटु होते हैं। इनका मुख घोड़े जैसा, शेष भाग मनुष्य की तरह होता है।

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥ ९ ॥

अन्वय—स्वायंभुवात् मरीचेः यः प्रजापतिः प्रबभूव। सुरासुरगुरुः सः सपत्नीकः अत्र तपस्यति।

हिन्दी—ब्रह्मापुत्र मरीचि से जो प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, देव तथा दानवों के पिता वह कश्यप अपनी पत्नी (अदिति) के साथ यहाँ (पर्वत पर) तपस्या कर रहे हैं।

नोट—मरीचे—कश्यप ऋषि को मरीचि पुत्र होने के कारण 'मारीच' कहते हैं। वायु पुराण इन्हें 'प्रजापति' कहता है। इनकी पत्नियाँ दिति-अदिति आदि दक्ष की ११ पुत्रियाँ हैं। तपस्यति—तपस्+क्यङ्।

राजा—तेन ह्यनतिक्रमणीयानी श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि।

हिन्दी—राजा—तो कल्याण की वस्तुओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। भगवान् कश्यप की प्रदक्षिणा करके ही जाना चाहता हूँ।

मातलिः—प्रथमः कल्पः। (नाट्येनावतीर्णौ।)

हिन्दी—मातलि—यह सुन्दर विचार है। (रथ से उतरने का अभिनय करते हुए)

राजा—(सविस्मयम्)

हिन्दी—राजा—(आश्चर्य सहित)

नोट—'स्मृति' ग्रन्थ में प्रदक्षिणा का महत्त्व वर्णित है। मृदंग, देवता, विप्र, घृत, मधु, चतुष्पथ एवं वृक्षादि को जानकर इनकी प्रदक्षिणा करे। 'मृदंगं दैवतं........... वनस्पतीन्' —म० स्मृ०।

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः
प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।

१. निस्यन्द (बहाने वाला)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभूतलस्पर्शतयाऽनिरुद्धत-
स्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥ १० ॥

अन्वय—अभूतलस्पर्शतया रथाङ्गनेमयः उपोढशब्दाः न। रजः च प्रर्वतमानं न दृश्यते। अनिरुद्धतः तव रथः अवतीर्णः अपि न लक्ष्यते।

हिन्दी—पृथ्वी का स्पर्श न करने के कारण रथ के चक्र के प्रान्त भागों से शब्द नहीं हुए और उड़ती हुई धूलि भी नहीं दिखाई पड़ रही है। लगाम न रोकने से तुम्हारा रथ उतरा हुआ था, ऐसा ज्ञात नहीं होता।

संस्कृत व्याख्या—पृथिव्याः स्पर्शरहितेन, रथाङ्ग०—चक्रप्रान्तभागाः, उपोढशब्दाः—न समुत्पन्न ध्वनयः, न च रजः—धूलिः, प्रवर्तमानं—उद्गच्छत्, न दृश्यते—न अवलोक्यते, अनिरुद्धतः—अनिरोधात्, तव—मातलेः, रथः—स्यन्दनः, अवतीर्णः—भूतले आगतेऽपि न लक्ष्यते—न सूच्यते।

नोट—उपोढा शब्दायैस्ते—ब० व्री०, उप+वह्+क्त ध्वनि उत्पन्न होना, (१) रथ उतरने पर भी शब्द न होने से विशेषोक्ति अलं०, (२) कुछ टीकाकार विरोधाभास अलंकार मानते हैं। रथांगस्य नेमयः—ष० तत्पु०, प्रवर्तमान—प्र+वृत्+शानच्, छन्द—वंशस्थ।

मातलिः—एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः।

हिन्दी—मातलि—आप (दुष्यन्त) और इन्द्र के रथ में इतना ही भेद है।

राजा—मातले, कतमस्मिन् प्रदेश मारीचाश्रमः ?

हिन्दी—राजा—मातलि, किस स्थान पर मरीचि ऋषि का आश्रम है ?

मातलिः—(हस्तेन दर्शयन्)

हिन्दी—मातलि—(हाथ से प्रदर्शित करता हुआ)

वल्मीकार्धनिमग्न[1]मूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥ ११ ॥

अन्वय—वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिः, सन्दष्टसर्पत्वचा उरसा, जीर्णलताप्रतानवलयेन कण्ठे अत्यर्थसंपीडितः, अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं जटामण्डलं विभ्रत्, स्थाणुः इव अचलः असौ मुनिः, यत्र अर्कबिम्बम् अभि स्थितः।

हिन्दी—जिसका आधा शरीर वल्मीक (दीमकों की मिट्टी) में छिपा है, जो लिपटे हुए इस सर्प की केंचुली वाले हैं, जिसका कण्ठ पुरानी लताओं के समूह से अत्यन्त पीडित है, जो कन्धे तक व्याप्त होने वाले पक्षियों के घोंसले से युक्त जटाओं के समूह को धारण करते हैं, जो स्थाणु की भाँति स्थिर होकर सूर्यमण्डल की ओर मुख करके स्थित हैं।

संस्कृत व्याख्या—वल्मीके अर्ध निमग्ना निदिष्टा मूर्तिः शरीरं यस्य, सन्दष्ट—संसक्तसर्प कञ्चुकेन, उरसा—वक्षसा युक्तः, जीर्णलता—पुराणलतासमूहेन, कण्ठे—वक्षस्थले, अत्यर्थ संपीडितः—समन्तात् आवृतः, अंसव्यापि—स्कन्धं प्रसूतं, शकुन्तनीडनिचितं—पक्षीकुलायव्याप्तं, जटामण्डलं—जटासमूहं, विभ्रत्—धारयन्, एष मरीचिः मुनिः, स्थाणुरिव—शुष्कवृक्षकाण्ड इव अचलः

१. वल्मीकाग्रनिमग्न—(बमी के अग्रभाग में जिसका शरीर दबा हुआ है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थिरो भूत्वा, अर्कबिम्बं—सूर्यमण्डलम्, अभि—लक्ष्यीकृत्य, स्थितः—विद्यते। अत्र श्लेषः परिकरः उपमा चालंकाराः। वृत्तम् शार्दूल विक्रीडितम्।

नोट—सान्दष्ट सर्पत्वचा—closely covered with sloughs of serpents, विभ्रज्ज०—wearing a circular mass of matted hair, अर्कबिम्ब—facing the sun's orb, स्थाणुरिव—stands like the trunk of a tree. —Kale.

वल्मीके अर्द्धनिमग्ना मूर्तियस्य—ब० व्री०, सन्दष्टा सर्पत्वक यत्र तेन—ब० व०, शकुन्तानांनीडैः निचितं—तत्पु०, सम्पीडित०—सम्+पीड्+क्त, विभ्रत—भृ+शतृ, विशेषणों के अभिप्राय युक्त होने के कारण 'परिकर' अलंकार, शार्दूलविक्रीडित छन्द। प्रसाद-गुण, वैदर्भी या गौड़ी रीति। यहाँ कवि कालिदास ने मरीचि ऋषि की समाधि का सुन्दर, स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये कई वर्षों तक समाधिस्थ रह सकते थे। यहाँ उरसा, कण्ठे आदि श्लिष्ट पद के कारण श्लेष अलं०, स्थाणु रिव— में मुनि की स्थिरता की तुलना स्थाणु से की गई, अतः उपमालंकार।

राजा—नमस्ते कष्टतपसे।

हिन्दी—राजा—कष्टयुक्त तपस्या वाले ऋषि को नमस्कार है।

मातलिः—(संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा) एतावदिति[1]परिवर्धित-मन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः।

हिन्दी—मातलि—(रथ की लगाम खींच कर) हम दोनों अदिति द्वारा पालित मन्दार वृक्षों वाले, प्रजापति के आश्रम में प्रवेश कर गये हैं।

राजा—स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—यह स्थान (मरीचि-आश्रम) स्वर्ग से भी अधिक सुखदायक है मानो मैं अमृत के सरोवर में डुबकी लगा रहा हूँ।

मातलिः—(रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्मान्।

हिन्दी—मातलि—(रथ को रोककर) महाराज (दुष्यन्त) उतरिये।

राजा—(अवतीर्य) मातले, भवान् कथमिदानीम्?

हिन्दी—राजा—(रथ से उतरकर) मातलि, अब आप क्या करेंगे?

मातलिः—संयन्त्रितो मया रथः। वयमप्यवतरामः। (तथा कृत्वा) इत आयुष्मन्! (परिक्रम्य) दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः।

हिन्दी—मातलि—मैंने अच्छी तरह रथ रोक दिया। हम भी उतरते हैं (वैसा करके) इधर आइये। (घूमकर) इन पूज्य ऋषियों की तपोवन भूमियों को देखिए।

राजा—ननु विस्मयादवलोकयामि।

हिन्दी—राजा—मैं आश्चर्य के साथ देख रहा हूँ।

---

१. एतौ०—(ये हम दोनों)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया ।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत् कांक्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥ १२॥

अन्वय—सत्कल्पवृक्षे वने अनिलेन प्राणानां वृत्तिः उचिता। काञ्चनपद्मरेणुकपिशे तोये धर्माभिषेकक्रिया। रत्नशिलातलेषु ध्यानम्। विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमः। अन्यमुनयः तपोभिः यत् कांक्षन्ति तस्मिन् अमी तपस्यन्ति।

हिन्दी—कल्पवृक्ष से युक्त वन में वायु सेवन द्वारा प्राण धारण करते हैं, स्वर्णकमलों के मकरन्द रस से पीले जल में धर्मार्थ स्नान करते हैं। मणि के शिलापट्टों पर ध्यान करते हैं, देवाङ्गनाओं के समीप संयम करते हैं, अन्य मुनि तपस्या के द्वारा जिन वस्तुओं की इच्छा करते हैं, उनके मध्य रहकर ये तपस्या करते हैं।

संस्कृत व्याख्या—सत्कल्पवृक्षे—कल्पवृक्षयुक्ते, वने—कानने, अनिलेन—वायुभक्षणेनैव, प्राणानां वृत्तिः—प्राणधारणक्रिया, उचिता—अभ्यस्ता, काञ्चनपद्मरेणुकपिशे—स्वर्णकमल पराग पिङ्गल वर्णे, तोये—जले, धर्माभिषेक क्रिया—धर्मार्थं स्नानादिकं, रत्नशिला०—मणि शिलापट्टेषु, ध्यानं—चिन्तनं, विबुध०—देवाङ्गनाऽभ्यासेऽपि, संयमः—इन्द्रियनिग्रहः, अन्यमुनयः—अन्ये तपस्विनः, तपोभिः—तपस्याभिः, यत्—कल्पवृक्षादि वस्तु, कांक्षन्ति—इच्छन्ति, तस्मिन्—तादृशभोगयुक्ते स्थाने, अमी—तपस्विनः, तपस्यन्ति—तपश्चरन्ति। अत्र, विशेषोक्तिः, अनुप्रास, काव्यलिङ्ग चालंकाराः। शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः।

नोट—सन्तः कल्पवृक्षाः यस्मिन्—ब० व्री०, धर्मार्थम् अभिषेकः—कर्मधा०, तस्य क्रिया (ष० तत्पु०), स्त्री संनिधौ संयमः, (१) कारण के होने पर भी संभोग रूप कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार, (२) चतुर्थ चरण के प्रति तीन चरण कारण होने से काव्यलिङ्ग अलंकार, (३) ध्वनि—यहाँ तपस्वियों का धैर्यातिशय व्यंजित हो रहा है अतः वस्तुध्वनि अलंकार है, (४) अन्य मुनियों की तुलना में यहाँ के मुनि का अधिक वर्णन होने से व्यतिरेकालंकार, (५) काव्यलिङ्ग अलंकार, (६) शार्दूलविक्रीडित छन्द।

इस पद्य में हेमकूट पर्वत पर साधना में लीन तपस्वियों की निष्कामता एवं आत्मा के लिए साधना का स्वाभाविक वर्णन है। यहाँ के मुनियों का ध्यान आकृष्ट करने में कल्पवृक्ष एवं अप्सरायें भी असमर्थ हैं। प्राणानामनि०—maintain life on wind. कल्पवृक्षे—desire-yielding trees. अमी तपस्यन्ति—they practise penance in presence of heavenly damsels.—Kale.

मातलिः—उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्य। आकाशे) अये वृद्धशाकल्य, किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः ? किं ब्रवीषि ? दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नी-सहितायै कथयतीति।

हिन्दी—मातलि—महान् पुरुषों की कामनाएँ उर्ध्वगामिनी होती हैं। (घूमकर) (आकाश में) हे वृद्धशाकल्य, भगवान् मारीच क्या कर रहे हैं ? क्या कहते हो ? दाक्षायणी द्वारा पतिव्रता धर्म के बारे में पूछे जाने पर महर्षि पत्नियों के साथ बैठी उसे बता रहे हैं।

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अये, प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—राजा—(सुनकर) यह ऐसा प्रस्ताव है, जिसके लिए अवसर की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

मातलिः—(राजानमवलोक्य) अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान्, यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि।

हिन्दी—मातलि—(राजा को देखकर) आप इस अशोक वृक्ष के नीचे तब तक बैठें, जब तक मैं इन्द्र के पिता कश्यप को आपके आने की सूचना देने के लिए उचित अवसर ढूँढता हूँ।

राजा—यथा भवान् मन्यते। (इति स्थितः।)

हिन्दी—राजा—जैसा आप समझें। (राजा बैठ जाता है।)

मातलिः—आयुष्मन्, साधयाम्यहम्। (इति निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—मातलि—महाराज, मैं चल रहा हूँ। (ऐसा कहकर मातलि चला जाता है।)

नोट—वृद्धशाकल्य—ऋग्वेद के शाकल्य शाखा का मारीच सेवक एक वृद्ध ब्राह्मण है। महर्षि—'रत्नकोश' ग्रन्थ के अनुसार ऋषि सात श्रेणी के होते हैं—ऋषि, महर्षि, परमर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, काण्डर्षि, श्रुतर्षि।

राजा—(निमित्तं सूचयित्वा।)

हिन्दी—राजा—(किसी शकुन को सूचित करके)

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा ।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥ १३ ॥

अन्वय—मनोरथाय न आशंसे। हे बाहो, वृथा किं स्पन्दसे। श्रेयः पूर्वावधीरितं दुःखं हि परिवर्तते।

हिन्दी—मैं किसी मनोरथ-प्राप्ति की आशा नहीं करता, हे बाहु, तुम निरर्थक फड़क रही हो। पहले तिरस्कृत किये जाने पर कल्याणकारी वस्तु दुःख में परिवर्तित हो जाती है।

संस्कृत व्याख्या—दुष्यन्तः कथयति—अहं, मनोरथाय—अभीष्टप्राप्तये शकुन्तलाप्राप्तये, वा न, आशंसे—संभावयामि, बाहो—हे दक्षिणभुज, वृथा—मुधा, किं—किमर्थम्, स्पन्दसे—स्फुरसि, हि—यतोहि, पूर्वाव०—पूर्वं तिरस्कृतम्, श्रेयः—मंङ्गलं, दुःखं हि—दुःखमेव, परिवर्तते—परिणमति। अत्रार्थान्तरन्यासोऽतिशयोक्तिश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

नोट—पूर्वावधीरित.......परिवर्तते—इसके कई अर्थ हैं (क) पूर्व अवहेलित कल्याण दुःखरूप में प्राप्त होता है, (ख) कल्याण का अनादर करने से बहुत दुःख मिलता है, (ग) पूर्व अनादृत कल्याण बड़े कष्ट से मिलता है। अलंकार—(१) यहाँ प्रकृत शकुन्तला का अप्रकृत 'मनोरथाय' के द्वारा निगरण हो जाने से अतिशयोक्ति अलं०, (२)उत्तरार्द्ध में सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलं०, (३) पथ्यावक्त्र छन्द, (४) परिवर्ती विनिमये कूर्मराजे प्रवर्तने-मेदिनी। परिवर्ती का अर्थ है विनिमय, (५) यहाँ शकुन्तला प्राप्ति के प्रति दुष्यन्त की पूर्ण निराशा व्यक्त होती है। Good fortune once scorned, turns into misery. —Kale स्पन्दसे—throb, स्फुरति —Kale

(नेपथ्ये)

मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्? (मा क्खु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चावलं करेहि। कहं गदो एव्व अत्तणो पकिदिं ?)

हिन्दी—(नेपथ्य में) तुम चंचलता मत करो। तू अपने क्षत्रिय स्वभाव को क्यों प्राप्त हुआ है ?

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष निषिध्यते ? (शब्दानुसारेणावलोक्य। सविस्मयम्) अये, को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्त्वो बालः ?

हिन्दी—राजा—(सुनकर) धृष्टता का यह स्थान नहीं है। यह कौन है, जिसे रोका जा रहा है। (आवाज की ओर देखकर) आश्चर्य के साथ, दो तपस्विनियों से अनुसरण किया जाता हुआ असाधारण शक्ति युक्त यह बालक कौन है ?

नोट—नास्ति बालः—नञ् तत्पु०, तस्य सत्त्वः (ष० तत्पु०) तस्मिन्—ब० व्री०, with the strength not of a child, अबालसत्त्वः—this is not the place for rude act. —Kale.

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ॥ १४॥

अन्वय—मातुः अर्धपीतस्तनम् आमर्दक्लिष्टकेसरं सिंहशिशुं प्रकीडितुं बलात्कारेण कर्षति।

हिन्दी—जिसने माता के स्तनों को आधा ही पीया है, खींचने से जिसके गर्दन के बाल बिखर गये हैं, ऐसे सिंह शावक को जो खेलने के लिए बल पूर्वक (अपने पास) खींच रहा है।

नोट—अर्धं पीतः स्तनः येन—ब० व्री०, मातुः ष० ए० व०, आमर्दन क्लिष्टाः केसराः यस्य—ब० व्री०, क्लिष्टाः—बिखरे हुए, विसंस्थुलाः—रा० भ०, disordered. —Kale, अर्धपीतस्तनं—who has half sucked the teat. —Kale, अलंकार—(१) स्वभावोक्ति—बच्चों का पशुओं से खेलने का स्वाभाविक वर्णन होने से, (२) शेर से खेलने के कारण उदात्तालंकार। श्लोक छन्द।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां सह बालः।)

(तब निर्दिष्ट कर्म (सिंहशिशु को खींचना) वाला बालक दोनों तपस्विनियों के साथ प्रवेश करता है।)

बालः—जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्ये (जिम्भ सिंघ, दन्ताइं दे गणइस्सं)

हिन्दी—हे सिंह, जँभाई लो, मैं तुम्हारे दाँतों को गिनूँगा।

प्रथमा—अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि ? हन्त, वर्धते ते[1] संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि। (अविणीद, किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि ? हन्त, वड्ढइ दे संरम्भो। ठाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि।)

१. तव —तेरा —नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—पहली तपस्विनी—दुष्ट, हमारे सन्तान जैसे इन प्राणियों को तुम क्यों पीड़ित कर रहे हो ? हाय, तेरा क्रोध बढ़ता जा रहा है। उचित है कि ऋषियों ने तुम्हारा 'सर्वदमन' नाम रक्खा।

राजा—किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः ? नूनमनपत्यता मां वत्सलयति।

हिन्दी—राजा—पता नहीं क्यों, इस बालक पर मेरा मन औरस (सगे) पुत्र जैसा स्नेह कर रहा है। निश्चय ही, सन्तानहीनता मुझसे ऐसा स्नेह करा रही है।

द्वितीया—एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयति[1] यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि। (एसा क्खु केसरिणी तुमं लंघेदि जइ से पुत्तणं ण मंचेसि।)

हिन्दी—दूसरी तपस्विनी—यदि तुम इसके पुत्र (सिंह शावक) को नहीं छोड़ेगे, तो यह सिंहिनी तुम पर आक्रमण कर देगी।

बालः—(सस्मितम्) अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि। (अम्हहे बलिअं क्खु भीदो म्हि।) **(इत्यधरं दर्शयति।)**

हिन्दी—बालक—(मुस्कान के साथ) अहो, मैं बहुत डर गया हूँ। (इस तरह अधर दिखाता है।)

नोट—सर्वदमनः—सर्वान् दमयति—सर्वदमनः, म० स्मृ० में मनु ने १२ प्रकार के पुत्र कहे हैं, जिनमें 'औरस' एक है। स्निह्यति—स्निह् लट् प्र० पु० ए० व०, न जानने या पहचानने पर भी अपने बन्धु से मन बलपूर्वक स्नेह करता है—अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः—किरा०। यहाँ कालिदास ने पुत्र रहित दुष्यन्त की अनुभूतियों का सजीव चित्रण किया है।

राजा— महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे ।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः ॥ १५ ॥

अन्वय—महतः तेजसः बीजम् अयं बालः स्फुलिङ्गावस्थया एधापेक्षः स्थितः वह्निः इव मे प्रतिभाति।

हिन्दी—राजा—महान् तेजस्वी का वीर्य यह बालक (मुझे) स्फुलिंग (चिनगारी) की अवस्था में स्थित होकर ईंधन की अपेक्षा करने वाले अग्नि की भाँति मुझे प्रतीत हो रहा है।

संस्कृत व्याख्या—महतः—प्रबलस्य, तेजसः—वीर्यस्य, बीजम्—उत्पत्तिस्थानम्, अयं बालः—शिशुः, स्फु०—अग्नि कणावस्थया, एधापेक्षः—काष्ठापेक्षः, स्थितः—विद्यमानः, वह्निः—अग्निः इव, मे—मम (चित्तम), प्रतिभाति—प्रतीयते। अत्र उपमानुप्रासौ अलंकारौ, श्लोको वृत्तम्।

नोट—एधान्—नपुं० ब० द्वि० व० एधान अपेक्षते असौ (एषः अनलः) (१) उपमालंकार—बालक की तुलना अग्नि से की गई है, (२) त, व, स आदि वर्णो की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार, पथ्यावक्त्र छन्द, (३) बलीयः खलु भीतोऽस्मि—में व्यञ्जना है, अर्थात् मैं सिंह से बिल्कुल नहीं डरता।

प्रथमा—वत्स, एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि। (वच्छ, एदं बालमिइन्दअं मुञ्च। अवरं दे कीलणअं दाइस्सं।)

---

१. लङ्घयिष्यति (आक्रमण करेगी)—नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—पहली तपस्विनी—पुत्र, इस सिंह शावक को छोड़ दो, मैं तुम्हें दूसरा खिलौना दूँगी।

बालः—कुत्र ? देह्येतत्[१]**।** (कहिं ? देहि णं।)

हिन्दी—बालक—कहाँ है ? वह (खिलौना) मुझे दो।

राजा—(बालस्य हस्तमवलोक्य) कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते ? तथा ह्यस्य—

हिन्दी—राजा—(बालक का हाथ देखकर) क्या इसने चक्रवर्ती के लक्षण भी धारण किये हैं ? क्योंकि—

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो
विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया
नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम् ॥ १६ ॥

अन्वय—प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितः जालग्रथिताङ्गुलिः अस्य करः इद्धरागया नवोषसा भिन्नम् अलक्ष्यपत्रान्तरम् एकपङकजम् इव विभाति।

हिन्दी—लुभावनी वस्तु के लिए प्रेमपूर्वक फैलाया गया, जाल सी गुँथी हुई अँगुलियों वाला इसका हाथ, बढ़ी लालिमा से युक्त उषा के द्वारा विकसित स्पष्ट रूप से न दिखाई पड़ने पर भी भीतरी पत्तों के भाग से युक्त अद्वितीय कमल के समान सुशोभित हो रहा है।

संस्कृत व्याख्या—प्रलोभ्ये—लोभ कारके पदार्थे प्रेमपूर्वक प्रसारितः विस्तृतः, जाल०—जालक सदृशं ग्रथिताः संसक्ताः अंगुलयः यस्मिन् सः, अस्य—बालकस्य, करः—हस्तः, इद्ध०—विकसितं, अलक्ष्याणि—अदृश्यानि पत्राणां दलानां मध्यभागः यस्मिन् तत्, एकपङ्क० इव—अद्वितीयं कमलं इव, विभाति—सुशोभते। अत्र काव्यलिङ्ग उपमा चालंकारौ। वंशस्थं वृत्तम्।

नोट—प्रलोभ्ये वस्तुनि प्रणयेन प्रसारितः—तत्पु०, जालेन ग्रथिताङ्गुलयः यस्य—ब० व्री०, इद्धो रागो यया—ब० व्री०, इन्ध् प्रदीप्तां+क्त, यहाँ रा० भ०, गदकर, विद्यासागर जैसे टीकाकार 'कर्त्तरि क्तः' मानते हैं तथा प्रो० शारदारञ्जन रे 'कर्मणि क्तः' कहते हैं। नवा उषा तथा—कर्मधा० समा० अलक्ष्यंपत्रान्तरं यस्मिन्—ब० व्री०, एकं चैतत् पङ्कजम्—कर्मधा० समाः, अलंकार—काव्यलिङ्ग अलंकार, उपमालंकार—बालक के हाथ की तुलना कमल से की गई है, अतः उपमालंकार, प्रलोभ्य—प्र+लुभ्+ण्यत्, प्र+नी+अच्—प्रणयः, इन्ध् (प्रदीप्त करना)+क्त, रञ्ज्+घञ्—रागः, भिद्+क्त—भिन्नः, अतिरक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः। चापाङ्कुशांकितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम्॥—सामुद्रिक शास्त्र। वंशस्थ छन्द, यहाँ महाकवि कालिदास ने चक्रवर्ती के लक्षणों का वर्णन किया है। बुद्धचरित में ऐसा ही वर्णन है।

द्वितीया—सुव्रते, न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम्। मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर। (सुव्वदे, ण सक्को एसो वाआमेत्तेण विरमाविदुं[२]। गच्छ तुमं। ममकेरए उडए मक्कंडेअस्स इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर।)

१. देहि तत् (वह मुझे दो) —नि० सा०
२. विरमयितुं (रोकने को) —नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—सुव्रते, केवल कहने मात्र से इसे (बालक को) सिंह शावक के साथ खेलने से रोका नहीं जा सकता। तुम जाओ। मेरी कुटिया में ऋषि कुमार मार्कण्डेय का रंगीन मिट्टी का बना मोर रखा है। उसे इसके लिए ले आओ।

प्रथमा—तथा। (तह।) (इति निष्क्रान्ता।)

हिन्दी—पहली तपस्विनी—अच्छा। (चली जाती है।)

बालः—अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि। (इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं।)

हिन्दी—बालक—तब तक इसी से (सिंह शावक से) खेलूँगा।

(इति तापसीं विलोक्य हसति।)

(इस प्रकार तापसी को देखकर हँसता है।)

राजा—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै।

हिन्दी—राजा—इस नटखट बालक को वस्तुतः मैं बहुत चाहता हूँ।

नोट— I really love for this wayward boy. —Kale. कालिदासीय युग में मिट्टी के खिलौने, मुद्राएँ तथा बर्तन अधिक बनते थे, जो उत्खनन से प्राप्त हैं। विक्रमोर्वशीय में भी आयु अपनी मिट्टी का मयूर लौटाने को कहता है, मृच्छकटिक में मिट्टी की गाड़ी का वर्णन है। दुष्टं ललितं यस्य—ब० व्री०।

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥ १७॥

अन्वय—अनिमित्तहासैः आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् अङ्काश्रयप्रणयिनः तनयान् वहन्तः धन्याः तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।

हिन्दी—बिना किसी कारण के हँसने से, कुछ-कुछ दिखाई पड़ने वाले दन्त मुकुलों से युक्त अस्पष्ट वर्णों से मधुर वाणी बोलने वाले, गोद में रहने के इच्छुक, पुत्र को गोद में धारण करने वाले वे लोग कृतार्थ हैं, जो उनके शरीर की धूलि से धूसरित हो जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—अनिमित्त०—अकारण हासैः, आलक्ष्य०—ईषद् लक्षितं दन्तकुड्मलान्, अव्यक्त वर्ण०—अस्पष्टाक्षर मनोहर वाक्य विन्यासान्, अङ्काश्रय—क्रीडानिवास स्नेहिनः, तनयान्—पुत्रान्, वहन्तः—धारयन्तः, धन्याः—भाग्यवन्तः, तदंगरजसा—तत्शरीर धूल्या, मलिनी भवन्ति—कलुषी भवन्ति। स्वभावोक्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

नोट—यह पद्य वात्सल्य रस का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कालिदास ने बाल सुलभचेष्टाओं का स्वाभाविक चित्राङ्कन किया है। इससे यह तथ्य प्रमाणित होता है कि वे मानवीय प्रकृति के महान् मर्मज्ञ कवि थे। Their bud like teeth slightly visible by their causeless smiles their charming prattle uttered indistinct accents the blessed are soiled by the dust of their limbs. —Kale.

व्याकरण—आलक्ष्याः दन्त मुकुलाः येषां ते ब० व्री०, अव्यक्तैः वर्णैः रमणीयाः वचः येषां ते—ब० व्री०, रम्+अनीयर्, प्रणयिन् प्र+नी अच्+इनि, मलिन+च्वि+चू+लट् प्र० ब० व०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलंकार—(१) बालक की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन होने से स्वभावोक्ति, (२) सर्वदमन के स्थान पर सामान्य बालक का वर्णन होने से अप्रस्तुतप्रशंसालंकार, (३) परिसंख्या अलंकार, (४) वसन्ततिलका छन्द।

तापसी—भवतु। न मामयं गणयति। (पार्श्वमवलोक्य[1]) कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्? (राजानमवलोक्य) भद्रमुख, एहि तावत्। मोचयानेन दुर्मोच[2]हस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्। (होदु। ण मं अअं गणेदि। को एत्थ इसिकुमाराणं? भद्दमुह, एहि दाव। मोएहि इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिम्भलीलाए बाहीअमाणं बालमिइन्दअं।)

हिन्दी—तपस्विनी—अच्छा, यह मेरी बात नहीं सुन रहा है। (समीप में देखकर) कौन ऋषि कुमार यहाँ है। (राजा को देखकर) हे भद्रपुरुष, यहाँ आइये। कठिनाई से छुड़ाने योग्य इस बालक द्वारा डिम्भ लीला द्वारा सताये जाते हुए इस सिंह के बच्चे को छुड़ा लीजिए।

राजा—(उपगम्य। सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्र,

हिन्दी—राजा—(पास जाकर) (मुस्कान के साथ) हे महर्षिपुत्र

नोट—डिम्भलीलया—बाल चेष्टाएँ—in childish sport, बाध्यमानं—teased.

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना
संयमः किमिति जन्मतस्त्वया ।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते
कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः[3] ॥ १८ ॥

अन्वय—एवम् आश्रमविरुद्धवृत्तिना त्वया जन्मतः सत्त्वसंश्रयसुखः अपि संयमः कृष्णसर्पशिशुना चन्दनः इव किमिति दूष्यते?

हिन्दी—इस प्रकार आश्रम विरुद्ध आचरण से तुम (अपने) जन्म से ही प्राणियों को आश्रम के द्वारा सुखकर संयम (तप) को काले नाग के बच्चे द्वारा चन्दन वृक्ष की भाँति क्यों दूषित कर रहे हो?

नोट—सत्त्वानां सश्रमणे सुखं यस्मात्—ब० व्री०, कृष्णश्चासौ सर्पः—कर्मधा० समा०—उपमालंकार, छन्द—रथोद्धता—जिस छन्द के एक पाद में रगण के बाद नगण, रगण, एक लघु, एक गुरु वर्ण हो रान्नराविह लगौ रथोद्धता। चन्दन पद नपुं० लिंग में होने पर भी आदि पद संयम के पुल्लिग होने पर वह भी पुल्लिग में रहेगा। जन्मनः या जन्मतः पाठ के विषय में राघव, गदकर आदि की व्याख्याओं में विवाद है।

तापसी—भद्रमुख, न खल्वयमृषिकुमारः। (भद्दमुह, ण क्खु अअं इसिकुमारओ।)

---

१. पार्श्वमवलोकयति (अगल बगल देखती है) नि०
२. दुर्मोक० (कठिनाई से छुड़ाने योग्य) का० नि०
३. चन्दनम् (चन्दन) नि०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—तपस्विनी—हे महाशय, यह ऋषि पुत्र नहीं है।

राजा—आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवंतर्किणः। (यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य। आत्मगतम्)

हिन्दी—राजा—इसके आकार के अनुसार इस बालक की चेष्टा ही कह रही है। फिर भी इस स्थान को ध्यान में रखकर मैंने ऐसा चिन्तन किया।

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण
स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्
यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढ़ ॥ १८॥

अन्वय—कस्यापि कुलाङ्कुरेण अनेन स्पृष्टस्य मम गात्रेषु एवं सुखम्। यस्य कृतिनः अङ्कात् अयं प्ररूढ़ः तस्य चेतसि कां निर्वृतिं कुर्यात्।

हिन्दी—किसी भी वंश के अङ्कुर स्वरूप इस बालक का स्पर्श पाकर मेरे शरीर के अङ्गो में जब ऐसा सुख हो रहा है, तब जिस पुण्यात्मा की गोद से यह बालक उत्पन्न हुआ है उसके हृदय में कितनी शान्ति उत्पन्न करता होगा ?

नोट—गात्रमङ्गे कलेवरे—विश्व प्रकाश कोष, निर्वृतिस्तु सुखे जीव्ये—धरणिः। महाभारत के अनुसार पुत्र स्पर्श अति सुखदायक है। पुत्रस्पर्शात् सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते यहाँ 'कां निर्वृत्ति' के द्वारा अर्थापति से राजा को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होने से अर्थापत्ति अलंकार, 'कुलाङ्कुर' में रूपक अलंकार। छन्द—उपजाति। कां निवृत्ति—pleasusable sensaticn, कुलाङ्कुरेण—this scion of some one's family. —Kale.

तापसी—(उभौ निर्वर्ण्य) आश्चर्यमाश्चर्यम्। (अच्छरिअं अच्छरिअं।)

हिन्दी—तपस्विनी—(राजा एवं बालक दोनों को देखकर) आश्चर्य है, आश्चर्य है।

राजा—आर्ये किमिव ?

हिन्दी—राजा—माननीया, क्या आश्चर्य की बात है ?

तापसी—अस्य बालकस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिरिति विस्मिताऽस्मि। अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति। (इमस्स बालअस्स दे वि संवादिणी आकिदी त्ति विम्हिदम्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति।)

हिन्दी—तपस्विनी—इस बालक की और आपकी आकृति एक दूसरे से मिलती जुलती है। अतः मुझे आश्चर्य हो रहा है। यह बालक अपरिचित होने पर भी आपके अनुकूल हो गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(बालकमुपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः ?

हिन्दी—राजा—(बालक का दुलार करते हुए) यदि यह मुनि कुमार नहीं है, तो इसका वंश क्या है ?

तापसी—पुरुवंशः। (पुरुवंसो।)

हिन्दी—तपस्विनी—पुरुवंश।

राजा—(आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम? अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत् पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम्।

हिन्दी—राजा—मेरा और इसका एक वंश कैसे है? इसीलिए पूजनीया इसको मेरे समान आकृति वाला मान रही है। पुरुवंशियों का यह अन्तिम कुल व्रत है।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम् ।
नियतैकयतिव्रतानि[1] पश्चात्
तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥ २० ॥

अन्वय—ये पूर्वं क्षितिरक्षार्थं रसाधिकेषु भवनेषु निवासम् उशन्ति। पश्चात् तेषां नियतैकयतिव्रतानि तरुमूलानि गृहीभवन्ति।

हिन्दी—जो (पौरव लोग) पहले (युवावस्था में) पृथ्वी की रक्षा के लिए भोगों से पूर्ण भवनों में निवास करने की आकांक्षा करते हैं, तदनन्तर (वृद्धावस्था) में वे ही तपस्वी लोग जहाँ जीवन व्यतीत करते हैं, वहाँ वृक्ष मूल उनके घर बन जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—ये —पौरवाः पूर्वं—यौवने, क्षितिरक्षार्थं—पृथिवीसंरक्षायै, रसाधिकेषु—महान् भोगेषु, भवनेषु—राजमन्दिरेषु, निवासं—आवासं, उशन्ति—कामयन्ते, तेषां—राज्ञां, भूपात्वानां, नियतैक०—निरन्तर तपस्विव्रतानुष्ठानयोग्यानि, तरुमूलानि—वृक्षमूलानि, गृहीभवन्ति—निवासाय गृहाणि कल्पन्ते।

नोट—रस्यन्ते इति रसाः तैः अधिकेषु—तृ० तत्पु०, क्षितेः रक्षणार्थं (ष० तत्पु०), गृहीभवन्ति—गृह+च्वि+भू+लट् प्र० पु० ब० व०, नियतम् एकं यतिव्रतं येषु—ब० व्री०, उशन्ति—वश-प्र० ब० व०, अलंकार—(१) तरुमूल पर गृह का आरोप प्रकृतोपयोगी होने से परिणाम अलंकार, (२) तरुमूल पर गृह का आरोप करने से 'रूपक' अलंकार, (३) औपच्छन्दसिक छन्द या मालाभारिणी वृत्त। यहाँ महाकवि कालिदास ने गृहस्थ और वानप्रस्थ दोनों आश्रमों में समन्वय दिखाया है। नियतैक०—to them the roots of trees serve as homes when the one vow of asceticism is rightly observed. —Kale.

(प्रकाशम्) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः।

हिन्दी—(प्रकट रूप से) यह स्थान मनुष्य की स्वाभाविक गति से नहीं प्राप्त हो सकता।

---

१. नियतैकपतिव्रतानि—[illegible] एक पतिव्रता स्त्री जिसके साथ है। — नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तापसी—यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरःसंबन्धेनास्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता। (जह भद्दमुहो भणादि। अच्छरासंबन्धेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे प्पसूदा।)

हिन्दी—तपस्विनी—जैसा भद्रमुख कह रहे हैं। अप्सरा (मेनका) के सम्बन्ध से इस बालक की माता ने यहीं देवगुरु के तपोवन में प्रसव किया है।

राजा—(अपवार्य) हन्त, द्वितीयमिदमाशाजननम्। (प्रकाशम्) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ?

हिन्दी—राजा—(पृथक् होकर) यह दूसरी आशाजनक बात है। (प्रकट) हाँ तो श्रीमती किस राजर्षि की पत्नी हैं ?

तापसी—कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति ? (को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीतिदुं चिन्तिस्सदि ?)

हिन्दी—तपस्विनी—धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले का नाम कौन लेगा ?

राजा—(स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवाऽनार्यः परदारव्यवहारः।

हिन्दी—राजा--(अपने मन में) यह कहानी तो मेरी ओर ही लक्षित कर रही है। तो क्या इस बालक से इसकी माता का नाम पूछूँ। अथवा दूसरे की पत्नी की चर्चा करना अनुचित है।

Verily, this story comes home to me. or talking about another's wife is ungentlemanly. —Kale.

(प्रविश्य मृणमयूरहस्ता)

(मिट्टी का मोर हाथ में लेकर प्रवेश करके)

तापसी—सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व। (सव्वदमण, सउन्दलावण्णं पेक्ख।)

हिन्दी—तपस्विनी—सर्वदमन, इस शकुन्त (पक्षी) का सौन्दर्य देखो।

बालः—(सदृष्टिक्षेपम्) कुत्र वा मम माता ? (कहिं वा मे अज्जू ?)

हिन्दी—बालक—कहाँ है मेरी माता ?

उभे—नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः। (णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो।)

हिन्दी—दोनों तापसियाँ—नाम के सादृश्य के कारण मातृप्रेमी वञ्चित हुआ है।

द्वितीया—वत्स, अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि। (वच्छ, इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं देक्ख[1] त्ति भणिदो सि।)

---

१. पेक्ख (देखो) —का०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—दूसरी तपस्विनी—इस मिट्टी के मोर की सुन्दरता को देखो, यह कहा है।

राजा—(आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते।

हिन्दी—राजा—क्या इसकी माता का नाम शकुन्तला है। किन्तु नामों में सादृश्य होते हैं। क्या यह सम्भव है कि मृगतृष्णा के समान मात्र नाम का आगमन मेरे लिए दु:खदायक हो जाय?

बालः—मातः, रोचते म एष भद्रमयूरः। (अज्जुए, रोअदि मे एसो भद्दमोरओ।) **(इति क्रीडनकमादत्ते।)**

हिन्दी—माता, यह सुन्दर मोर मुझे अच्छा लग रहा है। (यह कहकर खिलौना ले लेता है।)

प्रथमा—(विलोक्य। सोद्वेगम्) अहो, रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते। (अम्हहे, रक्खाकरंडअं से मणिबन्धे ण दीसदि।)

हिन्दी—पहली तपस्विनी—(बालक को देखकर घबड़ाहट के साथ) अहो, इसकी कलाई पर रक्षाकरण्डक नहीं दिखाई पड़ रहा है।

नोट—अज्जुए—माता के लिए प्राकृत् शब्द। प्रस्तुत सन्दर्भ में वाक्य के द्वयर्थ होने से पताका स्थानक (Dramatic Irony) है। द्वयर्थो वचन विन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः। प्रधानार्थान्तरापेक्षा पताकास्थानकम् परम्—सा० द०। रक्षाकरण्डम्—रक्षासूत्र या ताबीज, protecting amulet.—Kale.

राजा—अलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावकविमर्दात् परिभ्रष्टम्। (इत्यादातुमिच्छति।)

हिन्दी—राजा—आप न घबड़ायें। इस सिंह शिशु के साथ रगड़ खाने से इसका रक्षासूत्र गिर गया है। (यह कहकर राजा उसे उठाना चाहता है।

उभे—मा खल्वेतदवलम्ब्य—कथम्? गृहीतमनेन। (मा क्खु एदं अवलम्बिअ। कहं? गहीदं णेण।)

हिन्दी—दोनों तापसियाँ—इसे मत लें। क्या? इन्होंने तो ले लिया।

(इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः।)

(इस प्रकार वक्ष पर हाथ को रखकर दोनों एक दूसरे को देखती हैं।

राजा—किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः?

हिन्दी—राजा—आपने हमें किसलिए रोका है?

प्रथमा—शृणोतु महाराजः। एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति। (सुणादु महाराओ। एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एदं किल मादापिदरो अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेह्णादि।)

हिन्दी—पहली तपस्विनी—महाराज, सुनिए। इसकी अपराजिता नामक जड़ी इसके जातकर्म-संस्कार के समय भगवान् मरीचि ने दिया था। इसके माता-पिता और अपने अतिरिक्त दूसरा कोई भूमि पर गिरी हुई इसे ग्रहण नहीं करता।

नोट—जातकर्म—१६ संस्कारों में से एक है, जो चतुर्थ स्थानीय है। इसमें नवजात बालक की जिह्वा पर स्वर्ण-शलाका से 'ॐ' अंकित किया जाता है—मनुस्मृति।

राजा—अथ गृह्णाति?

हिन्दी—राजा—यदि अन्य व्यक्ति इसे ग्रहण करे तो?

प्रथमा—ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति। (तदो तं सप्पो भविअ दसइ।)

हिन्दी—पहली तपस्विनी—तब यह जड़ी सर्प होकर उसे काट लेती है।

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया?

हिन्दी—राजा—आप दोनों ने इसकी प्रतिक्रिया कभी स्वयं देखी?

उभे—अनेकशः। (अणेअसो।)

हिन्दी—दोनों तपस्विनीयाँ—कई बार।

राजा—(सहर्षम्। आत्मगतम्) कथमिव सम्पूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि? (इति बालं परिष्वजते।)

हिन्दी—राजा—(प्रसन्नता के साथ) यदि ऐसा है तो मैं पूर्ण हुए अपने मनोरथ का अभिनन्दन क्यों न करूँ। (ऐसा कहकर दुष्यन्त बालक को गले लगाता है।)

द्वितीया—सुव्रते, एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः। (सुव्वदे, एहि। इमं वुत्तन्तं णिअमव्वावुडाए सउन्दलाए णिवेदेम्ह।

हिन्दी—दूसरी तपस्विनी—आओ, इस समाचार को नियम में आसक्त शकुन्तला को बता दें।

(इति निष्क्रान्ते।)

(यह कहकर दोनों तपस्विनियाँ बाहर चली जाती हैं।)

बालः—मुञ्च माम्। यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि। (मुंच मं। जाव अज्जुए सआसं गमिस्सं।)

हिन्दी—बालक (दुष्यन्त से)—आप मुझे छोड़िए। मैं अपनी माता के पास जाऊँगा।

राजा—पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि।

हिन्दी—राजा—पुत्र, मेरे साथ ही माता का अभिनन्दन करना।

बालः—मम खलु तातो दुष्यन्तः। न त्वम्। (मम क्खु तादो दुस्सन्दो। ण तुमं।)

हिन्दी—बालक—मेरे पिता तो दुष्यन्त हैं, आप नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(सस्मितम्) एष[1] विवाद एव प्रत्याययति

हिन्दी—राजा—(मुस्कराकर) यह विवाद ही मुझे विश्वास दिला रहा है।

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला)

(तब एक चोटी धारण किये शकुन्तला प्रवेश करती है।)

शकुन्तला—विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न मे आशाऽऽसीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्याऽऽख्यातं तथा संभाव्यत एतत्। (विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसि अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं।)

हिन्दी—शकुन्तला—विकारकाल में भी सर्वदमन की औषधि की स्वाभाविक दशा को सुनकर भी मुझे अपने भाग्य पर आशा न थी. लेकिन जैसा कि सानुमती ने कहा है—यदि यह सत्य है तो यह भी सम्भव है।

राजा—(शकुन्तलां विलोक्य) अये, सेयमत्रभवती शकुन्तला। यैषा—

वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला
मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥ २१ ॥

अन्वय—परिधूसरे वसने वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः शुद्धशीला अतिनिष्करुणस्य मम दीर्घ विरहव्रतं बिभर्ति।

हिन्दी—राजा—(शकुन्तला को देखकर) अरे यही वह शकुन्तला है।

जो दो मलिन वस्त्रों को धारण करती हुई, व्रत-पालन से दुर्बल मुख वाली, एक वेणी (चोटी) धारण करने वाली, पवित्र आचरण वाली (शकुन्तला) अतिशय कठोर मेरे लिए दीर्घ कालिक विरह व्रत को धारण कर रही है।

संस्कृत व्याख्या—परिधूसरे—अति मलिने, वसने—वस्त्रयुगलं, वसाना—धारयन्ती, नियम०—उपवासादि व्रत पालनेन क्षामं दुर्बलं मुखं यस्याः सा, धृतैक०—एकवेणि धारिणी, शुद्धशीला—पावनाचारा, अतिनिष्करुणस्य—अतिनिष्ठुरस्य, मम—दुष्यन्तस्य, दीर्घ—बहुकालीनं, विरहव्रतं—वियोग नियमं, बिभर्ति—पालयति। अत्र काव्यलिङ्ग, स्वभावोक्तिश्चालंकारौ। मालभारिणी वृत्तम्।

नोट—इसमें हिन्दू परिवार की एक आदर्श विरहिणी का सचित्र अंकन है। वॅस+शानच्+टाप्, नियमेन क्षामं मुखं यस्याः सा—ब० व्री०, धृता एक वेणी यया सा—ब० व्री०, शुद्धं शीलं यस्याः न० व्री०, पति के विदेश जाने पर स्त्री आभूषण त्यागकर देवों के पूजन में मन लगाये—मण्डनं वर्जयेत नारी तथा प्रोषित भर्तृका, देवताराधनपरा तिष्ठेत् भार्तुहितेरता।—विष्णु धर्म्मो० पुरा०, न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न वेणीं च प्रमोचयेत्—हारीत स्मृ०, एकवेणी धरा के दो अर्थ हैं (१) बालों की गुँथी एक चोटी या (२) एक ही बार बँधी हुई चोटी। एकवेणी धरतीति विग्रह करने पर 'कर्मण्यण से' एकवेणी धारी होगा, एका वेणी तस्याः धरा—ष० तत्पु०। अलंकार—(१) दुर्बलता का हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलंकार,

१. एवम (इस प्रकार) —की०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) यहाँ वियोग दशा में शकुन्तला का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार। छन्द—मालभारिणी। जिसके १, ३ चरणों में ११-११ वर्ण हों तथा सगण, जगण, दो गुरु एवं, २, ४ चरणों में १२ वर्ण हों तथा सगण, भगण, रगण, यगण होता है। इसे औपच्छंदसिक छन्द भी कहते हैं। इसमें नायक गत विप्रलंभ तथा निर्वेद (ग्लानि) भाव व्यंजित हो रहा है।

परिधूसरे—A pair of dusky garments, वसाना—Wearing, क्षाममुखी—face emaciated, धृतैकवेणीः—her hair tied up one for all, विरह व्रतं विभर्ति—she is practising long vow of separation. —Kale.

शकुन्तला—(पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा) न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति? (ण क्खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामंगलं दारिअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि?)

हिन्दी—शकुन्तला—(पश्चात्ताप के कारण मलिन आकृति वाले राजा दुष्यन्त को देखकर) रक्षासूत्र (ताबीज) पहनाये गये मेरे पुत्र को इस समय कौन अपने शरीर स्पर्श से दूषित कर रहा है।

बालः—(मातरमुपेत्य) मातः, एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति। (अज्जुए, एसो को वि पुरिसो मं पुत्त त्ति आलिंगदि।)

हिन्दी—बालक—(अपनी माता के पास जाकर) माँ, कोई यह पुत्र कहकर मुझे पुत्र के समान आलिंगन कर रहा है।

राजा—प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तम्, यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि।

हिन्दी—राजा—प्रिये, तुम्हारे प्रति की गई क्रूरता भी अनुकूल परिणाम वाली हो गई है, क्योंकि अपने आपको तुम्हारे द्वारा पहचाना गया देख रहा हूँ।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) हृदय, समाश्वसिहि[1] समाश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितास्मि दैवेन। आर्यपुत्रः खल्वेषः। (हिअअ, समस्सस समस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअप्पिअ म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो क्खु एसो।)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) हृदय धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो। ये वस्तुतः आर्य पुत्र ही हैं।

नोट—कृतरक्षा—यहाँ 'आनन्द' नामक निर्वहण सन्धि का अङ्ग है—इच्छित पदार्थ की प्राप्ति ही आनन्द है—'आनन्दो वाञ्छितागमः'—सा० द०।

राजा—प्रिये,

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम् ॥ २२ ॥

---

१. आश्वसिहि (धैर्य धर) —नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—हे सुमुखि, दिष्ट्या स्मृतिभिन्नमोहतमसः मे प्रमुखे स्थिता असि। उपरागान्ते रोहिणी शशिनः योगं समुपगता।

हिन्दी—राजा—हे सुमुखि, सौभाग्य से स्मरण हो जाने से मेरा अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो गया है और तुम मेरे समक्ष वैसे ही उपस्थित हो गई, जैसे ग्रहण के पश्चात् रोहिणी (चन्द्र पत्नी) चन्द्रमा से मिल जाती है।

संस्कृत व्याख्या—हे सुमुखि—हे सुवदने, दिष्ट्या—सौभाग्येन, स्मृति०—स्मरण नष्ट मोहान्धकारस्य, मे—मम, प्रमुखे—समक्षे, स्थिता असि—उपस्थिता असि, उपरागान्ते—ग्रहणान्ते, रोहिणी यथा—शशिनः-चन्द्रस्य, योगं—संयोगं प्राप्नोति। अत्र अनुप्रासः निदर्शना, दृष्टान्तश्चालंकाराः। आर्या छन्दः।

नोट—यहाँ रोहिणी चन्द्रमा में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार। डा० राघवन यहाँ निदर्शना तथा प्रो० रे पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों को दो वाक्य मानने से प्रतिवस्तूपमा अलंकार मानते हैं। यहाँ 'कृति' नामक निर्वहण सन्धि का अंग है—'लब्धार्थ शमनं कृतिः' आर्या छन्द। रोहिणी दक्ष प्रजापति की कन्या तथा चन्द्रमा की प्रियतमा है, ग्रहण काल में पति से वियुक्त होकर मुक्त होने पर पुनः चन्द्रमा से संयुक्त होती है।

शकुन्तला—जयतु जयत्वार्यपुत्रः। (जेदु जेदु अज्जउत्तो।)

हिन्दी—शकुन्तला— आर्यपुत्र की जय हो, जय हो।

(इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति।)

(इस प्रकार आधा कहकर आँसू से गलाभर कर रुक जाती है।)

राजा—सुन्दरि,

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया ।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम् ॥ २३ ॥

अन्वय—जयशब्दे वाष्पेण प्रतिषिद्धे अपि मया जितम्। यत् असंस्कारपाटलोष्ठपुटं ते मुखं दृष्टम्।

हिन्दी—राजा—हे सुन्दरि, जय शब्द को आँसुओं से रोक लिये जाने पर भी मेरी जय हो गई है, क्योंकि उन्होंने सजावट न होने के कारण गुलाबी रंग वाले तुम्हारे मुख को देख लिया है।

संस्कृत व्याख्या—जयशब्दे—जयतु इति शब्दे, वाष्पेण—अश्रु प्रवाहेण, प्रतिषिद्धेऽपि—निषिद्धेऽपि, मया—दुष्यन्तेन, जितं—जयलाभः प्राप्तः, यत्—यतोहि, असंस्कार०—संस्काराभावेन पाटलोष्ठपुत्रं, यस्य ते—शकुन्तलायाः, मुखं—वदनं, दृष्टम्—अवलोकितम्।

नोट—(१) जय शब्द रोके जाने पर भी जय शब्द होने से विरोधाभास अलंकार, (२) 'जितम्' के प्रति उत्तरार्द्ध कारण है अतः काव्यलिङ्ग अलंकार, (३) छन्द—अनुष्टुप्।

बालः—मातः, क एषः? (अज्जुए, को एसो?)

हिन्दी—बालक—माँ, यह कौन है?

शकुन्तला—वत्स, ते भागधेयानि पृच्छ। (वच्छ, दे भाअहेआइं पुच्छेहि।)

हिन्दी—शकुन्तला—बेटा, अपने भाग्य से पूछ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजा—(शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य।)

हिन्दी—राजा—(शकुन्तला के पैरों पर गिरकर)

सुतनु हृदयात प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्राया: शुभेषु हि वृत्तय:[१]
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ २४॥

अन्वय—हे सुतनु, ते हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकम् अपैतु। तदा मे किमपि बलवान् मनसः संमोहः अभूत्। हि शुभेषु प्रबलतमसां वृत्तयः एवंप्रायाः। अन्धः शिरसि क्षिप्तां स्रजम् अपि अहिशङ्कया धुनोति।

हिन्दी—हे सुन्दरी, तुम्हारे हृदय से मेरे परित्याग का दुःख दूर हो जाय। उस समय मेरे चित्त में कोई महान् मोह पैदा हो गया था, क्योंकि शुभ वस्तुओं के विषय में प्रबल तमोगुण वालों की ऐसी ही प्रवृत्तियाँ हो जाती हैं, जैसे अन्धा व्यक्ति शिर पर पड़ी माला को भी सर्प की आशङ्का से फेंक देता है।

संस्कृत व्याख्या—हे सुतनु—हे सुकृशाङ्गी, ते—तव, हृदयात्—चेतसः, प्रत्यालीक०—निराकरण दुःखमपैतु, तदा—तस्मिन् काले वियोगे, मे—मम, किमपि—किञ्चित्, बलवान्—प्रबलः, मनसः संमोहः—चित्ते अज्ञानं, अभूत—संजातम्, हि—यतो हि, शुभेषु—स्वशुभ स्थानेषु, प्रबलमनसां—घोरतमसाम्, वृत्तयः—व्यापाराः, एवंप्रायाः—एवं भवन्ति, यथा कोऽपिअक्ष्णा काणः, शिरसि—भालपट्टे, क्षिप्तां—निहितां, स्रजं—माल्यमपि, अहिशङ्कया—सर्पभ्रमेण, धुनोति—दूरं क्षिपति, त्यजति वा। अत्र भ्रान्तिमान्, काव्यलिङ्ग, अर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः। हरिणी वृत्तम्।

नोट—शोभना तनुः यस्याः—ब० व्री०, प्रत्यादेशस्य व्यलीकः (ष० तत्पु०) प्रबलः तमः येषां ब० व्री०, प्रति+आ+दिश्+घञ्, अहेः शङ्कया—ष० तत्पु० (१) प्रथम चरण के प्रति द्वितीय चरण कारण होने से काव्यलिङ्ग अलंकार, (२) उपमान उपमेय का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार, (३) राजा के पैरों पर गिरने से 'अनुनय' नामक नाट्यालंकार है। (४) अहिशङ्कया में भ्रान्तिमान् अलंकार है। (५) तीसरे चरण में सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, (६) हरिणी छन्द। सा० द० के अनुसार अनुनय है, 'वाक्यैः स्निग्धैरनुनयो भवेदर्यस्य साधनम्। हरिणी छन्द। प्रसाद गुण वैदर्भी रीति।

शकुन्तला—उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामा[२]भिमुखमासीद् येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः। (उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मे सुअरिअप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणामाहिमुहं आसि जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ विरसो संवुत्तो।)

हिन्दी—शकुन्तला—आर्यपुत्र उठिये, उन दिनों, मेरे पूर्व जन्म का कोई पाप प्रकट हो गया था, जिससे वे दिन वैसे हो गये थे कि आप जैसे सहृदय भी मेरे प्रति निष्ठुर हो गये थे।

१. प्रवृत्तयः (प्रवृत्तियाँ) —का०
२. परिणामसुख (परिणाम की ओर उन्मुख) —नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति।)
(राजा उठता है)

शकुन्तला—अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभाग्ययं जनः?
(अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो?)

हिन्दी—राजा—आर्यपुत्र ने इस दुःखभागिनी को कैसे याद किया?

राजा—उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि।

हिन्दी—राजा—विषाद रूपी बाण निकल जाने पर सब कुछ बताऊँगा।

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं[1] परिबाधमानः।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य
बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम् ॥ २५ ॥

अन्वय—हे सुतनु, यः बाष्पबिन्दुः ते अधरं परिबाधमानः मया मोहात् पूर्वम् उपेक्षितः, आकुटिलपक्ष्मविलग्नं तं बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयः भवेयं तावत्।

हिन्दी—हे सुन्दरी, जो आँसू की बूँदे तुम्हारे अधर को पहले पीड़ित कर रही थीं, अज्ञान वश मेरे द्वारा पहले उनकी उपेक्षा की गई थी। टेढ़ी पलकों में लगी उन आँसुओं की बूँदों को पोंछ कर अब मैं अनुताप रहित हो जाऊँगा।

संस्कृत व्याख्या—हे सुतनु—हे सुन्दरि, यः बाष्पबिन्दुः—नेत्रजलबिन्दुः, ते—तव, अधरम्—अधरोष्ठम्, परिबाध०—परितः पीडयन्, मया—दुष्यन्तेण, मोहात्—अज्ञानात्, उपेक्षितः—न चिन्तितः, आकुटिलेषु०—ईषद्वक्रेषु नेत्रलोमसंसक्त, तं बाष्पम्—नेत्रजलम्, प्रमृज्य—अपनीय, विगतानुशयः—अनुताप रहितो, भवेयम्—भवितुम् इच्छामि। अत्र काव्यलिङ्ग, अनुप्रासः अलंकारौ। छन्दश्च वसन्तलिका।

नोट—यहाँ शकुन्तला के अधरोष्ठ की सुकुमारता एवं सौन्दर्यातिशय व्यंजित है। (१) आँसुओं के मार्जन का कारण रहने पर भी मार्जन कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार, (२) काव्यलिङ्ग अलंकार, (३) वसन्ततिलका छन्द, (४) निर्वहण सन्धि का विबोध नामक अंग है, (५) पूर्वजन्म के पाप कर्म ही रोग, दुर्गति एवं अभीष्ट की हानि रूप में परिणत होते हैं—मत्स्य पुराण। 'पुराकृतानि पापानि फलन्त्यस्मिन्तपयोधन। रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च॥' (६) पूर्व की तीन पंक्तियों में शकुन्तला की कारुण्य दशा चित्रित है।

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति।)
(यह कहकर आँसू पोंछता है)

शकुन्तला—(नाममुद्रां दृष्ट्वा) आर्यपुत्र, इदं तदङ्गुलीयकम्[2]।
(अज्जउत्त, एदं तं अंगुलीअअं।)

हिन्दी—शकुन्तला—(नामांकित अँगूठी देखकर) आर्यपुत्र, यह वही अँगूठी है।

राजा—अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात् खलु स्मृतिरुपलब्धा।

हिन्दी—राजा—इस अँगूठी के प्राप्त होने से ही मुझे (तुम्हारी) याद आई है।

१. बद्ध बिन्दु (बूँद के रूप में लग्न) —का०।
CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection
२. ते (तुम्हारी) —नि० सा०

शकुन्तला—विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत्। (विसमं किदं णेण जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि।)

हिन्दी—शकुन्तला—इसने बुरा किया जो आर्यपुत्र को विश्वास दिलाने के समय दुर्लभ हो गई थी।

राजा—तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम्।

हिन्दी—राजा—तो इस ऋतु (दुष्यन्त) से मिलने के चिह्न स्वरूप इस पुष्प (अँगूठी) को लता (शकुन्तला) धारण करे।

शकुन्तला—नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्र एवैतद् धारयतु। (ण से विस्ससामि। अज्जउत्तो एव्व णं धारेदु।)

हिन्दी—शकुन्तला—मैं इसका विश्वास नहीं करती। आर्यपुत्र ही इसे धारण करे (पहनें)।

(ततः प्रविशति मातलिः[१]।)

(तब मातलि प्रवेश करता है।)

मातलिः—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते।

हिन्दी—मातलि—सौभाग्य से धर्मपत्नी से मिलने और पुत्र का मुख देखने से आपका अभ्युदय हो रहा है।

राजा—अभूत् सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्?

हिन्दी—राजा—मेरे मनोरथ ने स्वादिष्ट फल प्राप्त किया। मातलि यह वृत्तान्त इन्द्र को तो ज्ञात न होगा।

नोट—आखण्डयति शत्रून् पर्वतान् वा इति आखण्डलः—यहाँ राजा के कथन में 'भाषण' नामक निर्वहण सन्धि का अङ्ग है—सामदानादि भाषणम्—सा० द०।

मातलिः—(सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम्? एत्वायुष्मान्। भगवान् मारीचस्ते दर्शनं वितरति।

हिन्दी—मातलि—(मुस्कराकर) ऐश्वर्य शालियों से क्या तथ्य छिपा है? श्रीमन् आइये। भगवान् मारीच आपको देखना चाहते हैं।

राजा—शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि।

हिन्दी—राजा—शकुन्तला, तुम पुत्र को सम्हालो। तुमको आगे करके भगवान् (मारीच) का दर्शन करना चाहता हूँ।

---

१. मातलि (इन्द्र का सारथि)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला—जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्। (हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गन्तुं)

हिन्दी—शकुन्तला—आर्यपुत्र के साथ गुरु के निकट जाने में लज्जित हो रही हूँ।

राजा—अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषु। एह्येहि।

हिन्दी—राजा—अभ्युदय के समय ऐसा ही करना चाहिए। आओ, आओ।

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

(सभी घूमते हैं)

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः।)

(तब अदिति के साथ सिंहासन पर बैठे मारीच प्रवेश करते हैं।)

मारीचः—(राजानमवलोक्य) दाक्षायणि,

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी
दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता ।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः ॥ २६ ॥

अन्वय—अयं दुष्यन्त इति अभिहितः भुवनस्य भर्ता, ते पुत्रस्य रणशिरसि अग्रयायी। यस्य चापेन विनिवर्तितकर्म कोटिमत् तत् कुलिशं मघोनः आभरणं जातम्।

हिन्दी—मारीच—यह 'दुष्यन्त' इस नाम से कहा गया पृथ्वी का स्वामी है, तुम्हारे पुत्र इन्द्र के युद्ध में आगे चलने वाला है जिसके धनुष द्वारा सम्पन्न हुए कार्य वाला तथा तीक्ष्ण धार से युक्त यह वज्र इन्द्र का आभूषण मात्र हो गया है।

संस्कृत व्याख्या—अयं—पुरतः दृष्टिगोचरो जनः दुष्यन्त इति नाम्ना, अभिहितः—संसारे विदितः, भुवनस्य—लोकस्य, भर्ता—रक्षकः, ते—तव, पुत्रस्य—इन्द्रस्य, रणशिरसि—समरमूर्धनि, अग्रयायी—पुरोगामी वर्तते, यस्य—दुष्यन्तस्य, चापेन—धनुर्दण्डेन, विनिवर्ति०—सम्पन्नं कर्म दानवहननरूपं कर्म यस्य यत्, कोटिमत्—शताग्रम्, तत्—सुप्रसिद्धम्, कुलिशं—वज्रं, मघोनः—इन्द्रस्य, आभरणम्—आभूषणमात्रम्, जातम्—सम्पन्नम्। उदात्तं काव्यलिङ्ग चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

नोट—दाक्षायणी—दक्ष की पत्नी, दक्ष+आयनि+डीप्, अदिति—मारीच की पत्नी, और इन्द्रादि देवों की माता, विनिवर्तितम् कर्म यस्य—ब० व्री०, कुलिश—कौ पृथिव्यां लीयते इति कुलिः—शरीरं स्थावरं जङ्गामं, कुलौ[1] शेते इति कुलिशः[2]—कुलि+शी+ड (अ) (२) कुलिनः पर्वतान् श्यति इति कुलिशः (कुलि+शो+क) कुलिहस्तः—त्रिकाण्ड शेषः (१) यहाँ लोकातिशय वीर्य सम्पत का वर्णन होने से उदात्त अलंकार, (२)आभरण के प्रति विनिवर्तित कर्म हेतु है, अतः काव्यलिङ्ग अलंकार, (३) धनुष के द्वारा वज्र का कार्य सम्पादित होता है, जिससे शत्रु वध रूप कारण ज्ञात होता है, अतः पर्यायोक्त अलंकार, (४) वीर रस, (५) वसन्ततिलका छन्द, (६) धनुष पर वज्र का आरोप होने से रूपक अलंकार (६) यहाँ प्रहर्ष नामक नाट्यालंकार है। अग्रयायी—that steps foremost in your son's battles, अभिहितः—called, विनिवर्तित०—by whose bow its office have been performed, कोटिमन्—sharp edged thunderbolt of Indra has become a mere ornament to him (Indra)—Kale.

१. कुलौ—(हाथ में धारण करने वाला) २. पर्वतों को तोड़ने वाला अर्थात् वज्र

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अदितिः—संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः। (संभावणीआणुभावा से आकिदी।)

हिन्दी—अदिति—इसकी आकृति से इसका प्रभाव अनुमित किया जा सकता है।

मातलिः—आयुष्मन्, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः। तावुपसर्प।

हिन्दी—मातलि—आयुष्मन्, ये देवताओं के माता-पिता पुत्र-प्रेम सूचक दृष्टि से आपको देख रहे हैं, अतः उनके पास चलिए।

राजा—मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।
यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम्॥ २७॥

अन्वय—मुनयः यत् द्वादशधा स्थितस्य तेजसः कारणं प्राहुः, यत् भुवनत्रयस्य भर्तारं यज्ञभागेश्वरं सुषुवे, यस्मिन् आत्मभवः परः पुरुषः अपि भवाय आस्पदं चक्रे, दक्षमरीचिसंभवं स्रष्टुः एकान्तरं तत् इदं द्वन्द्वम्।

हिन्दी—राजा—मातलि, मुनि लोग, जिसको १२ रूपों में स्थित तेज (सूर्य) का कारण (पिता) कहते हैं, जिसने तीनों लोकों के पालक तथा देवताओं के स्वामी (इन्द्र) को उत्पन्न किया था, तथा जिसमें स्वयम्भू विष्णु ने भी वामन रूप से जन्म लेने के लिए आश्रय लिया था, दक्ष और मरीचि से उत्पन्न तथा ब्रह्मा से एक (पुरुष) का व्यवधान वाला क्या वही युगल (जोड़ा) है।

संस्कृत व्याख्या—मुनयः—ऋषयः, यत्—युगलं, द्वादशधा—द्वादशरूपेण, स्थितस्य—विद्यमानस्य, तेजसः—तेजोमयदिवाकरस्य, कारणम्—उत्पत्तिस्थानं, प्राहुः—कथयन्ति, यत्—द्वन्द्वं, भुवनत्रयस्य—भूर्भुवःस्वः इति त्रिलोकस्य, भर्तारं—पालकं, रक्षकं, यज्ञभागे०—यज्ञभागाः देवाः तेषाम्, ईश्वरं—स्वामिनं, सुषुवे—जनयामास, यस्मिन्—द्वन्द्वे, आत्मभवः—स्वयंभूः, परः पुरुषोऽपि—विष्णुरपि, भवाय—वामनरूपेण जन्मने, आस्पदं—स्थानम्, चक्रे—चकार, दक्षमरीचि०—दक्षमरीचिश्च संभव उत्पत्तिस्थानं यस्य तत्, स्रष्टुः—ब्रह्मणः, एकान्तरं—एकमात्रं व्यवधानं यस्य तत्, द्वन्द्वं—युगलं वर्तते। उदात्तं विरोधाभासश्चालंकारौ। वृत्तञ्च शार्दूलविक्रीडितम्।

नोट—द्वादशधा—भारतीय परम्परा में १२ मासों के पृथक् रूप से १२ सूर्य माने जाते हैं, जिनके नाम—अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा विवस्वान्, सविता, मित्रावरुण, अंशुमान, अदितिजा, विष्णु, शक्र, भगवान् (१२)—दे० विष्णुपुराण एवं महाभारत, सूर्य की १२ कलाएँ मानी जाती हैं उसके आधार पर भी उसे द्वादशधा कहते हैं, इन कलाओं के नाम हैं—तपिनी, तापिनी, धुमा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचिः, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा। भुवनत्रयस्य भूः भुवः स्वः—ये ३ ऊपर के लोक हैं,—आत्मभवः—विष्णु स्वयं भू एवं परम पुरुष है, इन्होंने कश्यप और अदिति से ही वामन अवतार ग्रहण किया था। पुरुषः—पुरिशेते इति पुरुषः अर्थात् जो शरीर रूपी नगर में रहें, ऐसा चेतन जीवात्मा अथवा पूरयति विश्वं तस्मिन् शेते अर्थात् जो संसार में व्याप्त हो, सर्वमपि इदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव—गीता, एकान्तरम्—ब्रह्मा और विष्णु के बीच केवल एक का ही व्यवधान है, अर्थात् दक्ष

(मारीच—अदिति = संसार के पिता-माता हैं।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और मरीचि का। द्वन्द्वम—द्वौ द्वौ इति द्वन्द्वम 'द्वन्द्वमं रहस्य' से द्वन्द्व शब्द निपातन से सिद्ध है। अलंकार—(१) यहाँ महापुरुष (मरीच) के चरित का वर्णन करने के कारण उदात्त अलंकार, (२) 'आत्मभव: भवाय' में विरोधाभास अलंकार है अर्थात् जो स्वयं उत्पन्न हैं, उसका जन्म कैसे होगा। छन्द—शार्दूलविक्रीडित। द्वादशधा—the source of that fiery energy which exists in twelve forms, सुषुवे—brought forth, यज्ञभागे०—who partake of the offerings at a sacrifice. परम पुरुष: चक्रे—supreme being chose as the place of his birth.

मातलिः—अथ किम् ?

हिन्दी—मातलि—और क्या ?

राजा—(उपगम्य) उभाभ्यामपि वासवनियोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति।

हिन्दी—राजा—(मारीच और अदिति के समीप जाकर) आप दोनों को इन्द्र का सेवक प्रणाम कर रहा है।

मारीचः—वत्स, चिरं जीव। पृथिवीं पालय।

हिन्दी—मारीच—बेटा, चिरंजीवी हो, पृथ्वी की रक्षा करो।

अदितिः—वत्स, अप्रतिरथो भव। (वच्छ अप्पडिरहो होहि।)

हिन्दी—अदिति—पुत्र तुम अद्वितीय योद्धा बनो।

शकुन्तला—दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि। (दारअसहिदा वो पादवन्दणं करेमि।)

हिन्दी—शकुन्तला—पुत्र के साथ मैं आप दोनों (मारीच एवं अदिति) के चरणों की वन्दना करती हूँ।

मारीचः—वत्से,

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥ २८॥

अन्वय—भर्ता आखण्डलसम:, सुत: जयन्तप्रतिम:, पौलोमीसदृशी भव, अन्या आशी: ते योग्या न।

हिन्दी—मारीच—पुत्री, तुम्हारा पति इन्द्र के तुल्य है, तुम्हारा पुत्र जयन्त के सदृश है, अत: तुम इन्द्राणी के सदृश बनो, अन्य आशीर्वाद तुम्हारे योग्य नहीं है।

संस्कृत व्याख्या—भर्ता—तव पति: दुष्यन्त:, आखण्डलसम:—इन्द्रतुल्य:, सुत:—तव पुत्र: सर्वदमन:, जयन्तप्रतिम:—जयन्तेन समोऽस्ति, पौलोमी०—त्वम् इन्द्राण्या सदृशी, समाना भव, अन्या आशी:—अन्य: आशीर्वाद:, ते—तव, योग्या—अनुरूप:, न—नास्ति। श्लोको वृत्तम्।

नोट—यहाँ दुष्यन्त की इन्द्र से, पुत्र की जयन्त से, शकुन्तला की इन्द्राणी से तुलना के कारण उपमालंकार, छन्द—अनुष्टुप्।

अदितिः—जाते, भर्तुर्बहुमता[1] भव। अयं च दीर्घायुर्वत्सक उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत। (जादे, भत्तुणो बहुमदा होहि। अअं

१. अभिमता (प्रिय बनो)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

च दीहाऊ वच्छओ उहअकुलणन्दणो होदु। उवविसह।) (सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति)

हिन्दी—अदिति—पुत्री, तुम अपने पति को अत्यन्त प्यारी बनो और यह चिरंजीवी बालक दोनों कुलों को आनन्दित करने वाला होवे। तुम सब लोग बैठो। (सभी लोग प्रजापति के चारों तरफ बैठते हैं।)

मारीचः—(एकैकं निर्दिशन्)

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्॥२९॥

अन्वय—साध्वी शकुन्तला, इदं सद् अपत्यम्, भवान्। दिष्ट्या श्रद्धा वित्तं विधिः च इति तत् त्रितयं समागतम्।

हिन्दी—मारीच—यह साध्वी शकुन्तला है, यह आपका (दुष्यन्त का) पुत्र सर्वदमन् सद्गुणों से युक्त है, ये आप हैं—श्रद्धा, धन और विधि तीनों यहाँ समवेत हो गये हैं।

संस्कृत व्याख्या—इयं शकुन्तला साध्वी—पतिव्रता, इदं सदपत्यं—भवतः पुत्र सद्गुणोत्पन्नः, भवान्—दुष्यन्तः, दिष्ट्या—सौभाग्येन, श्रद्धा—भक्ति, वित्तं—धनं, विधिश्च—शास्त्रानुसारेण, कर्मानुष्ठानम् इति त्रितयं समागतम्—सम्मिलितम्। निदर्शना यथासंख्य चालंकारौ, श्लोकश्च वृत्तम्।

नोट—यहाँ शकुन्तला श्रद्धा के समान, पुत्र धन के समान तथा दुष्यन्त विधि के समान है। वस्तुतः इस जगत् में श्रद्धा, धन तथा विधि से ही कोई कार्य सम्पन्न होता है। अलंकार—(१) श्रद्धा आदि के साथ दुष्यन्त का सादृश्य होने के कारण निदर्शनालंकार, (२) शकुन्तला का श्रद्धा, पुत्र का धन एवं दुष्यन्त का विधि से क्रमशः अन्वय होने से यथासंख्य अलंकार, (३) अनुष्टुप् छन्द।

राजा—भगवन्, प्रागभिप्रेतसिद्धिः। पश्चात् दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। कुतः—

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं
घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रम-
स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥३०॥

अन्वय—पूर्वं कुसुमम् उदेति ततः फलम्। प्राक् घनोदयः तदनन्तरं पयः। निमित्तनैमित्तिकयोः अयं क्रमः। तव प्रसादस्य तु पुरः सम्पदः।

हिन्दी—राजा—भगवन् पहले मेरा मनोरथ सफल हुआ, बाद में आपका दर्शन हुआ। अतः निश्चित ही आपकी कृपा अद्भुत है।

नोट—Indeed your favour is marvellous. —Kale.

हिन्दी—सर्वप्रथम फूल उत्पन्न होता है फिर फल लगता है। पहले मेघ आता है, तदनन्तर जल बरसता है। संसार में कारण-कार्य का यही क्रम है, परन्तु आप (मारीच ऋषि) की कृपा के आगे सम्पत्ति चलती है।

संस्कृत व्याख्या—दुष्यन्तः मारीचं कथयति—पूर्व प्रथमं, कुसुमं—पुष्पं, उदेति—उद्गच्छति, ततः—तदनन्तरं, तत्पश्चात्, फलं उत्पद्यते, प्राक्—पूर्वम्, घनोदयः मेघानाम् आगमो, ततः पयः—जलं वर्षति, निमित्तनैमित्तिकयोः—कारणकार्ययोः अयम्—एषः, तु—परन्तु, तव—ते, प्रसादस्य—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुग्रहस्य, पूर्वः—पूर्वमेव, सम्पदः—सम्पत्तयः भवन्ति। अत्र काव्यलिङ्ग, अतिशयोक्तिः, अप्रस्तुतप्रशंसा चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

नोट—(१) यहाँ पूर्व वाक्य तृतीय चरण के प्रति हेतु है, अतः काव्यलिङ्ग, (२) यहाँ कारण कार्य भाव के विपर्यय के कारण अतिशयोक्ति अलंकार, (३) शकुन्तला तथा पुत्र का कथन न करके सम्पत्ति का वर्णन किया गया है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार। (४) यहाँ 'समय' नामक निर्वहण सन्धि का अंग है, दुःख व्यतीत होने को समय कहते हैं।

मातलिः—एवं विधातारः प्रसीदन्ति।

हिन्दी—मातलि—भाग्य विधाता लोग इसी तरह कृपा करते हैं।

राजा—भगवन् इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति।

यथा गजो नेति समक्षरूपे
तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात् ।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीति-
स्तथाविधो मे मनसो विकारः ॥ ३१ ॥

अन्वय—यथा समक्षरूपे गजः न इति, तस्मिन् अपक्रामति संशयः स्यात्, पदानि दृष्ट्वा तु प्रतीतिः भवेत्, तथाविधः मे मनसः विकारः।

हिन्दी—राजा—भगवन्, आपकी आज्ञाकारिणी (इस शकुन्तला) से मैंने गान्धर्व रीति से विवाह किया था। कुछ समय बाद जब इसके बान्धव इसे मेरे पास लाये, तो स्मरण-शक्ति की दुर्बलता के कारण मैं इसका परित्याग करके आपके वंशज पूजनीय कण्व का अपराधी हूँ। बाद में अँगूठी मिलने से मुझे यह ज्ञात हुआ कि मैंने उनकी पुत्री (शकुन्तला) के साथ विवाह किया था। यह सब मुझे अद्भुत सा लगता है।

जिस तरह हाथी के प्रत्यक्ष होने पर यह हाथी नहीं है, ऐसा (प्रत्यक्ष) हो। परन्तु उसके चले जाने पर उसके विषय में सन्देह हो। बाद में उसके पद-चिह्नों को देखकर विश्वास हो जाय कि (यह हाथी है) उसी प्रकार मेरे मन में विकार हो गया था।

संस्कृत व्याख्या—यथा—येन प्रकारेण, समक्ष०—प्रत्यक्षरूपे, विषये अयं, गजः—हस्ती नास्ति, तस्मिन्—गजे, अपक्रा०—दूरं गते सति, गजविषये संशयः—सन्देहः जायते, तस्य गजस्य चरण चिह्नानि, दृष्ट्वा—अवलोक्य, तथाविधः—तादृश प्रतीतिः—विश्वासः, भवति—यत् अत्र पूर्वं कोऽपि गजः आसीत्, एतादृशः—मनसः, चेतसः, विकारः, विभ्रमः—मे अभूत्। अत्र निदर्शनालंकारः उपजातिर्वृत्तम्।

नोट—यथागजो नेति—विषय के प्रत्यक्ष होने पर उसके विषय में संशय उत्पन्न होता है कि यह हाथी है अथवा नहीं अर्थात् शकुन्तला सामने थी, फिर भी राजा दुष्यन्त उसे पहचान न सका। दूसरे हाथी के चले जाने पर भी उसके विषय में संदेह होता है कि यह हाथी था या नहीं जैसे शकुन्तला के चली जाने पर भी राजा को संदेह हुआ कि क्या यह शकुन्तला थी? बाद में हाथी के पदचिह्नों को देखकर विश्वास होता है कि वस्तुतः यह हाथी है। उसी प्रकार अँगूठी देखकर मुझे स्मृति उद्बुद्ध हुई कि यह शकुन्तला ही है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रतीतिः—निश्चय बुद्धिः डा० राघ० यहाँ 'उपगूहन' नामक निर्वहण सन्धि का अंग है। जहाँ अद्भुत वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे उपगूहन कहते हैं। तत्भवेद्रुपगूहनं यत्स्याद्भुत सम्प्राप्तिः निदर्शनालंकार, उपजाति छन्द। सगोत्र—वंशप्रवर्तक, there should be a conviction of a 'गज' on seeing his foot steps, similar nature has been the delusion of my mind. —Kale.

मारीचः—वत्स, अलमात्मापराधशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्यनुपपन्नः। श्रूयताम्।

हिन्दी—मारीच—पुत्र, तुम अपने अपराध की शंका न करो, तुममें मतिभ्रम असम्भव है। सुनो।

राजा—अवहितोऽस्मि।

हिन्दी—राजा (दुष्यन्त)—मैं सावधान हूँ।

मारीचः—यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति। स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः।

हिन्दी—मारीच—ज्योहीं अप्सरा घाट से अत्यन्त विकल शकुन्तला को लेकर मेनका दाक्षायणी के पास आई थी, उसी समय मैंने ध्यान से जान लिया कि दुर्वासा के शाप के कारण इस तपस्विनी एवं सहधर्मचारिणी का तुमने परित्याग किया है, अन्यथा नहीं। और वह अभिशाप अँगूठी को देखते ही समाप्त होने वाला था।

राजा—(सोच्छ्वासम्) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि।

हिन्दी—राजा—(ठंडी साँस लेकर) अब मैं लोक-निन्दा से मुक्त हो गया हूँ। (Here I have become free from blame. —Kale.

शकुन्तला—(स्वगतम्) दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः। न खलु[1] शप्तमात्मानं स्मरामि। अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः। अतः सखीभ्यां सन्दिष्टास्मि भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति (दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो। ण हु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि। अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो। अदो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अंगुलीअअं दंसइदव्वं त्ति।)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) सौभाग्य से आर्य पुत्र ने बिना किसी कारण के मेरा परित्याग नहीं किया। वस्तुतः यह मुझे स्मरण नहीं है कि मुझे शाप दिया गया था अथवा शाप पाने पर भी वियोग के कारण शून्य हृदय वाली मुझे वह शाप ज्ञात नहीं हो पाया। इसी कारण मेरी दोनों सखियाँ (अनसूया एवं प्रियंवदा) ने मुझसे विशेष रूप से कहा था कि (अवसर आने पर) वह अँगूठी अपने पति को दिखा देना।

मारीचः—वत्से, चरितार्थासि। तदिदानीं[2] सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः। पश्य—

---

१. पुनः (उप) ([illegible]) —का० २. तदिदानीम्—पाठ नहीं है —नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—मारीच—बेटी, तुम धन्य हो गई हो। अब तुम अपने पति के प्रति क्रोध न करना। देखो,

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥ ३२॥

अन्वय—शापात् स्मृतिरोधरूक्षे भर्तरि प्रतिहता असि, अपेततमसि तवैव प्रभुता। मलोपहतप्रसादे दर्पणतले छाया न मूर्च्छति, शुद्धे तु सुलभावकाशा।

हिन्दी—शाप के कारण तुम्हारे पति की स्मरण शक्ति अवरुद्ध हो गई थी। अतः वे रूखे हो गये थे और उनके द्वारा तुम्हारा तिरस्कार हुआ था। परन्तु नष्ट हुए अज्ञान वाले तुम्हारे पति पर तुम्हारी ही प्रभुता रहेगी। मैल के कारण जिसकी स्वच्छता नष्ट हो गई हो, एसे दर्पण पर प्रतिबिम्ब साफ दिखाई नहीं देता परन्तु स्वच्छ दर्पण तल पर सरलता से (प्रकाश) दिखाई देता है।

संस्कृत व्याख्या—दुर्वाससः शापात्, स्मृति०—स्मरण शक्तेः, रोधात्—प्रतिहतत्वात्, रूक्षे—क्रूरे, भर्तरि—पत्यौ सति, प्रतिहता असि—त्वं तिरस्कृता असि, अपेत०—अपेतं नष्टं तमः अज्ञानं यस्मात् तादृशे, स्वभर्तरि—पत्यौ, तवैव—शकुन्तलायाः, प्रभुता—आधिपत्यं भविष्यति, मलोप०—मलेन धूल्यादिना उपहतः नष्टः प्रसादो निर्मलता यस्य तस्मिन्, दर्पणतले—दर्पण भागे मुकुरे वा, छाया—प्रतिबिम्बम्, न मूर्च्छति—न प्रसरति, शुद्धे तु—निर्मले दर्पणे, सुलभा०—सुकरः अवकाशः स्थानं भवति। उपमाऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

नोट—आत्मनः अपराधः—तत्पु० समा०, प्रत्यक्षं वैक्लव्यं यस्याः ताम्—ब० व्री०, अपेतं तमः यस्य सः—ब० व्री०, मलेन उपहतः प्रसादः यस्य—ब० व्री०, सुलभः अवकाशः यस्या सा—ब० व्री०, छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः—अ० को०। अलंकार—(१) शकुन्तला की तुलना छाया से एवं दुष्यन्त (पति) की तुलना दर्पण से करने के कारण उपमालंकार, (२) कुछ टीकाकारों के विचार से अतिशयोक्ति असङ्गति और दृष्टान्त अलंकार है। छन्द—वसन्ततिलका छन्द। स्मृतिरोध—Was harsh to you due to the obstruction to his memory, प्रभुता तवैव—Yours in the supremacy, छाया न मूर्च्छति—as an image takes no effect on the surface of a mirror.

राजा—यथाह भगवान्।

हिन्दी—राजा—आपका कथन ठीक है।

मारीचः—वत्स, कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः ?

हिन्दी—राजा—बेटा, विधिपूर्वक सम्पन्न किये गये जातकर्म संस्कार वाले शकुन्तला के इस पुत्र का क्या तुमने अभिनन्दन किया है ?

राजा—भगवान्, अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा।

हिन्दी—राजा—भगवन्, निश्चित ही इसी पर मेरे वंश की प्रतिष्ठा (आश्रित) है।

(इति बालं हस्तेन गृह्णाति[1]।)

(यह कहकर बालक (सर्वदमन) को दुष्यन्त हाथ से पकड़ता है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. बाल······गृह्णाति—पाठ नहीं है—नि० सा०

मारीचः—तथाभाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्। पश्य—

हिन्दी—मारीच—आप (दुष्यन्त) इस बालक को उसी तरह (अपनी तरह) चक्रवर्ती राजा समझें।

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात् ॥ ३३ ॥

अन्वय—अप्रतिरथः अयम् अनुद्घातस्तिमितगतिना रथेन तीर्णजलधिः पुरा सप्तद्वीपां वसुधां जयति। इह सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः, पुनः लोकस्य भरणात् भरत इति आख्यां यास्यति।

हिन्दी—राजा—अद्वितीय महारथी यह अस्खलित (विचलित न होने वाले) निश्चल गति वाले रथ से समुद्रों को पार करके भविष्य में सात द्वीपों वाली पृथिवी को जीत लेगा। यहाँ (तपोवन में) जीवों को बलपूर्वक दमन करने के कारण इसका नाम 'सर्वदमन' था, बाद में संसार का भरण-पोषण करने के कारण इसका नाम 'भरत' पड़ेगा।

संस्कृत व्याख्या—अप्रतिरथः—न विद्यते प्रतिद्वन्द्वी रथः यस्य सः, अनुद्घात०—अनुद्घाता स्तिमिता गतिः गमनं यस्य तादृशेन, रथेन—वाहनेन, तीर्णजलधिः—उत्तीर्ण समुद्रः, पुरा—आगमिनि काले, सप्तद्वीपां वसुधां—पृथ्वीं, जयति—जेष्यति, इह—अस्मिन् तपोवने, प्रसभ दमनात्—बलात् शासनात् सर्वदमनः, पुनः—भूयः, लोकस्य—जगतः, भरणात्—पालनात्, भरत इति, आख्यां—नाम, यास्यति—धारयिष्यति।

नोट—शाकुन्तलेयः शकुन्तलायाः अपत्यं पुमान्—शकुन्तला+ढक् (एय) स्त्रीभ्यो ढक्, अनुद्घाता, स्तिमिता गतिः यस्य—ब० व्री०, तीर्णाः जलधयः सागराः येन—(ब० व्री०) सप्तद्वीपाः यस्य—ब० व्री०, जम्बु, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर ये ७ द्वीप हैं। कूर्मपुराण के अनुसार—जम्बुद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च, कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः॥ वायु पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण ने मनु को भरत कहा है, परन्तु देश का नाम 'भारत' शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर ही पड़ा है। अलंकार—(१) यहाँ भावी विजय का उल्लेख करने के कारण 'भाविक' अलंकार, (२) सभी जीवों के दमन करने के कारण 'काव्यलिङ्ग' अलंकार, (३) शिखरिणी छन्द।

राजा—भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशास्महे।

हिन्दी—राजा—(मारीच से) आपके द्वारा संस्कार किये गये इस (बालक) में हम सब कुछ (सप्तद्वीप वाली वसुन्धरा को जीतना, सभी शत्रुओं को पराजित करना आदि) की आशा करते हैं।

अदितिः—भगवन्, अस्या[१] दुहितृमनोरथसम्पत्तेः[२] कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती तिष्ठति।
(भअवं, इमाए दुहिदुमणोरहसंपत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व उपचरन्ती चिट्ठदि)

१. अनया (इस) — नि० सा०
२. सम्पत्त्या — (इच्छा पूर्ति से) — नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिन्दी—अदिति—भगवन्, पुत्री की इस कामना पूर्ति के समाचार से महर्षि कण्व को अवगत करा देना चाहिए। पुत्री वत्सला मेनका तो हम लोगों की सेवा करती हुई यहीं है।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या। (मणोरहो क्खु मे भणिदो भअवदीए।)

हिन्दी—शकुन्तला—(अपने मन में) मेरे मन की बात भगवती अदिति ने स्वयं कह दी।

मारीचः—तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः।

हिन्दी—मारीच—तपस्या के प्रभाव से पूज्य कण्व को सभी बातें प्रत्यक्ष (ज्ञात) हैं।

राजा—अंतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः।

हिन्दी—राजा—अतः मुनि मुझ पर विशेष क्रुद्ध नहीं हुए थे।

मारीचः—तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः ?

हिन्दी—मारीच—तथापि यह प्रिय समाचार हमें ही उन्हें सुनाना चाहिए। यहाँ कौन है ?

शिष्यः—भगवन्, अयमस्मि। (प्रविश्य)

हिन्दी—शिष्य—(प्रवेश करके) भगवन्, यह मैं हूँ।

मारीचः—गालव, इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात् तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा—पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति।

हिन्दी—मारीच—गालव, मेरे कथनानुसार अभी तुम आकाश मार्ग से जाकर पूज्य कण्व से प्रिय समाचार बताओ कि पुत्र युक्ता शकुन्तला उस शाप से निवृत्त होकर स्मृति प्राप्त दुष्यन्त द्वारा स्वीकार कर ली गई है।

शिष्यः—यदाज्ञापयति भगवन्। (इति निष्क्रान्तः।)

हिन्दी—शिष्य—जैसी आपकी आज्ञा। (यह कहकर निकल जाता है।)

मारीचः—वत्स, त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व।

हिन्दी—मारीच—(राजा दुष्यन्त से) पुत्र, तुम भी अपने पुत्र और स्त्री सहित मित्र इन्द्र के रथ पर बैठकर अपनी राजधानी को प्रस्थान करो।

राजा—यदाज्ञापयति भगवान्।

हिन्दी—राजा—भगवान्, जो आदेश देते हैं।

मारीचः—अपि च—

तव[1] भवतु विडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं प्रीणयस्व ।

१. तव भवतु .... पाठ नहीं है — नि० सा०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

युगशतपरिवर्तानेवमन्योन्यकृत्यै-
र्नयतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः ॥ ३४॥

अन्वय—विडौजाः तव प्रजासु प्राज्यवृष्टिः भवतु। त्वम् अपि विततयज्ञः वज्रिणं प्रीणयस्व। एवम् उभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः अन्योन्यकृत्यैः युगशतपरिवर्तान् नयतम्।

हिन्दी—मारीच—इन्द्र तुम्हारी प्रजाओं के लिए पर्याप्त वृष्टि करें, तुम भी विस्तृत यज्ञों के द्वारा इन्द्र को संतुष्ट करो। इस प्रकार दोनों लोकों के उपकार के कारण प्रशंसनीय पारस्परिक कृत्यों से तुम दोनों (दुष्यन्त एवं सर्वदमन) सैकड़ों युगों को बिताओ।

संस्कृत व्याख्या—विडौजा—इन्द्रः, ते—तव, प्रजासु—जनसमूहे, प्राज्य वृष्टिः—प्रचुर वृष्टिः भवतु, त्वमपि—दुष्यन्तोऽपि, विततयज्ञः—विस्तृतयज्ञः, वज्रिणं—इन्द्रं, प्रीणयस्व—प्रसादय, एवं—अनेन प्रकारेण, उभयलोकानु०—देवमर्त्य लोकोपकार प्रशंसनीयैः, अलोलकृत्यैः—पारस्परिककार्यैः, युगशत०—युगानां शतम् आवर्तनानि, नयत—अतिवाहयतम्। अत्र परिवृत्तिरलंकारः, मालिनीवृत्तम्।

नोटः—विडौजा—विड् व्यापकम् ओजः प्रतापो यस्य—ब० व्री०, 'इन्द्रो मरुत्वान् मघवा विडौजाः पाकशासनः' अम०, दुहितुः मनोरथस्य सम्पत्तेः—ष० तत्पु०, प्राज्यम्—अधिक, पर्याप्त, प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्—अम०, विहायसा गत्या प्राचीनकाल में देव लोग आकाश मार्ग से गमन करते थे। वितताः यज्ञाः येन—ब० व्री०, युग शत—सत् युग, त्रेता, द्वापर एवं कलि ये ४ युग हैं। गीता के अनुसार देवों को यज्ञ द्वारा प्रसन्न करने से वृष्टि होती है—देवान् भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः। या यज्ञात् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्मसमुद्भवः—गी० ३/१४। 'प्रीणितो' मेघ वाहस्तु महतीं वृष्टिमावहेत्—दण्ड नीति। अलंकार—(१) परस्पर आदान-प्रदान के कारण यहाँ परिवृत्ति अलंकार, (२) मालिनी छन्द। प्राज्य वृष्टिः—May Indra pour an abundance of rain for the benefit of your subjects, वज्रिणं प्रीणयस्व—You do please Indra by your extensive sacrifices, नयतु—You may pass hundreds of ages. —Kale.

राजा—भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये[1]।

हिन्दी—राजा—भगवन्, मैं प्रजाओं के कल्याण के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।

मारीचः—वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ?

हिन्दी—मारीच—पुत्र, तुम्हारा और क्या प्रिय मैं करूँ ?

राजा—अतः परमपि प्रियमस्ति। यदीह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हीदमस्तु (भरतवाक्यम्)

हिन्दी—राजा—क्या इससे भी बढ़कर कोई प्रियकार्य है ? यदि आप और प्रिय करना चाहते हैं, तो यह भी होवे।

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्[2] ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥ ३५ ॥

---

१. राजा.........यतिष्ये—पाठ नहीं है — नि० सा०
२. महीयसाम् — (उत्कृष्टों की, श्रेष्ठों की)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय—पार्थिवः प्रकृतिहिताय प्रवर्तताम्, श्रुतमहतां सरस्वती महीयताम्, परिगतशक्तिः आत्मभूः नीललोहितः ममापि पुनर्भवं क्षपयतु।

हिन्दी—राजा प्रजाहित के लिए प्रयत्नशील हों, ज्ञान गरिष्ठ कवियों की वाणी पूर्ण सम्मानित हो। सर्वशक्तिमान्, स्वयम्भू भगवान शिव मेरे भी पुनर्जन्म को नष्ट करें।

संस्कृत व्याख्या—पार्थिवः—नृपः भूपः वा, प्रकृतिहिताय—प्रजाहिताय, प्रवर्तताम्—प्रयत्नशीलो भवतु। श्रुतमहतां—शास्त्रश्रवणेन गरिष्ठानाम्, सरस्वती—वाणी, महीयताम्—पूजां लभताम्। परिग०—व्याप्त शक्तिः, आत्मभूः—स्वयंभूः, नीललोहितः—शिवः, ममापि—कालिदासस्यापि, पुनर्भवं—पुनर्जन्म, क्षपयतु—नाशयतु, मोक्षं—साधयतु वा।

नोट—भरतवाक्य—यह नाटक के अन्त में होता है। इसमें आशीर्वादात्मक श्लोक होता है। प्रवर्तताम्—प्र+वृत् लोट्, प्रकृतीनां हितं तस्यै—तत्पु०, क्षपयतु—क्षप्+लोट्लकार, प्र० पु०, ए० व०, श्रुतौ महान्तः तेषां—ष० तत्पु०, परिगतः परितः गतः, प्रादि तत्पु०, ममापि—महाकवि कालिदास या सूत्रधार दोनों। अलंकार—(१) ममापि च क्षपयतु-क्रिया समुच्चय अलंकार, (२) परिगत शक्तिः—राजा दुष्यन्त का विशेषण तथा राजपक्ष में राजा के प्रभाव, उत्साह एवं यत्न शक्तियों का वर्णन, (३) यहाँ पर 'प्रशस्ति' नामक निर्वहण सन्धि का अंग है, (४) रुचिरा छन्द—इसके एक चरण में जगण, भगण, सगण, जगण एवं एक गुरु हो। इस छन्द में ४, ९ वर्ण पर यति होती है। महीयताम्—महत् धातु, वामभागे नीलः दक्षिणभागे लोहितः—काले। नीलश्चासौ लोहितः—कर्मधा० समा०, नीलं येन ममाङ्गल्यं रशाक्तं लोहितं त्विषा। नील लोहित इत्येव ततोऽहं परिकीर्तितः॥ स्कन्द पुरा०। राजयति परिणद्धः शक्तिभिः शक्तिनाथः—मालवि० ५/१, जगद्धर टीका के अनुसार शिव की ८ शक्तियाँ हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, चन्द्रिका। प्रवर्तताम् पार्थिवः—May the king exist himself for the good of the subjects, सरस्वती महीयताम्—may the utterances of those poets be honoured, परिगत शक्तिः—With his energy diffused in all directions and आत्म भूः—Self existent Siva may cancel my rebirth. ममापि पुनर्भव क्षपयतु। —Kale.

इति सप्तमोऽङ्कः

समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम्।

(इसप्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक की तत्त्वबोधिनी टीका परिपूर्ण हुई।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-१

वर्णानुसार श्लोकानुक्रमणिका

	अंक तथा श्लोक संख्या
अक्लिष्टबालतरु० (वस०)	६-२०
अतः परीक्ष्य कर्तव्यं (अनु०)	५-२४
अद्यापि नूनं हरं० (उप०)	
अधरः किसलयरागः (आर्या)	१-२१
अध्याक्रान्ता वसति० (मन्दा०)	२-१४
अनवरतधनुर्ज्या० (मालिनी)	२-४
अनाघ्रातं पुष्पं (शिख०)	२-१०
अनिशमपि मकर० (आर्या)	
अनुकारिणि पूर्वेषां (अनु०)	२-१६
अनुमतगमना (अपर०)	४-१०
अनुयास्यन् मुनि० (आर्या)	१-२९
अनेन कस्यापि (उप०)	७-१९
अन्तगतप्रार्थन० (उप०)	७-२
अन्तर्हिते शशिनी (वस०)	४-३
अपरिक्षतकोमलस्य (माल०)	३-२१
अभिजनवतो भर्तुः (हरिणी)	४-१९
अभिमुखे मयि संहत० (द्रुत०)	२-११
अभ्यक्तमिव स्नातः (आर्या)	५-११
अभ्युन्नता पुरस्ताद० (आर्या)	३-५
अमी वेदिं परितः (त्रिष्टुप्)	४-८
अयं स ते तिष्ठति (वंशस्थ)	३-११
अयमरविवरेभ्यः (मालिनी)	७-७
अर्थो हि कन्या (इन्द्र०)	४-२२
अर्धपीतस्तनं मातुः (श्लोक)	७-१४
असंशयं क्षत्रपरिग्रह० (वंश०)	१-२२
अस्मात्परं बत (वस०)	६-२५
अस्मान् साधु (शार्दू०)	४-१७
अहन्यहन्यात्मन (उप०)	६-२६
अहिणवमहुलोलुवो (अपर०)	५-१
आखण्डलसमो (श्लोक)	७-२८
आचार इत्यवहितेन (वस०)	५-३
आजन्मनः शाठ्य० (उप०)	५-२५
आतम्महरिअ० (आर्या)	६-२
आ परितोषाद् (आर्या)	१-२
आलक्ष्यदन्तमुकुलान् (वस०)	७-१७
इतः प्रत्यादेशात् (शिख०)	६-९
इदं किलाव्याजमनो० (वंश०)	१-१८
इदमनन्यपरायण० (द्रुत०)	३-१६
इदमशिशिरै० (हरिणी)	३-१०
इदमुपनतमेवं (मालिनी)	५-१९
इदमुपहितसूक्ष्म० (मालिनी)	१-१९
ईसीसिचुम्बिआईं (उद्गाथआ)	१-४
उग्गलिअदब्भकवला (आर्या)	४-१२
उत्पक्ष्मणोर्नयनयो० (वस०)	४-१५
उत्सृज्य कुसुम० (आर्या)	३-१९
उदेति पूर्वं कुसुमं० (वंशस्थ)	७-३०
उन्नमितैकभ्रूलत० (आर्या)	३-१२
उपोढशब्दा न (वंश०)	७-१०
एकैकमत्र दिवसे (वस०)	६-१२
एवमाश्रमविरुद्ध० (रथो०)	७-१८
एष त्वामभिनव० (प्रह०)	६-२७
एषा कुसुमनिषण्णा (आर्या)	६-१९
एषा वि पिएण (आर्या)	४-१६
औत्सुक्यमात्रमव० (वस०)	५-६
कः पौरवे वसुमतीं (आर्या)	१-२५
कथं नु तं बन्धुर० (वंश०)	६-१३
कर्कन्धूनामुपरि (मन्दा०)	
का कथा बाण० (श्लोक)	३-१
कामं प्रत्यादिष्टां (आर्या)	५-३१
कामं प्रिया न (आर्या)	२-१
कार्या सैकतलीन० (शार्दू०)	६-१७
कास्विदवगुण्ठन० (आर्या)	५-१३
किं कृतकार्यद्वेषो (आर्या)	५-१८
किं तावद् व्रतिना० (शार्दू०)	५-९

CC-0: Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किं शीतलैः क्लम० (वस०) ३-१८
कुतो धर्मक्रियाविघ्नः (श्लोक) ५-१४
कुमदान्येव शशाङ्कः (आर्या) ५-२८
कुल्याम्भोभिः पवन० (मन्दा०) १-१५
कृतं न कर्णार्पित० (वंश०) ६-१८
कृताः शरव्यं हरिणा (वंश०) ६-२९
कृताभिमर्शामनु० (उप०) ५-२०
कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् (श्लोक) २-२७
कृष्णसारे ददच्चक्षुः (श्लोक) १-६
क्व वयं क्व परोक्ष० (वियो०) २-१८
क्षणात् प्रबोध० (श्लोक) पृ० २४८
क्षामक्षामपोल० (शार्दू०) ३-७
क्षौमं केनचिदिन्दु० (शार्दू०) ४-५
गच्छति पुरः शरीरं (आर्या) १-३४
गान्धर्वेण विवाहेन (श्लोक) ३-२०
गाहन्तां महिषा (शार्दू०) २-६
ग्रीवाभङ्गाभिरामं (स्रग्०) १-७
चलापाङ्गां दृष्टिं (शिख०) १-२४
चित्रे निवेश्य (वस०) २-९
चूतानां चिरनिर्गता (शार्दू०) ६-४
जन्म यस्य पुरोर्वंशे (श्लोक) १-१२
जाने तपसो वीर्यं (आर्या) ३-२
ज्वलति चलितेन्धनो (आर्या) ६-३१
णावेक्खिओ गुरुअणो (आर्या) ५-१६
तत्साधुकृतसन्धानं (श्लोक) १-११
तदेषा भवतः कान्ता (श्लोक) ५-२६
तपति तनुगात्रि (आर्या) ३-१४
तव कुसुमशरत्वं (मालिनी) ३-३
तव भवतु (मालिनी) ७-३४
तव सुचरितम० (पुष्पि०) ६-११
तवास्मि गीतरागेण (श्लोक) १-५
तस्याः पुष्पमयी (शार्दू०) ३-२३
तीव्राघातप्रतिहत० (मन्दा०) १-३३
तुज्झ ण आणे (उद्०) ३-१३
तुमं सि मए (आर्या) ६-३
तुरगखुरहतस्तथा (पुष्पि०) १-[illegible]
त्रिस्रोतसं वहति (वस०) ७-६
त्वन्मतिः केवला (श्लोक) ६-३२
त्वमर्हतां प्राग्रसरः (वंश०) ५-१५
दर्भाङ्कुरेण चरणः (वस०) २-१२
दर्शनसुखमनुभवतः (आर्या) ६-२१
दिष्ट्या शकुन्तला (श्लोक) ७-२९
दुष्यन्तेनाहितं (श्लोक) ४-४
न खलु न खलु (मालिनी) १-१०
न नमयितुमधिज्य० (पुष्पि०) २-३
नियमयसि विमार्ग० (मालिनी) ५-८
नीवाराः शुकगर्भ० (शार्दू०) १-१४
नैतच्चित्रं यदय० (मन्दा०) २-१५
परिग्रहबहुत्वेऽपि (श्लोक) ३-१७
पातुं न प्रथमं (शार्दू०) ४-९
पादन्यासं० (मन्दा०) पृ० १९३
पुत्रस्य ते रणशिर० (वस०) ७-२६
पृष्टा जनेन सम० (वस०) ३-८
प्रजाः प्रजाः स्वा इव (उप०) ५-५
प्रजागरात् (पथ्या०) ६-२२
प्रत्यादिष्टविशेष० (शार्दू०) ६-६
प्रथमं सारङ्गाक्ष्या (आर्या) ६-७
प्रथमोपकृतं मरुत्वत (वियो०) ७-१
प्रलोभ्य वस्तुप्रणय० (वंश०) ७-१६
प्रवर्ततां प्रकृति० (रुचिरा) ७-३५
प्राणानामनिलेन (शार्दू०) ७-१२
प्राहुर्द्वादशधा (शार्दू०) ७-२७
बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि (श्लोक) ७-२३
भवनेषु रसाधिकेषु (माल०) ७-२०
भवन्ति नम्रास्तरवः (वंश०) ५-१२
भव हृदय साभिलाषं (आर्या) १-२८
भानुः सकृद्युक्त० (इन्द्र०) ५-४
भूत्वा चिराय (वस०) ४-२०
मनोरथाय नाशंसे (श्लोक) ७-१३
मय्येव विस्मरण० (वस०) ५-२३
महतस्तेजसो (श्लोक) ७-१५
[illegible] (शिख०) ५-१०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मानुषीषु कथं वा (श्लोक) १-२६
मुक्तेषु रश्मिषु० (वस०) १-८
मुनिसुताप्रणय० (द्रुत०) ६-८
मुहुरङ्गुलिसंवृता० (माल०) ३-२२
मूढः स्यामहमेषा वा (श्लोक) ५-२९
मेदश्छेदकृशोदरं (शार्दू०) २-५
मोहान्मया सुतनु (वस०) ७-२५
यतो यतः षट्चरणो० (वंश०) १-२३
यथा गजो नेति (उप०) ७-३१
यदालोके सूक्ष्मं (शिख०) १-९
यदि यथा वदति (द्रुत०) ५-२७
यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो (श्लोक०) २-२३
यद्यत् साधु न (पथ्या०) ६-१४
ययातेरिव शर्मिष्ठा (श्लोक) ४-७
यस्य त्वया व्रण० (वस०) ४-१४
यात्येकतोऽस्तशिखरं (वस०) ४-२
या सृष्टिः स्रष्टुराद्या (स्रग्०) १-१
यास्यत्यद्य शकुन्तलेति (शार्दू०) ४-६
येन येन वियुज्यते (श्लोक) ६-२३
यो हनिष्यति (श्लोक) ६-२८
रथेनानुद्घात० (शिख०) ७-३३
रम्यं द्वेष्टि यथा (शार्दू०) ६-५
रम्याणि वीक्ष्य (वस०) ५-२
रम्यान्तरः कमलिनी० (वस०) ४-११
रम्यास्तपोधनानां (आर्या) १-१३
वल्मीकार्धनिमग्न० (शार्दू०) ७-११
वसने परिधूसरे (माल०) ७-२१
वाचं न मिश्रयति (वस०) १-३१
विचिन्तयन्ती यमनन्य० (वंश०) ४-१
विच्छित्तिशेषैः (उप०) ७-५
वृथैव संकल्पशतै० (उप०)
वैखानसं किमनया (वस०) १-२७
व्यपदेशमाविलयितुं (आर्या) ५-२१
शक्यमरविन्दसुरभिः (आर्या) ३-४
शमप्रधानेषु तपोधनेषु (उप०) २-७
शममेष्यति मम (आर्या) ४-२१
शहजे किल जे (वियो०) ६-१
शान्तमिदमाश्रमपदं (आर्या) १-१६
शापादसि प्रतिहता (वस०) ७-३२
शुद्धान्तदुर्लभमिदं (आर्या) १-१७
शुश्रूषस्व गुरून् (शार्दू०) ४-१८
शैलानामवरो हतीव (शार्दू०) ७-८
संकल्पितं प्रथममेव (वस०) ४-१३
संदष्टकुसुमशयना० (आर्या) ३-१५
संमीलन्ति न तावद् (आर्या)
संरोपितेऽप्यात्मनि (उप०) ६-२४
सख्युस्ते स किल (प्रह०) ६-३०
सतीमपि ज्ञाति० (वंश०) ५-१७
सरसिजमनुविद्धं (मालिनी) १-२०
साक्षात् प्रियामुप० (वस०) ६-१६
सा निन्दन्ती (शालिनी) ५-३०
सायन्तने सवनकर्मणि (वस०) ३-२४
सिध्यन्ति कर्मसु (वस०) ७-४
सुखपरस्य हरे० (द्रुत०) ७-३
सुतनु हृदयात् (हरिणी) ७-२४
सुभगसलिला० (आर्या) १-३
सुरयुवतिसंभवं (आर्या) २-८
स्तनन्यस्तोशीरं (शिख०) ३-६
स्त्रीणामशिक्षित० (वस०) ५-२२
स्निग्धं वीक्षित० (शार्दू०) २-२
स्मर एव तापहेतुः (आर्या) ३-९
स्मृति भिन्न मोह० (आर्या) ७-२२
स्रस्तांसावटिमात्र (शार्दू०) १-३०
स्वप्नो नु माया (उप०) ६-१०
स्वसुखनिरभिलाषः (मालिनी) ५-७
स्वायंभुवान्मरीचेर्यः (श्लोक) ७-९
स्विन्नाङ्गुलि० (आर्या) ६-१५

❊

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-२

नाट्य-शास्त्रीय परिभाषिक शब्द

(१) नाटक—नाटक उसे कहते हैं, जिसकी कथावस्तु प्रसिद्ध (ऐतिहासिक) हो, जिसमें मुख, प्रतिमुख आदि ५ सन्धियाँ हों। इसका नायक किसी प्रसिद्ध राजवंश का कोई राजर्षि, धीरोदात्त नायक होता है। इसमें एक प्रधान रस होता है शृंगार या वीर। इसमें ५ से १० तक अंक होते हैं। यथा—अभिज्ञान शाकु०।

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥ (सा० द०)

(२) पूर्वरङ्ग—नाट्य मण्डप में विघ्न-शान्ति के लिए नटों के द्वारा प्रयुक्त मांगलिक गीत को 'पूर्वरंग' कहते हैं—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥ (सा० द०)

(३) नान्दी—जिससे देवताओं, ब्राह्मण तथा राजाओं की आशीर्वाद के साथ स्तुति की जाती है उसे 'नान्दी' कहते हैं। इसमें ८ या १२ पद होने चाहिए। इसमें मांगलिक वस्तु शंख, चन्द्र, चक्रवाक और कुसुमादि का वर्णन होना चाहिए।

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
मङ्गल्य शंख चन्द्राब्ज कोक कैरव शंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशाभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥
देव द्विज नृपादीनां आशीर्वचन पूर्विका ।
नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता ॥ (सा० द०)

(४) प्रस्तावना—आमुख या प्रस्तावना उसे कहते हैं, जहाँ सूत्रधार नटी, मार्ष (पारिपार्श्विक) या विदूषक के साथ बात करता है, जिसमें प्रस्तुत नाटकीय कथा का निर्देश होता है।

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥ (द० रू०)

(५) सूत्रधार—बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं, जो उसे धारण करता है तथा रंगशाला के देवता की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(६) नेपथ्य—जहाँ अभिनेतागण अभिनय के लिए उपयोगी साधन (वेषभूषादि) एकत्र करते हैं, उसे 'नेपथ्य' कहते हैं।

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते। (सा० द०)

(७) कञ्चुकी—जो अन्तःपुर में विचरण करता है, ऐसे वृद्ध, गुणवान्, ब्राह्मण को जो सभी कार्यों में कुशल होता है, उसे 'कञ्चुकी' कहते हैं।

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ (नाट्यशास्त्र)

(८) अङ्क—जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुरित करता है, जहाँ अनेक प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ एक अर्थ की समाप्ति हो और बीज का उपसंहार होता है। जहाँ सामाजिकों को नायक का दर्शन होता है, उसे 'अङ्क' कहते हैं।

अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ॥ (ना० शा० २०/१४-१६)

(९) नायक—त्यागी, वीर, कुलीन, समृद्ध, सुन्दर, उत्साही, चतुर, लोकप्रिय, पटु, एवं चरित्रवान् पुरुष को नेता (अभिनेता) या नायक कहते हैं।

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ॥ (सा० द०)

(१०) धीरोदात्त नायक—महाबली, अतिगम्भीर, क्षमाशील, स्वयं स्वप्रशंसा न करने वाले, स्थिर प्रकृति एवं अहंकारविहीन तथा दृढ़ निश्चय करने वाले पुरुष को 'धीरोदात्त नायक' कहते हैं।

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थन ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः ॥ (द० रू०)

अभिज्ञान का नायक दुष्यन्त धीरोदात्त प्रकृति का है। वह नाटक के पूर्व अंक में अपने परिजनों के सम्मुख नायिका तथा ऋषि कुमारों द्वारा लक्षित होने पर भी क्रोधाभिभूत न होकर एक संयमशील की तरह आचरण करता है।

(११) नायिका—नायक के सामान्य गुणों से युक्त 'नायिका' होती है। इसके ३ भेद हैं—१. स्वकीया, २. परकीया, ३. साधारण।

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥ (सा० द०)

(१२) विदूषक—जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष तथा बोली के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम कराता है एवं अपने हास्य के कार्य को ठीक समझता है, उसे विदूषक कहते हैं। कुसुम, वसन्त आदि विदूषक के नाम होते हैं—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥ (सा० द० ३-४२)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१३) भरतवाक्य—यह नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक होता है। 'भरत' शब्द का अर्थ नट या अभिनेता है। भरतानां वाक्यम् - भरतवाक्यम्। नाटकीय पात्रों की ओर से जनता को जो आशीर्वाद दिया जाता है, वही भरतवाक्य है। नाटक के अन्त में अभिनेताओं के प्रतिनिधि के रूप में सूत्रधार या कई अभिनेता मिलकर भरतवाक्य बोलते हैं। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि की स्मृति में इसका नाम भरतवाक्य रखा गया है। इस दृष्टि से भरतवाक्य का अर्थ होगा—भरत मुनि द्वारा आदिष्ट आशीर्वादात्मक वाक्य।

(१४) विष्कम्भक—जो भूत, भविष्यत् घटनाओं की सूचना दे, कथाओं का संक्षेप में वर्णन करे और जो अङ्कादि में रहे, उसे विष्कम्भक कहते हैं। एक या दो शुद्ध पात्र होने पर शुद्ध विष्कम्भक एवं नीच या मध्यम पात्र होने पर 'मिश्र' विष्कम्भक होता है।

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥

जैसे अभि० शा० के तृतीय अङ्क में कुश लेकर दौड़ते हुए शिष्यों से नायिका की अस्वस्थता एवं प्रियंवदा द्वारा नीयमान उशीर लेप, नलिनी-पत्रादि से ताप परिहार्थक उपायों का परिज्ञान सामाजिकों को होता है।

'गौतमी से शान्त्युदक भेजा जायेगा', इसकी भी यहाँ सूचना दी गई है। अतः यह एक विष्कम्भक है। अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अङ्क में शुद्ध विष्कम्भक है। कथावस्तु के विकास में रंगमंच की मर्यादा के प्रतिकूल होने वाली घटनाओं को सूच्य कहा जाता है। इन अतीत या भावी घटनाओं की सूचना अर्थोपक्षेपकों द्वारा दी जाती है।

(१५) प्रवेशक—प्रवेशक का प्रयोग नीच पात्रों द्वारा होता है। यह प्राकृत भाषा में होता है। विष्कम्भक की भाँति यह दो अङ्कों के बीच होता है।

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥ (सा० द०)

(१६) आकाशभाषित—जहाँ कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ दूसरे पात्र के बिना ही बात करता है। अन्य पात्र के बिना ही बात को सुनने का अभिनय करके वार्तालाप करता है, उसे आकाशभाषित कहते हैं। इसीलिए नाट्यग्रन्थों में 'आकाशे' (आकाश में) शब्द प्रयुक्त होता है।

किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥ (सा० द०)

(१७) जनान्तिक—त्रिपताक हाथ को बीच में रखकर एक व्यक्ति से छिपकर अर्थों को बताने वाले वार्तालाप को 'जनान्तिक' कहते हैं। अर्थात् हाथ का ओट करके दो पात्रों का बात करना। जैसे अभिज्ञान शाकु० के छठें अङ्क में राजा मञ्चस्थ मातलि को उपेक्षित करके विदूषक से कहता है—

'राजा—(जनान्तिकम्) वयस्य अनतिक्रमणीया दिवस्पते राजा-मद्वचनात् अमात्यं पिशुनं ब्रूहि।'

(१८) चूलिका—जिसमें पात्र नेपथ्य के भीतर से वस्तुविशेष की सूचना दिया करते हैं, उसे 'चूलिका' कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्तर्यवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। (सा० द०)

(१९) अपवारित—बहुतों से छिपाकर एक ही व्यक्ति को प्रकट करने के लिए अन्यों से मुख मोड़कर रहस्य कहने को 'अपवारित' कहा जाता है।

(२०) स्वगत—जो बात सुनने योग्य न हो उसे मन में रखते हैं, इसको 'स्वगत' (मन में रखना) कहते हैं। इसका उद्देश्य श्रोताओं को सुनाना है परन्तु साथ के अन्य अभिनेता उस बात को न सुन सकें।

अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्। (सा० द०)

(२१) प्रकाश—जो बात सबको सुनाने योग्य हो, उसे 'प्रकाश' (स्पष्ट) कहते हैं।

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। (सा० द०)

(२२) पताकास्थानक—इससे वर्ण्य कथावस्तु द्वारा भावी घटनाओं की सूचना सामाजिकों को दी जाती है। यह सूच्य कथा का एक भेद है। जहाँ प्रस्तुत कथावस्तु से आने वाली घटना की सूचना तुल्य विशेषणों से समासोक्ति के द्वारा दी जाय, उसे 'पताकास्थानक' कहते हैं। जैसे अभि० शा० के पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में हंसपदिका गीत में प्रयुक्त तुल्य विशेषणों से पताकास्थानक की योजना की गई है।

प्रस्तुतावगन्तु भावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम् ।
पताकास्थानकं तुल्यं संविधानविशेषणम् ॥

जैसे— अभिनव मधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्र निर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥

(२३) अङ्कावतार—वह अर्थोपक्षेपक है, जिसे पिछले अङ्क के अन्त में उस अङ्क के पात्रों द्वारा अग्रिम अंक की सूचना में बताते हैं।

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्त्वङ्कस्याविभागतः ।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः ॥ (सा० द०)

(२४) अङ्कास्य—पूर्व अङ्क के अन्त में प्रविष्ट पात्रों द्वारा अग्रिम असम्बंधित अंकों की सूचना 'अङ्कास्य' है।

अङ्कान्तपात्रैर्वा वाङ्कास्य छिन्नांकस्यार्थसूचनात्। (सा० दर्पण)

(२५) पाँच सन्धियाँ—मुख-प्रतिमुख आदि ५ अवस्थाओं का अनुसरण करने वाले मुख्य कथा के ५ भाग को 'सन्धि' कहते हैं। इनके ५ भेद—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श, निर्वहण हैं—

१. मुख सन्धि—बीज की उत्पत्ति या रस के आश्रय मुख्य कथा-भाग को 'मुख' सन्धि कहते हैं। जैसे—शाकुन्तल में ततः प्रविशति (अङ्क १, वा० १३) से द्वितीय अंक में 'उभौ परिक्रम्य उपविष्टौ' (अङ्क २, वा० ३७) तक।

२. प्रतिमुख सन्धि—सूक्ष्म रूप से दृष्टिगोचर बीज के उद्घाटन से युक्त प्रतिमुख (सन्धि) है। जैसे—अनवाप्त से लेकर तीसरे अङ्क की समाप्ति तक।

३. गर्भ—फलप्रधान उपाय का जहाँ ह्रास एवं अन्वेषण से युक्त बार-बार विकास हो वह गर्भ सन्धि है। फल के भीतर रहने के कारण इसे गर्भ सन्धि कहते हैं। जैसे—अभिज्ञा० शा० में चतुर्थ अंक के प्रारम्भ से लेकर पंचम अंक के 'इति यथोक्त कोति' तक।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

४. विमर्श—जहाँ मुख्यफल का उपाय गर्भ सन्धि की अपेक्षा अधिक प्रकट हो, उसे 'विमर्श' सन्धि कहते हैं। जैसे— राजा—'शकुन्तलां निर्वण्य' से लेकर छठें अंक की समाप्ति तक।

५. निर्वहण—जहाँ मुखादि सन्धियों में आये अर्थों का एक प्रधान प्रयोजन में समन्वय हो, उसे निर्वहण सन्धि कहते हैं। जैसे—७वें अङ्क में शकुन्तला के परिज्ञान के बाद सम्पूर्ण कथा 'निर्वहण' सन्धि का उदाहरण है।

(२६) पाँच अर्थ प्रकृतियाँ—सा० द०[1] के अनुसार बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य ये पाँच अर्थ प्रकृतियाँ हैं—

१. बीज—जिस कथावस्तु का पहले संक्षेप में बाद में विस्तार से अनेकधा वर्णन हो, जैसे—'जन्म यस्य' से लेकर.........भवतु तक।

२. बिन्दु—अवान्तर कथा के विच्छेद होने पर प्रधान कथा के विच्छेद न होने का जो निमित्त हो, जैसे—'माधव्य, अनवाप्त' से लेकर, 'सर्वः कान्तं शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि' तक।

३. पताका—जो प्रासंगिक कथा दूर तक व्याप्त हो उसे 'पताका' कहते हैं। जैसे—अभिज्ञा० शा० में विदूषक की कथा।

४. प्रकरी—प्रसंग के कारण आये हुए तथा एकदेश स्थित चरित्र को 'प्रकरी' कहते हैं। शाकुन्तल के ३ प्रसंग 'प्रकरी' हैं, (क) मातलि वृत्तान्त, (ख) सानुमती अप्सरा प्रसंग, (ग) छठें अंक में दो चेटियों द्वारा बसन्त-ऋतु वर्णन।

५. कार्य—जिसकी सिद्धि के लिए सब सामग्री एकत्र की जाय, उसे कार्य (प्रधान साध्य) कहते हैं। जैसे—शाकुन्तल में दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन कार्य है।

(२७) पाँच अवस्थाएँ—

१. आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो औत्सुक्य है, उसे आरम्भ कहते हैं। जैसे—शाकु० में १ अंक में 'भवतु तामेव द्रक्ष्यामि'।

२. यत्न—फल-प्राप्ति के लिए अति त्वरा युक्त व्यापार को 'यत्न' कहते हैं। जैसे—'तपस्विभिः कैश्चित्' से तीसरे अंक की समाप्ति तक। इसमें शकुन्तला दुष्यन्त दोनों एक-दूसरे की प्राप्ति के लिए महान् प्रयत्न करते हैं।

३. प्राप्त्याशा—जहाँ आशंकाओं से घिरे रहने पर भी प्राप्ति की सम्भावना हो उस अवस्था को 'प्राप्त्याशा' कहते हैं। जैसे—४, ५वें अंक में फल-प्राप्ति की सम्भावना, परन्तु दुर्वासा-शाप के कारण दुष्यन्त की प्राप्ति की असम्भावना है।

४. नियताप्ति—अपाय के दूर हो जाने से जो निश्चित प्राप्ति हो, उसे 'नियताप्ति' कहते हैं। जैसे—छठें अंक में अँगूठी मिलने के कारण विघ्न दूर हो जाता है। और शकुन्तला को निश्चित रूप से दुष्यन्त की प्राप्ति होती है।

५. फलागम—जहाँ सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो, उसे 'फलागम' या फलयोग कहते हैं। जैसे ७वें अंक में दुष्यन्त और शकुन्तला का स्थायी मिलन होता है।

---

१. बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
अर्थप्रकृतयः पञ्च, ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ॥ —सा० द० ६/६४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-३

छन्दः—परिचय

(१) छन्द के दो भाग होते हैं— (१) जाति, (२) वृत्त। जाति को 'मात्रा छन्द' कहते हैं। मात्रा छन्द में वर्णों की मात्राएँ (Syllabie Instants) गिनी जाती हैं, और वर्णिक छन्द में वर्णों की संख्या (The number of syllabies) गिनी जाती है। वर्णवृत्तों को 'वृत्त' कहते हैं, जैसे इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, एवं मात्रिक छन्द का उदाहरण आर्या छन्द है। पुनः वर्णिक छन्द के ३ भेद हैं— (१) समवृत्त—जिसके चारों पादों या चरणों[१] में समान अक्षर हों। (२) अर्धसमवृत्त—जिसके प्रथम, तृतीय एवं द्वितीय, चतुर्थ चरणों में समानता हो। (३) विषमवृत्त—जिसके ४ चरणों में समानता न हो।

(२) दोनों प्रकार के छन्दों में स्वरों पर ध्यान दिया जाता है—अ, इ, उ, ऋ, लृ—लघु स्वर[२] (।) आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ—दीर्घ स्वर[३] (ऽ), अनुस्वार, विसर्ग तथा संयुक्त अक्षर से पूर्व यदि लघु अक्षर हो तो भी उसे गुरु (दीर्घ) स्वर मानते हैं। पाद का अन्तिम अक्षर लघु होने पर भी कभी 'गुरु' मान लेते हैं।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गो च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥

(३) संस्कृत में वर्णवृत्तों की गणना के लिए 'गण' का उपयोग होता है। एक गण में ३ अक्षर होते हैं 'यमाता'—यगण में तीन अक्षर हैं ।'ल' से लघु वर्ण 'गु' से गुरु वर्ण का संकेत है। लौ, गौ—दो लघु वर्ण तथा २ गुरु वर्ण।

(४) चरण के समाप्ति पर जो विराम होता है, उसे 'यति' विरति, विराम या विश्राम कहते हैं। यह विराम कहीं श्लोकार्ध, कहीं ४ या ५ वर्णों के बाद होता है।

(५) गति—प्रवाह, श्लोक का बिना रुके धारा-प्रवाह उच्चारण करना 'गति' है।

शाकुन्तल में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण

शाकुन्तल में कुल २४ छन्दों के प्रयोग हैं, जो निम्न हैं।

(१) अनुष्टुप्—इसे 'श्लोक' भी कहते हैं।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो ॥

जिस छन्द के चारों चरणों में पाँचवा लघु अक्षर, छठाँ गुरु अक्षर, दूसरे तथा चौथे चरण में सातवाँ अक्षर ह्रस्व हो तथा पहले और तीसरे चरण में सातवाँ दीर्घ हो उसे 'अनुष्टुप्' छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में ८ अक्षर होते हैं। जैसे शाकुन्तल अंक १—५,६,११,१२,२६;

२—१३,१६,१७,; ३—१,१७,२० ४—४,७
५—१४,२४,२६,२९; ६—२३,२८,३२ ७—९,१३,१४,१५,२३,२८,२९।

---

१. Short syllabie २. पाद—Quarters ३. Long Syllabie

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) अपरवक्त्र—अयुजि ननरला गुरुः समे, तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ। जिसके प्रथम, तृतीय चरण में ११ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ रगण, १ लघु , १ दीर्घ। दूसरे तथा तीसरे चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ नगण, २ जगण, १ रगण। जैसे—शाकु० अंक ४-१०, अंक ५-१

(३) आर्या— यस्या प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

जिसके पहले-तीसरे चरण में १२ मात्राएँ, दूसरे चरण में १८ तथा चौथे चरण में १५ मात्राएँ हों। जैसे—शाकु० अङ्क १—२,३,१३,१६,१७,२१,२५,२८,२९,३४; अङ्क २—१,८; अङ्क ३—२,४,५,९,१२,१४,१५,१९; अङ्क ४—१२,१६,२१; अङ्क ५—११,१३,१६,१८, २१,२८,३१; अङ्क ६—२,३,७,१५,१९,२१,३१; अङ्क ७—२२।

(४) इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

इसके प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण, १ जगण, २ गुरु अक्षर। जैसे—शाकु० अङ्क ४—२२, अङ्क ५—४।

(५) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा

यदि इन्द्रवज्रा का प्रथम वर्ण लघु हो, तो उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं। इसका लक्षण है—जगण, तगण, जगण एवं अन्त में दो गुरु वर्ण। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ:।

(६) उपजाति—उपजाति के प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। जिस छन्द के लक्षण इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा से युक्त हों उसे उपजाति छन्द कहते हैं—

अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

(७) त्रिष्टुप्—यह वैदिक छन्द है। कालिदास ने इस वैदिक छन्द का प्रयोग अंक ४ श्लोक ८ में किया है। इसके प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। इसके चौथे, पाँचवे वर्ण पर यति होती है। शाकु०—४—८।

(८) उद्गाता—यह आर्या छन्द का एक भेद है। इसके पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में ३० मात्राएँ होती है। जैसे—शाकु० अङ्क १—४, अङ्क ३—१३।

(९) द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ, द्रुतविलम्बित छन्द के प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं। इसमें १ नगण, २ भगण, १ रगण होते हैं। जैसे—शाकु० अङ्क २—११, अङ्क ३—१६, अङ्क ५—२७, अङ्क ६—८, अङ्क ७—३।

(१०) पथ्यावक्त्र—यह अनुष्टुप् का एक भेद है। यदि अनुष्टुप् के द्वितीय और चतुर्थ पाद में चतुर्थ अक्षर के बाद जगण आता है तो उसे 'पथ्यावक्त्र' छन्द कहते हैं।

युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।

(११) पुष्पिताग्रा— अयुजि नयुगरेफतो यकारो ।
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥

इस छन्द के प्रथम, तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ रगण, १ यगण और दूसरे चौथे चरणों में १३ वर्ण होते हैं—१ नगण, २ जगण, १ रगण, १ गुरु। यह अर्धसमवृत्त है। जैसे—शाकु० अङ्क १—२२, अङ्क २—३, अङ्क ६—११

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१२) प्रहर्षिणी— त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

इस छन्द के प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु हो। इसमें तीसरे तथा १०वें वर्ण पर यति होती है। जैसे—शाकु० अङ्क ६—२७,३०

(१३) मन्दाक्रान्ता—मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।

इसके प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ भगण, १ नगण, २ तगण, २ गुरु वर्ण। इसमें ४,६,७ वर्णों पर यति होती है।

नोट—स्मरण की सुविधा के लिए ४ संख्या सूचक 'अम्बुधि' पद, ६ संख्या सूचक 'रस' पद तथा ७ संख्या सूचक 'नग' पद का प्रयोग है।

(१४) मालभारिणी— विषमे ससजा गुरू समे चेत्
सभरा येन तु मालभारिणीयम्।

इसके प्रथम, तृतीय चरण में ११ वर्ण होते हैं। इसमें २ सगण, १ जगण, २ गुरु वर्ण होते हैं, एवं द्वितीय, चतुर्थ चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ सगण, १ भगण, १ रगण, १ मगण। इसे औपच्छन्दसिक भी कहते हैं। यह अर्द्ध समवृत्त है। जैसे—शाकु० अङ्क ३—२१,२२, अङ्क ७—२०,२१

(१५) मालिनी—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

इसके प्रत्येक पाद में १५ वर्ण होते हैं। इसके चारों चरणों में २ नगण, १ मगण, २ यगण हों। इसमें ८, ७ वर्णों के बाद भोगि (८), एवं लोक (७) की संख्या के वर्ण पर 'यति' हो, उसे 'मालिनी' छन्द कहते हैं। जैसे—शाकु अङ्क १—१०,१९,२०, अङ्क २—४, अङ्क ३—३, अङ्क ४—७,८,१९, अङ्क ७—७,३४

(१६) रथोद्धता—रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

इसके प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं, इसमें १ रगण, १ नगण, १ रगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। जैसे—शाकु० अङ्क ७—१८

(१७) रुचिरा—जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।

रुचिरा में प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं— इसमें १ जगण, १ भगण, १ सगण, १ जगण, १ गुरु। इसमें ४,९ (ग्रहों की संख्या के वर्ण) के बाद यति होती है।

जैसे—शाकु० अङ्क ७—३५।

(१८) वंशस्थ—जतौ तु वंशस्थमुदीरितौ जरौ।

जिसमें प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं एवं जिसमें १ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण हों। जैसे—शाकु अङ्क १—१८,२२,२३, अङ्क ३—११, अङ्क ४—१, अङ्क ५—१२,१५,१७, अङ्क ६—१३,१८,२९, अङ्क ७—१०,१३,३०।

(१९) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

इस छन्द में प्रत्येक पाद में १४ वर्ण होते हैं जिसमें १ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु हो।

जैसे—शाकु० अङ्क १—८,२७,३१; अङ्क २—९,१२; अङ्क ३—८,१८,२४; अङ्क ४—२,३,११,१३,१४,१५,२०; अङ्क ५—२,३,६,२२,२३; अङ्क ६—१२,१६,२०,२५; अङ्क ७—४,६,१७,२५,२६,३२।

महेन्द्रो वलयो सत्यो शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः,
विन्ध्याचल परिपात्रिश्च सप्तैते कुल पर्वताः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२०) वियोगिनी— विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।

इस छन्द के प्रथम, तृतीय पाद में १० वर्ण होते हैं, इसमें २ सगण, १ जगण, १ गुरु होते हैं, एवं दूसरे, चौथे पाद में ११ वर्ण होते है। यह अर्द्धसमवृत्त है। जैसे—शाकु० अङ्क २—१८; अङ्क ६—१,७-१।

(२१) शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

इस छन्द के प्रत्येक पाद में १९ वर्ण होते हैं। इसमें १ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण, १ गुरु हो। इसमें, १२-७ वर्णों सूर्य (१२) तथा अश्वों (७) की संख्या के बराबर पर यति होती है। जैसे—शाकु० अङ्क १—१४,३०; अङ्क २—२,५,६; अङ्क ३—७,२३; अङ्क ४—५,६,९,१७,१८; अङ्क ५—९; अङ्क ६—४,५,६,१७; अङ्क ७—८,११,१२,२७।

(२२) शालिनी—मात्तौ गौ चेत्छालिनी वेदलोकैः।

इस छन्द में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। इसमें १ मगण, २ तगण, २ गुरु होते हैं। इसमें ४ एवं ७ वर्णों (वेद (४) की संख्या के बराबर एवं लोक (७) की संख्या के बराबर) के बाद यति हो।

(२३) शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

इस छन्द के प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं। इसमें १ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १भगण, १ लघु, १ गुरु वर्ण होते हैं। इसमें ६-११ वर्णों (रस (६) तथा रुद्र (११) की संख्या के बराबर) के बाद यति हो। जैसे—शाकु० अङ्क १—९,२४, अङ्क २—१०, अङ्क ३—६, अङ्क ५—१०, अङ्क ६—९, अङ्क ७—३३।

(२४) स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

इसके प्रत्येक पाद में २१ वर्ण होते हैं। इसमें १ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण होते हैं। इसमें ७-७-७ वर्णों (मुनि की संख्या (७) के बराबर) वर्णों पर यति होती है।

(२५) हरिणी—नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

इस छन्द में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं। इसमें १ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु वर्ण होते हैं। इसमें षड् (६), वेद (४) हय (७) की संख्या के बराबर अर्थात् ६-४-७ वर्णों पर यति होती है। जैसे—शाकु० अङ्क ३—१०, अङ्क ४—१९, अङ्क ७—२४।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-४

(क) शाकुन्तल में सुभाषित संग्रह

	पृष्ठ संख्या
१. अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।	५०
२. अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत्।	१९८
३. अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरी भवति सौहृदम्।	१६५
४. अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम।	१४६
५. अतिस्नेहः पापशङ्की।	१३५
६. अथवा अनार्यः परदारव्यवहारः।	२३९
७. अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि।	२२७
८. अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।	३८
९. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।	१५२
१०. अरण्ये मया रुदितमासीत्।	५३
११. अर्थो हि कन्या परकीय एव।	१३७
१२. अवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति।	१९५
१३. अवसरोपर्सणीया राजानः।	१७७
१४. अस्त्येदन्यसमाधि भीरुत्वं देवानाम्।	३६
१५. अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः।	४०
१६. अहो विघ्नवत्यः प्राथितार्थसिद्धयः।	१००
१७. अहो, सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्।	१८६
१८. इदं तत् प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते।	१६१
१९. इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।	११०
२०. उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना।	२३०
२१. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।	१६६
२२. उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः।	१८४
२३. एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते।	५०
२४. एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।	१६२
२५. ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः।	१२९
२६. औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा।	१४४
२७. क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्सनां पटान्तेन वारयति।	८९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

		पृष्ठ संख्या
२८.	क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।	८६
२९.	कदापि सत्पुरुषा: शोकवास्तव्या न भवन्ति।	१९२
३०.	कष्टं खल्वनपत्यता।	२०९
३१.	किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।	८६
३२.	किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।	२४
३३.	किमीश्वराणां परोक्षम्।	२४७
३४.	को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।	१०९
३५.	कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।	१०६
३६.	गण्डस्योपरि पिण्डक: संवृत्त:।	४८
३७.	गुर्वपि विरहदु:खमाशाबन्ध: साहयति।	१३०
३८.	छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।	२५४
३९.	ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृत: पन्नगाणां कुरुते····प्रतिपद्यते हि जन:।	२१९
४०.	तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति।	१५३
४१.	त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ।	७२
४२.	न खलु धीमता कश्चिदविषयो नाम।	१३२
४३.	ननु प्रवातेऽपि निष्कम्प गिरय:।	१९२
४४.	न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।	३७
४५.	बहुवल्लभा: राजान: श्रूयन्ते।	९४
४६.	भवन्ति नम्रास्तरव: फलोद्गमै अनुद्धता सत्पुरुषा समृद्धिभि: स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।	१५०
४७.	मनोरथा नाम तटप्रपाता:।	१९४
४८.	मूर्च्छन्त्यमी विकारा: प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु।	१५७
४९.	रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था:।	१८९
५०.	राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।	३१
५१.	राज्ञां तु चरितार्थता दु:खोत्तरैव।	१४४
५२.	लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुराप: कथमीप्सितो भवेत्।	८८
५३.	वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।	२९
५४.	वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्ति:।	१६८
५५.	विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम।	१८
५६.	विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।	९३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पृष्ठ संख्या

५७. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। २८

५८. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति। ६०

५९. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्। २४

६०. सहजं किलं यद्विनिन्दित न खलु तत्कर्म
पशुमारण कर्मदारुणोऽनुकम्पा मृदुरेव श्रोत्रियः। १७५

६१. सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। ८६

६२. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः सम्भावना गुणमवेहि तमीश्वराणाम्। २२३

६३. स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। ८३

६४. स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। १५३

(ख) सुभाषित श्लोक

अंक—श्लोक संख्या

१. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ ५-२४

२. आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥ ७-१७

३. औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ५-६

४. ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ॥ ६-३१

५. भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ५-१२

६. भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥ ५-४

७. मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥ २-५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तु ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ ५-२

९. शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥ २-७

१०. शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ ४-१८

११. सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ ५-१७

१२. सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥ ६-१

१३. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेता
तं चेत् सहस्त्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ ७-४

१४. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ ५-२२

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-५

महाकवि कालिदास विषयक प्रशस्तियाँ

१. भासयत्यपि भासादौ कविवर्गे जगत्त्रयम् ।
के न यान्ति निबन्द्धारः कालिदासस्य दासताम् ॥ —भोज-सरस्वती कण्ठाभरण

२. वासन्तं कुसुमं फलं च युगपत् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् ।
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूत पूर्वमथवा स्वर्लोक भूलोकयो ।
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रिय सखे! शाकुन्तलं सेव्यताम् ॥ —गेटे

३. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम् ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्को यत्र याति शकुन्तला ॥

४. पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥

५. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ —बाण, हर्षचरित भूमिका, श्लोक १६

६. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ —जयदेव, प्रसन्नराघव

७. एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥ —राजशेखर, सूक्तिमुक्तावलि

८. कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशा ॥ —मल्लिनाथ

९. अनघा गुणसम्पूर्णा समुचितविच्छित्तिवृत्तिरीतिरसौ ।
प्रस्तुतरससन्दोहा सरस्वती जयति कालिदासस्य ॥ —अभिराम

१०. वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्री कालिदासं वरम् ।

११. कालिदासकविता, नवं वयो माहिषं दधि सशर्करं पयः ।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गसौख्यमुपभुञ्जते नराः ॥ —घटखर्पर

१२. पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची, नदीषु गङ्गा कवि-कालिदासः ।

१३. ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य ।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः परंपारमवापकीर्तिः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१४. अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा, हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः ।
प्रियाङ्कपालीव प्रकामहृद्या, न कालिदासादपरस्य वाणी ॥ —श्रीकृष्ण कवि

१५. शाकुन्तलचतुर्थोऽङ्कः सर्वोत्कृष्ट इति प्रथा ।
न सर्वसंमता यस्मात् पञ्चमोऽस्ति ततोऽधिकः ॥

१६. धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥ —ज्योतिर्विदाभरण

१७. श्रीकालिदासस्य वचो विचार्य नैवान्यकाव्ये रमते मतिर्मे ।
किं पारिजातं परिहृत्य हन्त भृङ्गालिरानन्दति सिन्दुवारे ॥

१८. अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः
पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते ॥

१९. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

२०. रसभारभरोद्भिन्नां भारतीममरादृते ।
श्रीमतः कालिदासस्य विज्ञातुं कः क्षमः पुमान् ॥ —स्थिरदेव

२१. साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रसलीलाकालिदासोक्तिः ॥ —गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तशती

२२. म्लायन्ति सकलाः कालिदासेनासन्नवर्तिन ।
गिरः कवीनां दीपेन मालती कलिका इव ॥ —धनपाल-तिलकमञ्जरी

२३. महाकवि कालिदासं वन्दे वाग्देवतागुरुम् ।
यज्ज्ञाने विश्वमाभाति दर्पणे प्रतिबिम्बितम् ॥ —हलायुध

२४. वयमपि कवयः कवयः कवयोऽपिं च कालिदासाद्याः ।
दृषदो भवन्ति दृषदश्चिन्तामणयोऽपि हा दृषदः ॥ —स्थिरदेव

२५. लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः ।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥
—दण्डी-अवन्तिसुन्दरीकथा, भूमिका-१५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-६

शाकुन्तल में प्रयुक्त प्राकृत भाषा एवं व्याकरण नियम

प्राकृत का अर्थ—प्राकृत शब्द का निर्माण 'प्रकृति' शब्द से हुआ है। ''प्रवृते आगतम् प्राकृतम्''। प्रकृति अर्थात् मूलभाषा संस्कृत से निकली हुई भाषा जन-साधारण की भाषा का आधार शिष्टजनो द्वारा व्यवहृत भाषा ही हुआ करती है। शिष्टजनो द्वारा व्यवहार में लाई गई भाषा को ही जनसाधारण प्रयत्नलाघव आदि के कारण विकृत बना लिया करते हैं। परिष्कृत-भाषा का यही स्वरूप 'प्राकृत' हो जाया करता है। अतः यह कहा जाना उचित प्रतीत होता है कि परिष्कृत-भाषा 'संस्कृत' का विकृत स्वरूप 'प्राकृत' भाषा है।

प्राकृत भाषा के भेद—प्राकृत भाषा के चार भेद स्वीकार किये जाते हैं—

(१) मागधी, (२) महाराष्ट्री, (३) शौरसेनी और (४) पैशाची।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में गद्य में 'शौरसेनी-प्राकृत' तथा पद्य में 'महाराष्ट्री प्राकृत' भाषा का प्रयोग उपलब्ध होता है।

शौरसेनी प्राकृत—

१. इसमें स्वरों का मध्यवर्ती त का द होता है जब वह अनादि में हो एवं असंयुक्त हो— इतः > इदो
२. श, ष, स का शौरसेनी में 'स' वर्ण हो—शकुन्तला > सकुन्दला
३. दो स्वरों का मध्यवर्ती क, ग, च, ज, त, द, प, य, व वर्णो का लोप हो— सकुन्दला > सउन्दला
४. ख, घ, थ, ध, भ वर्णों का 'ह' हो—सखीभ्यां > सहीओ।
५. प का 'व' वर्ण हो— काश्यप > कस्सव
६. ङस् विभक्ति का 'स्स' हो काश्यपस्य > कस्सस्स
७. सर्वत्र ल, व, र वर्णों का लोप हो—प्रियतरा > 'पिअदरा'
८. अनादि में वर्तमान शेष बचे हुए वर्ण का द्वित्व हो—तर्कयामि > तक्कयामि > क का द्वित्व होकर तक्क हुआ।
९. न का ण हो—येन > जेण
१०. पद के आदि में वर्तमान वर्ण 'य' का ज हो—येन > जेण
११. स्त का थ होता है—विस्तार > वित्थार
१२. कभी शब्द में स्वरों का मध्यवर्ती व्यंजन द्वित्व हो

* * *

१. तो दो अनादौ शौरसेन्याम् अयुक्तस्य।
२. शबोसः।
३. क ग च ज त द प य वां प्रायो लोपः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४. ख घ थ ध भां हः।
५. पो वः।
६. ङसो स्स।
७. सर्वत्र लवराम वन्दे।
८. अनादौ शेषादेशयोः द्वित्वम्।
९. नोणः।
१०. आदेर्योजः।
११. स्तस्य थः।
१२. जैसे यौवन > जोव्वणं। प्रेमन् > पेम्म।
१३. प्राकृत में 'औ' ध्वनि की जगह ओ हो—यौवन > जोवन।
१४. ऋ का उ, क्ष का ख हो वृक्ष > रुक्खः
१५. तिष्ठ का चिट्ठ होता है। तिष्ठ > चिट्ठ।
१६. अव का ओ—जैसे नव > णो,
१७. पश्यति > पेक्खदि रूप होता है।

महाराष्ट्री प्राकृत—

इसका प्रयोग मुख्यतः महाराष्ट्र में ही होता था। प्राकृत-भाषा के वैयाकरणो ने महाराष्ट्री को सर्वोत्तम प्राकृत माना है :—'महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।' काव्यादर्श—१/३५/ नाटकों में शौरसेनी प्राकृत बोलने वाली स्त्रियाँ पद्य रचना में महाराष्ट्री का ही प्रयोग किया करती थीं। प्राकृत-पद्यों की रचना महाराष्ट्री में ही हुआ करती थी। 'गउडवहो' आदि काव्य 'महाराष्ट्री' में ही लिखे गये हैं। इस भाषा में संस्कृत के व्यंजन प्रायः निकाल दिये गये हैं। जैसे कंति, कपि, कृति के लिये 'कइ' का प्रयोग। मत, मद, मृग तथा मृत के लिये 'मअ' का प्रयोग। ख, घ, थ, ध, एवं फ, भ के स्थान पर 'ह' हो जाता है :—मुख-मुह, भवति-होइ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिशिष्ट-७

शाकुन्तल से साम्य वाले कालिदास के अन्य श्लोक

शाकुन्तल	कालिदास के अन्य ग्रन्थ
१. या सृष्टिः··· । प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु स्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ (१-१)	एकैश्वर्यस्थितोऽपि–। अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः, सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स नस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥ (मालविका० १-१)
२. मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः, सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः। उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले, मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः॥ (२-५)	परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम्। श्रमजयात् प्रगुणा च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ॥ (रघु० ९-४९)
३. उद्गलितदर्भकवला मृग्यः, परित्यक्तनर्तना मयूराः। अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥ (४-१२)	नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः। तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव- मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि॥ (रघु० १९-६९)
४. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्–। तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥ (५-२)	रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां···। गतेयमात्मप्रतिरूपमेव, मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्॥ (रघु० ७-१५)
५. किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं, धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्। आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधामित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥ (५-९)	(क) राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते। तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती॥ (रघु १५-४७) (ख) कायेन वाचा मनसापि शश्वद् यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि। आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत्॥ (रघु ५-५)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६. प्रजागरात् खिलीभूत-
स्तस्याः स्वप्ने समागमः।
बाष्पस्तु न ददात्येनां
द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ (६-२२)

(क) त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः
शिलायाम्⋯। अस्रैस्तावन्मुहुरुप-
चितैर्दृष्टिरालुप्यते मे, क्रूरस्तस्मिन्नपि
न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥
(मेघ० २-४४)

(ख) कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागम-
कारिणीम्। न च सुवदनामालेख्येऽपि
प्रियां समवाप्य तां, मम नयन-
योरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति।
(विक्रमो० २-१०)

७. मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिष्यन्दी सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते। (७-९)

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥
(कुमार० १-१)

८. अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि
को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति॥
(६-२५)

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः,
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः॥
मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते।
(रघु० १-६६, ६७)

९. वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
(७-२१)

आद्ये बद्धा विरहदिवसे
या शिखा दाम हित्वा⋯।
गण्डाभोगात् कठिनविषमा-
मेकवेणीं करेण॥
(मेघ० २-२९)

१०. दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी
सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति
त्रितयं तत्समागतम्॥
(७-२९)

बभौ च सा तेन सतां मतेन
श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना॥
(रघु० २-१६)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत साहित्य, रस, अलंकार, साहित्यशास्त्र तथा समीक्षा

अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
पिंगल कृत छन्दःसूत्रम् (वैदिक गणितीय अनुप्रयोगों सहित)	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
रसों की संख्या	प्रो० वी० राघवन्, अनु. : प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र
संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र	प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र
संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास	डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी
भारतीय काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा	डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी
पण्डितराज जगन्नाथ-प्रणीत भामिनी विलास का प्रस्ताविक-अन्योक्तिविलास	सम्पा. : पं. जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
अलङ्कार-दर्पण (साहित्य-दर्पण षष्ठ परिच्छेद व छन्दोमञ्जरी)	डॉ० जनार्दन गङ्गाधर रटाटे
चन्द्रालोक-सुधा एवं छन्दोमञ्जरी-सुधा	विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
चन्द्रालोकः (मयूख एक से चार)	डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी
वक्रोक्तिजीवितम्	डॉ० दशरथ द्विवेदी
रसाभिव्यक्ति / अभिनव रस सिद्धान्त	डॉ० दशरथ द्विवेदी
दशरूपकम्	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी
ध्वन्यालोकः (दीपशिखा टीका सहित)	आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
उपरूपकों का उद्भव और विकास	डॉ० इन्द्रा चक्रवाल
संस्कृत साहित्य की कहानी	उर्मिला मोदी
संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	डॉ० भोलाशंकर व्यास
वेदचयनम्	डॉ० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-संग्रह	डॉ० रामअवध पाण्डेय व डॉ० रविनाथ मिश्र
मुद्राराक्षसम्	सम्पा. : डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी
उत्तररामचरितम् (श्री भवभूति प्रणीतम्)	डॉ० रामअवध पाण्डेय, डॉ०रविनाथ मिश्र
मेघदूतम् (कालिदास)	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी
कादम्बरी : कथामुखम् (बाणभट्ट विरचितम्)	डॉ० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
कादम्बरी (महाश्वेतावृत्तान्त)	डॉ० देवर्षि सनाढ्य, श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी

₹ 120.00
ISBN : 978-81-7124-947-3
9 788171 249473
www.vvpbooks.com

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection